

“नेकचंद की रचनात्मक कला रॉक गार्डन
का कलात्मक अध्ययन”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा एवं निर्देशिका

श्रीमती संतोष

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय

शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री

कोमल

स्नातकोत्तर

(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कोमल, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “ नेकचंद की रचनात्मक कला रॉक गार्डन का कलात्मक अध्ययन ” शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लगन से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं कोमल, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध " नेकचंद की रचनात्मक कला रॉक गार्डन का कलात्मक अध्ययन " विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है, उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिका

श्रीमती संतोष

शोधकर्त्री

कोमल

आर्य कन्या महाविद्यालय,

शाहाबाद (मा0)

कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कोमल**, अनुक्रमांक न0. **220156008**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “ **नेकचंद की रचनात्मक कला रॉक गार्डन का कलात्मक अध्ययन** ” शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक:

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

हमारे जीवन में कला का बहुत गहरा सम्बन्ध है। नेकचंद सैनी के जीवन पर इनके जीवन का काल बहुत संघर्ष पूर्ण था। इनका जीवन कला के लिए समर्पित था। वे अपने जीवन के अस्तित्व का वर्णन तथा जीवन के स्नेह पूर्ण व्यवहार को अपनी कला में दिखाते थे, जो हम सभी के जीवन के एक खास हिस्से को दर्शाती है।

नेक चंद सैनी एक कलात्मक कलाकर थे।

मैं, पंजाब व हरियाणा की राजधानी चण्डीगढ़ में अपनी बहन के साथ गई थी। चण्डीगढ़ पहुंच कर बहन से बात हुई कि हम रॉक गार्डन देखने चलते हैं। जो चण्डीगढ़ का सुप्रसिद्ध गार्डन है। हमने देखा कि गार्डन के अन्दर प्रत्थरों व बेकार पड़ी वस्तुओं से पुरे गार्डन में कला के नजारे बनाएँ हुये थे। जैसे-जैसे गार्डन में, आगे बढ़ते गए, चूड़ियों से बनी मूर्तियाँ देखने को मिली। मैं उन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह गई। तभी मैंने सोचा कि क्या चूड़ियों से भी इतनी सुन्दर मूर्तियाँ बन सकती है। और गार्डन में ओर आगे क्या होगा, इसकी उत्सुकता बढ़ती गई। आगे देखा कि टूटे चाय के कप – प्लेटों व टाइल्स से बनी कलाकृतियां भी अद्भुत व काल्पनिक रूप लिए हुये थी। इसके अतिरिक्त बिजली की तार, खाली ड्रम व ट्यूब्स का भी बहुत अच्छा उपयोग था।

अतः मैंने अपने इस लघु शोध में नेक चंद सैनी के रॉक गार्डन की महत्वता को समझने व समझाने का प्रयत्न किया है। यह विषय मेरी रुचि के अनुकूल है। मैंने अत्यधिक परिश्रम से इस विषय पर अध्ययन किया। इस लघु शोध को मैंने पांच अध्यायों में विभाजित किया है। जो इस प्रकार है :—

- ➔ प्रथम अध्याय में — कला व रचनात्मकता का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।
- ➔ द्वितीय अध्याय में — नेक चंद का जीवन परिचय, नेक चंद जी की उपलब्धियाँ व उपलब्धियों के लिए संघर्ष के बारे में बताया गया है।
- ➔ तृतीय अध्याय में — नेक चंद जी के रॉक गार्डन के अन्दर गुड़िया संग्रहालय व नेक चंद जी का रॉक गार्डन में योगदान के बारे में बताया गया है।
- ➔ चतुर्थ अध्याय में — रॉक गार्डन के विषय और कला सामग्री व शैली तथा व्यर्थ की वस्तुओं का रचनात्मक उपयोग के बारे में बताया है।

➔ पंचम अध्याय में — इसमें रचनात्मक आकारों व चित्रों का विवरण व हरियाणा की संस्कृति के रूपों को दिखाया है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि विद्वान समीक्षक उन्हें अलक्ष्य करने की कृपा करें।

इस शोध पत्र में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उसके लिए केवल मैं दोषी हूँ। अंत में इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

कोमल
शोधकर्त्री

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उल्लेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा, के ललित कला विभाग, की अध्यक्ष आदरणीय श्रीमति संतोष जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर लघुशोध कार्य करने में सहयोग और प्रेरणा दी।

इसके साथ-साथ मैं अपने परिवार जनों का भी हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई।

मैं अपने गुरु आदरणीय एसि प्रौ० श्री महेश धीमान व आदरणीय मैडम सिमरन कौर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ० श्रीमती आरती त्रेहन जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने पूरे शोध कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया व ललित कला विषय में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रारंभ कर हमारे चिरलंबित स्वपन को साकार करने का मौका प्रदान किया।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

कोमल
शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आभार	
प्रथम अध्याय:	01 – 12
– कला	
– रचनात्मकता	
द्वितीय अध्याय :	13 – 22
– नेक चन्द जी का जीवन परिचय	
– नेक चन्द जी की उपलब्धियाँ	
– उपलब्धियों के लिए संघर्ष	
तृतीय अध्याय:	23 – 28
– नेकचंद का रॉक गार्डन में योगदान	
– गुड़िया संग्रहालय	
चतुर्थ अध्याय:	29 – 38
– रॉक गार्डन के विषय	
– कला सामाग्री व शैली	
– व्यर्थ की वस्तुओं का रचनात्मक उपयोग	
पंचम अध्याय :	39 – 52
– रचनात्मक आकारों व चित्रों का विवरण	
– हरियाणा की संस्कृति के रूप	
– उपसंहार	53 – 54
– संदर्भ ग्रंथ सूची	55 – 55
– चित्र संग्रह सूची	56 – 57
– चित्र सूची	58 – 83

प्रथम अध्याय

- कला
- रचनात्मकता

परिचय

कला :-

कला संस्कृत भाषा का शब्द है। 'कल' धातु से कल की उत्पत्ति मानी जाती है, जिसका अर्थ प्रसन्न करना है। कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति 'कड़' धातु से मानते हैं। संस्कृत में कला शब्द का प्रयोग अनेक रूपों में किया गया है। इसका व्यावहारिक अर्थ है 'किसी भी कार्य को पूर्ण कुशलता के साथ करना है'। और 'आर्ट' शब्द का प्रयोग 13वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ। आर्ट शब्द लैटिन भाषा के आर्स (ARS) शब्द से बना है। इस शब्द का अर्थ क्राफ्ट है जैसे— स्वर्णकारी।

कला (आर्ट) शब्द इतना व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएं केवल एक पक्ष को छोड़कर रह जाती हैं। कला का अर्थ अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। यद्यपि इसकी हजारों परिभाषाएं की गई हैं। भारतीय परंपरा के अनुसार कला उन सारी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। अगर देखा जाए तो कला इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति के साथ शुरू हुई है। हम यह भी कह सकते हैं कि इस ब्रह्मांड में पहला कलाकार खुद भगवान है, जिसने इस ब्रह्मांड को रचा है। जिसमें भगवान ने वृक्षों, पशुओं, सूर्य, चंद्रमा आदि की रचना की है।

आदिमानव, पक्षियों और जानवरों द्वारा उत्पादित प्राकृतिक चलने वाले संगीत, हवाओं, ध्वनि से संतुष्ट था। भगवान ने इंसान को बनाया। किसी भी कार्य को पूरी कुशलता या निपुणता से संपन्न करना। जिससे हमें आनंद की प्राप्ति हो वह कला कहलाती है। जैसे— मूर्ति बनाना, चित्र बनाना, गीत गाना, कविता पढ़ना आदि। गीत गाना कला तभी कहा जा सकता है जब गीत मधुर, लय और ताल के साथ गाया जाए। इसी प्रकार नाटक, चित्र, मूर्ति आदि कला के घेरे में तभी आएगी जब इसमें अर्थ, रस, भाव और रूप की सुंदर निष्पत्ति होगी।

मनुष्य शुरू से ही खुबसूरती और सौंदर्य का पुजारी रहा है। हमें सुंदर वस्तुएं पसंद हैं और सुंदर वस्तु हमारा ध्यान आकर्षित करती है। प्रत्येक इंसान हमेशा सुंदर वस्तुओं की मन में कामना करता है और इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य ने विभिन्न रचनाएं की जैसे— संगीत का निर्माण, काव्य का निर्माण, सुंदर इमारत का निर्माण इत्यादि। इन सुंदर वस्तुओं के निर्माण की प्रक्रिया और काबिलियत को ही कला का नाम दिया गया है।

यूरोपीय शक्तियों ने भी कला में कौशल को महत्वपूर्ण माना है। कला एक प्रकार का निर्माण है, जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। सीधे शब्दों में कहें तो आमतौर पर मानव

द्वारा उसके दिमाग में चल रही हजारों प्रकार की कल्पनाओं को समाज के सामने दिखाने की क्रिया को कला या “आर्ट” कहते हैं। क्रिया के जिस रूप में कार्य करने या होने के समय का बोध होता है, उसे कला कहते हैं।

कला ही है जिसमें मानव मन में संवेदनाएं उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरुचि को शिक्षा देने की अद्भुत क्षमता है। मनोरंजन, सौंदर्य, प्रवाह, उल्लास न जाने कितने तत्वों से यह भरपूर है। जिसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है। वह अपना जादू तत्काल दिखाती है और व्यक्ति को बदलने में लोहा पिघलाकर पानी बना देने वाली भट्टी की तरह मनोवृत्तियों में भारी रूपांतरण प्रस्तुत करती हैं। एक कलाकार अपनी आवाज नहीं उठाता, संदेश प्रसारित करने के लिए उसकी कला की अभिव्यक्ति काफी है।

कला मनुष्य के अन्तरभावों की सहज अभिव्यक्ति है। जब यह अभिव्यक्ति रेखा, रूप, रंग द्वारा साकार रूप से अभिव्यक्त होती है, तब एक चित्र का निर्माण होता है, जिसे हम चित्रकला कहते हैं। कलाओं में चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतः भारत में कला को योग साधना माना जाता है। कला शब्द मानव जीवन में इतना घुला-मिला हुआ है कि कला के बिना मानव जीवन की संभावना शून्य हैं। स्वयं मनुष्य अपने आप में एक कलात्मक कृति है।

किसी भी दक्षता का प्रयोग जब सुंदरता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है तो उसे कला कहते हैं। नागरिक के उचित निर्माण में कलाएं सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती हैं। अतः कला का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य यही है, एवं यह केवल शिक्षा द्वारा ही संभव हो सकता है। कला में मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। चित्रकला एक श्रेष्ठ कला है। रंगों भरी तुलिका से चित्रकार अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है।

कला मनुष्य को भगवान की ओर से मिला एक ऐसा तोहफा है जो सभी प्राणी, पशु और जीव के पास भी है। कला से मनुष्य अपने जीवन में अनेक सफलता प्राप्त कर अपने जीवन को एक नए मुकाम पर ले जा सकता है। सिर्फ जरूरत है मनुष्य को अपने अंदर की छिपी कला को पहचान कर उसे निखार कर समाज के सामने प्रस्तुत करने की।

❖ भारत की कलाएँ :-

अगर अपने भारत को कला की दृष्टि से देखा जाए तो भारत कला का खजाना है। यह हर क्षेत्र, कस्बे, गाँव, हर राज्य की एक नई कला और पहचान है।

भारत में अनेक कलाएं मौजूद हैं जैसे— हस्तकला, चित्रकला, नृत्य, संगीत, ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, अभिनय अनेक विश्व विख्यात कलाएं हैं, जो भारत में देखी जा सकती हैं। बिहार की मधुबनी चित्रकारी, गुजरात का डांडिया, उड़ीसा के पटचित्र चित्रकारी, आंध्र प्रदेश की निर्मल चित्रकारी, पंजाब का भांगड़ा, असम का बिहू, भरतनाट्यम्, कथकली नृत्य, अजंता एलोरा की भित्तिचित्र, इसके उपरांत अनेक राग, विराग, अभिनय शैली जैसे— महाभारत, रामायण, संगम साहित्य इसके भी अलग-अलग रूप हैं। ये सब भारत का मान-सम्मान और गौरव का अनुभव देता है, और भारत को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक गौरवशाली विरासत का अनुभव करवाता है।

कला जीवन में प्राण डाल देती है कला जीवन को एक नई ऊंचाइयों पर ले जाती है। नए आदर्शों की स्थापना कर उसका प्रचार करती है और जीवन को प्रकाशमय बना देती है।

वास्तव में हमने देखा है कि एक सिक्के के दो पहलू होते हैं— सकारात्मक और नकारात्मक। एक सच्चा कलाकार हमेशा अपने जीवन का उद्देश्य कला को अच्छे से प्रदर्शित करने में समझता है। कला जीवन का दायित्व है। कला के बिना जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। कला में सुखद, उन्नत, भविष्य और समाज की स्थापना होती है। कला समाज के लिए एक उच्च माध्यम है, जो नवयुवक के जीवन को नई दिशा देकर उनके जीवन को उत्साह और उमंग से भरने का काम करती है। इसलिए हमेशा कला के महत्व को समझ कर अपने अंदर की कला का सम्मान कर उसे निकालने का प्रयास करना चाहिए।

❖ परिभाषाएं :-

- राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कला के लिए अपना मत कुछ इस तरह दिया है— कि “अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति कला है”।

इटली के महान विद्वान तो कला को अभिव्यक्ति का साधन मानते हुए कहा हैं— कि ‘कला का संबंध केवल स्वानुभूति से प्रेरित प्रक्रिया से है।

- कला शब्द का प्रयोग ललित कला हेतु किया जाता है। श्री रविंद्र नाथ टैगोर के अनुसार— “कला में मनुष्य अपने मन की अभिव्यक्ति करता है, न की ब्राह्म्य रूप की।

- मार्कंडेय मुनि द्वारा रचित विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कलाओं में चित्रकला को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।

कला शब्द का प्रयोग 'ऋग्वेद' में हुआ। कला शब्द का यथार्थवादी प्रयोग 'भरतमुनि' ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में प्रथम शताब्दी में किया। ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसमें कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, जो कला न हो।

- 1 जयशंकर प्रसाद के अनुसार :— “ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का संकुचित रूप जो हमको भाव-बोध के लिये मिलता है— कला है।
- 2 हीगेल के अनुसार :— “कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है”।
- 3 रस्किन के अनुसार :— “कला में मनुष्य अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है”।
- 4 क्रोचे के अनुसार :— “हर एक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव — अहलाद की अभिव्यक्ति है।
- 5 फ्रायड के अनुसार :— “कला दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप है”।
- 6 अरस्तु के अनुसार :— “कला प्रकृति का अनुकरण है”।
- 7 प्लेटो के अनुसार :— कला सत्य की अनुकृति है”।
- 8 पिकासो के अनुसार :— कला एक ऐसा सत्य है जिसमें हमें सत्य का बोध होता है”।

❖ कला के प्रकार :—

कला के कई प्रकार होते हैं और इन प्रकारों का परिगणन भिन्न-भिन्न रीतियों से होता है।

1 मोटे तौर पर जिस वस्तु, रूप अथवा तत्व का निर्माण किया जाता है, उसी के नाम पर इस कला का प्रकार कहलाता है। जैसे—

- वास्तुकला या स्थापत्य कला :— अर्थात् भवन निर्माण कला जैसे— दुर्ग, प्रसाद, मंदिर, स्तूप, चैत्य, मकबरे आदि।
- मूर्तिकला :— पत्थर या धातु की छोटी बड़ी मूर्तियां।
- चित्रकला :— भवन की भित्तियों, छतों या स्तंभों पर अभाव वस्त्र, भोजपत्र या कागज पर अंकित चित्र।
- मृदभांड कला :— मिट्टी के बर्तन।
- मुद्राकला :— सिक्के या मुहरे।

2 कभी—कभी जिस पदार्थ से कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है, उसे पदार्थ के नाम पर उस कला का प्रकार माना जाता है। जैसे —

- प्रस्तर कला :— पत्थर से गढ़ी हुई आकृतियां।
- धातुकला :— कांसे तांबे अथवा पीतल से बनाई गई मूर्तियाँ।
- दंतकला :— हाथियों के दांत से निर्मित कलाकृतियां।
- मृत्तिका कला :— मिट्टी से निर्मित कलाकृतियां या खिलौने।

✓ कला को मुख्य दो भागों में बांटा गया है।

1. उपयोगी कला

2. ललित कला

1. उपयोगी कला मानव समाज के घरेलू उपयोग में आती है जैसे— आभूषण कला, काष्ठ कला।
2. ललित कला सौंदर्य प्रधान होती है। मानव के मस्तिष्क को आनंद प्रदान करने वाली होती है।

✓ भरतमुनी ने कला को ललित कला के रूप में माना है तथा 8 रसों को बताया है। भरत मुनि ने कला के दो प्रकार बताए हैं :—

- 1 मुख्य कला
- 2 गौड़ कला

✓ हीगल ने भी कला को दो भागों में बांटा है :-

- 1 दृश्य कला (चित्र, वास्तुकला, मूर्तिकला)।
- 2 श्राव्य कला (संगीत सुनने वाली, काव्य)।

✓ हिगल के अनुसार उच्च पद पर काव्य को रखा है तथा निम्न पद पर वास्तु कला को रखा है। परंतु हिगल ने कलाओं को तीन ने मानकर पांच माना है।

- 1 चित्रकला :- इस अत्यंत, उत्कृष्ट एवं सूक्ष्मकला के रूप, रंग, आकार तथा लंबाई एवं चौड़ाई होती है। यह मनोभावों को अत्यधिक स्पष्ट करने में समर्थ होती है।
- 2 मूर्तिकला :- इस कला के अंतर्गत किसी वस्तु का रूप, रंग, आकार आदि निर्मित किया जाता है। यह कला उत्कृष्ट मनभावों को व्यक्त करने में सक्षम होती है।
- 3 संगीत कला :- 'नाद' तथा 'स्वर' पर आधारित इस कला के द्वारा व्यक्त भाव अत्यधिक सूक्ष्म, स्पष्ट तथा हृदय ग्राही होते हैं।
- 4 काव्य कला :- शब्द एवं अर्थ पर आधारित इस उत्कृष्ट कला में 'स्वर' एवं 'व्यंजन' दोनों प्रयुक्त होते हैं। इसका प्रभाव भी चिरस्थायी होता है।
- 5 स्थापत्य कला या वास्तुकला:- इस कला के अंतर्गत भवन, मंदिर, मस्जिद, चर्च, पुल तथा बांध आदि का निर्माण कार्य होता है।

✓ अरस्तु के दार्शनिक ने भी कला को दो भागों में बांटा है :-

- 1 ललित कला
- 2 उदार कला

रचनात्मकता

रचना करना वह है जो अपनी कल्पना द्वारा सबसे अलग उनोखी कला का निर्माण करना है । रचना मन का द्वार है मन में जैसे भाव हैं वैसी ही रचना होती है। भारतीय इतिहास में भी कई रचनाकार मूर्तिकार व चित्रकार के उदाहरण हैं जिन्होंने कला को बढ़ावा देकर कला का इतिहास बनाया ।

महात्मा बुद्ध जी के युग से पहले हमें कलाकृतियों का कोई प्रमाण नहीं मिला, व बुद्ध जी के युग में प्रकृति की पूजा की जाती थी । उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्यों ने कमल चिह्न, पद चिह्न व उनकी मूर्तियां बनाकर पूजा करने लगे। तभी से मूर्तिकला आरम्भ हुई । इस युग के पश्चात् कई रचनाकारों व मूर्तिकारों ने अद्भुत रचनाएं तैयार की जैसे अमरावती का स्तूप आज भी भारतीय कला का अनुपम सदाहरण है, सांची स्तूप की सुन्दरता पर कोटानिति और चारों ओर की कला आज भी बेजोड़ है । बुद्ध जी की मूर्तियाँ मूर्तिकला का चरगोश उदाहरण है । इन्होंने भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला को अमर कर दिया है। अंजता एलोरा की गुफाएं आज भी विश्व भर में प्रसिद्ध हैं । यह भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है । इस तरह इतिहास के कलाकारों ने वास्तु स्थापय, मूर्तिकला, चित्रकला इन विविध कलाओं को विशिष्ट रूप से गतिशील करके सर्वश्रेष्ठ सौपान पर पहुंचाया है ।

प्राचीन काल में धातु मूर्तिकला में हमें देवी देवताओं के आदर्श और गुणों का मानवीकरण देखने को मिलता है साथ ही उनके समय के प्रमुख स्त्री-पुरुषों की भी धातु मूर्तियां देखने को मिली हैं । इनके अतिरिक्त मन्दिरों के निर्माणकर्ता या मन्दिरों के बड़ी-बड़ी भेंट चढ़ाने वाले सेठ या राजा महाराजाओं की मूर्तियां भी मिलती हैं यदि इन्हें कारीगर की दृष्टि से देखें तो इन्हें उच्च कोटी की रचना कही जा सकती है ।

12वीं शताब्दी के बाद उत्तर भारत की मूर्तिकला परम्परा का वैभव धीरे-धीरे क्षीण होने लगा, कई आक्रमणकारियों ने भारत की कई अमूल्य सम्पत्ति मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस काल में आकृति चित्रण का निषेध रहने के कारण मूर्तिकारों ने ज्यामितीय आकारों की बेल-बूटीयां की पच्चीकारी व अन्य प्रकार की अलंकरणों को विकसित करने की ओर ध्यान केन्द्रित किया । पहले जैसी सजीवता इस काल की कला में देखने को नहीं मिली परंतु लघु चित्रण कला का विकास इसी युग में हुआ । लघु चित्रण में सूक्ष्म रूप प्रस्तुत किया जाता था आज तक भारत में मूर्ति कला को कभी भी पूर्ण रूप से

पृथक नहीं होना पड़ा यद्यपि कालान्तर में अनेकों आक्रमण हुए, कई परिवर्तन हुए इन यदा-कदा परिवर्तनों के बाद भी मूर्तिकला के आदर्शभूत वैभव ने सदैव ही अपनी अपूर्ण कीर्ति को स्थिर रखा है।

अनेकों साम्राज्य एक के बाद एक नष्ट होते गए जिन्होंने मूर्तिकला द्वारा अपनी-अपनी संस्कृति के विभिन्न रूप मूर्ति शिल्पों में छोड़े हैं। 15वीं शताब्दी के पश्चात धातु मूर्तिकला का तकनीक में बहुत अधिक सुधार के चिह्न दिखाई देने लगे। ईसा सदी में देवी देवताओं की मूर्तियों को बड़ा व उनके साथ बनाई जाने वाली देवियों की प्रतिमाओं को उनके आकार में छोटा दिखाया गया। वैदिक एवं सिन्धु घाटी से खोदकर निकाले गए प्रमाण भी इसी सत्य की पुष्टि करते हैं। मौर्य काल, गुप्तकाल से लेकर उत्तर मूर्तिकला व दक्षिण मूर्तिकला ने भारत में उच्चकोटो की मूर्तिकला के कुशल उदाहरण स्थिर करने में सहायता की है। मूर्तिकला की ये परम्परा किसी काल में अधिक व किसी काल में कम परंतु सदैव जीवित रही और कभी भी पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुई।

भारत में मूर्तिकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय जन-जीवन व कला क्षेत्र सदा ही धर्म प्रधान रहा है। इसलिए भारत में धार्मिक स्मारक, मन्दिर, देवी देवताओं की मूर्ति की आवश्यकता सदैव रही है। पहले भी मूर्तियां बनती थी अब भी मूर्तियों का महत्त्व कम नहीं हुआ। रचनाकार विभिन्न तकनीकों व वस्तुओं द्वारा मूर्तियों का निर्माण करते रहे हैं। कुछ प्रसिद्ध रचनाकारों ने अलग-अलग धातुओं का प्रयोग करके अपनी रचना का निर्माण किया है।

भारतीय मूर्तिशिल्प का इतिहास दो हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। इस दौरान इसमें भी अनेक परिवर्तन आये, अनेक शैलियां बदली, साथ ही कला के प्रति रुचियां भी बदली। रीतियों, नितियों में भी अनेक परिवर्तन हुए। मूर्तिकला का इतिहास युगों युगान्तरों में आये परिवर्तन का इतिहास है। भारत में धातु मूर्तिकला का भी एक लंबा इतिहास रहा है। विभिन्न तरह की धातुएं, पीतल, जिस्ट, तांबा, कांसा व अन्य कई धातुओं से मूर्तियों का निर्माण किया जाता था इस इतिहास को मोहनजोदड़ो और हडप्पा कालीन सिन्धु घाटी की सभ्यता से जोड़ कर देखा जा सकता है क्योंकि कांस्य मूर्तिकला का सबसे प्राचीन और पहला उदाहरण मोहन जोदड़ो से प्राप्त नर्तकी की मूर्ति है। इस प्रकार कांस्य मूर्तिकला की दृष्टि से यह मूर्ति आज से हजारों वर्ष पूर्व से ही इस कला की तकनीकी ज्ञान से उस समय के कलाकारों से मौजूद होने का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है।

भारतीय आधुनिक मूर्तिकला का आरंभ 19वीं शताब्दी से हुआ आधुनिक कला की शुरुआत तो यूरोप में हुई थी, जहां से उसने भारत में प्रवेश किया। हमारे देश में अनेक स्थानों पर आर्ट स्कूलों की

स्थापना हुई, जहां पर अध्ययन कर देश के युवा कलाकारों ने कला क्षेत्र में नये शिल्प कला रूपों का विकास कर कला के नये युग का सूत्रपात किया । आज देश के नामी कलाकारों ने स्वतन्त्र भारत की कला व अपने अंदर की कला दिखाकर देश को नई ऊँचाईयों तक पहुंचाने की चेष्टा की है। देश की अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाने में पूर्ण योगदान दिया है। यही नहीं विदेशों में भी भारतीय कलाकारों ने अपना सिक्का जमा लिया है। विदेशों से कई लोग भारतीय कला के दर्शन के लिए भारत का दौरा करते हैं। कला प्रेमी भारत की अद्भुत कला प्रदर्शनी देखकर मंत्र मुग्ध हो जाते हैं ।

➤ मूर्ति की परिभाषा:

डॉ. राय कृष्ण दास जी के अनुसार “किसी भी धातु सोना, चांदी, कांसा, पीतल, अष्टधातु अथवा कृत्रिम धातु पारे का मिश्रण रत्न, अरत्न, कांच, कड़े और मुलायम पत्थर, मसाले, कच्ची पक्की मिट्टी, मोम, लाख, गंधक, हाथी दांत, शंख सीप, अस्थि, सींग, लकड़ी, कागज की बनी लुग्दी आदि को उनके स्वभाव के अनुसार गढ़कर, खोदकर, उभारकर, कोटकर, पीटकर हाथ से एवं औजार से टौलियाकर ठप्पा या सांचा छापकर बनाई गई आकृति को मूर्ति कहते हैं।

भारतीय मूर्तिकला का सम्बन्ध मानव सभ्यता के विकास से रहा है कुछ विद्वानों के मतानुसार भारत में मूर्तिकला का इतिहास मानव की धार्मिक अभिरूचियों के साथ-साथ पनपा । कई देवी देवताओं की मूर्तियां बनाई गईं. आरंग से भारतीय मूर्तिकला का मुख्य ध्येय पूजा आदि धार्मिक कार्यों के लिए किया जाता था परंतु कहीं-कहीं उनमें अतीत का संरक्षण तथा दूसरा उनके अव्यक्त को व्यक्त करना या अमूर्त को मूर्त रूप देना भी दृष्टिगत होता है ।

हाथी, घोड़े और टैटू की आकृतियां बनाकर मनुष्य ने अपने अतीत के संरक्षण की भावना को संतुष्ट किया है । ताबें कांसे व अन्य धातुओं की बनी हुई आकृतियों का भाव कराने वाली मूर्तियों द्वारा उसने पूजा के उद्देश्य से अमूर्ति को मूर्ति रूप देने की अपनी दूसरी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। ऐसी मूर्तियों का निर्माण अधिकतर धार्मिक उद्देश्य को ही ध्यान में रखकर हुआ है । धर्म से जुड़ी इन मूर्तियों को शोभा अतुलनीय है । चूंकि भारत एक धर्म प्रधान देश है इसलिए यहां अधिकतर धार्मिक मूर्तियां बनाई जाती है ।

देवी-देवताओं की मूर्ति रूप में पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त सिंधु घाटी की सभ्यता कई वर्षों पुरानी मानी जाती है। यहां पकाई गई मिट्टी की ईंटों का प्रयोग भवन निर्माण में होता था ज्यादा

अधिक लम्बी चौड़ी ईंटों के प्रयोग के कारण से ही विद्वानों ने इस सभ्यता को “पकाई मिट्टी की ईंटों की सभ्यता” का नाम दिया है । इस सभ्यता के लोग कला का यह गुण अच्छे से जानते थे, इन स्थानों पर कई प्रकार की मुहरें, मिट्टी की मूर्तियां एवं टूटे हुए मिट्टी के बर्तन आदि प्राप्त हुए हैं । इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस समय के लोग मिट्टी, पत्थर तथा तांबे की मूर्तियां बनाना जानते थे ।

सिंधुघाटी के अतिरिक्त मौर्यकाल में भी मूर्तिकला की उच्चकोटी का स्थान प्राप्त किया। इस काल में कई शिला- साम्नों का निर्माण हुआ । गौर्य काल में वास्तुकला और मूर्तिकला दोनों की ही उन्नति हुई, “अशोक द्वारा निर्मित सारनाथ का सिंह स्तम्भ इसका उदाहरण है” । ऐसे ही कई टूटे हुए स्तम्भों के अंश से उनकी कला का पता चला है। ऐसे कई चिह्न वर्तमान समय में भी मौजूद हैं जिनके प्रमाण हमें आज भी मिलते हैं। श्री रामकृष्ण दास जी के अनुसार ऐसे स्तम्भों की संख्या करीब 30 से आसपास होगी ।

विभिन्न स्थानों पर स्थित ये सभी स्तम्भ अपनी अलग पहचान लिए हुए हैं। यह सभी स्तम्भ चुनार के पत्थर के बने हैं इनकी पॉलिश भारतीय कला की एक ऐसी विशेषता है जो संसार भर में अद्वितीय है । इस कला को देख कर दर्शकों की आंखें खुली रह जाती हैं । इन कालों के अतिरिक्त कई अन्य समय काल में भी अदभुत काम देखने को मिलता है । जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह मूर्तिकला हमें हमारी विरासत में मिली है जिसे आज भी जीवित रखने के प्रयत्न जारी हैं। कई मूर्तिकार व कलाकार अपनी विरासत से प्रेरणा लेकर अपने काम को जारी रखे हुए हैं। उनके मतानुसार वे भावी पीढ़ी के लिए अमूल्य विरासत तैयार कर रहे हैं। वे कई नई-नई खोजें करते हैं । विभिन्न प्रकार की आकृतियां बनाते हैं ।

आधुनिक आकृतियों को भी कला का हिस्सा समझते हैं अपनी कल्पनाशील शक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति को कल्पना लोक में ले जाते हैं । ऐसी कला सच में अतुलनीय है । कला के भाव एक पेड़ के समान हैं जिसकी जड़ें बगीचे के चारों तरफ फैली हुई हैं । इसकी शाखाएं आसमान की तरफ चेहरा करके निरन्तर बढ़ रही हैं इस वृक्ष के मीठे फलों से कई लोग आनन्द प्राप्त करते हैं, कई पक्षियों ने इस वृक्ष में अपना घोंसला भी बनाया है ।

कई यात्री इस वृक्ष के नीचे छाया में आराम करते हैं। वृक्ष किसील खास व्यक्ति को नहीं पहचानता वह सबको समान रूप से छाया, फल देता है। वृक्ष की तरह ही कला भी प्राचीन परमात्मा से जुड़ी व अध्यात्मिक है । कला भी बन्धन को नहीं मानता । यह बिना आवाज के वार्तालाप करने का

माध्यम है । यह मुक ध्वनि रंगों की है जिसके प्रयोग से हम अपने विचार व भावनाएं व्यक्त करते हैं। ये मानव की छिपी भावना को व्यक्त करने का रास्ता है कला सर्वोपरि है।

द्वितीय अध्याय

- नेक चन्द जी का जीवन परिचय
- नेक चन्द जी की उपलब्धियां
- उपलब्धियों के लिए संघर्ष

नेक चन्द जी का जीवन परिचय

चण्डीगढ़ की सुप्रसिद्ध जगह “रॉक गार्डन” का निर्माण “श्री नेक चन्द सैनी जी” ने किया। इनका जन्म 15 दिसम्बर 1924 ई. को बैरिन कला (पाकिस्तान) में हुआ जो जिला शेखरगढ़ के पास है। जब इनकी आयु बारह वर्ष की थी तो ये अपने अंकल के साथ गुरदास पुर आ गए। वहीं उन्हीं के पास रहकर इन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। गुरदास पुर में वे गुलाम दीन मन्नारी हाई स्कूल में पढ़े। इन्होंने मैट्रिक तक पढ़ाई की और 1943 में वापिस आ गए। अपने माता-पिता के पास वापिस आने पर वे अपने पिता के साथ खेतों के काम में हाथ बटाने लगे। आजादी से पूर्व इनका गांव भारत का ही हिस्सा था परन्तु विभाजन के पश्चात् भारत दो हिस्सों में बंट जाने के कारण अब यह गांव पाकिस्तान के हिस्से में है। इन्होंने अपना अधिकतर समय भारत में ही व्यतीत किया। शादी के पश्चात् ये अपने परिवार को लेकर जम्मू आ गए और गुरदास पुर में बस गए। ये सरकारी कर्मचारी के रूप में कार्य करने लगे।

कुछ वर्षों के पश्चात् अपनी पत्नी कमला को लेकर चण्डीगढ़ में आकर रहने लगे। इन्होंने चण्डीगढ़ में कैपिटल प्रोजेक्ट पर भी काम किया। 10 अक्टूबर 1950 से ये पी.डब्ल्यू.डी. (पब्लिक वर्क डिपार्टमेंट) में एक रोड इन्सपेक्टर की हैसीयत से कार्यरत रहे। नेक चंद जी के परिवार में उनकी पत्नी कमला जी व दो बच्चे बेटा अनुज सैनी व बेटी नीलम सैनी हैं। इनके बेटे अनुज भी अपने पिता के साथ उनके कार्य में मदद करते रहे। कई वर्षों तक पी.डब्ल्यू.डी. में काम करते रहें व बाकी के खाली समय को भी व्यर्थ नहीं करते थे।

नेक चंद जी पब्लिक वर्क डिपार्टमेंट में रोड इन्सपेक्टर के रूप में चण्डीगढ़ की सड़कों के निर्माण के काम को जिम्मेदारी से किया करते थे, इमारतों के निर्माण के समय इनके अन्दर का कलाकार कुछ नया करने के लिए आतुर रहता था। कला में तो रुचि उनकी शुरु से ही थी, लेकिन काम करते-करते कला के प्रति इनकी रुचि व लगन और बढ़ती चली गई व कला में निखार आता चला गया।

जब कभी भी वे खाली समय पाते थे, घरेलू काम छोड़कर अपनी साईकल पर पहाड़ी इलाकों की तरफ चले जाते और नदी के किनारे घंटों समय बिताते। इन इलाकों में जाकर ये आनन्द प्राप्त करते थे। इन्हें जो कोई भी पत्थर व धातु मिलती उसे ले आते और कई काल्पनिक आकृतियों का

निर्माण करते जो कि आम आदमी की सोच से कहीं ज्यादा परे है। इन खोजे हुए पत्थरों में भी इन्हें आकृतियां दिखाई देती है। ये इनके अन्दर के कलाकार को अद्भुत खोज है।

लगभग 36 वर्ष पहले नेक चंद जी ने चण्डीगढ़ के एक छोटे से जंगल के टुकड़े को एक छोटा सुन्दर बाग बनाकर इस नई खोज की शुरुआत की। नेकचंद जी ने कई पत्थरों का इस्तेमाल किया, इन पत्थरों से विभिन्न आकृतियां बनाई, इन पर कई व्यर्थ पदार्थों का भी प्रयोग किया, जो भी व्यर्थ वस्तु देखते उसे सम्भाल लेते थे और कहीं न कहीं उस वस्तु को अपनी कला में प्रयोग कर लेते थे। नेकचंद जो अपने काम के प्रति बहुत लगाव रखते हैं। इन्होंने कई एकड़ जमीन पर कई हजारों की संख्या में काल्पनिक आकृतियां बनाई है, जो कि अद्भुत है। ये व्यर्थ वस्तुओं को दोबारा उपयोग योग्य बना देते हैं जो व्यर्थ वस्तु हाथ में आती उसे अपने पास में रख लेते जो कि अब “रॉक गार्डन” है। विभिन्न तरह के विचित्र व अटपटे दिखने वाले पत्थर इन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ये इन व्यर्थ वस्तुओं को लाकर साफ करके अपनी अमूल्य खजाने में एकत्रित कर लेते हैं। ये इन पत्थरों को अपनी साईकिल के पीछे वाले स्टैंड पर रखकर लाते थे। इस तरह इन्होंने अपना अलग, संग्राहलय बनाया।

रोजाना की दिनचर्या के पश्चात् सैनी जो प्रतिदिन रात्रि के समय इस कार्य को बड़ी लगन एवं कुलशता के साथ किया करते थे। काम 'को करने के साथ उनके मन में डर भी था, वह डर इनके द्वारा निर्मित कलाकृतियों को सरकार द्वारा नष्ट होने का था। इन्हें यह डर इसलिए था क्योंकि वह जिस जगह पर ये कलाकृतियां बना रहे थे वह जमीन इनकी नहीं थी, वह सरकारी जमीन थी, जिसका उन्होंने गैर कानूनी ढंग से प्रयोग किया। इसके बावजूद भी इन्होंने अपना काम जारी रखा क्योंकि इनका डर इनकी लगन के ऊपर हावी नहीं हो पाया। बड़ी लगन से किए इस काम को जब सरकार ने देखा तो सरकार ने इन्हें बहुत प्रोत्साहित किया और यह सलाह भी दी कि वे अपना पूरा समय इस कार्य करने में लगाए इसके अतिरिक्त इनको निश्चित आय भी निर्धारित कर दी गई।

नेक चंद जी को इस कार्य में सहायक के रूप में 50 अन्य कर्मचारी भी दिए गए। इनके इस काम को बहुत जल्दी पहचान मिल गई। लोगों ने इनकी काल्पनिक आकृतियां बहुत पसंद की। लोगों को इस गार्डन में नया देखने को मिला। इन्होंने इस गार्डन में पुरानी व्यर्थ वस्तुओं को नए ढंग से व्यक्त किया है। इस तरह नेक चंद जी की कला को “रॉक गार्डन” के नाम से पहचान मिली। इस प्रसिद्धी में पहले नेकचंद जो स्वयं भी नहीं जानते थे कि वे क्या निर्माण कर रहे हैं। इन्होंने अपनी कल्पना से एक

नई दुनिया को बनाया है। वे नहीं जानते थे कि भविष्य में इस नगरी का क्या होगा, वे अपनी हर नई खोज में व्यस्त रहते थे, पूरी लगन से वे काल्पनिक आकृतियों को बनाते और पूरी मस्ती से उनमें खो जाया करते।

इसी लगन से लगभग 20 साल नेक चंद जी ने काम किया। अपनी उम्र के कीमती वर्षा में इन्होंने काल्पनिक नगरी बनाकर चण्डीगढ़ में अपनी अलग पहचान बनाई। नेकचंद जी भारत के पहले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रकृति के असली दृश्य को अपनी कल्पनाशील दुनिया में शामिल किया। इन्होंने झरनों को इस ढंग से बनाया कि इसमें बह रहा पानी दुबारा से प्रयोग में आ जाता है। जो देखने में व्यक्ति को आत्मविभोर कर देता है।

नेकचंद जी के दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले पदार्थों में से व्यर्थ पदार्थों को बहुत सही ढंग से सदुपयोग किया है। जैसे तेल के खाली ड्रम, खराब बल्ब, टूटी हुई टाइले, इमारतें बनाते समय व्यर्थ पड़ी वस्तुएं, बिजली की खराब तारें, ग्लास, शीशे व कांच की चूड़ियां 'इत्यादि इनको अपनी समझ व कल्पना के अनुसार इस्तेमाल किया। इन सबके अतिरिक्त आम जीवन में प्रयोग करने वाले पदार्थों में से जो व्यर्थ वस्तुएं होती, उन्हें भी अपनी कला में शामिल किया। इन्होंने कभी भी इस कल्पनाशील नगरी को बनाने का कोई सपना नहीं देखा था। बल्कि बचपन में वे अपने मित्रों के साथ "देवताओं की नगरी" नामक खेल खेला करते थे।

इस खेल में भी वे व्यर्थ वस्तुओं को सदुपयोग किया करते थे। परंतु यही खेल इतना बड़ा वास्तविक रूप ले लेगा यह सोचा नहीं था। इस गार्डन को बनाते समय इन्होंने अपनी बचपन के बिताए पलों को दुबारा से जीया है। बचपन के एक साधारण खेल ने इनका जीवन में बहुत बड़ा रूप ले लिया है। इनका यह मानना था कि जैसा काम वे करते हैं, यह किसी न किसी द्वारा एक दिन नष्ट हो जाएगा। जैसे बच्चों द्वारा बनाया रेत का घर थोड़ा समय बाद नष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार इनकी नगरी भी नष्ट हो जाएगी, परंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। बल्कि वे एक सितारे की तरह चमके। इनकी मेहनत, कल्पनाशक्ति व काम के प्रति सच्ची लगन ने इन्हें कामयाबी दिलाई।

20 साल के काम के बाद जब इनका यह काम सब के सामने आया तो ये चमकते सितारे की तरह उभरे। 1973 में पी.डब्ल्यू. डी. ने जब इस गार्डन को देखा तो इन्होंने इसे "स्टोर गार्डन" का नाम दिया। चण्डीगढ़ के ब्यूरोक्राट्स प्रशासन ने इन्हें सपोर्ट किया। प्रशासन दल ने नेक चंद जी को इस अद्भुत नगरी के निर्माण के लिए पूरी सहायता दी। डॉ. एम.एन. शर्मा जो कि चण्डीगढ़ के पहले

उप-वास्तुकार ये, उन्होंने इनके दिमाग की दात दी और प्रोत्साहन देते कहा कि “मेरा दिल कानून के अनुसार चलने वाले नहीं है, बल्कि मैं उन्हें अपने काम को जारी रखने की सलाह देता हूँ।”

➔ नेक चन्द की अंतिम इच्छा :-

विश्व प्रसिद्ध रॉक गार्डन के निर्माता नेक चन्द 12 जून 2015 को स्वर्ग सिधार गये। उनके मरणोपरांत इनके बेटे अनुज सैनी रॉक गार्डन को बढ़ाने में रूचि ले रहे है। नेक चन्द जी की कला स्वप्न को पूरा करने में प्रयासित है।

नेक चंद जी की उपलब्धियाँ

नेक चंद जी ने अपने संघर्षमय जीवन से काफी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। आरम्भिक जीवन काल में संघर्ष के बाद सभी द्वारा नेक चंद जी के काम को सराहा गया। डॉ. एम. एस. रन्धावा जो कि चण्डीगढ़ के प्रथम चीफ कमोशनर थे, उन्होंने ने भी इस गार्डन को देखने की इच्छा जाहिर की, डॉ. साहब एक जीवन व समाज वैज्ञानिक भी थे। रन्धावा जी इनके द्वारा संग्रह की गई पुरानी वस्तुओं को पहचाना और देखते ही बहुत तारीफ की। वे चण्डीगढ़ के प्राकृतिक चित्र कमेटी के मुख्याध्यक्ष भी थे। उन्होंने एक नया दस्तावेज निकाला जिसमें नेकचंद जी के इस गार्डन को सबसे 'अनोखा गार्डन' कहा। जल्दी की चण्डीगढ़ में रॉक गार्डन की पहचान हो गई। रॉक गार्डन लोकप्रियता की ऊँचाईयों पर पहुँच गया, लगातार लोगों को इस गार्डन को देखने की भीड़ बढ़ती चली गई। सन् 24 जनवरी 1976 में चीफ इंजीनियर कुलबीर सिंह ने रॉक गार्डन का उद्घाटन किया। इसके बाद सामान्य लोगों के लिए भी रॉक गार्डन दार्शनिक स्थल बन गया।

नेक चंद जी ने अपना काम जारी रखा और कई हजारों की संख्या में आकृतियाँ बनाई। श्री टी. एन. चतुर्वेदी (चीफ कमीस्तर) के सहयोग से इन्होंने अपने काम में तेजी दिखाई। चतुर्वेदी जी का कहना था कि 'नेक चंद जी को अपने अन्य काम छोड़कर अपना सारा ध्यान रॉक गार्डन को बनाने में लगाना चाहिए। टी. एन. चतुर्वेदी जी ने एक सभा में इन्हें 5000 रुपये का नकद ईनाम भी दिया। 1980 के बाद रॉक गार्डन कभी नहीं देखा था। जिसमें व्यर्थ वस्तुओं को इतना अच्छा सदुपयोग किया हो। रॉक गार्डन को लोकप्रियता और भी मिली जब नेक चंद जी को 1983 में "पदम श्री" से पुरस्कृत किया गया। यह इनके लिए बहुत बड़ा सम्मान था। इस सम्मान के बाद रॉक गार्डन के लिए इनका उत्साह बढ़ गया। इस पुरस्कार के बाद इनके द्वारा निर्मित एक कलाकृति का चित्र भारतीय पोस्टेज चित्र के लिए भी पहुँचा।

कांच की चूड़ियों से बनी एक आकृति को स्टैम्प पर छापा गया। नेक चंद जी को प्रोत्साहन केवल भारत से नहीं बल्कि भारत के बाहरी देशों से भी मिला। विदेशों में भी इस अद्भुत गार्डन की चर्चा होने लगी। 1980 में इन्हें पेरिस में ग्रांड मीडेल डे-वरमेल का पुरस्कार दिया गया। इन्होंने पेरिस में अपने गार्डन की एक झलक की प्रदर्शनी भी लगाई। इसके बाद इन्होंने वशिंगटन की यात्रा की जहाँ इनकी भेंट बच्चों के लिए बने संग्राहालय के निर्देशक एन लुईस से हुई, लुईस ने इनके काम को काफी

सराहा और इन्हें संग्राहालय में अपना कुछ बनाने के लिए आग्रह किया। इन्होंने लुईस के साथ काम करने की स्वीकृति दे दी, और भारत से अपनी बनाई काल्पनिक आकृतियों को वशिंगटन भेजा। 1986 में इन आकृतियों को संग्राहालय में सजाया गया ताकि बच्चे इन्हें देख सकें।

1988 में भारत के गवर्नर एस. एस. राय ने भी इन्हें बहुत प्रोत्साहन दिया और 1988 में निर्देशक निर्माता को उपाधि भी प्रदान की। नेक चंद जी हर समाचार पत्र के मुख्य पेज पर छाए रहते थे, टीवी चैनलों पर इनके इन्टरव्यू भी लिए गए। लगभग 2000 हजार लोग प्रतिदिन रॉक गार्डन को अद्भुत कलाकृतियों का लुप्त उठाते हैं। नेक चंद जो अपने जीवन में बहुत से महान लोगों से भेंट की। प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति व अन्य कई हस्तियों ने इन्हें इनके काम के लिए प्रोत्साहित किया।

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जब इनका काम देखा तो उन्होंने नेक चंद जी की बहुत तारीफ की। वे इन्हें अपना काम जारी रखने को कहा। राष्ट्रपति श्रीमान नीलम संजीव रेड्डी व आर. के. नारायण जी. पंजाब केसरी समाचार पत्र के प्रधान भी इनके गार्डन को देखने चण्डीगढ़ गए. इनकी काल्पनिक आकृतियां देखकर वे हैरान रह गए। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी नेक चंद जी से मिलकर बहुत खुश हुए और इनकी काल्पनिक नगरी को 'अनोखी नगरी कहकर सम्बोधित किया।

भारत की इन महान हस्तियों ने रॉक गार्डन को देखा और अद्भूत कहा। देश से ही नहीं विदेशी में भी रॉक गार्डन को लोकप्रियता प्राप्त हुई। कई विदेशियों ने इनसे प्रार्थना (आग्रह) किया कि वे उनके यहां भी ऐसे ही रॉक गार्डन का निर्माण करें, इन्होंने इस काम के लिए भी अपनी स्वीकृति दी व विदेशी में भी अपने गार्डन की छाप छोड़ी। पेरिस, वशिंगटन आदि कई देशों में रॉक गार्डन जैसे गार्डन बनाए गए हैं। लेकिन लोग फिर भी चण्डीगढ़ के रॉक गार्डन को देखने के इच्छुक रहते हैं।

उपलब्धियों के लिए संघर्ष

नेक चंद जी द्वारा बने इस रॉक गार्डन को बनाने में जितने लोगों ने उनका साथ दिया उतने ही लोगों ने रॉक गार्डन को नष्ट करने का भी प्रयास किया। ताज महल के बाद “रॉक गार्डन” दूसरा भारत का ऐसा साधन है जहां औसतन 5000 दर्शक पूरी दुनिया में से आते हैं। इतनी कामयाबी व प्रसिद्धि के बावजूद की रॉक गार्डन खतरे की रेखा में रहता था। एक रोड़ इन्सपेक्टर के पद पर होते हुए बड़ी सोच रखकर किसी बेहद सुन्दर चीज का निर्माण करने वाले व्यक्ति का नीची सोच रखने वाले लोगों द्वारा विरोध किया गया।

इनके इस कार्य को प्रोत्साहन देने की बजाए इन्हें पीछे खींचने का पूरजोर प्रयास किया गया। सन् 1988 में विरोधियों द्वारा उच्च न्यायालय में केस दर्ज किया, दि ट्रिब्यून ब्यूरो, 21 अप्रैल 1990 के समाचार पत्र के अनुसार यह केस रॉक गार्डन के स्थान पर बोटनिक पार्क व सुखना झील के लिए कार पार्किंग की व्यवस्था करने के लिए किया गया था। अशोक प्रधान रॉक गार्डन को बोटनिक पार्क का रूप देना चाहते थे। परन्तु “बार संस्था” का मत था कि रॉक गार्डन बोटनिक पार्क से कम खर्चाला न ज्यादा लाभकारी है।

इस प्रकार यह संस्था नेक चंद जी के विचारों से सहमत थी। रॉक गार्डन को बोटनिक पार्क के रूप में परिवर्तित करने के लिए अशोक प्रधान ने पुरजोर प्रयास किया। बार संस्था व सामान्य सलाहकार अशोक प्रधान के बीच हो रहे मतभेद के कारण यह मामला उच्च न्यायालय तक पहुंचा, उच्च न्यायालय द्वारा इस विषय पर संस्था की राय, शहर के स्थाई निवासियों तथा मीडिया की राय को ध्यान में रखते हुए रॉक गार्डन को ही उस स्थान पर बना रहने की अनुमति दी गई। यह अनुमति 18 अक्टूबर 1989 को दी गई।

यह संघर्ष यही खत्म नहीं होता, इस गार्डन को बनाये रखने के लिए नेक चंद जी की ओर भी कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। इसके पश्चात कैम्बवाला गांव में जाने के लिए बाहरी लम्बे रास्ते की बजाए छोटा रास्ता रॉक गार्डन के बीचों बीच निकालने की आवाज उठाई गई। “दि ट्रिब्यून, 24 अप्रैल 1990 समाचार पत्र के अनुसार छोटा रास्ता बनाने के लिए यह तर्क दिया गया कि बाहर को जाने वाला रास्ता 200 गज कम हो जाएगा। काफी समय तक यह विषय बहस का मुदा बना रहा।

सन् 1990 में रॉक गार्डन को नष्ट करने के लिए कई बुलडोजर भेजे गए परंतु सैकड़ों लोगों ने इसका विरोध किया, और रॉक गार्डन के बाहरी चारों तरफ सुरक्षा के लिए खड़े हो गए। इसका अन्तिम निर्णय प्रधान के स्थानान्तरण के पश्चात हुआ। नेक चंद जी को प्रधान जी के इस व्यवहार से बहुत दुख पहुंचा और प्रधान पर माहमानी का केस (मुकदमा) किया, जिस दिन मुकदमा के दस्तावेज दर्ज हुए उसी दिन नेकचंद जी को दिल का दौरा पड़ गया। इनके बेहतर इलाज के लिए इन्हें चण्डीगढ़ पी.जी. आई से दिल्ली के एसकोर्ट अस्पताल भेजा गया। इनके बेटे अनुज का कहना था “कि यह सब कुछ परिवार के सदस्यों के लिए बहुत दुखदायी था। हम सब शोक व दुख में थे और यहां तक मालूम नहीं था कि क्या हो रहा है और पिता जी के गार्डन के साथ क्या होगा। इनकी स्थिति बहुत नाजुक थी इसके बावजूद कई प्रभावशाली हस्तियों, कई राजनीतिक तथा वहां के रहने वाले लोगों ने इसका बहुत साथ दिया।

इनके अतिरिक्त आई.ए.एस. अफसर रूपम दौल बजाज ने अपना पूरा योगदान दिया। वह अपने बेटे के साथ हमेशा ठीक रॉक गार्डन को सुरक्षा के लिए खड़ी रही। रूपम जी के सहयोग से नेक चंद जी व इनके परिवार को बहुत प्रोत्साहन मिला। रूपम जी ने अपने बेटे के साथ रॉक गार्डन को बचाने के लिए कई कदम उठाए, एक बार तो रूपम जी ने अपने बेटे के साथ नीलम सिनेमा सैक्टर-17 के सामने खड़े हो कर वहां के लोगों से हस्ताक्षर लेने शुरू कर दिए ताकि किसी तरह रॉक गार्डन को बचाया जा सके।

यह हस्ताक्षर रॉक गार्डन की सुरक्षा के लिए आम जनता से लिए गए। रूपम जी ने अपने पद की भी परवाह नहीं की, हजारों लोगों ने अपने हस्ताक्षर द्वारा अपना योगदान दिया। उस समय तो मानो शहर में आन्दोलन चल पड़ा था। नेक चंद जी से जुड़े सभी लोगों ने इनके लिए और इनकी स्वप्न नगरी के लिए प्रार्थनाएं की जो कि कामयाब भी रही। 1990 के पश्चात् रॉक गार्डन के काम की गति धीमी होती चली गई, जिस गति से पहले काम होता था मानों वह धीमी पड़ गई। जिस अनुदान की सहायता से रॉक गार्डन का काम चल रहा था वह भी मिलना बंद हो गया, जिसके कारण रॉक गार्डन का काम चल रहा था, वह भी मिलना बंद हो गया, जिसके कारण रॉक गार्डन का काम आज की तारीख में भी प्रगतिशील है। इस रॉक गार्डन के तीसरे हिस्से का काम अभी भी अधूरा है, इस हिस्से का उद्घाटन श्री रमेश चन्द्र जी कि चण्डीगढ़ में प्रशासन के सलाहकार हैं, ने किया।

इसका उद्घाटन 23 सितम्बर 1993 को किया गया। रॉक गार्डन के इस हिस्से का काम आज भी चल रहा है। रमेश चन्द्र जी द्वारा उद्घाटन के समय भी इस भाग का काम पूरा नहीं था। इसके उद्घाटन के बाद नेक चंद जी ने लोकल समाचार पत्र में प्रशासन से अनुदान व इस हिस्से को पूरा करने के लिए सहायता की मांग की। इसके अतिरिक्त चण्डीगढ़ के 'परिहार' 9 फरवरी 1993 के लोकल समाचार पत्र के अनुसार मुख्य समाचार में "क्या होगा रॉक गार्डन—।।। का नाम से खबरे छापी गई।

इस भाग के लिए इन्होंने नए डिजाइन के "एक्वैरियम" को अलग तरीके से दर्शने का विचार बनाया। इन्होंने दिवारों में एक्वैरियम—को जोड़ने के लिए एक इंजीनियर का चयन किया। परंतु सही माप गणना न होने के कारण एक्वैरियम से रिसाव होना शुरू हो गया। बहुत अधिक खर्चे से तैयार किए इन एक्वैरियम के रिसाव होने से नेक चंद जी के मन को ठेस पहुंची। इन्होंने उस इंजीनियर को सही माप गणना से काम न करने का दोषी ठहराया। इन एक्वैरियम में बहुत सुन्दर—सुन्दर मछलियों को लाया गया। इतना ही नहीं रॉक गार्डन के लिए अलोचनात्मक टिप्पणी भी की गई, आलोचकों का कहना था कि रॉक गार्डन का मुख्य उद्देश्य व्यर्थ वस्तुओं का पुनः उपयोग योग्य बनाना। परंतु इस गार्डन की भाग—3 में व्यर्थ वस्तुओं का प्रयोग कम हो इनमें लोहे, सीमेंट, पत्थर का अधिक प्रयोग किया है।

श्रमिकों के अभाव के कारण भी रॉक गार्डन की देखभाल में कमी आ गई, परंतु नेक चंद जी ने किसी चीज की परवाह ने करते हुए अपनी काल्पनिक नगरी की देखभाल में कोई कमी नहीं रखी। इनको लगन व दृढ़ निश्चय ने ही रॉक गार्डन को इतनी प्रसिद्धि दी है।

नेक चंदजी को रॉक गार्डन को बनाने के लिए कई संघर्षों का सामना करना पड़ा। इन्होंने घबराए बिना कठिनाईयों का सामना किया व सफल भी रहे। आज रॉक गार्डन कुछ गिने चुने स्थानों में से एक है। भारत का यह लोकप्रिय दार्शनिक स्थल है। आज भी लोग पूरे जोश से इसे देखने आते हैं। भारत ही नहीं विदेशों के लोग भी भारत में आकर इसे देखते हैं व आश्चर्य चकित रह जाते हैं। रॉक गार्डन के इतनी लोकप्रियता का श्रेय केवल श्री नेक चंद जी को जाता है।

तृतीय अध्याय

- नेक चंद का रॉक गार्डन में योगदान
- गुड़िया संग्रहालय

नेक चंद का रॉक गार्डन में योगदान

नेक चंद एक भारतीय कला के रूप में अपना अहम स्थान रखते हैं। भारतीय कला और उसके विकास में उनकी अहम भूमिका रही है। नेकचंद जी पब्लिक वर्क डिपार्टमेंट में रोड़ इंस्पेक्टर के रूप में चंडीगढ़ की सड़कों के निर्माण के काम को बड़ी जिम्मेदारी से किया करते थे। इमारत के निर्माण के समय उनके अंदर का कलाकार कुछ नया करने के लिए आतुर रहता था। कला में तो रुचि उनकी शुरू से ही थी, लेकिन काम करते-करते कला के प्रति उनकी रुचि व लगन और बढ़ती चली गई व काल में निखार आता चला गया।

जब कभी भी वे खाली समय पाते थे घरेलू काम छोड़कर अपनी साइकिल पर पहाड़ी इलाकों की तरफ चले जाते और नेक चंद जी नदी के किनारे घंटों समय बिताते थे। कला के बारे में सोचकर कला का आनंद प्राप्त करते थे और इन्हें जो कोई भी पत्थर व धातु मिलती उसे ले आते और उस पर कई काल्पनिक आकृतियों का निर्माण करते थे।

नेक चंद जी ने कला में बहुत बड़ा योगदान दिया है। वह कोई भी पत्थर या धातु पर कई तरह की आकृतियां खोज लेते थे। कई तरह की बेकार पड़ी वस्तुओं से कई तरह की कला का निर्माण कर देते थे और नेक चंद जी ने लगभग 36 वर्ष पहले चंडीगढ़ के एक छोटे से जंगल के टुकड़े को एक छोटा सुंदर बाग बनाकर इस नई खोज की शुरुआत की।

नेक चंद ने कई पत्थरों का इस्तेमाल किया। इन पत्थरों से कई आकृतियां बनाई और कई तरह के व्यर्थ पदार्थों का भी प्रयोग किया। नेक चंद जी रोड़ पर या कहीं जंगल में चलते हुए उनकी नजर कोई भी व्यर्थ वस्तु पड़ती तो उसे वह उठकर अपने साथ ले जाते और उनसे कोई आकृति बना लिया करते थे।

नेक चंद जी अपने काम के साथ बहुत लगाव रखते थे। इन्होंने कला में बहुत योगदान दिया है। इन्होंने कई एकड़ जमीन पर कई हजारों की संख्या में काल्पनिक आकृतियां बनाई, जो बहुत अद्भुत हैं। नेक चंद की कला साधना से कला जगत में हमें चंडीगढ़ जैसे शहर में कला को एक अनमोल कला को बनाकर दिखाया है। यह कला में योगदान ही नहीं, महायोगदान मान जा सकता है और व्यर्थ वस्तुओं से विभिन्न तरह की आकृति को दुनिया के सामने लाकर खड़ा कर दिया है और नेक चंद जी ने व्यर्थ पदार्थों से कई तरह की गुड़िया बनाई है।

ये 250 से अधिक प्रकार की गुड़िया बनाकर इतिहास रच दिया। इस तरह से नेकचंद जी ने व्यर्थ पड़ी वस्तु से कई तरह की कलाकृतियां बनाई है और कला के युग में कला में बहुत अच्छा योगदान दिया है। ओर अपने और अपने भारत देश का नाम गर्व से ऊंचा किया है। भारत देश को एक नई तरह की कला को हमें दिखाया है। इस प्रकार से नेकचंद सैनी जी ने कला में महान योगदान दिया है।

नेक चंद सैनी ने रचनात्मक कला, में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विशेषकर बाहरी कला में, अद्वितीय योगदान दिया। उन्होंने चंडीगढ़ के एक गार्डन में पत्थर, पुनर्नवीनीकृत सामग्री और कचरे से कलाकृतियाँ बनाई, जो एक विश्व प्रसिद्ध पार्क है। रॉक गार्डन नेकचंद सैनी की कलात्मकता और संसाधन शीलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

यहाँ नेक चंद सैनी के रचनात्मक कला में योगदान के कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार से है!

➤ रॉक गार्डन :—

चंडीगढ़ का रॉक गार्डन नेक चंद सैनी की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह, एक मूर्तिकला उद्यान है। जिसमें 2000 से अधिक मूर्तियाँ है। जो सभी पुनर्नवीनीकृत सामग्री से बनाई गई है।

➤ बाहरी कला :—

नेक चंद सैनी ने बाहरी कला को नई दिशा दी। उन्होंने पत्थर और अन्य सामग्रियों का उपयोग करके कलाकृतियाँ बनाई जो बाहरी वातावरण के साथ अच्छी तरह से मेल खाती है, ओर वहां के वातावरण को अच्छे से बना कर रखती हैं। इस तरह से बाहरी कला को एक अच्छी उड़ान मिली नेक चंद सैनी के द्वारा और यह रॉक गार्डन का हिस्सा रहा।

➤ संसाधन शीलता :—

नेक चंद सैनी ने सीमित संसाधनों के साथ कलाकृतियाँ बनाई। उन्होंने कचरे और पुनर्नवीनीकृत सामग्री का उपयोग किया, जो उनकी संसाधनशीलता को दर्शाती हैं!

➤ कलात्मकता :—

नेक चंद सैनी ने रॉक गार्डन में कला के विभिन्न आयामों को दिखाया है। इस प्रकार से रॉक गार्डन की कलाकृतियाँ उनकी कलात्मकता और रचनात्मकता को दर्शाती हैं। उन्होंने अपनी कलाकृतियों में विभिन्न प्रकार के जानवरों, पक्षियों और मानव रूपों को शामिल किया है।

➤ अभिभावक :—

रॉक गार्डन ने एक स्थानीय कलाकार को सार्वजनिक मान्यता प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया, और यह भारत में बाहरी कला के लिए एक प्रेरणा बन गया।

गुड़िया संग्रहालय

➤ चण्डीगढ़ के रॉक गार्डन में डॉल म्यूजियम में देखें भारत के विभिन्न राज्यों की संस्कृति :-

अगर आप अपने जीवन में गांव की संस्कृति और इतिहास को देखना चाहते हैं। तो आपको किसी गांव जाने की जरूरत नहीं बल्कि आप इस नाजारे को चण्डीगढ़ के रॉक गार्डन में देख सकते हैं, जिसका निर्माण स्वर्गीय नेक चंद सैनी ने किया था। इस गार्डन का निर्माण उन्होंने घरों से निकलने वाले बेकार समान से किया था। ओर जिस समय रॉक गार्डन का निर्माण हुआ था, उस समय रॉक गार्डन बस पत्थर से बनी हुई मूर्तियों के लिए जाना जाता था। लेकिन अब इसकी एक अलग पहचान उभर कर आने लगी है। डॉल म्यूजियम जिसका लोगो में एक अलग तरह, का रुझान देखने को मिलता है। डॉल म्यूजियम जो कि वर्ष 2017 में चण्डीगढ़ प्रशासन द्वारा ओपन किया गया था। जिसके अन्दर उत्तर भारत के विभिन्न राज्यों की संस्कृति को पेश करती हुई कपड़े की गुड़िया को बनाकर रखा गया है।

यह, कपड़े की गुड़ियाँ, गाय और भैंस की आकृति से लेकर चूड़ियाँ डालने वाले दुकान, आटा पीसने वाली चक्की, रुई को कातने वाले चरखे, बारात में घोड़े पर दुल्हा, डोली में दुल्हन, खेतों में किसान, हल, बैल आदि। यहां तक कि अगर बात करें धार्मिक संस्कृति की तो वह भी डॉल म्यूजियम में दिखाने का प्रयास गया है।

➤ 50 से ज्यादा संस्कृति को पेश कर रहा है, म्यूजियम :-

डॉल म्यूजियम में करीब 50 से ज्यादा गुड़ियों का निर्माण किया गया है। जो कि इंसान और जानवरों से लेकर हमारी पुरानी संस्कृति को दिखाया गया है। अगर हम बात हरियाणा की करें तो इक्के बैठकर हुक्का पीना, पंजाब की तो साथ में बैठकर बातें करना, महिलाओं द्वारा सावन के महिने में झुला झुलना तक को म्यूजियम में गुड़ियों के जरिए डिस्प्ले किया गया है। जिसका मकसद हमारे आने वाली पीढ़ी को पुरानी विरासत और इतिहास से जोड़ना है।

➤ नेकचंद सैनी जी का सपना पूरा करने के लिए बनाया गया म्यूजियम :-

नेक चंद के बेटे अनुज सैनी ने बताया कि उनका सपना था कि इस रॉक गार्डन में देश की संस्कृति और विरासत को बचाती हुई हर तरह की चीज होनी चाहिए जो कि आने वाले 100 सालों के बाद भी हमारे बच्चों को समझ आ सके और वह, महसूस कर सके कि हमारे पूर्वज किस तरह के माहौल में रहते थे।

➤ सुरक्षा के लिए किया प्रयास :-

अनुज सैनी ने बताया कि चण्डीगढ़ अभी आधुनिक हो चुका है। लेकिन एक समय ऐसा भी था, जब दो पहिया वाहन चलाते हुए हेलमेट पहनना बहुत जरूरी नहीं समझते थे। तब नेकचंद सैनी की तरफ से एक प्रयास किया गया था जो कि चण्डीगढ़ पुलिस के बोलने पर किया गया था। उन्होंने शहर के अलग-अलग चौकों पर रखने के लिए स्टेच्यू बनाए थे, जोकि कपड़े के थे। उनके सर पर टोपी हुआ करती थी। जिसका प्रयास था कि जो भी व्यक्ति बिना हेलमेट के वाहन चला रहा है, कि हेलमेट जरूरी रूप से पहने। यह, प्रयास काफी हद तक सफल भी रहा था। शहर के चौकों से लेकर उन्होंने इस तरह की गुड़ियों को शहर के अलग-अलग, स्थानों में रखा था। जिसमे किरण थिएटर भी अहम रखता था। हालांकि जैसे – जैसे रॉक गार्डन तैयार होता गया वह सारी गुड़ियाँ शहर के अलग – अलग से स्थानों से उठाकर गार्डन के अन्दर आ चुकी थी, जो कि हजारों पर्यटकों को अपनी तरफ आकर्षित करती है।

चतुर्थ अध्याय

- रॉक गार्डन के विषय
- कला सामाग्री व शैली
- व्यर्थ की वस्तुओं का रचनात्मक उपयोग

रॉक गार्डन के विषय

रॉक गार्डन एक स्वपन नगरी है, जिसके निर्माता नेक चंद जी ने कल्पना को वास्तविकता का रूप दिया है। जब हम इस स्वपन नगरी में जाते हैं, तब हम एक नई दुनिया का आभास करते हैं और उसमें खो जाते हैं। नेक चंद जी ने इस नगरी को बनाने का जो विषय चुना है वही सबसे अलग है। इन्होंने अपनी नगरी में घरेलू वस्तुओं व रोजाना में इस्तेमाल होने वाली व्यर्थ वस्तुओं का बहुत अच्छा सदुपयोग किया है।

रॉक गार्डन के भाग एक में एक पहाड़ी के ऊपर एक छोटा सा गांव भी बनाया है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये गांव इनके बचपन से जुड़ा है। छोटे-छोटे घर, झोपड़ियां व मूर्तियां बनाई हैं। ये मूर्तियां इन घरों में रहती प्रतीत होती हैं। इन्होंने ये गांव अपने बचपन के खेल “देवताओं की नगरी” से प्रेरित होकर बनाया है। इन घरों को छोटी बजरी, पत्थर से बनाया गया है। जिनमें खिडकियां भी बनाई गई हैं। जिनसे इन घरों में वास्तविकता का आभास होता है। इन घरों के पास बहता पानी सच में मनमोहक दृश्य लगता है। घरों की छत भी असली छत जैसी लगती है। ये नगरी अद्भुत है जो एक बार देखता है वह देखता ही रह जाता है।।

सभी आकृतियों को समूह में बनाया गया है, एक ही आकृति के कई प्रतिरूप बनाये हैं। सभी आकृतियाँ अलग विषय को चुनकर बनाई गई हैं। इन आकृतियों पर लगाई गई सामग्री भी अलग-अलग है। इन काल्पनिक आकृतियों पर पुराने फटे कपड़ों का भी प्रयोग किया गया है। रंग-बिरंगे कपड़ों का भी प्रयोग किया गया है, और रंग बिरंगे कपड़ों से पुतले बनाए हुए हैं। इन कपड़ों को कतारों में फाड़कर सही ढंग से जोड़कर आकृतियों का निर्माण किया है। आकृतियों का चेहरा व पगड़ी इन्हीं कपड़ों को जोड़कर बनाई गई हैं। रंग-बिरंगी कतरों से बने पुतलों के वस्त्र भी सुन्दर बनाए हैं। प्रत्येक पुतला अलग ढंग से बना हुआ है। कपड़ों के इलावा मिट्टी का भी बहुत सुन्दर प्रयोग किया गया है, मिट्टी के बर्तन जैसे मटके आदि।

इन मटकों को दीवार बनाने के लिए प्रयोग किया है। एक के ऊपर दूसरा मटका जोड़कर पूरी दीवार इसी ढंग से बनाई गई है। इसे देखने का मन बार-बार करता है। इन्हें ‘अर्थन पोटस’ कहते हैं। मिट्टी के छोटे-छोटे गोले बनाकर, लोहे के सरोये में पीरोकर माला भी बनाई गई है। यह सोच नेकचंद

जी की कल्पना शक्ति का बड़ा उत्कार उदाहरण है। रॉक गार्डन में पुराने पत्थरों को भी संग्रह किया गया है।

इन पत्थरों को ध्यान से देखने पर इनमें विभिन्न आकृतियां दिखाई देती है। इन अद्भूत पत्थरों को रॉक गार्डन के आरम्भ में ही दिखाया गया है। रॉक गार्डन के हर भाग में इन पत्थरों को प्रदर्शनी के रूप में प्रस्तुत किया है। एक गान का प्रवेश द्वार इन पत्थरों से सुशोभित है।

ये पत्थर कुछ न कुछ आकृति धारण किए हुए हैं। कई वर्षों पुराने पत्थर नेक चंद जी के लिए किसी खजाने से कम नहीं है। यह इनके लिए अमूल्य सम्पत्ति है, जिनका मोल लगाना असम्भव है। इन्होंने पुराने समय में प्रयोग होने वाली पनचक्कीयों को भी अपने गार्डन में शामिल किया है। टुटी हुई पनचक्कीयों के पहियों को झरने के नीचे उतरने के लिए सीढ़ी की तरह प्रयोग किया गया है। एक पहिए के दो टुकड़े कर के एक ही दिशा में रखा गया है। झरनों का पानी इन सीढ़ियों के बीच में से गुजरता हुआ बहुत ही सुन्दर लगता है। ऐसे कई दृश्य हैं जो मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ये सभी दृश्य रॉक गार्डन की सुन्दरता में चार चांद लगा देते हैं।

कला सामग्री व शैली

नेक चंद जी ने इस काल्पनिक व अद्भुत नगरी को बनाने में कई ऐसी वस्तुओं का प्रयोग किया है जिन्हें इस तरह से प्रयोग के बारे में कोई आम व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। सकारात्मक सोच के साथ नेक चंद जी ने अपने कदम आगे की ओर बढ़ाए, जिसमें कई महान व योग्य हस्तियों का योगदान रहा है। इन्हीं के योगदान व पूर्ण सहयोग से वे अपसी सोच को ये रूप दे सके। जिसे आज इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई।

अपने अनोखे गार्डन में इन्होंने कई वस्तुओं का जैसे कांच की टूटी चूड़ियां, बोतलों के ढक्कन, खाली टूटी बोतलें, चाय के कप व प्लेटें, टूटी टाईलें, कांच के गोले, तारकोल, ड्रम, बिजली की तारे, ट्यूबम, स्विच व बोर्ड, मिट्टी आदि का प्रयोग किया है। इन सब के अतिरिक्त इन्होंने पौधों का चयन भी कुशलतापूर्वक किया है। विभिन्न तरह के पौधों को उनकी जगह के मुताबिक लगाया गया है। “देवताओं की नगरी” में छोटे-छोटे पौधे लगाए हैं। जहां उन्होंने अपने गांव के दृश्य को दर्शाया है, वहां भी बहते पानी के साथ-साथ पौधे लगाए हैं। जिसे देखने पर गांव की वास्तविकता स्पष्ट होती है। इन सभी के लिए इन्होंने कुशल शैली का प्रयोग किया है और अद्भुत रूप से प्रस्तुत किया है।

इन व्यर्थ वस्तुओं को इन्होंने सीमेंट, तारकोल व सरीये की सहायता से जोड़ा है। यह शैली पहले इन्होंने बचपन में मिट्टी के घर बनाते में प्रयोग की थी, यहीं से ये प्रेरित हुए। नेक चंद जी ने व्यर्थ वस्तुओं के साथ-साथ प्राकृतिक रूप से तैयार अनोखी आकृतियों को भी प्रदर्शनी में लगाया है।

उन विचित्र आकृतियों को ध्यान से देखने पर कोई न कोई चित्र अवश्य दिखाई देता है। धरातल पर अधिकतर टाईलों व कप प्लेटों का प्रयोग किया है और दीवारों पर कहीं-कहीं सीमेंट से बिजली की टूटें प्लगस, ट्यूबस व बड़ी बजरी को लगाया गया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने पोत शैली को भी अपनाया है, इस शैली में इन्होंने बोरी में सीमेंट भरकर एक दूसरे के ऊपर रखकर दीवार बनाई है, बारीश होने से सारा पानी इन ऊपर वाली बोरियों में भर जाता है जिससे ऊपर वाली बोरियां भारी हो गईं और दबाव के कारण नीचे वाली बोरियां दब गईं, कुछ बोरियां निकल गईं व कुछ फंसी रह गई हैं। सीमेंट पर बोरियों को डिजाइन बन गया। इससे देखने पर हमें पोत शैली का आभास होता है। इन शैलियों का प्रयोग करके नेक चंद जी ने अपने रॉक गार्डन को सजाया है।

व्यर्थ की वस्तुओं का सदुपयोग

कला सामग्री में नेक चंद जी ने कई वस्तुओं, धातुओं का प्रयोग किया है। इन्होंने कांच की टूटी हुई चूड़ियां, बोतलों के ढक्कन, खराब बिजली की ट्यूब्स, टूटे चाये हुए कप व प्लेटें, बिजली की तारे, गलास, कांच के गोले (कंचे) मोती, पुराने कपड़े, सीमेंट, पत्थर आदि का इस्तेमाल करके कलाकृतियों का निर्माण किया है।

1. कांच की चूड़ियाँ :-

स्त्री का सबसे प्यारा और मनपसंद गहना चूड़ियां जो टूटने के बाद व्यर्थ पड़ी रहती है। आमतौर पर तो इन चूड़ियों को फेंक दिया जाता है। परन्तु इन्होंने इन चूड़ियों को भी अपने गार्डन में खास जगह दी है, इन्होंने मूर्तियों के ढांचे बनाकर उनके वस्त्रों के रूप में इन चूड़ियों का प्रयोग किया है। इन मूर्तियों को ध्यान से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इन मूर्तियों ने साड़ी पहन रखी हो। रंग-बिरंगी चूड़ियों को देखने से मन आनन्द विभोर हो जाता है। ये चूड़ियां दिखने में जितनी सुन्दर लगती है। इस तरह के प्रयोग से ओर भी सुन्दर लगने लगी है। बहुत सारी मूर्तियां इसी ढंग से बनाई गई है।

ये सभी मूर्तियां एक-एक चूड़ी को जोड़कर बनाई गई है। इन मूर्तियों के चेहरे सीमेंट के बनाये गये हैं। इनकी आंखें, नाक, कान सभी व मुंह सीमेंट से उभारा गया है। परन्तु सिर के बाल चूड़ियों से ही बनाए हैं। केवल महिला आकृति ही नहीं, कई संख्या में पक्षी भी कांच की चूड़िया से बनाए गये हैं। ध्यान से देखने पर ये पक्षी मोर जैसे प्रतीत होते हैं। सभी पक्षियों का मुंह एक ही दिशा में बनाया गया है। रंग-बिरंगे पक्षी बहुत ही सुन्दर लगते हैं। कुछ पक्षी तो एक-दूसरे से बातचीत करते हुए प्रतीत होते हैं। इन्हीं चूड़ियों से कुछ बैठी हुई मानव आकृतियों को भी बनाया गया है। ऐसा लगता है कि जैसे मानव आकृतियां तनकर पत्थर पर बैठो हो।

इन मूर्तियों को यथार्थाच रूप से नहीं बनाया गया है। देखने में तो मानव लगती है, परन्तु मानव की तरह यथार्थवादी रूप नहीं है। इन कांच की चूड़ियों से बनी मूर्तियों को देखकर ऐसा ही कुछ करने का उत्साह जागृत होता है। इन्हें देखने पर कभी मैंने इन आकृतियों को देखा और कभी हाथ में पहनी

चूड़ियों को देखा। इन चूड़ियों से ऐसा भी कुछ बन सकता है, सोचा ही नहीं था। केवल नेक चंद जी ने ही ये कर दिखाया है। सच में ये टूटी चूड़ियों का सबसे अच्छा सदुपयोग है।

2. टूटे चाय के कप व प्लेटें, टाइलें :-

रॉक गार्डन में दूसरा सबसे अधिक उपयोग टूटी टाइलों व कप, प्लेटों का किया गया है। इन टूटे कप प्लेटों व टाइलों को भी मानव आकृतियां बनाने के लिए उपयोग किया गया है। टाइलों की कई संख्या में बैठी मुद्रा में मानव आकृतियों को बनाया है। सफेद टाइलों के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर इन्होंने इन अद्भूत आकृतियों को बनाया गया है। इन टुकड़ों को पीछे की दीवार व नीचे के धरातल के लिए भी चुना गया है। इनसे बनी दीवारें व धरातल आकर्षण का मुख्य केन्द्र है। इन्हीं दीवारों के ऊपर पक्षी बैठे हुए ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे आपस में बातचीत कर रहे हों। कुछ पक्षियों की लम्बी गर्दन बनाई गई है।

इस गार्डन में इन्होंने पक्षी के साथ पशुओं को भी काल्पनिक रूप में बनाया है। ये पशु आकृतियां हिरण जैसी प्रतीत होती है। इन पशुओं के मुंह खुले हुए दिखाया गया है। इनकी पुंछ, लंबी, ऊपर की ओर उठी हुई बनाई गई है। कुछ छोटे-छोटे पशु भी बनाए गए हैं। ये सभी पशु एक ही दिशा की ओर देख रहे हैं। इन पशुओं पर रंग-बिरंगी टाइलों को न लगाकर, बल्कि एक ही रंग की टाइलों को जोड़कर बनाया गया है। कुछ पशुओं की आकृति में पीले रंग की टाइलों का प्रयोग किया गया है। स्त्री की मूर्तियों को भी टूटी टाइलों से बनाने का सफल प्रयास किया है। इन स्त्री रूपी आकृतियों को घाघरा चोली भी पहनाई गई है। इन घाघरा चोली वाले घाघरों में ये आकृतियां नाचती हुई प्रतीत होती है।

गार्डन के मध्य में तथा भाग-2 के आरम्भ में दीवारों पर लम्बी गर्दन वाले पक्षियों को बैठे हुए दिखाया है और इन्हीं दीवारों के सामने इन्होंने अपने अमूल्य पत्थरों की प्रदर्शनी लगाई हुई है। एक-एक करके इन पत्थरों को सजाया हुआ है। रॉक गार्डन की सुन्दरता तो आरम्भ से ही पता चल जाती है, प्रवेश द्वार पर कुछ पक्षियों को स्वागत के लिए बनाया गया है। वे गार्डन की बाहरी दीवारों को खाली ड्रम को एक के ऊपर एक रखकर तैयार किया गया है। रॉक गार्डन के भाग-3 में टूटे कप, प्लेटों व टाइलों का इस्तेमाल कम है। इस भाग में बड़ी-बड़ी दीवारों को सीमेंट से बनाया गया है और

इन दीवारों के ऊपर सफेद घोड़ों को एक कतार में खड़े दिखाया गया है। इन घोड़ों की पुंछ भी ऊँची उठी हुई दिखाई गई है।

3. बजरी, तार व ड्रम :—

चूड़ियों व टूटी प्लेटों के अतिरिक्त बजरी, सीमेंट व खाली ड्रम को भी रॉक गार्डन का हिस्सा बनाया है। नेक चंद जी की कल्पना शक्ति ने खाली ड्रमों व व्यर्थ बजरी को ऐसी जगह दी है जो कि आम आदमी को सोच से परे है। इन्होंने बजरी से पशु, पक्षी की कई आकृतियां बनाई, जिन पर पत्थरी, बजरी को लगाया गया है। एक दीवार रॉक गार्डन में पूरी की पूरी बड़ी बजरी से बनी हुई है। जोकि दूसरी दीवारों के साथ जोड़ी गई है। इस दीवार पर बजरी को कतार में लगाया है। इन्हें सीमेंट की सहायता से ऊपर से नीचे व दाएं से बाएं कतार में लगाया गया है।

ये दीवार देखने में बहुत सुन्दर लगती है। बजरी का प्रयोग केवल दीवार पर नहीं बल्कि कई प्रकार के काल्पनिक पक्षी व पशु बनाने के लिए भी प्रयोग किया गया है। इस बजरी से इन्होंने कई काल्पनिक पशु आकृतियां बनाई है, इन आकृतियों के तीन चेहरे हैं जोकि पूर्ण रूप से काल्पनिक है। व्यर्थ पत्थरों को जोड़कर इन आकृतियों को बनाया है। इनका एक मुंह ऊपर से दाएं और बाएं बनाया है, आंखें, नाक, मुंह आदि अलग-अलग हैं, परन्तु इनका शरीर नीचे से जुड़ा हुआ दिखाया गया है। कभी ऐसा प्रतीत होता है कि नीचे के दो चेहरे पीछे से झांक रहे हों। ऐसी आकृति तो महान कल्पनाशील व्यक्ति ही बना सकता है। कुछ जगह इन्होंने भालू से मिलती आकृति भी बनाई है। काल्पनिक होने के बावजूद भी देखने पर आसानी से यह पता चल जाता है कि यह भालू की आकृति है।

इस खोज में भी नेक चंद जी का जवाब नहीं। इन्होंने इस आकृति को नीचे से एक गिलास का आकार दिया है। ऊपर से भालू का चेहरा बनाया है। यह बहुत अनोखा लग रहा है। इसी भालू के गले में अलग रंग की बजरी का प्रयोग करके भालू की माला बनाई है। दो छोटे-छोटे हाथ भालू की खुशी को व्यक्त करते हुए दिखाये गये हैं। गहरे रंग की बजरी का इस्तेमाल करके इन्होंने एक सिपाहियों की फौज भी तैयार की है। बहुत सारे फौजी अपनी वर्दी पहने खड़े हुए दिखाया गया है। इनमें से कुछ सिपाहियों को पतलून बनाई है, वे कुछ को आधी पतलून में खड़ा दिखाया है। इन पतलून को बनाने के लिए इन्होंने टूटी हुई टाइलों का इस्तेमाल किया गया है।

बजरी लगाने से दीवारें बहुत ही सुन्दर लग रही हैं। बहुत सारी बजरी से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों बहुत सारे मोती एक साथ रख दिए गए हों। कहीं-कहीं दाएं से बाएं कतार में, और कहीं ऊपर से नीचे की ओर कतार में लगाया है। देखने में चादर की तरह भी लगते हैं। छोटी बजरी को झोपड़ियां बनाने के लिए प्रयोग किया गया है। बहुत सारी छोटी झोपड़िया एक गांव का दृश्य बनाती हैं।

4. बिजली की व्यर्थ सामग्री :-

रॉक गार्डन में बिजली के सामान जैसे खराब, ट्यूबस, तारे, जले हुए डिब्बे, गली की लाईट, बल्ब आदि का भी प्रयोग किया है। खराब ट्यूब को खड़ा करके कतार में लगाया है और इनकी दीवार बनाई गई

ख:26 चउ, 6६4६2025, ।श्र।ल च।त्श।च।ज है देखने में ये सफेद दीवार बहुत ही सुन्दर लगती है। बिजली की तारों को सोमेट को सहायता से झरनों के ऊपर रेलीग बनाने के लिए प्रयोग किया गया है। इस रेलीग को ध्यान से देखने पर छोटी-छोटी आकृतियाँ बाजू को ऊपर करके बैठी दिखाई देती हैं इन्हीं की लगातार सेंडी सौदियों के चारों तरफ बनी हुई सुन्दर लगती है। बिजली के प्लगस जो को व्यर्थ व टूटे हुए होते हैं उन्हें भी इन्होंने बजरी व सीमेट से दीवारों पर लगाया है। टूटे प्लगस का ऐसा इस्तेमाल सचमुच अद्भूत है। खराब बल्ब के डिब्बों को दीवार के लिए प्रयोग किया गया है। टूटे हुए स्विच व बोर्ड को धरातल के लिए प्रयोग किया है। नेक चंद जी ने बिजली की ऐसी कोई भी व्यर्थ वस्तु नहीं छोड़ी है जिसे अपने रॉक गार्डन में काल्पनिक आकृतियों के लिए प्रयोग न किया हो। नेक चंद जी को सोच को जो कोई भी देखता है आश्चर्यचकित रह जाता है। रॉक गार्डन में कई गुफाएं भी बनाई गई हैं इनमें भी बिजली के कई पदार्थों का उपयोग हुआ है।

5. बोतलों के ढक्कन :-

आमतौर पर लोग सोड़ा बोतल पीकर फेंक देते हैं, परंतु नेक चंद जी ने कान्च को तो इस्तेमाल किया है, साथ ही ढक्कन का भी प्रयोग करके कुशल कल्पनाशील होने का प्रमाण दिया है। सीढ़ियों पर बैठी मूर्तियों पर सिर से लेकर पांव तक ढक्कन का प्रयोग किया गया है, केवल चेहरे पर साधारण सीमेंट से आँख, नाक, होठ बनाए हैं। इन्हीं ढक्कनों से कुछ खड़ी मुद्रा में भी आकृतियों बनाई हैं। दूर

से देखने पर ये आकृतियों ऐसी प्रतीत होती है जैसे इन में बहुत सारे छेद किये हों। इन पर सोड़ा बोलतलों के ढक्कनों का उपयोग किया है।

6. मिट्टी का प्रयोग :

रॉक गार्डन में जहां लोहे, सीमेंट, कांच व अन्य खराब वस्तुओं का प्रयोग किया है, वहाँ मिट्टी जो कि प्राकृतिक देन है उसका भी बहुत कुशल प्रयोग किया है। मिट्टी के मटकों को भी एक दूसरे के ऊपर जोड़कर दीवार बनाई गई है। यह दीवार इतनी सुन्दर लगती है कि कोई भी व्यक्ति बिना इन्हें देखे आगे नहीं बढ़ पाता क्योंकि ये मटकों की दीवार आकर्षण का केन्द्र है। सभी उसे ध्यान से देखने के लिए रुक जाते हैं। लगभग एक मटक के ऊपर छः — सात मटके और जोड़े गए हैं। और जो मटकों नीचे बनाये गये हैं उनका आकार बड़ा दिखाया है और ऊपर के मटकों का आकार छोटा है। नेक चंद जी ने अपने गार्डन में गांव के दृश्य को दशनि के लिए भी मिट्टी का प्रयोग किया है। मिट्टी से छोड़ी-छोटी झोपड़ियां व छोटे-छोटे कमरे बनाकर इन्होंने अपने गांव के दृश्य को दर्शाने का प्रयास किया है।

कहीं तो बड़े कमरे भी मिट्टी के लेप से बनाए हैं और कहीं पर मिट्टी के पुराने बर्तनों को रखा हुआ है। मिट्टी के उपयोग से इन कमरों का वातावरण ठंडा रहता है इनसे गोल व चौकोर आकार की खिड़कियां भी बनाई गई हैं जिनमें इन कमरों में वास्तविकता का आभास होता है। पहाड़ियों पर मिट्टी से छोटे-छोटे मन्दिर भी बनाए हैं और मन्दिर तक पहुंचने के लिए छोटी-छोटी सीढ़ियां भी बनाई गई हैं जोकि बहुत ही सुन्दर लगती हैं। इन छोटे-छोटे घरों के आस-पास बहता हुआ पानी इस दृश्य को चार चाँद लगा देता है। मन्दिरों के ऊपर गुंबद भी बनाए हैं।

नेक चंद जी ने इन्हें “देवताओं की नगरी” का नाम दिया है। इन्हीं घरों के आस-पास पौधे भी लगाए हैं, मिट्टी का इस तरह का प्रयोग केवल नेक चंद जी के रॉक गार्डन में ही देखने को मिल सकता है। मिट्टी के छोटे-छोटे गोलों को एक लोहे के सरीये में पौरोकर दोवार के ऊपर लगाया गया है। ध्यान से देखने पर ये मोती की माला जैसी प्रतीत होती है। कुछ महिला आकृतियों को हरियाणवी कपड़ों में सिर पर मिट्टी के मटके व दूसरी बाजू कमर पर है। इन्हें देखने पर पनघट से पानी भर कर व आपस में बातचीत करती हुई प्रतीत हो रही है।

7. तारकोल से बनी आकृतियाँ :-

तारकाल का अधिकतर उपयोग सड़क बनाने के लिए किया जाता है, परन्तु इसी तारकोल सामग्री का प्रयोग नेक चंद जी ने काल्पनिक पुरुषों की आकृतियों को बनाने के लिए किया गया है। ये सभी आनियां खड़ी अवस्था में हैं, जिसमें गोल दो भुजाएं बनाई हैं और शरीर के ऊपर के हिस्से को एक लम्बी डंडी पर खड़ा दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त तारकोल को पिघला कर किसी पेड़ के कटे तने पर डाल दिया गया है, सूखने पर इनमें से कई आकृतियाँ उभरी हुई दिखायी देती हैं। इन काल्पनिक आकृतियों को देखने पर मन पूर्ण रूप से आनन्दमय हो जाता है। इन अद्भुत आकृतियों को भी रॉक गार्डन का हिस्सा बनाया है।

8. कांच के गोले :-

नेक चंद जी ने कांच के गोले का भी प्रयोग रॉक गार्डन में किया है। आमतौर पर ये कांच के गोले जिन्हें कंचे भी कहते हैं, अधिकतर बच्चों का प्रिय खेल कंचे हैं। परन्तु इन्होंने इन कंचों को भी जोड़कर मानव आकृतियाँ बनाई हैं ये काल्पनिक मानव आकृतियाँ कांच के गोलों से बहुत सुन्दर लगती हैं। इन्हीं कांच के गोलों को अन्य आकृतियों में आंख के रूप में प्रयोग किया गया है। नेक चंद जी ने इसी तरह विभिन्न व्यर्थ वस्तुओं का प्रयोग करके अपनी एक अलग पहचान बनाई है।

पंचम् अध्याय

- रचनात्मक आकारों व चित्रों का विवरण
- हरियाणा की संस्कृति के रूप

रचनात्मक आकारों व चित्रों का विवरण

1. प्रवेश द्वार का पत्थर :—

इस चित्र में रॉक गार्डन में प्रवेश करने से पहले रखे एक विशाल पत्थर को दिखाया है। इस पत्थर पर रॉक गार्डन को एक फैनटसी कहा गया है और इस विशाल पत्थर पर अंग्रेजी में रॉक गार्डन के निर्माता—निर्देशक नेक चंद जी का नाम लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त उद्घाटन कर्ता सिद्धार्थ शंकर रॉय का नाम भी लिखा हुआ है।

रॉक गार्डन का उद्घाटन 7 जुलाई, 1988. चण्डीगढ़ में किया गया था। आज इतने वर्षों के बाद भी रॉक गार्डन सबसे प्रसिद्ध व लोकप्रिय है।

2. उद्घाटन तारीख :—

इस चित्र में रॉक गार्डन के उद्घाटन अंग्रेजी में पथरीली दीवार पर स्टील से तारीख को लिखा गया है। चित्र के अनुसार रॉक गार्डन का उद्घाटन “श्री के. बनार जी, चीफ कमिश्नर, चण्डीगढ़ के द्वारा—10 दिसम्बर 1983 को किया गया था। यह रॉक गार्डन की सबसे महत्वपूर्ण दीवार है। प्रत्येक व्यक्ति इस दीवार पर लिखे शब्दों को पढ़ने के बाद ही आगे बढ़ता है।

3. सफेद कैक्टस :—

इस चित्र में सफेद बजरी से कैक्टस बना दिखाया है, चित्र के पीछे की दीवार पर खराब व टूटी प्लगस व फ्यूज को सीमेंट की सहायता से लगाया गया है। दीवार देखने में बहुत ही आकर्षक लग रही है। दीवार पर लगे प्लगस व फ्यूज में बने छोटे—छोटे छिद्र अपनी अलग ही भूमिका निभा रहे हैं। केवल सीमेंट के प्रयोग से ही धरातल को बनाया है।

चित्र की मुख्य आकृति एक कैक्टस के पौधे के समान बनाई है। यह नीचे से एक व ऊपर से दो भागों में विभाजित किया गया है। इस पर छोटी सफेद बजरी व पत्थर का प्रयोग किया गया है। यह अंग्रेजी का वाई अक्षर भी बनाता है। इसे नीचे छोटे—गोले धरातल पर बनाया गया है। यह कैक्टस के पौधे की तरह दिखता है।

4. भालू की आकृति :-

इस चित्र में एक बहुत बड़ी भालू की आकृति को दिखाया गया है। यह आकृति पूर्ण रूप से काल्पनिक है। इस पर कारखानों के व्यर्थ मैटीरियल व कंकरीट का प्रयोग किया हुआ है। इस आकृति को वास्तविक भालू के समान मोटा बनाया गया है। परन्तु नीचे में इसको एक बोतल के समान बनाया गया है। भालू की दो छोटी-छोटी बाजूएं भी बनाई हैं। गले में माला को दर्शाने के लिए इन्होंने सफेद बजरी का प्रयोग किया है।

आकृति का मुह आधा खुला दिखाया है। दो कान भी इस आकृति को वास्तविक रूप देने का प्रयत्न कर रहे हैं। पीछे की दीवार पर सफेद टूटी टाइलो का प्रयोग किया है। इस भालू की काल्पनिक आकृति को काफी लम्बा व चौड़ा बनाया गया है।

5. फोक आर्ट I :-

चित्र में नेक चंद जी द्वारा बनी कुछ कलाकृतियों को दिखाया है। चित्र से उनके फोक आर्ट से लगाव का पता चलता है। रॉक गार्डन की किसी भी दीवार को इन्होंने खाली नहीं रखा, इस पर भी किसी छोटी लकड़ी की सहायता से फोक आर्ट से कुछ डिजाइन बनाए हुए हैं।

पुराने समय में लोग अपने घरों में इस तरह के फूलों को बनाया करते थे, परन्तु इन्होंने इसे अपने गार्डन में बनाया है। चित्र के बार्ड तरफ रंगोली के डिजाइन बनाए हैं। एक गेंद व एक गिलास बनाया हुआ भी दिखाया है। अलग-अलग तरह के फूलों को दीवार पर बनाकर दीवार को फोक आर्ट में जोड़ दिया। चित्र के ऊपरी हिस्से में भी बाँडर को बनाया गया है।

6. फोक आर्ट II :-

इस चित्र में भी नेक चंद जी ने फोक, आर्ट को ही प्रस्तुत किया है। चित्र में 'बड़े-बड़े फूल, पत्तियों के साथ-साथ एक चिड़िया व एक सूर्य को भी चित्र बना दिखाया है। यह दो पहाड़ों में से उदय होता सूर्य है।

दाई तरफ दो बड़े-बड़े पत्तों को बने दिखाया है राक गार्डन की कोई भी दीवार को खाली नहीं छोड़ा गया। किसी न किसी तरह से इन्हें आर्ट (कला) से जोड़ा गया है। नेक चंद जी ने पुरातन कला, फोक उर्ट से अपना सम्बन्ध बनाए रखा है।

7. तीन चेहरे वाली काल्पनिक आकृति :-

चित्र में बनी आकृति को इन्होंने पूर्ण रूप से काल्पनिक बनाया है। इसमें केवल दो प्रभाव हैं, एक चपटा व दूसरा उभरा हुआ। यह आकृति पंचभुज आकार की है, इसमें एक शरीर के तीन चेहरों को बनाया है। दो हाथों के स्थान पर दो चेहरों को बनाया गया है। इस चित्र द्वारा इनके कुशल कल्पनाशील होने का पता चलता है। इस आकृति पर इन्होंने गोल बजरी को प्रयोग किया है।

पीछे की दीवार पर सफेद टाईलों को जोड़ा गया है। आकृति के तीनों चेहरे गोल व भावहीन हैं इनमें वास्तविकता का अभाव है। ये आकृति बहुत ही आकर्षक है।

8. मानव आकृति वाली रेलींग :-

इस चित्र में नेक चंद जी द्वारा रेलींग बनाई दिखाई है। रेलींग को कुछ मानव आकृतियों से जोड़ा गया है। ये मानव आकृतियां ऊपर बाजूएं करके बैठी प्रतीत होती हैं। रेलींग को सीढ़ियों के साथ बनाया गया है। चित्र में दाईं तरफ बजरी, पत्थर से बनी सीढ़ियां भी दिखाई दे रही हैं। गोल-गोल बजरी के प्रयोग से सीढ़ियां बहुत आकर्षित लग रही हैं।

इन मानव आकृतियों के चेहरे नहीं बनाए गए। इनकी टांगों को छोटा-छोट बनाया है। जिसे देखने पर हमें ये बैठी प्रतीत होती है। सीढ़ियों के साथ बड़े-बड़े पत्थरों की दीवार दिखाई दे रही है।

9. काल्पनिक किले का चित्र :-

इस चित्र में हमें पुराने किले के समान, खिड़कियों वाली इमारत नजर आ रही है। इमारत के दरवाजों को गोलाकार में बनाया गया है। इस चित्र से हमें इनका पुरानी इमारतों से लगाव का पता चलता है। इन्होंने इस इमारत को ऊपर से एक किले के समान बनाया है। इन पर बड़े-बड़े पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

इस किले की तरफ एक रास्ता जाता दिखाया है। सीढ़ियों के किनारे वाली रेलींग को इन्होंने घुमावदार आकार में बनाया है, जिन स्तम्भों पर ये रेलींग खड़ी है, उन्हें भी घुमावदार रूप आकार में बनाया है। इन्हें देखने पर प्राचीन राजमहल की आभा का अहसास होता है।

किले के ऊपर वाले भाग को किसी राजा के ताज जैसा बनाया है। चित्र के आगे वाले भाग में कुछ कटी हुई पेंडों की जड़ों को भी दिखाया है। यह इमारत किसी पहाड़ पर बने किले जैसी प्रतीत होती है।

10. काल्पनिक जड़ों की आकृति का चित्र :-

इस चित्र में जड़ों का उलझा हुआ जाल दिखाई दे रहा है। वह दृश्य हमें पेड़ की जड़ों का आभास कराता है। इसे बिजली की तारों पर सीमेंट का प्रयोग करके बनाया है। ये जाल आपस में उलझा हुआ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे नेक चंद जी ने अपने जीवन के संघर्षों को इस जाल द्वारा प्रस्तुत किया है। नेक चंद जी की इस क्रियाकलाप को आधुनिक कला से भी संबंधित भी मान सकते हैं। जिस प्रकार आधुनिक वस्तुनिरपेक्ष कला में बनी आकृति का अनुमान लगाना मुश्किल है, ठीक उसी प्रकार नेक चंद जी को इस कला का रहस्य जान पाना भी मुश्किल है।

ये जाल ऊपर से नीचे की तरफ बनाया गया है। जाल के नीचे के भाग को पत्थरों पर गिरा हुआ बनाया है।

11. मटकों से बनी दीवार :-

इस चित्र में मटकों की बनी दीवार को दिखाया है। इन मटकों के पीछे गोल स्तम्भों की दीवार बनाई गई है। आगे मटकों का अद्भुत दृश्य है। रॉक गार्डन के अद्भुत दृश्यों में से यह एक अद्भुत दृश्य है।

मटकों को एक के ऊपर एक रखकर जोड़ा गया है। लगभग सात मटकों को इसी प्रकार जोड़ा गया है। नीचे की तुलना में ऊपर के मटके छोटे हैं। नीचे बड़े मटकों को रखा गया है। यह दृश्य हमें गांव की याद दिलाता है। ग्रामीण जीवन से संबंधित होने के कारण हमें यह दृश्य रॉक गार्डन में देखने को मिला।

12. मिट्टी के गोलों से बनी मालाओं का चित्र :-

इस चित्र में इन्होंने मिट्टी व बिजली के टूटे प्लगों व फ्यूज का इस्तेमाल किया है। चित्र के ऊपरी भाग में मिट्टी के गोलों को लोहे के सरीयों में पीरोकर दीवार पर सीमेंट की सहायता से लगाया

गया है। इसी प्रकार बहुत सी लड़ियाँ (मालाएँ) प्रतीत होती है जो बनाई गई है। ध्यान से देखने पर ये मोती चित्र के नीचे वाले भाग पर बिजली के सीमेंट की दीवार पर खराब फ्यूज व व्यर्थ समान का प्रयोग किया है। टूटे प्लग्स को इस्तेमाल किया है। यह दृश्य देखने में बहुत सुन्दर लगता है। इन्हीं मालाओं को कई संख्या में बनाकर दीवार को सजाया गया है।

13. पुलिसवालों की आकृतियां :-

इस चित्र में मुख्य तीन आकृतियां है। दो सामने की तरफ व एक ने पीठ कीये हुए दिखाया है। आगे की दो आकृतियों के चेहरे सामने है। इन आकृतियों पर सफेद टूटी टाईलों का प्रयोग किया गया है।

काली टाईलों से कंधे से नीचे की तरफ जाती हुई बैल्ट को बनाया है। एक बेल्ट कमर पर भी बनाई गई है। पीछे की आकृति को आधी पतलून पहनाई गई है। इन आकृतियों के हाथ में लाठी को पकड़ाया गया है। देखने में ये पुलिस वाले लगते हैं। इन आकृतियों को बगीचे में खड़े दिखाया गया है। ये काफी विशाल आकृतियां है।

14. काल्पनिक मानव आकृतियां :-

इस चित्र में पांच काल्पनिक मानव आकृतियां है। इन्हें बैठे हुए दिखाया है। तीन आकृतियां ऊपर बैठी है व दो आकृतियां नीचे बैठी है। इनको सीढ़ीनुमा धरातल पर बिठाया गया है। ये वास्तविक मानव आकृतियां नहीं है। इन्हें सफेद टाईलो व टूटे चाय के कप आदि से बनाया है। इन्हें टोपी भी पहनाई गई है।

चौथी आकृति जोकि नीचे बैठी है, उसे नीले रंग के कप को उल्टा करके पहना दिया गया है। जो देखने में टोपी जैसा लगता है। सभी मानव आकृतियों के चेहरे सीमेंट से बनाए गए है। इनके चेहरों का कठपुतली के आकारों में बनाया गया है। इनका एक हाथ लम्बा व दूसरा शरीर से जुड़ा दिखाया है।

इनका धरातल बड़े-बड़े पत्थरों के टुकड़ों को जोड़कर बनाया गया है। जो भूरे व गहरे रंग के है। सभी आकृतियां एक ही दिशा की तरफ देख रही है व सभी भावहीन है।

15. बिजली की ट्यूब से बनी दीवार का चित्र :-

इस चित्र में बिजली की खराब ट्यूबस का प्रयोग किया गया है। सभी खराब ट्यूबस को एक रस्सी की सहायता से आपस में बांधकर व नीचे धरातल में सीमेंट से जोड़ा गया है। नेक चंद जी ने इन ट्यूब से दीवार बनाई है। जोकि एक सफेद चादर की तरह प्रतीत होती है। इन्हें ध्यान से देखने पर हमे बांस का भी आभास होता है। जिस प्रकार गांव में पर्दे के लिए बांस को छोटी-छोटी रस्सीयों से जोड़कर दीवार बनाई जाती थी।

उसी से प्रेरित होकर इन्होंने रॉक गार्डन के भाग को विभाजित करने के लिए इन ट्यूबस का इस्तेमाल किया है। इनके आगे कई पेड़ भी है जोकि चित्र की सुन्दरता को बढ़ा रहे है। हरियाली में सफेद ट्यूबस पर एक सीमा रेखा की तरह लगती है।

16. रॉक गार्डन में गांव की रसोई का चित्र :-

इस चित्र में एक गांव के दृश्य को दर्शाने का प्रयास किया है। जिस प्रकार पहले गांव की रसोई में स्त्रियां चक्की का इस्तेमाल करती थी, गांव के उसी जीवन को इन्होंने अपने रॉक गार्डन में संजोकर रखा है। इस चित्र में चार खाने बने दिखाए है जो चौकोर आकर के है।

तीसरे खाने के आगे चक्की का एक हिस्सा रखा दिखाया है जो कि गोलाकार है। चक्की के मध्य गोल छिद्र है। चक्की पर अंग्रेजी में कुछ शब्दों की खुदाई की गई है। जिसमें इस चक्को के हिस्से को रॉक गार्डन का “मास्टर पीस” माना गया है। इस चक्की के पीछे बने चारों खानों को केवल सीमेंट से ही बनाया गया है।

17. काल्पनिक झरने का दृश्य :-

इस चित्र का ऊपरी भाग किसी प्राचीन राजमहल को याद दिलाता है। ऊपर की तरफ के गुम्बद जिनको टूटी सफेद टाइलो से बनाया है। गुम्बद के चारों तरफ बनी रेलींग को त्रिकोण आकार में बनाया है और आर-पार दरवाजों को गोलाकार में दिखाया है। इनके आगे बनी रेलींग बहुत सुन्दर व आकर्षित प्रतीत हो रही है।

रेलींग के नीचे बने स्तम्भों को सीमेंट से बनाया गया है। इसमें से बहता पानी प्राकृतिक झरने की आभा का अहसास करवाता है। प्राकृतिक के इस मनोहरी दृश्य को इन्होंने रॉक गार्डन में काल्पनिक

रूप से सुन्दर व आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया है। पूरा दृश्य यात्रियों को बहुत आकर्षित करता है व कुछ समय के लिए उन्हें प्रकृति के समीप ले आता है।

18. काल्पनिक गांव का चित्र :-

इस चित्र में इन्होंने अपने बचपन की यादों में बसे गांव को दर्शाने का प्रयास किया है। इसमें इन्होंने सीमेंट से छोटी-छोटी झोपड़ीयाँ बनाई है। उन्होंने पहाड़ी पर एक पूरा गांव बनाया है। इन झोपड़ियों को अलग-अलग तरीके से बनाया है। इनके आसपास पौधे, भी लगाए हैं ताकि गांव को वास्तविक रूप दिया जा सके। कैक्टस का पौधा चित्र में दिखाई दे रहा है। झोपड़ियों की छत वास्तविक छत के समान बनाई है।

चित्र के दाईं तरफ एक काल्पनिक आकृति भी है। इन झोपड़ियों की खिड़कियां भी बनाई है। इन घरों के पास पत्थरों को भी रखा गया है। कुछ झोपड़ियों के स्तम्भ भी बनाए हैं। जिनमें ये घर देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं।

19. हरियाणवी स्त्रियों की आकृतियां :

इस चित्र में चार स्त्री आकृतियां दिखाई दे रही हैं। ये आकृतियां हरियाणवी लिबास में हैं इन्होंने घाघरा-चोली पहनी हुई है। आकृति के ऊपरी भाग को टाईलों व नीचे के भाग को सीमेंट से बनाया है।

दाईं तरफ की स्त्री की एक बाजू कमर पर है। आकृति ने सीधी धारी वाला लहंगा पहना हुआ है व हाथों में एक-एक चूड़ी भी पहनी हुई है। मध्य को दोनों आकृतियां छोटी हैं। इन्होंने भी लहंगा व चोली पहनी है उनके सिर पर भी मटके दिखाए हैं। बाएं ओर एक अन्य बड़ी आकृति है। इसके लहंगे की धारी तिरछी है, सफेद बिन्दु से इनके लहंगे बहुत हो आकर्षक लग रहे हैं।

इनके पीछे के भाग को विरान दिखाया है। ऐसा प्रतीत होता है। मानों ये पानी भरने जा रही है। पीछे के भाग में पत्थर व ईंटों का प्रयोग किया है।

20. काल्पनिक मानव आकृतियां :-

चित्र में काल्पनिक आकृतियां हैं। तीन मुख्य आकृतियां हैं व एक की केवल पीठ दिखाई दे रही है। पीछे के भाग में कई आकृतियां हैं जो बाजूओं से जुड़ी हुई हैं। इनके सिर बनाए गए हैं। परंतु शरीर के बाकी भाग में गोला बनाया गया है। कई चेहरे दिखाए हैं सबके भाव एक समान हैं। इन्हें देखने पर ये आपस में जुड़े हुए या एक-दूसरे की बाजूओं में बाजू डाले दिखाया है। इन पर भूरे व सफेद कप प्लेटों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं हरे रंग की टाईलों को भी लगाया है। चित्र के घरातल में भी टाईलें लगाई हैं। ये सभी सफेद व तीन मुख्य आकृतियों पूर्ण रूप से बनाई हैं।

इन आकृतियों—को त्रिकोण आकार में बनाया है। इन्हें एक तरफ से सीधा व दूसरी तरफ से गोलाई में बनाया गया है। ऊपर की तरफ दाईं हिस्से में गोल चेहरा बनाया है। जिनकी दो गोल आंखें एक चपटा नाक व होठों को बनाया है। ये सभी भावहीन प्रतीत होते हैं। इन पर गहरी छोटी बजरी का प्रयोग किया है।

केवल चेहरे पर सीमेंट व बाकी के भाग पर बजरी का उपयोग किया है। ये आकृतियां बैठी प्रतीत होती हैं। पीछे की आकृतियों के चेहरे व आगे की आकृतियों के चेहरे एक समान बनाए हैं। इनसे नेक चंद जो के अद्भुत कल्पनाशील होने का पता चलता है।

हरियाणा की संस्कृति के रूप

1. झरोखा :—

इसे शिल्प कला में दर्शाया गया है कि एक हरियाणावी स्त्री झरोखे से बाहर क्यों झाँक रही है। मानो किसी के आने का इंतजार कर रही हो। उसकी वेशभूषा हरियाणावी लग रही है। उसने सफेद व लाल रंग के कपड़े पहने हैं।

2. चौपाल :—

यह दृश्य बहुत ही मनमोहन लग रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री और पुरुष किसी विषय पर वार्तालाप कर रहे हो। एक पुरुष हुक्का पीता हुआ दिखाई दे रहा है। पुरुष ने सफेद रंग के कपड़े व पगड़ी पहनी है व महिला ने पीले रंग के कपड़े पहने हैं।

3. शहनाई :—

पुरुषों को शहनाई यंत्र बजाते हुए दिखाया गया है। ऐसा प्रतीत होता जैसे विवाह उत्सव पर शहनाई बजाई जा रही हो। एक पुरुष के हाथ में डफली व दूसरे के हाथ में शहनाई है। एक पुरुष ने गुलाबी व हरी रंग की पगड़ी पहनी हुई है। और दूसरे पुरुष ने सफेद रंग का कुर्ता व गुलाबी रंग की पगड़ी पहनी हुई है।

4. पनिहारीन :—

यह दृश्य बहुत ही सुंदर प्रतीत हो रहा है। इसमें दो स्त्रियों को पानी के मटके सिर पर उठाते हुए दिखाया गया है। दोनों घाघरा, चोली व गुलाबी और हरे वस्त्र धारण किए हुए हैं। उन्होंने हार एवं श्रृंगार किए हुए हैं।

5. मनहारन :—

इस दृश्य में एक महिला को काँच की चुड़ियों की बिक्री करते हुए दिखाया गया है। व एक स्त्री काँच की चुड़ियाँ देख रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वो चुड़ियाँ खरीदने आई है और चुड़ियों की परख कर रही है।

6. मेरी रसोई :-

इस दृश्य में रसोई का दर्शाया दिखाया गया है। एक स्त्री के हाथ वे बेलन है और दूसरी स्त्री के सिर पर मटका है। उनके आस पास मटके रखे नजर आ रहे है। महिला सफेद व पीले रंग के वस्त्र धारण किए हुए है। मिट्टी का चूल्हा है जिस पर रोटी पकाई जा रही है। परिवार का मुखिया खाने के लिए बैठा है।

7. पनघट :-

इस दृश्य में दो महिलाएँ कुए से पानी भरने का प्रयास कर रही है। एक मटका पकड़े हुए है और दूसरी कुए से पानी को निकालते हुए नजर आ रही है। महिला ने काले व गुलाबी रंग के कपड़े पहने हुए है। दूसरी महिला ने गुलाबी चुनरी व पीले रंगा का घागरा डाला हुआ है।

8. पाठशाला :-

इस चित्र में गाँव की पाठशाला का दृश्य दर्शाया गया है। इस चित्र में बच्चों को वर्णमाला सीखा रहे है। बच्चे वर्णमाला तकती पर लिख रहे है। बच्चों ने सफेद रंग के कुर्ते पहने है। व मास्टर जी ने हरे पीले रंग की पगड़ी और सफेद कुर्ता पहना है।

9. चरखा कातती महिलाएँ :-

यह दृश्य बहुत ही मनमोहन है। महिलाओं ने हरियाणावी कपड़े डाले हुए है। दोनों महिलाएँ वार्तालाप करते हुए चरखा कात रही है। पीले व लाल रंग के कपड़े पहने हैं। एक पीली पगड़ी वाला पुरुष उनकी बातें सुन रहा है। यह दर्शाया बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा है।

10. मेरी पहचान :-

इस दृश्य में एक महिला अपनी बेटी के साथ गोबर के उपले बनाती हुई नजर आ रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वह अपनी पहचान बना रही हो। उसने गोबर के उपलो को दीवार पर चिपकाया है। उसकी बेटी ने गुलाबी रंग के कपड़े पहने हैं व महिला पीले रंग के कपड़े धारण किए हुए है।

11. नवरंग पंतग :-

इस दृश्य में कपड़े की पंतग को दर्शाया गया है। विभिन्न रंगों के माध्यम से पंतगों को बनाया गया है। पंतग के पीछे कुछ मुटको को ताल रंग व स्वर्ण रंग के कपड़े से सजाया गया है।

12. बाल क्रीडा :-

इस दृश्य में एक महिला अपने बच्चे को अपनी गोद में लेकर बैठी है। वह खिलौनों के साथ खेल रहा है। उसके पीछे रंग-बिरंगे मटके रखे हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वह महिला अपने बच्चे की नटखट क्रीड़ाओं से प्रभावित है।

13. दिवाह उत्सव :-

इस दृश्य में विवाह उत्सव को दर्शाया गया है। इस दृश्य में बरात को जाते हुए दिखाया गया है। घोड़े पर सवार दूल्हे को दर्शाया गया है। दूल्हे के सिर पर सहरा व गुलाबी रंग की पगड़ी है। दूल्हे ने गुलाबी रंग की कुर्ता पहना है।

14. डोली :-

इस दृश्य में एक डोली को चार पुरुषों ने अपने कंदो पर उठा रखा है। चारों पुरुषों ने सफेद रंग के कपड़े पहने हैं व सिर पर लाल, पीली व नीले रंग की पगड़ियाँ पहनी हुई हैं। डोली में एक महिला गुलाबी रंग की चुनरी पहने बैठी है। जो डोली से बाहर की तरफ देख रही है।

15. किसान :—

इस दृश्य में एक किसान को हल जोतते हुए दिखाया गया है। किसान के बैल को लाल व पीले रंग के कपड़े से बनाया गया है। व बैल के चेहरे को गुलाबी रंग के कपड़े से तैयार किया गया है। किसान सफेद रंग का कुर्ता व हरे रंग की पगड़ी पहन रखी है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वह खेत को जोत रहा है।

16 सत्संग :—

इस दृश्य में महर्षि अपने आसन पर विराजमान है। और संगत अपने स्थान पर बैठकर महर्षि का सत्संग श्रवण कर रही है। महर्षि ने लाल रंग के कपड़े व पीले रंग की फूलों की माला धारण को हुई है। व संगत ने पीले व केसरी रंग के वस्त्र धारण किए हुए है।

17. पितृण पूजा :—

यह हरियाणवी दृश्य दर्शाया गया है। इसमें दो महिलाएं अपने पितरों की पूजा कर रही हैं महिलाओं ने गुलाबी व केसरी रंग के कपड़े धारण किए हुए है। उनके सामने पूजा — स्थल ईंटों से बनाया गया है एवं ईंटों को सफेद रंग किया गया है। और महिलाएं पितरों की पूजा कर रही है।

18. साधु 'The Saint':—

इस दृश्य में एक साधु को ध्यान अवस्था में दर्शाया गया है। साधु ने केसरी व लाल रंग के कपड़े धारण किए हुए है। साधु बरगद के पेड़ के नीचे विराजमान है एवं उसके हाथ में रुद्राक्ष की माला है। ध्यान की अवस्था में वह माला के साथ जाप कर रहा है। उसके गले में पीले रंग के रुद्राक्ष की माला एवं कानों में कुण्डल विराजमान है।

19 बनेरे पे बैठी महिलाएँ :—

इस दृश्य में मिट्टी के बनेरे पर कुछ महिलाओं को बैठे हुए दर्शाया गया है। महिलाएँ ने घागरे व चोली पहने हुए है। महिलाएँ अपने बच्चों के हाथ पकड़ कर बनेरे पर बैठी हुई है। ऐसा प्रतीत हो

रहा है मानो वह बनेरे के ऊपर बैठकर कोई दृश्य देख रही है। उन महिलाओं को देखकर हर्षोल्लास का दृश्य प्रतीत होता है।

20. तबेला :-

इस दृश्य में भैसों को दर्शाया गया है। इन भैलों को काले रंग के कपड़े से बनाया गया है। यह एक तबेले का दृश्य है। भैस के गले में हरे, लाल व पीले रंग की कन्ती डाली हुई है व एक महिला को बाल्टी में दूध निकालते दिखाया गया है। महिला ने सफेद रंग कुर्ता व हरे रंग की चुनरी ओढ़ रखी है। पीछे कच्ची दीवार दिखाई गई है जिस पर गोबर के उपले चिपकाए गए हैं व सफेद रंग से डिजाइन किया गया है।

उपसंहार

कला जगत में अपनी सबसे अनोखी व अलग पहचान बनाने वाले कलाकार “श्री नेक चंद जी” ने अपनी एक काल्पनिक नगरी का निर्माण किया। इस नगरी को इन्होंने “रॉक गार्डन” का नाम दिया। रॉक गार्डन चण्डीगढ़ की सबसे प्रसिद्ध जगह का नाम है। हजारों की संख्या में लोग इस गार्डन को देखने प्रतिदिन आते हैं। इस अनोखे गार्डन में उन सभी व्यर्थ वस्तुओं का प्रयोग किया है जिन्हें हम व्यर्थ व बेकार समझकर फेंक देते हैं परंतु इन्होंने अपने कुशल कल्पनाशील होने का प्रमाण दिया है। इनके द्वारा किया गया काम काबिले तारीफ है। रॉक गार्डन को बहुत संघर्षों के बाद भारत में यह स्थान प्राप्त हुआ है।

इस गार्डन के लिए इन्हें “पद्म श्री” के पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। बहुत से लोगों ने इन्हें प्रोत्साहित किया। इनके सकारात्मक सोच व उच्च विचारों के इलावा इनकी लगन ने इन्हें ये स्थान दिया है। केवल भारत में ही नहीं विदेशों में भी इनके चर्चे मशहूर हैं। चण्डीगढ़ की कई पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में इनके गार्डन के चित्र अक्सर छपा करते हैं। चण्डीगढ़ में चलने वाली लोकल बसों के बाहर भी इनके गार्डन में बनी आकृतियों के चित्र छपे हुए हैं। इन्होंने टूटी चूड़ियों, टाइलों, ड्रमों, बिजली के व्यर्थ सामान व कंचे, ढक्कनों आदि का बहुत अच्छा सदुपयोग किया है। गार्डन में ग्रामीण जीवन से प्रेरित कई दृश्यों को भी शामिल किया है। धार्मिक होने के कारण शिव नगरी जिसे “देवताओं की नगरी” भी कहा जाता है, बनाई है। प्राकृतिक दृश्यों को काल्पनिक रूप देकर इन्होंने कुशल कल्पनाशील होने का प्रमाण दिया है। काल्पनिक झरने, किले, नदी व अन्य कई दृश्य हैं जिनसे हमें इनकी कल्पनाशक्ति का पता चलता है। रॉक गार्डन के चित्र को पोस्टेज टिकटे में भी जगह मिली है। कई प्रधान मंत्री व राष्ट्रपति ने इन्हें सम्मानित किया व अपना काम जारी रखने के लिए प्रोत्साहित भी किया। कई हजारों की संख्या में इन्होंने काल्पनिक आकृतियों का निर्माण किया है।

कला जगत के ये पहले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने व्यर्थ वस्तुओं का इतना अच्छा सदुपयोग किया है इन्हीं व्यर्थ वस्तुओं से बनी कलाकृतियों को देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं इन्होंने विदेशों में 2/3 कला के नमूने भेजे हैं। नेक चंद जी केवल सामाजिक जीवन में नहीं पारिवारिक जीवन में भी एक सफल इन्सान हैं।

इन्होंने अपने परिवार को भी पूरा समय दिया है और इनके परिवार ने भी हर कदम पर नेक चंद जी को सहयोग दिया है। आज कई ऐसे कलाकार उभरकर आए हैं जिन्होंने रॉक गार्डन में बनी आकृतियों से प्रोत्साहित होकर काम किया है व सफलता प्राप्त की है। नेक चंद जी इनके प्रेरणा स्रोत हैं। कई कलाकारों ने इसी तरह के काम करना आरम्भ कर दिया है। रॉक गार्डन का स्थान केवल पंजाब में ही नहीं पुरे भारत में सर्वोच्च है। आज रॉक गार्डन के तीन भाग बने हुए हैं जिसमें दो भाग पूरे व तीसरे भाग का काम जारी है। व्यर्थ वस्तुओं को रॉक गार्डन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। इनका इस तरह से सदुपयोग आम व्यक्ति की सोच से परे है। नेक चंद जी ने रोड इन्स्पेक्टर के पद पर भी कार्य किया परन्तु अधिकतर समय इन्होंने अपने गार्डन को दिया। सरकार के पूर्ण सहयोग से यह काम सफल हो पाया है। इन्होंने बचपन के खेल को ये रूप दिया है वे यह नहीं जानते थे कि भविष्य में ये खेल विशाल रूप ले लेगा। आज के समय में व भविष्य में रॉक गार्डन सदैव इसी तरह चमकता सितारा बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 डॉ०. राकेश कुमार सिंह, आधुनिक भारतीय चित्रकला का इतिहास, अनु बुक्स मेरठ, संस्करण : 2012, पृ०. सं०. 2, 3
- 2 रवि साखलकर, कला के अन्तर्दर्शन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, संस्करण : 2008, पृ०. सं०. 5, 6
- 3 डॉ०. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, संस्करण : 2009, पृ०. सं०. 4, 443, 444
- 4 मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती', ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, संस्करण : 2003

Youtube :-

- 5 <https://youtu.be/fdgtewt8bbro?si=0dj9qw2pp0wubbwx>
- 6 <https://youtu.be/rhEawDRkAB8?si=j8wjltitemuvevnD>

Newspaper link:-

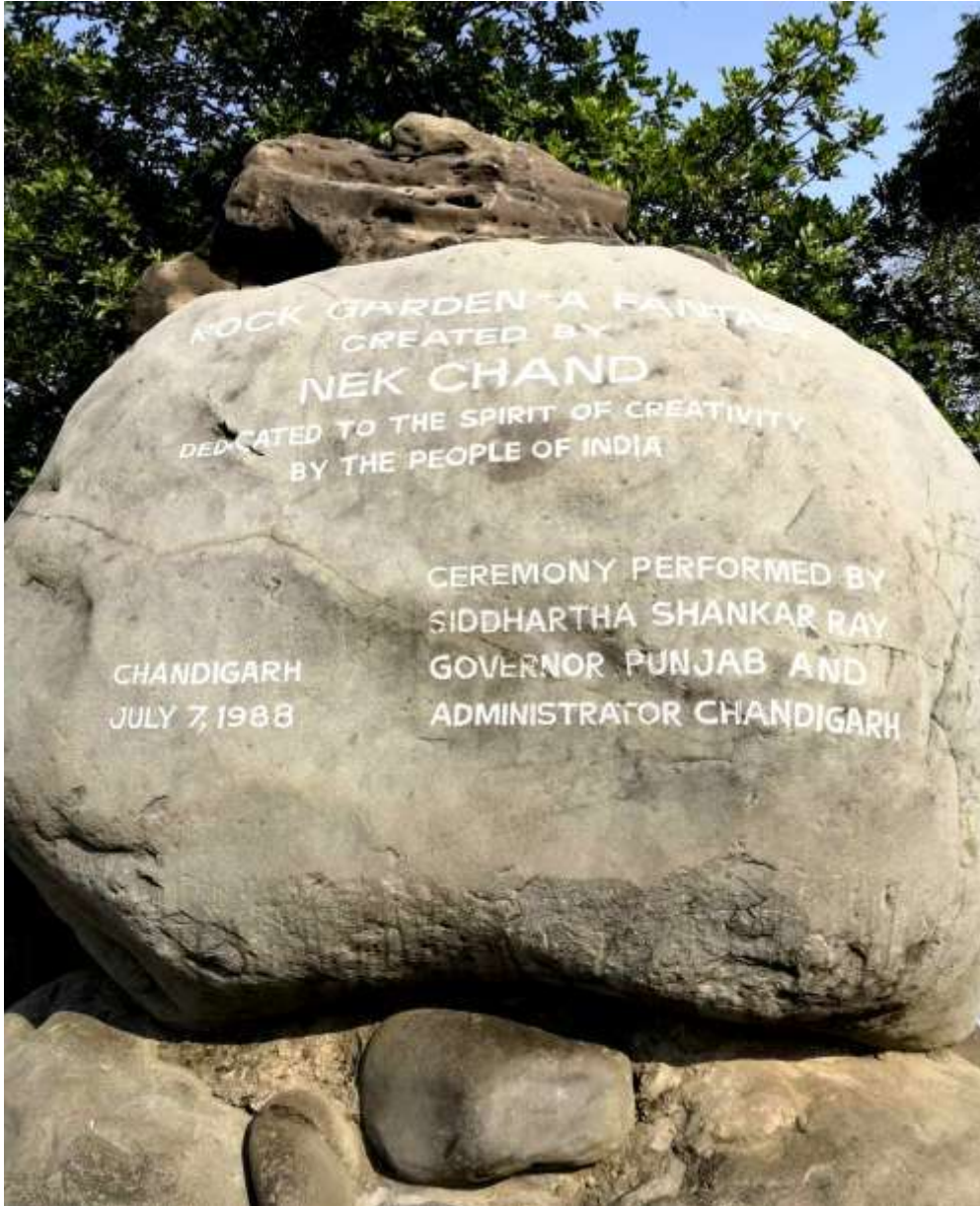
- 7 <https://www.bhaskar.com/news/ut-chd-rock-garden-tourist.place-and-about-nekchand-saini-4490810-pho.html>
- 8 <https://www.jagran.com/punjab/chandigarh-the-doll-museum-in-rock-garden-chandigarh-showcases-the-culture-of-various-states-of-north-india-21171736.html>

चित्र सूची

क्र० सं०.	नाम
1	प्रवेश द्वार का पत्थर
2	उद्घाटन तारीख
3	सफेद कैक्टस
4	भालू की आकृति
5	फोक आर्ट – I
6	फोक आर्ट – II
7	तीन चहरे वाली काल्पनिक आकृति
8	मानव आकृति वाली रेलींग
9	काल्पनिक किले का चित्र
10	काल्पनिक जड़ों की आकृति
11	मटकों से बनी दीवार
12	मिट्टी के गोलों से बनी मालाओं का चित्र
13	पुलिसवालों की आकृतियाँ
14	काल्पनिक मानव आकृतियाँ
15	बिजली की ट्यूब से बनी दीवार
16	रॉक गार्डन में गांव की रसोई
17	काल्पनिक झरने का दृश्य
18	काल्पनिक गांव का चित्र
19	हरियाणवी स्त्रियों की आकृतियाँ
20	चरखा कातती महिलाएँ
21	बाल क्रीड़ा
22	डोली
23	सत्संग

24	पनघट
25	मनिहारन
26	पनिहारिन

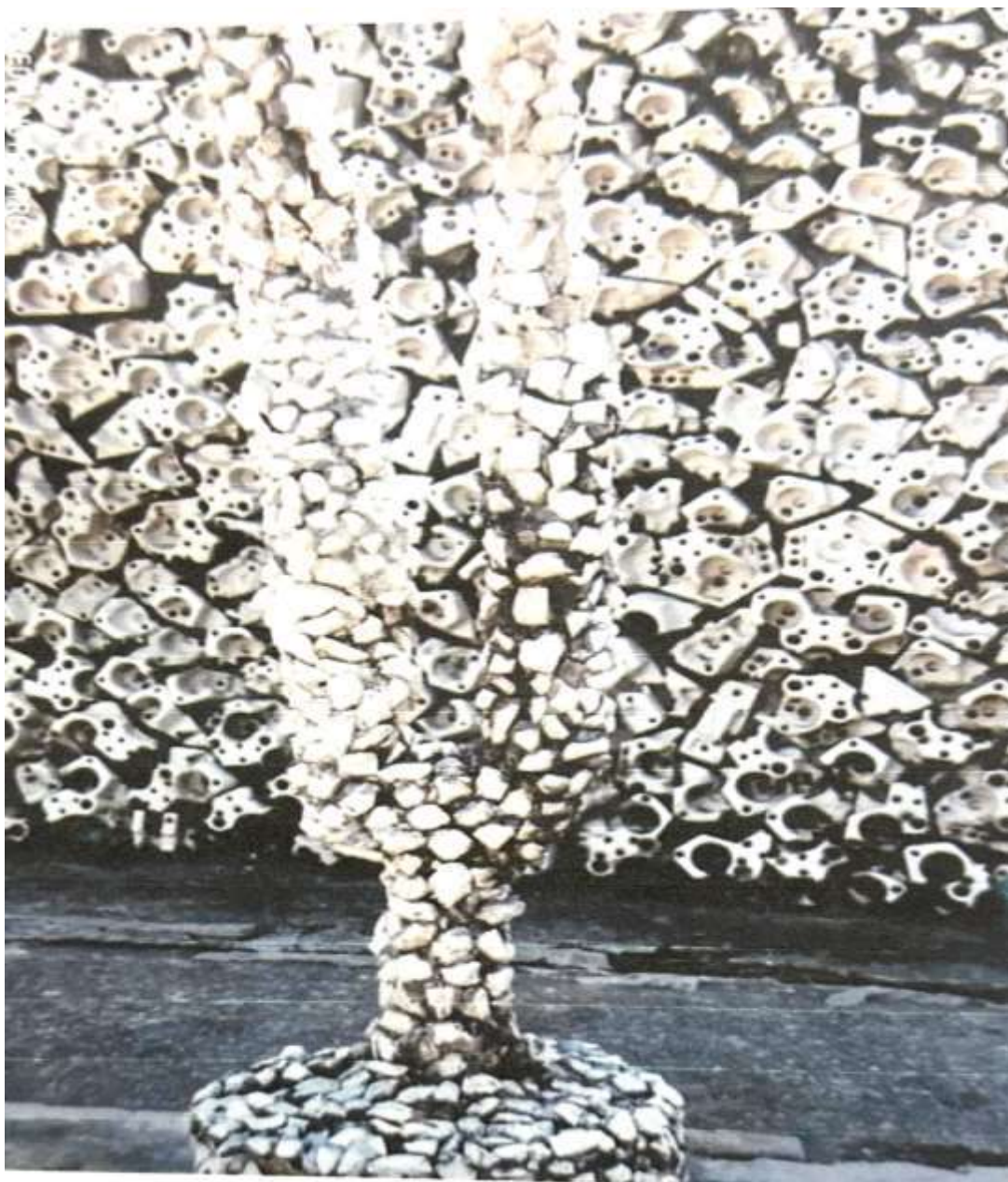
चित्र



प्रवेश द्वार का पत्थर



उद्घाटन तारीख



सफेद कैक्टस



भालू की आकृति



फोक आर्ट - ।



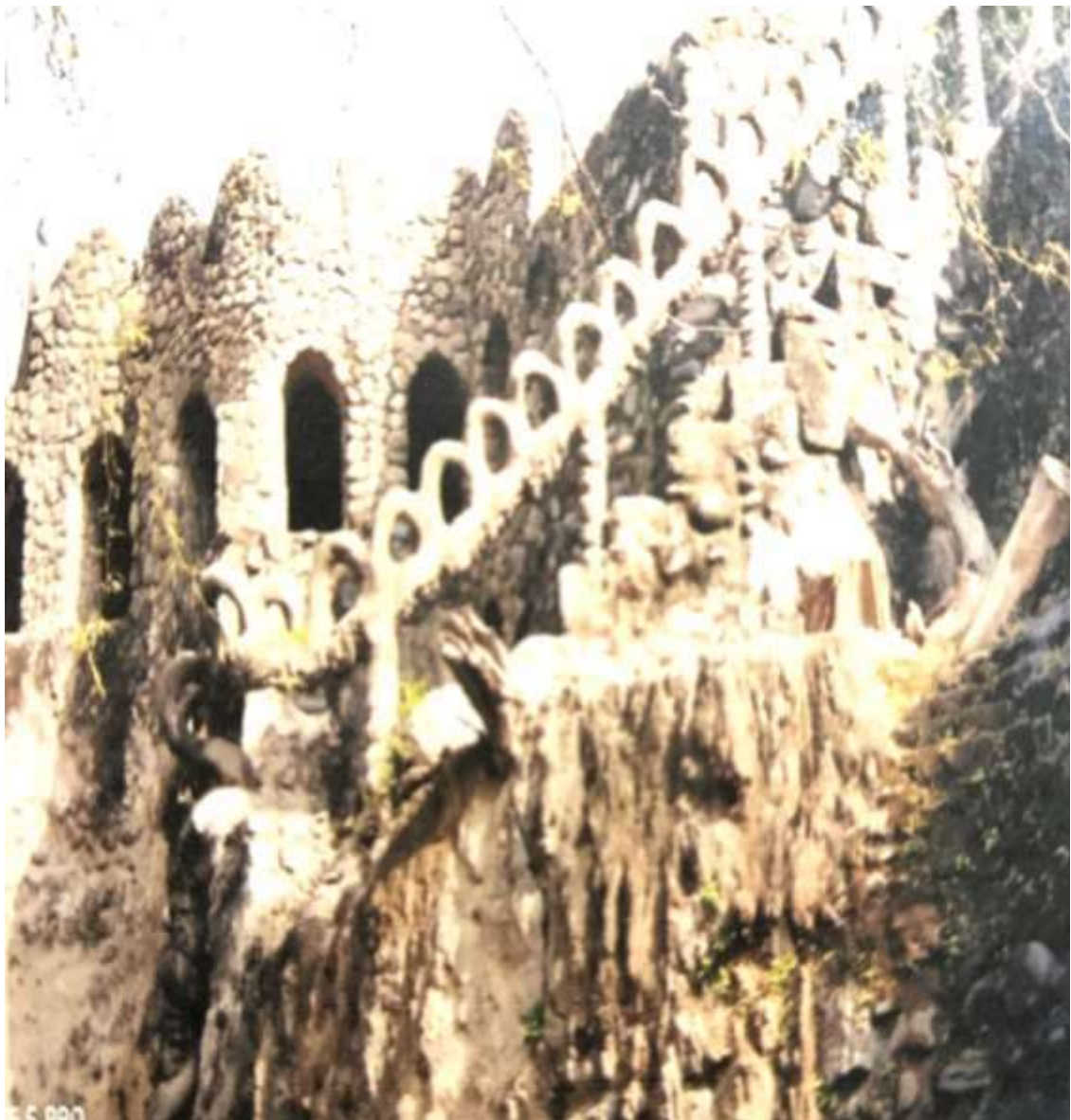
फोक आर्ट - ॥



तीन चहरे वाली काल्पनिक आकृति



मानव आकृति वाली रेलींग



काल्पनिक किले का चित्र



काल्पनिक जड़ों की आकृति



मटकों से बनी दीवार



मिट्टी के गोलों से बनी मालाओं का चित्र



पुलिसवालों की आकृतियाँ



काल्पनिक मानव आकृतियाँ



बिजली की ट्यूब से बनी दीवार



रॉक गार्डन में गांव की रसोई



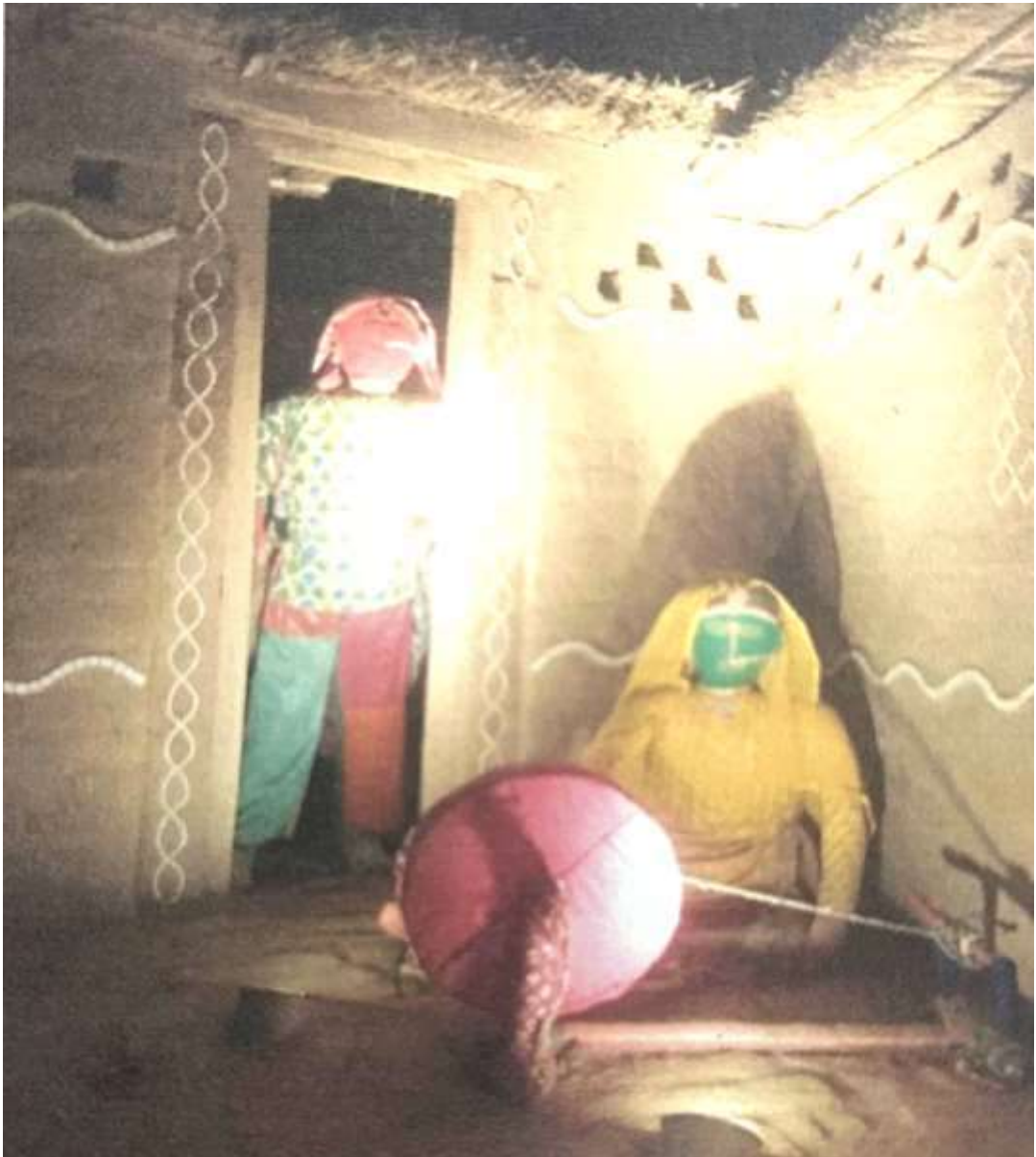
काल्पनिक झरने का दृश्य



काल्पनिक गांव का चित्र



हरियाणवी स्त्रियों की आकृतियाँ



चरखा कातती महिलाएँ



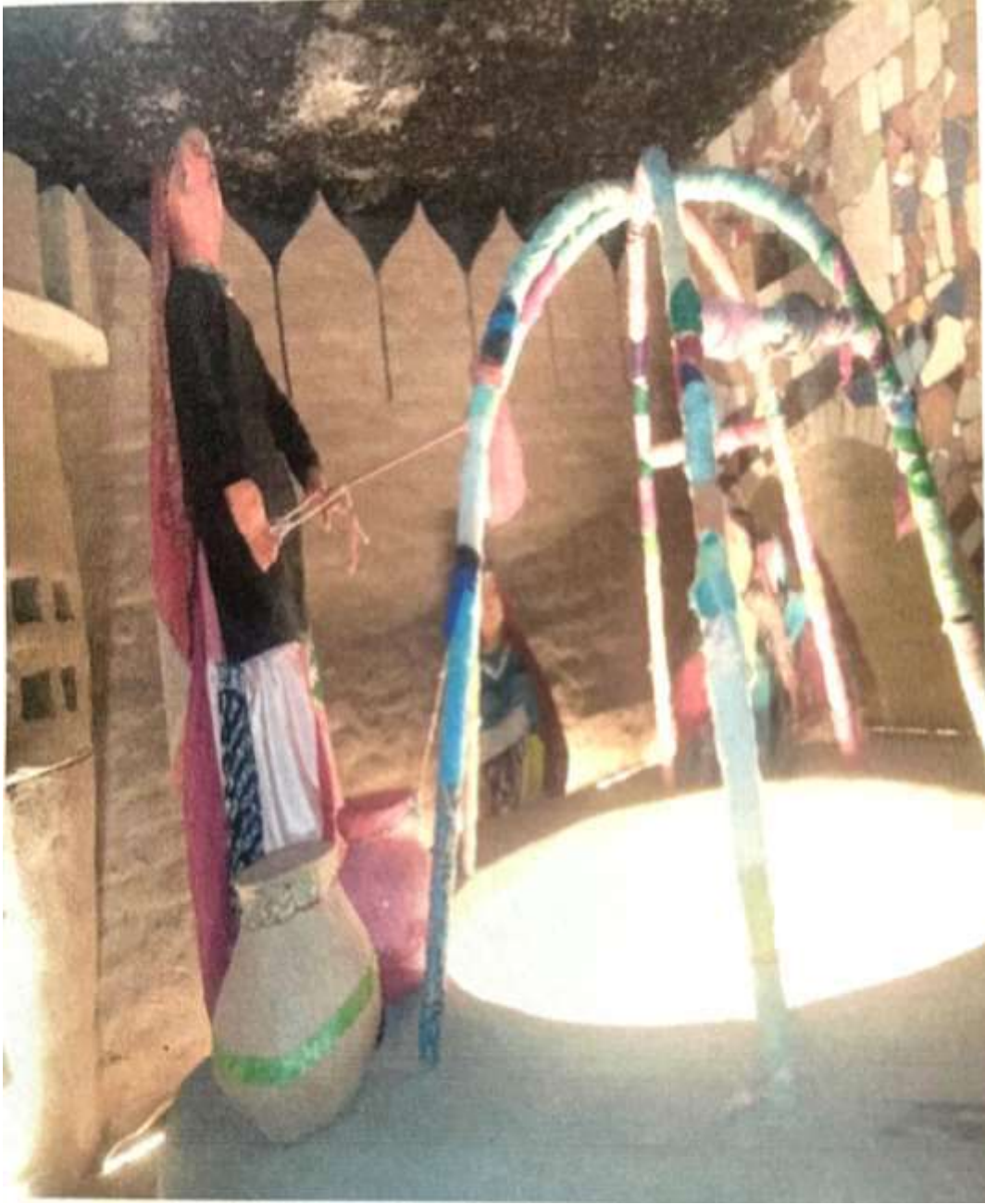
बाल क्रीड़ा



डोली



सत्संग



पनघट



मनिहारन



पनिहारिन

“कपाल मोचन (बिलासपुर) के धार्मिक मन्दिर
एवं मूर्तिकला का अध्ययन”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
की
ललित कला स्नातकोत्तर
उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा
श्रीमती संतोष
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री
शिल्पा
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)



ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **शिल्पा**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “**कपाल मोचन (बिलासपुर) के धार्मिक मन्दिरों एवं मूर्तिकला का अध्ययन**” शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं शिल्पा, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध “ कपाल मोचन (बिलासपुर) के धार्मिक मन्दिरों एवं मूर्तिकला का अध्ययन ” विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है, उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिक

महेश धीमान

शोधकर्त्री

शिल्पा

आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा०)
कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **शिल्पा**, अनुक्रमांक न०. 130249901, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “**कपाल मोचन (बिलासपुर) के धार्मिक मन्दिरों एवं मूर्तिकला का अध्ययन**” शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक:

प्राचार्या
डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

वर्तमान हरियाणा राज्य 1 नवंबर 1966 को अस्तित्व में आया। यहां हस्त कौशल का सर्वोत्तम प्रमाण पाया जाता है। कला एवं साहित्य से मिले प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि — यह क्षेत्र प्राचीन एवं मध्यकालीन युग में अपनी अलग ही भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पहचान रखता है। दिल्ली से मिले शिलालेखों से स्पष्ट है कि दिल्ली भी हरियाणा का ही हिस्सा था। विद्वानों का मत है कि यह क्षेत्र बहुत उपजाऊ तथा बहुसंख्या वाला क्षेत्र रहा है, जिसमें बहुत बड़े लुटेरे को, लोगों के आवागमन को, राज्य के उतार चढ़ाव को तथा राज्य के उत्थान को और पतन को झेला है।

भारत के विभिन्न भागों में मध्यकाल में अनेक सुंदर मंदिरों का निर्माण हुआ, जिसमें पूजा अर्चना हेतु विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित की गईं। यहां के मंदिरों की दीवारें, स्तंभों, छतों आदि में अलंकरणों के साथ-साथ विभिन्न प्रतिमाएं भी प्रतिष्ठित हैं। यहां काले पत्थर से निर्मित देवी-देवताओं के प्रतिमाएं कला के उत्कृष्ट उदाहरणों में गिनी जाती हैं।

मौर्य काल से लेकर हर्षवर्धन के समय तक, हरियाणा क्षेत्र मूर्ति कला के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा होगा। वैसे तो विध्वंसकारी मुस्लिम, आक्रमणकारियों ने अपनी ओर से मूर्तिकला को बिल्कुल खाक नहीं बन सकता। आज भी लगभग सारे हरियाणा क्षेत्र में टूटी हुई मूर्तियों के भंडार दबे पड़े हैं। खेद की बात है कि अभी तक उनको प्रकाश में नहीं लाया गया। पिंजौर, पेहवा, सतकुम्भा, खोकराकोट, गढ़ी, अस्थल बोहर, मोहनबाड़ी तथा गुराबड़ा ऐसे स्थान हैं, जहां पर प्रथम शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक की निर्मित मूर्तियां पाई गई हैं।

इस लघु शोध में, मैंने भारतीय मूर्तिकला का इतिहास एवं हरियाणा की मूर्तियां तथा मंदिरों के बारे में भी प्रकाश डाला है। कला के इतिहास में बिलासपुर (कपाल मोचन) की अनेक स्थलों के मंदिरों से खोजी गई मूर्तियों के अध्ययन को मैंने आवश्यक समझा ताकि पाठक वर्ग को धार्मिक मूर्तियों से अवगत कराया जा सके और उनकी मंदिरों, मूर्तियों और धर्म के प्रति आस्था बढ़ सके।

मैंने इस लघु शोध में बिलासपुर (कपाल मोचन) के प्राचीन मंदिरों की प्राचीन मूर्तियों की महत्वता को समझने और समझाने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत विषय मेरी रुचि व स्वभाव के अनुकूल है। मैंने अत्यधिक परिश्रम व मनोयोग से इस विषय का अध्ययन तथा विश्लेषण किया है। इस विषय को सरल व रोचक भाषा में संक्षिप्त रूप से समझाने का प्रयास किया है। इस लघु शोध के लिए सामग्री एकत्रित करना, उसको नियोजित करना मेरे लिए उत्साह का कार्य रहा है। मेरी प्रारंभिक कल्पना इसी से सुदृढ़ हुई है।

इस लघु शोध प्रबन्ध को मैंने पांच अध्यायों में विभाजित किया है :—

- ➔ प्रथम अध्याय में – कला का अर्थ, कला का उद्देश्य तथा भारतीय मूर्ति कला की परंपरा को बताया है।
- ➔ द्वितीय अध्याय में – कपाल मोचन का इतिहास, गुरु नानक देव जी, गुरु गोविंद सिंह जी की यात्रा तथा तीर्थ स्थलों का वर्गीकरण किया है।
- ➔ तृतीय अध्याय में – कपाल मोचन बिलासपुर के धार्मिक मंदिरों का अध्ययन किया है।
- ➔ चतुर्थ अध्याय में – कपाल मोचन बिलासपुर का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय दिया गया है।
- ➔ पंचम अध्याय में – कपाल मोचन की मूर्ति कला की विशेषताओं व चित्रों का कलात्मक विवरण के बारे में बताया गया है।

इस लघु शोध का प्रबंध के माध्यम से मैंने मूर्ति कला के महत्वता को समझने का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध को सावधानी पूर्वक करने की कोशिश की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि इस शोध प्रबंध में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उनके लिए मैं दोषी हूँ। इसलिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

शोधकर्त्री

शिल्पा

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उन सभी के प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उल्लेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकंडा के ललित कला विभाग की अध्यक्ष श्रीमती संतोष के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पूरे शोध कार्य के चलते मेरा मार्गदर्शन व सहयोग किया।

मैं डॉ० राम विरंजन विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र की धन्यवादी हूँ कि विषय को सुचारु पूर्वक चलाने में आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकंडा की सहायता की।

इसके साथ-साथ मैं अपने परिवारजनों एवं आस-पड़ोस में रहने वालों का भी हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई हूँ।

मैं अपने आदरणीय गुरु श्री महेश धीमान जी के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं को सुलझाया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं अपने पूर्व प्राचार्य महोदय आदरणीय डॉ० श्रीमती आरती त्रेहन का आभार प्रकट व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने ललित कला विषय में स्नात्तोत्तर कक्षाएं प्रारंभ कर हमारे चिरलंबित स्वपन को साकार करने का मौका प्रदान किया।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

शोधकर्त्री

शिल्पा

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आभार	
प्रथम अध्याय:	01 – 18
– कला का अर्थ	
– कला का उद्देश्य	
– भारतीय मूर्तिकला की परंपरा	
द्वितीय अध्याय :	19 – 24
– कपाल मोचन का इतिहास	
– गुरु नानक देव जी एवम् गुरु गोंविंद जी की यात्रा	
– कपाल मोचन के तीर्थ स्थलों का वर्गीकरण	
तृतीय अध्याय:	25 – 30
– कपाल मोचन (बिलासपुर) के धार्मिक मन्दिरों का अध्ययन	
चतुर्थ अध्याय:	31 – 33
– कपाल मोचन (बिलासपुर) का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय	
पंचम अध्याय :	34 – 55
– कपाल मोचन (बिलासपुर) की मूर्तिकला का संक्षिप्त परिचय	
– भित्ति चित्रण का वर्गीकरण	
– कला कृतियों का कलात्मक विवरण	
– उपसंहार	56 – 57
– संदर्भ ग्रंथ सूची	58 – 58
– चित्र संग्रह सूची	59 – 60
– चित्र सूची	61 – 90

प्रथम अध्याय

- कला का अर्थ
- कला का उद्देश्य
- भारतीय मूर्तिकला की परंपरा

कला का अर्थ

चित्रकला का इतिहास उतना ही पुराना कहा जा सकता है जितना कि मानव सभ्यता के विकास का इतिहास। सत्य तो यह है की चित्र बनाने की प्रवृत्ति सर्वदा से ही हमारे पूर्वजों में विद्यमान रही है। मनुष्य ने जिस समय प्रकृति की गोद में आंखें खोली, उस समय से ही उसने अपनी मूक भावनाओं को अपनी तूलिका द्वारा टेढ़ी-मेढ़ी रेखा कृतियों के माध्यम से गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अंकित कर अभिव्यक्त किया। अपना सांस्कृतिक विकास करने के लिए मानव ने जिन साधनों को अपनाया उसमें चित्रकला भी एक साधन थी।

भारतीय चित्रकला का उद्गम भी प्रागैतिहासिक काल से ही माना जाता है। समय के साथ-साथ ज्यों-ज्यों मानव ने विकास किया, भारत में यह कला भी अपने उत्कर्ष को प्राप्त करती रही तथा विश्व में उसकी एक विशिष्ट पहचान है।

➤ कला क्या है :-

कला एक सार्वभौमिक मानवीय क्रिया है जो हर युग, हर स्थान, हर समय में पाई जाती है, चाहे वह अभिव्यक्ति के रूप में हो, सम्प्रेषण के रूप में हो या मनोरंजन के रूप में। कला का मूल्य यद्यपि सार्वभौम है, परंतु इसकी जड़े उस समाज, उस संस्कृति में रहती हैं, जहां से वह उपजती है। किसी भी जीवित और जीवंत सभ्यता में कला उस सभ्यता के विकास और पूर्णता का अनिवार्य मूलभूत अंग है। कला को समाज और संस्कृति से कभी भी काटा नहीं जा सकता।

जब भी मानव में चेतना जागी, वह अपने आसपास के संसार के विषय में जागरूक हुआ। उसने जिज्ञासु दृष्टि चहुँ और डाली। उसने अपने अस्तित्व संसार के अस्तित्व को अर्थ देना चाहा। स्वयं को जानने, संसार को जानने की यह उत्कंठा उसकी प्राचीनतम असम्बद्ध कृतियों में स्पष्ट होती है और जानने और समझने की इस उत्कंठा ने संपूर्ण दर्शन और विज्ञान कला और संस्कृति और सभी कुछ जो मूल्यवान है, उसे जन्म दिया।

➤ समाज में कला :-

कला व्यक्तित्व की तात्कालिक व स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यह एक प्रकार से व्यक्तित्व व सामाजिक समायोजन की प्रक्रिया है। किसी भी संस्कृति में पाए जाने वाले सामाजिक मूल्यों, बाध्यताओं और निषेधों को कला के रूप में व्यक्त किया जाता है। साथ ही संस्कृति व्यक्ति के लिए जो चुनौती रखती है। वह भी कला के रूप में प्रकट होती है। आदि कवि वाल्मीकि का उदाहरण इसके लिए पर्याप्त है।

ऋषि नित्य की भांति स्नान के लिए जा रहे थे। रास्ते में उनके सामने एक ममतिक दृश्य आया। पेड़ पर बैठे प्रेम मग्न क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक आखेटक का शिकार होकर गिरा। उसकी साथिन के करुण विलाप से ऋषि का हृदय विचलित हो उठा। उनके मुख से अनायास ही काव्य फूट पड़ा – “मा निषाद प्रतिष्ठाम्.....”। यह संसार का प्रथम काव्य उद्गार था।

कला का दूसरा कार्य व्यक्ति और वातावरण के परस्पर के संबंधों में संतुलन लाना है। यदि कभी यह संतुलन न रहे तो उसे समाज का जीवन टूट जाता है। कला जीवन का अभिन्न अंग न रहकर अलग पड़ जाती है। इसका एक अच्छा उदाहरण औद्योगिक क्रांति के बाद का समाज है। इसमें तकनीकी प्रगति की बाढ़ आई और इस बाढ़ में ऐसी सामाजिक परिस्थितियां बनी कि व्यक्ति कला को भूल गया। अब कला न जीवन का अभिन्न अंग रही और न ही मानव की रुचि का केंद्र, न उसका लक्ष्य। ऐसा लगता है आधुनिक जीवन से कला एकदम कट गई है। जीवन का अनिवार्य अंग नहीं है।

कला समाज के हाथ में एक ऐसा ब्रह्मास्त्र है, जिसके द्वारा वह अपने सदस्यों व्यक्तियों को घड़ सकती है। उनके मूल्य, मनोभाव, विश्वास, इच्छाएं व आकांक्षाओं को रूप देती है, जिससे वे समाज में सुव्यवस्थित होकर रहे और संसार में शांति व सद्भाव ला सके।

➤ भारत में कला :-

भारत में कला और सौंदर्यशास्त्र धर्म और दर्शन की गहराइयों में से उपजे। इन्हें न कभी सांसारिक माना गया और न ही महत्वहीन, क्षणिक सुख का साधन, कला के भीतर जीवन के मूल तत्व निहित हैं, इसमें कल्पना, आदर्श, प्राचीन परंपराएं और सृजनशीलता छपी है।

भारतीय बाण्डमय में शब्द ‘कला’ का पहला प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। इसके बाद शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, अरण्यक और अथर्ववेद में भी शब्द ‘कला’ का प्रयोग है। यहां यह बात ध्यान देने की है कि यूनानियों की भांति ‘कला’ का उपयोग शिल्प के रूप में कभी नहीं पाया गया। भारतीय अवधारणा दर्शन के अधिक निकट रही, लौकिक के नहीं।

➤ भारतीय कला दर्शन की विशेषताएं :-

- भारत की कला और दर्शन दोनों संसार से परे, संसार के ऊपर हैं। कला दोनों निराकार को आकार देने, अनन्त को सीमा में बांधने की चेष्टा है।
- सारी भारतीय कला में ध्वनि लय और भीतरी संगीत है। ध्वनि के मूल सिद्धांत को सारी कलाओं में अपनाया गया है। सभी रंग, रेखाएं, सभी रूप लय लिए हुए हैं।

- कला अलौकिक है, अतः कला की रचना प्रक्रिया भी अभिवाही है। इसका अर्थ ये है कि कला मनन से उपजती है।
- क्योंकि कला का आस्वादन मनन क्रिया द्वारा होता है। अतः इसका आनंद आंखें बंद करके उठाया जाता है। दृश्यकला भी आंख बंद करके आनंद देती है।
- भारतीय कला रूप प्रतिनिधि नहीं और न ही ये किसी का चित्र है। इन रूपों चाहे मूर्ति हो, चित्र हो, वास्तव में कोई प्रतिरूप नहीं है, न ये शरीरशास्त्र के अनुरूप हैं। विदेशी आंखों को ये हास्यपद अजूबे लग सकते हैं।
- भारतीय कला रस प्रधान और भावों की संगति उत्पन्न करती है। भरतमुनि के अनुसार प्रत्येक रंग, रेखा ताल, ध्वनि, भाव से संबंधित है।
- अपनी स्वयं की क्रियाओं द्वारा पूर्णता प्राप्त करना आत्म विकास की ओर बढ़ना कला का उद्देश्य है। भारत की 90 प्रतिशत कला धर्म से अनुप्राणित है। धार्मिक विषयों पर आधारित है। ये प्राचीन कथाएं कभी पुरानी नहीं होती हैं। और सदा प्रेरणा का स्रोत बनी रहती हैं। जैसे कि श्री कृष्ण की बाल लीलाएं।
- भारत की कला परंपरा अति प्राचीन है। किंतु आज आधुनिक कला में भी वही परंपरा चलती है। यह धारा न सूखती है, न पुरानी पड़ती है। आज भी कला भारत में आत्म विश्वास के साधन के रूप में ली जाती है।

‘कला’ का शाब्दिक निरूपण :-

‘कला’ संस्कृत शब्द है। इसके उद्भव पर संस्कृत विद्वानों में मतभेद है। ये मत निम्न है :-

- ❖ शब्द ‘कला’, ‘ला’ धातु से लिया गया। ‘क’ जोडा, ला – देना, काम लाति इति कला, जो आनन्द देती है वही कला है।
- ❖ डॉ सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार भी कला का मान्य अर्थ है। ‘क’ आनन्द लाति इति कला। जो आनंद दे वही कला है। यह कला की सुखवादी परिभाषा है।

शिक्षा की दृष्टि से कला के दो वर्ग हैं :-

- व्यावसायिक कलाएं (Vocationals Art) रंगना, छापना, बढ़ई।
- उदार कलाएं (Liberal Arts) संगीत व्याकरण, तर्क शिक्षा आदि।

विलियम ने वात्स्यायन के कामसुत्र में दी 64 कलाओं को दो वर्गों में बांटा है :—

- बाह्य या प्रकट कलाएं :— चित्रकला, मूर्तिकला, बढ़ई, सुनार, भवन निर्माण आदि ।
- भीतरी या निजी :— जो व्यक्ति की अपनी हो जैसे — काम कला, श्रृंगार कला आदि ।

कला का उद्देश्य

इस विषयों में अनेकों मत हैं और उन में परस्पर अनेकों भेद हैं। ये मत—भेद समय और स्थान के साथ बदलते भी हैं। प्राचीन यूनानी विचारकों के अनुसार कला का उद्देश्य प्रकृति का अनुकरण करना था, जबकि भारतीय मत के अनुसार कला, परम आनंद की प्राप्ति का साधन है। किंतु कला का एकमात्र उद्देश्य जो हर समय, हर स्थान इंसान की कला का मूल है, वह है। सौंदर्य की रचना, जैसे कलाकार उसे देखता है। यह भी कहा जाता है कि कला का उद्देश्य जीवन को, मानवता को चित्रित करना है। यह जीवन जैसा है, वैसा भी हो सकता है और जैसा कलाकार उसे देखता है, वैसा भी।

एक मत के अनुसार कलाकार राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रीय भावनाएं व्यक्त करते हैं। ऐसे कलाकार अपने समय, अपने देश के जीवन का चित्रण करते हैं। पर इनमें से कुछ राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर सार्वभौम बन जाते हैं जैसे — पिकासो।

इस प्रकार के अनेकों उद्देश्य बताए गए, पर सबसे ऊपर एक ही उद्देश्य रहा “सौन्दर्य का सृजन” और इस प्रकार शाश्वत आनंद की प्राप्ति।

➤ कला का अर्थ :—

“मनुष्य की रचना, जो उसके जीवन में आनंद प्रदान करती है, कला कहलाती है”।

भारतीय कला ‘दर्शन’ हैं। शास्त्रों के अध्ययन से पता चलता है कि — कला शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है। कला शब्द यथार्थवादी प्रयोग भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में प्रथम शताब्दी में किया। अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसमें कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, जो कला न हो।

कला के संबंध में पाश्चात्य दृष्टिकोण में कुछ इसी प्रकार का हैं। अंग्रेजी भाषा में कला को ‘आर्ट’ कहा गया है। फ्रेंच में ‘आर्ट’ और लैटिन में ‘आटर्म’ और ‘आर्स’ से कला को व्यक्त किया गया है। इनके अर्थ वे ही हैं — जो संस्कृत भाषा में मूल धातु ‘अर’ के हैं। ‘अर’ का अर्थ है — बनाना, पैदा करना या रचना करना। यह शारीरिक और मानसिक कौशल ‘आर्ट’ माना गया हैं

➤ कला अध्ययन के स्रोत :—

कला अध्ययन के स्रोत का अभिप्राय उन साधनों से है जो प्राचीन काल के भारतीय इतिहास को जानने में सहायक हैं। भारतीय चित्रकला के अध्ययन स्रोत निम्न श्रेणियां में विभक्त किये जा सकते हैं :—

➤ ऐतिहासिक ग्रंथ :-

वर्तमान में कुछ ऐसे ग्रंथ प्राप्त हैं जिनमें प्राचीन समय की कला विषयक जानकारी मिलती है। राजा – महाराजाओं के राज्य काल में घटित घटनाओं का वर्णन भी इन ग्रंथों से मिलता है।

➤ शिलालेख :-

शिलाओं पर अंकित प्राचीन लेखों से कला, धर्म एवं वास्तु निर्माण के विषय में जानकारी होती है। बादामी, अजन्ता, बाघ आदि गुफाओं से शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें इनके निर्माण एवं कला शैलियों के विषय में जानकारी मिलती है। महाराज अशोक द्वारा खुदवाये अनेक धर्मलेख शिलाओं पर प्राप्त हैं।

➤ प्राचीन खंडहर :-

उत्खनन के पश्चात प्राचीन समय में ऐतिहासिक धार्मिक स्थल, स्मारक, मंदिर तथा भवनों से प्राप्त चित्रों तथा मूर्तियों के विषय से जानकारी मिलती है। अजन्ता, एलोरा, बादामी, सारनाथ आदि जगहों में खुदाई एवं सफाई के बाद ही कलाकृतियों के विषय में जानकारी मिली।

➤ मोहरें तथा मुद्राएं :-

प्राचीन काल में प्रचलित कला के विषय में मोहरें तथा मुद्राओं से जानकारी मिली है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त मोहरों पर अंकित पशु आकृतियों से उस समय की उन्नत मूर्तिकला का अनुमान लगाया जा सकता है।

➤ यात्रियों के वृतांत :-

भारत में समय-समय पर अनेक विदेशी यात्रियों ने भारत की यात्रा की तथा उन्होंने यहां की कलाकृतियों का अवलोकन कर उनके विषय में विवरण लिखे। उदाहरण के लिए चंद्रगुप्त मौर्य के समय की कलाकृतियों का वृतांत विदेशी यात्री “मेगस्थनीज” ने दिया है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय का वृतांत “फाह्यान” ने लिखा है।

➤ बादशाहों द्वारा लिखी आत्मकथाएं :-

मुगल बादशाहों द्वारा लिखित आत्मकथाओं से उस समय में प्रचलित कला कलाकार, स्थापत्य एवं कलाकृतियों के विषय में जानकारी मिलती है। बाबर द्वारा लिखित 'वाक्यात-ए-बाबरी' जहांगीर द्वारा लिखित 'तुजुक-ए-जहांगीरी' और अबुल फजल द्वारा लिखी 'आईन-ए-अकबरी' के द्वारा चित्रकला संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

उपरोक्त स्रोतों के आधार पर भी भारतीय चित्रकला के विषय में जानकारी एकत्र की गई है। साथ ही प्रत्यक्ष में प्राप्त एवं संरक्षित कलाकृतियों के विषय में जानकारी लेकर उसे आगामी पृष्ठों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

➤ कला के प्रकार :-

कला के कई प्रकार होते हैं और इन प्रकारों का परिगणन भिन्न-भिन्न रीतियों से होता है।

1. मोटे तौर पर जिस वस्तु, रूप अथवा तत्व का निर्माण किया जाता है। उसी के नाम पर इस कला का प्रकार कहलाता है जैसे -

- वास्तुकला या स्थापत्य कला - अर्थात् भवन - निर्माण कला, जैसे - दुर्ग, प्रसाद, मंदिर, स्तूप, चैत्य, मकबरा आदि
- मूर्ति कला - पत्थर या धातु की छोटी बड़ी मूर्तियाँ।
- चित्रकला - भवन की भित्तियों, छतों या स्तंभों पर अथवा वस्त्र, भोजपत्र या कागज पर अंकित चित्र।
- मृदभाण्डकला - मिट्टी के बर्तन।
- मुद्राकला - सिक्के या मोहरे।

2. कभी-कभी जिस पदार्थ से कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है। उस पदार्थ के नाम पर उस कला का प्रकार भी जाना जाता है जैसे -

- प्रस्तर कला - पत्थर से गढ़ी हुई आकृतियाँ।
- धातुकला - काँसे, ताँबे अथवा पीतल से बनाई गई मूर्तियाँ।
- दंतकला - हाथी के दांत से निर्मित कलाकृतियाँ।
- मृत्तिका कला - मिट्टी से निर्मित कलाकृतियाँ या खिलौने।

- चित्रकला – ऊपर कहे गये सामान ।

3. मूर्ति कला भी अपनी निर्माण शैली के आधार पर प्रायः दो प्रकार की होती है ।

- मूर्तिकला – जिसमें चारों ओर तराशकर मूर्ति का रूप दिया जाता है । ऐसी मूर्ति का अवलोकन आगे से पीछे से तथा चारों ओर से किया जा सकता है ।

➤ उत्कीर्ण कला अथवा भास्करीय कला :-

जिसमें पत्थर, चट्टान, धातु अथवा काष्ठ के फलक पर उकेर कर रूपांकन किया जाता है । इस चपटे फलक का पृष्ठ भाग सपाट रहता है या फिर इसे दोनों ओर से उकेर कर दो अलग-अलग मूर्ति फलक बना दिए जाते हैं । किसी भवन या मंदिर की दीवार, स्तंभ अथवा भीतरी छत पर उत्कीर्ण मूर्तियों का केवल अग्रभाग ही भाग ही दिखाई देता है । यद्यपि गहराई से उकेरकर उन्हें जीवन्त बना दिया जाता है । सिक्कों की आकृतियों भी इसी कोटि की होती हैं, चूँकि इसमें आधी आकृति बनाई जाती है । संभवतः इसलिए इसे अर्द्धचित्र भी कहा जाता है । ये अर्द्धचित्र भी दो शैलियों में निर्मित होते हैं :-

1. हाई रिलीफ (High - Relief)
2. लो रिलीफ (Low - relief)

→ हाई रिलीफ :-

इसमें गहराई से तराशा जाता है ताकि आकृतियों में अधिक उभार आए और जीवन्त हो सकें ।

→ लो रिलीफ :-

इसमें हल्का तराशा जाता है । इसलिये आकृतियों में चपटापन सा रहता है ।

➤ कला की विशेषताएं :- कला की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :-

1. कला एक क्रिया है ।
2. कला एक तकनीक है ।
3. कला एक प्रकार का शिल्प है ।
4. कला एक प्रकार का कौशल है ।

5. कला एक अनुकृति है।
6. कला एक कल्पना है।
7. कला एक ज्ञान के रूप में है।
8. कला एक अभिव्यक्ति है।
9. कला एक प्रकार का खेल (क्रीड़ा) है।

1. कला एक क्रिया है :-

कला एक क्रिया है। जिस प्रकार प्रकृति प्रति क्षण विभिन्न क्रियाएं करती है। जैसे— चंद्रमा का घटना—बढ़ाना, फूलों का खिलना, सूर्य का निकलना, बादलों का बरसाना, बिजली का चमकना आदि। इसी प्रकार से मानव भी अनेक क्रियाएं करता है जिनमें से कुछ विशेष कार्य कुशलता पूर्वक दूसरों को आकर्षित करने के लिए करते हैं। तथा कला एक व्यापक शब्द है, जिसका प्रयोग प्रकृति तथा मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में होता है।

2. कला एक तकनीक है :-

कोई भी कलाकृति (चाहे वह चित्र हो, मूर्ति हो या कविता) के निर्माण के लिए प्रयुक्त मात्रा में सामग्री के प्रयोग की तकनीक को समझना अनिवार्य है। तथा बिना तकनीक को समझे उस कलाकृति का निर्माण नहीं किया जा सकता। जितना हमें सामग्री की तकनीक का ज्ञान होगा, उतनी ही कुशलता से हम उसका प्रयोग कर सकते हैं।

3. कला एक प्रकार का शिल्प है :-

किसी सामग्री को काट—छांटकर जब कोई रूप दिया जाता है, उसे शिल्प कहते हैं। इस प्रकार वह चाहे मूर्तिकला हो या वस्तु शिल्प, धातु शिल्प हो या वस्त्र शिल्प अथवा प्लास्टिक आर्ट सभी शिल्प की श्रेणी में ही आते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि “प्रत्येक प्रकार की कला के लिए किसी न किसी सामग्री को काट—छांटकर या तरास कर ही उसे कलाकृति का रूप दिया जा सकता है”। कलाकृति निर्माण हेतु उसके लिए उपयुक्त सामग्री को काटने—छांटने या तरासने की क्रिया एवं उसकी कुशलता अनिवार्य है।

4. कला एक प्रकार का कौशल है :-

यह सर्वविदित है कि कोई भी कृति तभी कलाकृति कही जा सकती है जब वह विशेष कौशल द्वारा तैयार की गई हो तथा उसमें छन्द लयात्मक व्यवस्था हो।

कलाकार का कौशल उसे कहा जाता है जिसमें कलाकार क्रिया, शिल्प एवं तकनीक के अतिरिक्त कृति को आकर्षित बनाने के लिए अपने मानसिक चिंतन प्रक्रिया के द्वारा नवीनता लाने के लिए अनेक युक्तियां खोजता है।

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि “कलाकृति को प्रभावशाली नवीन एवं आकर्षक बनाने हेतु मानसिक, चिंतन—मनन एक अनिवार्य प्रक्रिया है”।

5. कला एक अनुकृति है :—

अनुकृति का अर्थ है— सादृश्य। यह वास्तविकता है कि कला अनुकृति मूलक है। कलाकृति की श्रेष्ठता को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि “किसी कलाकृति की श्रेष्ठता इस प्रकार निर्भर करती है कि मूलकृति चाहे वह ईश्वरीय हो या मानव रचित उससे कला का कितना समय है” सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने कहा है —“कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है”।

6. कला एक कल्पना है :—

बुद्ध घोष के अनुसार “संसार भर की जितनी कलाकृतियाँ हैं, सब कल्पना की उपज हैं”। प्लेटो भी यही मानते हैं। उनके अनुसार कलाकृति में दैवीय प्रेरणा की ही भूमिका होती है। कलाकार अनेक ऐसे काल्पनिक चित्रों या मूर्तियों का निर्माण करता है जिनका अस्तित्व ही संसार में नहीं होता। देवता, ईश्वरीय अवतार, राक्षस, स्वर्ग ये सब कल्पना ही तो है। यूरोपीय विद्वान भी यह मानते हैं कि कलाकार नवीन कलाकृतियों का सृजन करके अपनी कल्पना को संतुष्ट करता है।

लेकिन महान चित्रकार “लियोनार्दो दा विन्ची” (सबसे चर्चित कृति मोनालिसा) का विचार था कि कलाकार संसार के अनुभव के आधार पर ही कलाकृतियाँ बनता है। पर वह सृष्टि नहीं करता, केवल पुनः सृष्टि मात्र करता है। वह इसी संसार से सामग्री लेता है जो ईश्वर द्वारा निर्मित है।

7. कला एक ज्ञान के रूप में है :—

ज्ञान एक विशिष्ट मानसिक प्रक्रिया की वास्तविक है। प्राचीन भारतीय भाषाओं में 64 कलाओं का वर्णन किया गया है। उच्चतम ज्ञान से भी भिन्न इन कलाओं के ज्ञान की प्रक्रिया को माना गया है। ज्ञान के अभाव में तकनीकी का प्रयोग भी असंभव है। मन और मस्तिष्क जब किसी भी तकनीकी, वस्तु, घटना, क्रिया आदि को पूर्ण विश्लेषित कर सत्य मान लेता है तभी इन क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

8. कला एक अभिव्यक्ति है :-

विद्वानों का मानना है कि कला एक प्रकार की भावपूर्ण भाषा है जो किसी विशेष मानसिक स्थिति को जगाने में सफल होती है। 'लियोनार्दो दा विन्सी' का कथन है कि कलाकार जिन आकृतियों की रचना करता है वे उसके आंतरिक भागों पर आधारित होती हैं। इसका स्पष्ट यह हुआ कि कला के रूपों में कलाकार के मन के भावों की अभिव्यक्ति होती है।

जिस प्रकार हम भाषा को माध्यम बनाकर अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाते हैं, उसी प्रकार कलाकृति के द्वारा भी कलाकार अपने मन के विचारों को सम्प्रेषित करता है। कला को कुछ विद्वानों ने सामाजिक स्वप्न कहा है।

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि "कला चाहे काल्पनिक हो या वास्तविक वस्तु को सदृश्य, उसके पीछे कलाकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति ही मूल भूमिका का निर्वाह करती है"।

9. कला एक प्रकार का खेल (क्रीड़ा) है :-

कई विद्वानों ने कला को क्रीड़ा की संज्ञा दी है। इस संदर्भ में हर्बर्ट रीड कहते हैं कि "जब हमारी अनेक इच्छाएँ, अनुभूतियाँ, विचार और संवेदनाएँ तत्काल अभिव्यक्ति नहीं हो पाती तो तनाव उत्पन्न होता है। खेल ही इस तनाव से मुक्त होने का अवसर प्रदान करता है"।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि "कलाकार अपनी संवेदनाओं एवं तनावों को दूर करने के लिए भी कला को माध्यम बनाता है और कला ही उसे स्वस्थ, मानसिक जगत की तरफ ले जाती है"।

निष्कर्ष — कला ही उपर्युक्त विशेषताओं से अवगत होने के उपरांत हम कह सकते हैं कि कला एक बहुत ही संश्लिष्ट और विश्लेषित प्रस्तुति है। जिसके लिए तकनीकी की जानकारी एवं उसको हदभाग करने हेतु सृष्टि में उपलब्ध वस्तुओं की अभिव्यक्ति कल्पनाशीलता, सौन्दर्यबोध, चिंतन, नवीनता एवं कलाकार के आन्तरिक विचारों की अभिव्यक्ति आवश्यक है। व्यक्ति में स्वयं का व्यक्तित्व इस कार्य में बहुत बड़ी भूमिका का निर्वहन करता है। तथा कला समाज के उन्नयन हेतु एक उपयोगी एवं सशक्त माध्यम है। कला हमारे चारों ओर के वातावरण और वस्तुओं को प्रभावित करती है।

भारतीय मूर्ति कला की परंपरा

मूर्ति कला दृश्यकला की वह शाखा है जिसमें तीन आयामों में काम किया जाता है। मूर्तिकला को भौतिक रूप से ऊंचाई, चौड़ाई और गहराई के आयाम में प्रस्तुत किया जाता है। मूर्तियाँ पत्थर, मिट्टी, प्लास्टर, सीमेंट, लाख, मॉम, बालुका, शिल्प आदि से बनाई जाती हैं।

➤ भारतीय मूर्ति कला की परंपरा :-

- सिंधु घाटी सभ्यता में छोटी टेरा-कोटा मूर्तियाँ का उत्पादन किया गया था।
- मौर्य काल में गोलाकार पत्थर के खंभे और नक्काशीदार शेर बने।
- अमरावती मूर्तिकला में बुद्ध के जीवन की घटनाओं और पूर्वजन्म की कथाओं का चित्रण है।
- सांची स्तूप की मूर्ति कला बहुत भव्य है।
- माम्लापुरम का मंदिर, एलोरा के मंदिर और जैन शैल मंदिर और एलीफेंटा गुफाएं भी मूर्तिकला के बेहतरीन उदाहरण हैं।

➤ भारत में मूर्तिकला की शुरुआत कब हुई थी :-

भारत में मूर्तिकला की शुरुआत सिंधु घाटी सभ्यता के समय से हुई थी। यह सभ्यता करीब 2500 से 1800 ईसा पूर्व की है। इस दौरान छोटी टेराकोटा मूर्तियों का निर्माण किया गया।

मूर्तिकला का वैभव अन्य कलाओं के समान ही भारतीय मूर्तिकला भी अत्यंत प्राचीन है। परंतु भारत में मूर्ति कला अपने वास्तविक रूप में हड़प्पा सभ्यता के दौरान ही अस्तित्व में आई। भारतीय मूर्तिशिल्प का इतिहास दो हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। इस दौरान इसमें भी अनेक परिवर्तन आए। अधिक शैलियां बदली, साथ ही कला के प्रति रुचियाँ भी बदली, रीतियों नीतियों में भी उनके अनेक परिवर्तन हुए।

दरअसल मूर्तिकला का इतिहास इन्हीं युग-युगान्तरों में कला की शैलियों और रीतियां – नीतियों व रुचियों में आए परिवर्तनों का ही इतिहास है। किसी युग में उसी को अत्यंत अलंकरण पूर्ण तरीके से बनाना फैशन हो गया तो कहीं पर अंगों को सुंदर बारीकी से तराशा गया। इसी को भिन्न-भिन्न युगों में कला की भिन्न-भिन्न शैलियों के नाम से जाना गया। भारतीय मूर्तिकला का संपूर्ण इतिहास इन्हीं निरंतर परिवर्तित होती गई शैलियों के परिवर्तन का ही इतिहास है, जो अत्यंत रोचक व विविधतापूर्ण रहा है।

➤ भारतीय धर्म और दर्शन :-

भारत में धर्मों की विविधता है। किन्तु किसी ने कला सौंदर्य संबंधी प्रश्न नहीं उठाए। धर्म ने कला का भरपूर उपयोग किया। मंदिर, मठ, स्तूपों का वास्तु शिल्प, मूर्तिकला, साज सज्जा सभी में कला का उपयोग हुआ। नृत्य – संगीत मंदिरों में पूजा का रूप है। धर्म का दृष्टिकोण कलाओं के प्रति यद्यपि उदासीन ही रहा। पर कला में योगदान दिया और पौराणिक कथाओं आदि से सामग्री ली भी। धर्म कला की अवधारणाओं को बनाने का आधार रहा और उन्हें उदार-उदात्त स्वरूप दिया।

भारतीय दर्शन भी कला संबंधी समस्याओं के प्रति उदासीन रहा। ये आत्मा – परमात्मा आदि के विमर्श में डूबे माया व सांसारिकता को बाधा ही मानते रहे। धर्म और दर्शन अनाशक्ति का उपदेश देते हैं। जबकि कला के लिए लिप्तता या आशक्ति अनिवार्य है। दर्शन अमूर्त पारलौकिक समस्याओं से जूझता है, पर कला मूर्त और लौकिक है।

प्रकृति की रूप संपदा, प्रकृति में रुचि रखने के कारण ये कला के निकट आते हैं। ये रसानुभूति कलानुभूति नाद ब्रह्मा आदि की व्याख्या करते हैं। दर्शन कला की कई अवधारणाओं का मूल स्रोत है। भारतीय कला वास्तव में दर्शन से उपजी और दर्शन से ही जुड़ी रही है।

➤ सिंधु घाटी सभ्यता की कला :-

ईसा से प्रायः 2700 ईसवी पूर्व से लेकर 1700 ईसवी पूर्व के समय में सिंधु घाटी में अत्यंत उन्नत एवं समृद्ध सभ्यता का विकास हुआ। इस विस्तृत घाटी में हड़प्पा व मोहनजोदड़ो दो प्रमुख नगर थे। घाटी के इन नगरों में अन्य ठिकानों पर पली सभ्यता को सिंधु घाटी की सभ्यता कहते हैं।

➤ मोहनजोदड़ो से प्राप्त मूर्तियाँ :-

सिंधु घाटी से कुछ रोचक मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनमें त्रिफुलियाँ अलंकरण वाले उत्तरीय को ओढ़े हुये एक दाढ़ी वाले योगी की सुंदर मूर्ति है, जिसके नेत्र समाधि अवस्था में नाक के अग्रभाग की ओर ध्यानस्थ है। एक अन्य पुजारी की मूर्ति जिसका सिर भारी, जबड़े चौड़े, होंठ भट्टे व तश्तरीनुमा कान है।

इसके अलावा एक बैठी हुई सिर रहित मूर्ति है। ये मूर्तियाँ पत्थर की बनी हैं। हड़प्पा से प्राप्त लाल पत्थर की बनी एक पुरुष के धड़ की मूर्ति है तथा यह प्रतिमा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है।

➤ मृण्मूर्तियां :-

यहीं से प्राप्त अनेक 'मृण्मूर्तियां' भी हैं, जिनमें मुख्य प्रफुल्लित व भयानक दिखाये गये हैं तथा इसके अलावा एक मातृदेवी की मृण्मूर्ति भी मिली है। शायद ये मूर्तियां धार्मिक कार्यों के लिए प्रयोग में आती हैं। इसके अतिरिक्त हाथी, घोड़ा, सुअर, सिलाई पर चलने वाले बंदर, सीटी वाली चिड़ियाँ आदि हैं। ये मूर्तियां आकर्षक हैं।

➤ ताम्र मूर्तियाँ :-

मोहनजोदड़ो से प्राप्त ताम्र की 'दो तंवगी' एवं काँस्य की युवती नर्तकी प्राप्त हुई है। इनमें से एक युवती प्रतिमा के लम्बे हाथ तथा पैर अनूप अनुपातरहित हैं। इसमें बायीं भुजा में वह युवती कोहनी तक के मोटे कड़े पहने हैं। वह दाहिना हाथ कमर पर टिका है और बायाँ पैर ताल देने की मुद्रा में मुड़ा हुआ है। इसके अलावा दो नग्न मूर्ति के धड़ मिले हैं। पहला धड़ खड़े किसी व्यक्ति का है और दूसरा किसी युवती का है।

➤ बर्तन – भांडे :-

मोहनजोदड़ो व हड़प्पा से प्राप्त मिट्टी के बने बर्तन भांडो में नुकीली किनारी के गिलास, कटोरियाँ, बोटल, छिद्र करने वाले बर्तन बड़े तथा छोटे अच्छे चिकनी मिट्टी के मिलते हैं। ये बर्तन लाल रंग करके पकाये जाते हैं तथा चाक पर बनाए जाते हैं और कांच की चमक चढ़ाने की प्रक्रिया का प्रचलन सबसे पहले सिंधु घाटी से ही मिलता है।

➤ मुद्राएँ एवं मोहरे :-

मोहनजोदड़ो में केवल तीन मिट्टी की मोहरे मिली हैं, जिनमें मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर शिव पशुपति के रूप में पशुओं के साथ बनाया गया है। इस मुहर में सींगादार मुकुट पहने चित्रकारी शिव एक योगी के समान सिंहासन पर बैठे हैं। उनके चारों ओर पशु हैं, जिनमें हाथी और चीता दाहिनी ओर भैंस तथा सींग वाला हिरण सिंहासन के बीच खड़ा है।

➤ मूर्ति कला की खास कारण या बातें :-

- मूर्तिकला, रचनात्मकता और सांस्कृतिक कल्पना से प्रेरित होकर बनाई जाती है।
- मूर्तिकला, नक्काशी, मॉडलिंग या कास्टिंग द्वारा बनाई जाती है।

- मूर्तिकला, मूल रूप से धार्मिक विचारों को दर्शाती है।
- मूर्तिकला का इस्तेमाल अक्सर वास्तुकला के साथ किया जाता था।

➤ मूर्तिकला के प्रकार :-

मूर्तियाँ पत्थर, धातु, चीनी मिट्टी और लकड़ी जैसी सामग्रियों से बनी तीन आयामी कलाकृतियाँ हैं। मूर्तिकार कलाकृतियों के निर्माण के लिए कई तरह के तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। जिसमें नक्काशी, निर्माण मॉडलिंग और ढलाई शामिल है। अतः मूर्तिकला को दृश्यकला का एक उदाहरण माना जाता है। जिसमें किसी भी धातु सोना, चांदी, तांबा, कांसा, पीतल अथवा कांच, कड़े, मुलायम पत्थर, कच्ची व पकाई मिट्टी से उसके स्वभाव के अनुसार गढ़कर, खोदकर, पीटकर हाथ से अथवा औजार से ठप्पा या सांच छाप कर बनाई गई आकृति को “मूर्ति” कहते हैं।

➤ मूर्ति कला के जनक :-

रामकिंकर को मूर्तिकला का जनक माना जाता है, तथा रामकिंकर बैज ने कंक्रीट, मिट्टी, प्लास्टर ऑफ पेरिस तथा सीमेंट अन्य उपलब्ध संसाधनों से आकर्षक मूर्तियाँ तैयार की तथा साल 1906 में जन्मे बैज की मूर्तिकला के देखते हुए ही उन्हें भारतीय आधुनिक मूर्तिकला का जनक कहा जाता है।

मूर्तिकला के नौ तत्व प्राथमिक और सहायक तत्व हैं। स्थान, रंग, समतल, रूप, बनावट, रेखा, आकार, गति और मुल्य।

भारतीय कला की प्रवृत्ति मध्यकालीन यूरोप की कला से एकदम विपरीत है। देवता एवं उपदेवता एक समान युवा सुंदर हैं। उनके शरीर गोल कंटील हैं, जो प्रायः कतानुसार नारीवत प्रतीत होते हैं तथा कभी-कभी वे क्रोध एवं क्रूर रूप से चित्रित किए जाते हैं। परंतु सामान्य रूप से मुस्कुराते हैं। तथा उनमें दुख का चित्रण बहुत ही कम किया जाता है।

भारत एक मूर्तिजनक देश है। इस देश के निवासी पूजा की अनेक विधियाँ अपनाते हैं, जिनमें से एक रूप है – “मूर्तिपूजा”, परंतु मूर्ति निर्माण का उद्देश्य मूर्ति को पूजा में रखना ही नहीं वरन इससे कहीं अधिक व्यापक है। मूर्ति निर्माण के उद्देश्य निम्न प्रकार के हैं:-

1. स्मृति को सुरक्षित करना।
2. अमूर्त को मूर्त रूप देना।
3. किसी भाव को आकार देना।

मूर्तियों की गणना इतिहास के अच्छे साधनों में होती हैं। इसे तत्कालीन समाज के स्तर का और धर्म आर्थिक दशा आदि का ज्ञान होता है। हरियाणा से प्राप्त मूर्तियां धार्मिक संप्रदायों, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि से संबंध है। कुछ गैर धार्मिक मूर्तियां भी यहां से मिली हैं। दोनों ही प्रकार की मूर्तियां दुसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व से 10वीं – 11वीं शताब्दी तक की है।

➤ प्रस्तर मूर्तियां :-

प्राचीन काल की बहुत सी प्रस्तर प्रतिमाएं मिलती हैं। इससे उस काल की शिल्प कला पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सबसे पुरानी जो प्रतिमाएं यहां मिली हैं, वे यक्ष और यक्षणियों की हैं। ये मूर्तियां पुराने समय में काफी लोकप्रिय थी। ऐसा प्रतीत होता है, इन्हें तालाबों कुओं आदि के किनारे पर रखा जाता था। यह मान्यता थी कि ये अपने आराधकों की रक्षक होती हैं। हरियाणा से प्राप्त प्रस्तर मूर्तियां ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध धर्म से संबंधित हैं। प्रारंभिक इतिहासकालीन मूर्तियां में उल्लेखनीय है। पलवल से प्राप्त ईसवी पूर्व प्रथम, द्वितीय शती की यक्ष मूर्ति तथा खोखराकाटे से प्राप्त एक अन्य यक्ष मूर्ति जो गुप्तकाल से पूर्व की है। ये मूर्तियां लाल पत्थर से बनी है और इन मूर्तियों की घड़ावट अच्छी नहीं है। पर थोड़े समय बाद ये अच्छी बनी हुई है। इस प्रदेश से प्राप्त ब्राह्मण मूर्तियों में सम्मिलित हैं— शिव, शक्ति, गणेश, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य और इंद्र की मूर्तियां, गणपति की मूर्तियां सिरसा और कलारत से मिली है।

अमीन के एक प्रस्तर फलक पर गणपति को चार भुजाओं के साथ दिखाया गया है। उनके बाईं और शिव और पार्वती को दिखाया गया है। थानेसर के एक सूर्य स्तंभ पर भी अनेक मूर्तियां बनी है। थानेसर की इस मूर्ति पर की गई चित्रकारी में मूर्तिकार ने बड़े ध्यान से अपनी कला का प्रदर्शन किया है। यहां सांची की कला के दर्शन होते हैं। गुर्जरखेड़ी से प्राप्त मूर्ति में शिव को अपनी अर्धांगिनी पार्वती के साथ दर्शाया गया है। यह मूर्ति अब राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है तथा इसके पश्चात कृषाण काल की देवी देवताओं की प्रतिमाएं मिली हैं। इनमें कुछ कुछ प्रतिमाएं अत्यधिक मनभावनी हैं। और इन पर मथुरा कला का असर साफ दिखाई देता है।

ये भी लाल पत्थर की है। ये मूर्तियां कला की दृष्टि से बहुत ऊंचे नहीं जाती, हाँ, थोड़े समय बाद रोहतक के कलाकारों ने कुछ उच्चता प्राप्त की लगती है। ये महात्मा बुद्ध के सिर को प्रदर्शित करती हैं। ये गुड़गांव, रोहतक, मोहनवाड़ी और कुरुक्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। महात्मा बुद्ध की दो पूरी मूर्तियां भी मिली है, एक ब्राह्मणवास से और दूसरी भिवानी से। इन सब प्रतिमाओं पर मथुरा कला का काफी प्रभाव है और ये अत्यंत सुंदर हैं।

कुछ प्रतिमाएं गैर धार्मिक भी हैं। ये भी अधिकतर ऊपर उल्लिखित जगह से प्राप्त हुई हैं। इनमें से कोई किसी आभूषण से सजी नारी के सिर का प्रतिनिधित्व करती है, तो कोई शराब में धुत किसी स्त्री का कोई फूल तोड़ती नारी की है तो, कोई नाचती हुई नर्तकी की, ये सब प्रतिमाएं सुंदर हैं। कला के अच्छे नमूने हैं। किंतु इससे भी अत्यधिक सजीला युग कला की दृष्टि से गुप्त युग है। इस युग की मूर्तियां अत्यधिक सुंदर और बेहतरीन हैं। यहां प्रकृतिवाद पर जोर है। ऐसी ही एक शिव की लाल पत्थर की प्रतिमा है जो कि गुड़गांव जिले के हरनौल गांव से मिली है।

इस प्रकार की बहुत सी मिट्टी की मूर्तियां भी हैं, जो इस काल की मूर्ति कला के अच्छे नमूने हैं। गुप्तकालीन कला का प्रभाव काफी समय तक कायम रहा। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया गुप्तयुगीन मौलिकता पूर्णतया लुप्त होने लगी। दो शिव की मूर्तियां जो कि बरवाला और औरंगाबाद से मिली हैं। इस बात की पुष्टि करती हैं। इन मूर्तियों में पुराने भाव तथा सुंदरता का अभाव है तथा इसी काल में मिली विष्णु की मूर्ति सोनीपत से लेटे विष्णु की मूर्ति भी इसी बात की पुष्टि करती है।

दसवीं शती की स्थिति में पुनः बदलाव आया। इस युग में कई कलाकार सामंतों का संरक्षण प्रकार रोजी-रोटी की तलाश में मुक्त होने के कारण कुछ अच्छा काम करने में सफल हुए। उस काल की मूर्तियां इस सत्य को उद्घोषित करती हैं, तथा प्रतिहरों के समय की मूर्तियां काफी सुंदर, सजीव तथा कलायुक्त हैं। तथा बाद की मूर्तियां लगभग सारे हरियाणा से प्राप्त हुई हैं।

द्वितीय अध्याय

- कपाल मोचन का इतिहास
- गुरु नानक देव जी एवम् गुरु गोंविद जी की यात्रा
- कपाल मोचन के तीर्थ स्थलों का वर्गीकरण

कपाल मोचन का इतिहास

बिलासपुर एक प्राचीन नगर है, जहां पर अनेक धार्मिक स्थल हैं। जिनकी अपनी-अपनी मान्यता है और यहां पर अनेक लोग दूर-दूर से तीर्थ के लिए आते हैं।

➤ कपाल मोचन का इतिहास :-

कपाल मोचन को गोपाल मोचन के नाम से जाना जाता है। यह जगाधरी शहर से लगभग 17 किलोमीटर उत्तर – पूर्व में है। यह हिंदुओं और सिख दोनों के लिए तीर्थ यात्रा का एक प्राचीन स्थान है। इसका महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि इसका नाम महाभारत और पुराणों में कई जगहों पर प्रकट होता है। कपाल मोचन को तीन पौराणिक संसारों में प्रसिद्ध माना जाता है।

- यह सभी पापों का नाश करने वाला है।
- पवित्र तीर्थ में डुबकी लगाकर भक्तों ने पापों से छुटकारा पा लिया जाता है।
- कपाल मोचन सरस्वती नदी के किनारे एक प्राकृतिक खोखला है।

1679 ईस्वी में भंगनी की लड़ाई के बाद पोंटासाहिब के रास्ते पर गुरु गोविंद सिंह ने भी इस जगह का दौरा किया था तथा वह 52 दिन तक वहां रुके तथा पूजा करते रहे। तथा उनके सैनिक अपने हथियार साफ करते थे। और वह भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए उन्हें तैयार करते थे तथा उन्हें कपालमोचन के मुख्या पुजारी को स्मृति चिन्ह के रूप में अपने हस्ताक्षर की तांबे की थाली दी।

द्रौपती और पांच पांडवों ने भी इस पवित्र स्थान का दौरा किया। यह कुरुक्षेत्र और ढोसी की पहाड़ी की 48 कोस परिक्रमा के साथ हरियाणा के सबसे प्राचीन वैदिक धार्मिक स्थलों में से एक है।

➤ कपाल क्यों आवश्यक है :-

सनातन धर्म में यह मानता है कि कपाल क्रिया की, क्रिया के बाद किसी मानव देह को मोक्ष परलोक और पुनर्जन्म की प्राप्ति होती है। कपाल क्रिया के दौरान जब मृत व्यक्ति का अंतिम संस्कार किया जाता है, तो इस दौरान सबसे ज्यादा घी शव के मुंह पर डालकर मुखाग्नि दी जाती है तथा कपाल का मुख्य कार्य मस्तिष्क की रक्षा करना है।

➤ किदवंती के अनुसार :-

ब्रह्मणहत्या यानि जो ब्राह्मण को मारता है और यहां स्नान करता है, तो उसके ब्रह्मणहत्या के पाप धुल जाते हैं। यमुनानगर जिले में बिलासपुर हरियाणा (बिलासपुर हिमाचल प्रदेश से भ्रमित नहीं होना चाहिए) जो "व्यास पुरी" के भ्रष्ट रूप से अपना नाम लेता है। वेदव्यास ऋषि का आश्रम था, जहां उन्होंने आदि बट्टी के पास सरस्वती नदी के तट पर महाभारत लिखी थी। जहां सरस्वती नदी हिमालय को छोड़कर मैदानों में प्रवेश करती है।

➤ शिव का दर्शन :-

ब्रह्मा जी का वध करने के बाद शिव भी इस ज्ञान पर आए थे।

➤ रामा का दौरा :-

स्थानीय के किंवदन्ती के अनुसार त्रेता युग में राम रावण (अपने पिता की ओर से एक ब्राह्मण) को मारने के बाद अपने पुष्पक विमान से यहां आए थे। उसे दिन से इस तालाब को सूर्य कुंड कहा जाता है।

➤ कपाल मोचन मेला प्रसिद्ध ऐतिहासिक और धार्मिक :-

कपाल मोचन मेला का आयोजन बिलासपुर में कार्तिक पूर्णिमा की पूर्व संध्या पर होता है। उस दिन लगभग 10 लाख तीर्थयात्रियों की पवित्र श्रोताओं पर पवित्र डुबकी लगाई जाती है।

➤ कपाल मोचन क्यों प्रसिद्ध है :-

यह हिंदुओं और सिखों दोनों के लिए एक प्राचीन तीर्थ स्थल है। इसका महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि – इसका नाम महाभारत में कई स्थानों पर आता है। पुराणों में कपाल मोचन को तीनों पौराणिक लोकों में प्रसिद्ध बताया गया है। यह सभी पापों का नाश करने वाला है।

गुरु नानक देव जी एवं गुरु गोविंद सिंह जी की यात्रा

➤ गुरु नानक देव जी की यात्रा :—

गुरु नानक देव जी 1584 में अपनी एक उदासी के दौरान यहां रुके थे और सूतक की प्रथा (एक नवजात शिशु के अशुद्ध पैदा होने की अवधारणा) पर विवाद करते हुए एक बड़ी सभा को संबोधित किया था। श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार सूतक मन पर तब होता है, जब वह विकारों में उलझा होता है। आदि ग्रंथ में कहा गया है और पढ़ें यह एक अच्छा विकल्प है। एक गुरुद्वारा साहिब स्थित है, जो उनकी यात्रा का स्मरण करता है।

➤ गुरु गोविंद सिंह जी की यात्रा :—

गुरु गोविंद सिंह जी ने 1688 में भंगनी की लड़ाई के बाद कपाल मोचन का दौरा किया और पहाड़ी शासकों के खिलाफ इस विजय युद्ध में लड़ने वाले सैनिकों को सम्मान के वस्त्र (पगड़ी) दिए, उन्होंने दुर्गा पर मंदिर के पुजारियों को हुकुमनामा दिया, जो अभी भी उनके पास सुरक्षित हैं। इसके अलावा गुरु गोविंद सिंह जी और उनके सैनिकों ने तालाबों से थोड़ी दूरी पर शौचालय बनाकर मंदिर को उन लोगों से छुटकारा दिलाया, जो तालाब के पानी को दूषित करते थे।

दशम ग्रंथ खालसा महिमा (खालसा की प्रशंसा) और चरित्र 71 में गुरु गोविंद सिंह जी के कपाल मोचन में रहने के दौरान हुई कुछ घटनाओं का वर्णन है।

➤ आसपास के आकर्षण :—

हरियाणा के बिलासपुर के निकट (बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश से मेल नहीं खाता) यमुनानगर जिले में जिसका नाम व्यासपुरी के भ्रष्ट रूप में लिया गया है। वेदव्यास ऋषि का निवास स्थान था, जहां उन्होंने सरस्वती नदी के तट पर महाभारत लिखी थी और आदि बट्टी के पास जहां सरस्वती नदी हिमालय को छोड़कर मैदानों में प्रवेश करती है। जगाधरी रोड पर कपाल मोचन एक और लोकप्रिय धार्मिक स्थल है।

बिलासपुर कपाल मोचन के धार्मिक तीर्थ स्थलों का वर्गीकरण

बिलासपुर एक प्राचीन नगर है, जहां पर अनेक धार्मिक स्थल हैं। जिनकी अपनी-अपनी मान्यता है, और यहां पर उनके लोग दूर-दूर से तीर्थ के लिए आते हैं।

- कपाल मोचन सोमसर (प्रथम स्नान)
- ऋण मोचन (द्वितीया स्नान)
- व्यास कुंड
- सूरजकुंड (तृतीय स्नान)

➤ कपाल मोचन सोमसर :-

यह एक पवित्र तीर्थ है। इसे सोमसर तथा गोपाल मोचन तीर्थ के नाम से जाना जाता है। कहा जाता है कि — भगवान शिव ने जब दाहिने हाथ से ब्रह्मा जी के सिर पर प्रहार किया, तो ब्रह्म हत्या का दोष लग गया और इस दोष को दूर करने के लिए उन्होंने कपालमोचन में स्नान किया। इसके पश्चिमी घाट को राम आश्रम घाट कहा जाता है। कपाल मोचन के पूर्वी किनारे पर एक काली गाय और काले बछड़े की प्रतिमा स्थिर है और कहा जाता है कि — गऊ और बछड़े ने एक ब्राह्मण की हत्या की। जिससे वे ब्रह्मण हत्या के दोष से कलंकित हो गए और काले रंग के हो गए। उसके बाद उन्होंने कपाल मोचन तीर्थ में प्रवेश किया और स्नान करते हुए पूर्व दिशा से बाहर निकले। इस स्नान से गाय और बछड़ा दोनों सफेद वर्ण के हो गए और और ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त हो गए।

➤ ऋण मोचन :-

यह स्थान कपाल मोचन सरोवर के दक्षिण — पश्चिम दिशा में स्थित है, जहां ब्रह्मा जी ने तीसरे अग्नि कुंड की रचना की। कहा जाता है कि — महाभारत युद्ध के पश्चात पांडवों ने अनेक मित्र गणों एवं रिश्तेदारों तथा गुरु द्रोणाचार्य की मृत्यु पर यज्ञ किया और युद्ध में हुए अपराध की मुक्ति के लिए ऋणमोचन सरोवर में स्नान किया।

इस सरोवर के और पशुघाट स्थित है। ऋणमोचन सरोवर की पश्चिमी दिशा में पांचों पांडवों की मूर्तियां स्थित है। एक जन श्रुति के अनुसार — इस तालाब में स्नान करने से मनुष्य सभी प्रकार के

ऋणों से मुक्त हो जाता है। पितृ ऋण से मुक्त होने के कारण, यह सरोवर ऋण मोचन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

➤ व्यास कुंड :-

महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास जी का यह कुंड बिलासपुर के दक्षिण में कपाल मोचन से ढाई किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह कहा जाता है कि – इस स्थान पर वेदव्यास जी का आश्रम था। यह भी विश्वास किया जाता है कि युद्ध के असीम दिनों में दुर्योधन इस तालाब में छिप गया था तथा उसे तालाब के खाली होने के बाद दुर्योधन को वहां से निकला गया था।

➤ सूरजकुंड :-

यह एक अन्य जन श्रुति के अनुसार – सिंधुबन के इस पवित्र स्थान पर माता कुंती ने सूर्य देव की तपस्या की। जिसके कारण उन्हें कर्ण नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। सूरजकुंड सरोवर में स्नान करने से आत्मिक शांति मिलती है तथा दुखों और क्लेशों से छुटकारा मिलता है और व्यक्ति के सूरजकुंड सरोवर में स्नान करने से ज्ञान में वृद्धि होती है।

तृतीय अध्याय

➤ कपाल मोचन (बिलासपुर) के धार्मिक मन्दिरों का अध्ययन

कपाल मोचन (बिलासपुर) के धार्मिक मन्दिरों का अध्ययन

कपाल मोचन (बिलासपुर) सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक व धार्मिक स्थल विभिन्न वर्गों, धर्मों तथा जातियों की एकता का प्रतीक है। कपाल मोचन यमुनानगर जिले के सिंधुवन में बिलासपुर के साथ स्थित है। देश के कोने-कोने से लाखों की संख्या में हिंदू, मुस्लिम तथा सिख श्रद्धालु हर वर्ष कार्तिक मास की पूर्णिमा के अवसर पर यहां लगने वाले मेले में भाग लेते हैं तथा मोक्ष की कामना से पवित्र सरोवर में स्नान करते हैं।

पुराणों के अनुसार कपाल मोचन तीर्थ तीनों लोकों में से पाप से मुक्ति दिलाने वाला स्थान हैं। मानव ने अपनी धार्मिक आस्थाओं को अभिव्यक्त करने के लिए जिन प्रतीकों का निर्माण किया, उनसे मूर्ति पूजा आरंभ हुई। ईश्वर की विविध रूपों में कल्पना की गई। देवी देवताओं के मूर्त रूपों की पूजा हेतु स्थापना के लिए जो सुंदर भवन निर्मित हुए वे भवन “मंदिर” कहलाए।

➤ सिद्धेश्वर मंदिर :-

सिद्धेश्वर मंदिर कपाल मोचन के पास स्थित गांव संधाय में स्थित है, तथा गांव कपाल मोचन से 2.5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, जहां पर एक सिद्धेश्वर मंदिर तथा इसको शिव मंदिर के नाम से जाना जाता है।

यह शिव मंदिर बहुत ही प्राचीन मंदिर है, तथा यह कहा जाता है कि शिव जी ने कपाल मोचन तालाब में स्नान करने के बाद यहां शिवलिंग को स्थापित किया था, जिससे इस मंदिर का निर्माण हुआ था।

➤ शिव मंदिर :-

श्री शिव मंदिर, द्वापर युग का श्री नारायण की तपो ऊर्जा का वरदान है। पांडवों द्वारा महाभारत समाप्ति के बाद जब हिमालय की चोटी की ओर बढ़े तो सबसे पहले सिंधुवन में आदि का जलाभिषेक कर उत्तराखंड की चारों धाम की यात्रा पर गये।

➤ माता मन्त्रा देवी मंदिर :-

हरियाणा राज्य के शिवालिक पर्वत श्रृंखलाओं में से सबसे ऊंची पहाड़ी में स्थित यह माँ मन्त्रा देवी का मंदिर आदिबट्टी से लगभग ढाई 25 किलोमीटर ऊपर पर्वत श्रृंखलाओं में विद्यमान है। मन्त्रों से

7. <https://en.wikipedia.org>. महंत निर्मल सिंह बाबा डेरा लाल दास, डॉ०. सुभाष, पंडित दुर्गा

प्रकट हुई माता समस्त भारतवर्ष में केवल इसी स्थान पर स्थित है। यहां एक सुंदर गुफा में नर-नारायण की अद्वितीय, लौकिक एवं मनमोहक दो मूर्तियाँ एक ही लाल पत्थर में पिंड के रूप में विराजमान है।

➤ संत श्री शिरोमणि गुरु रविदास मंदिर :-

गुरु रविदास मंदिर बहुत प्राचीन है। यह मंदिर डेरा बाबा लाल दास के नाम से भी जाना जाता है। यहां पर हर महीने के पहले रविवार को मेला लगता है तथा दूर-दूर से श्रद्धालु अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए आते हैं व यहां पर आने वाले श्रद्धालुओं के लिए भोजन तथा रहने की व्यवस्था की जाती है।

यहां पर धात्रा निवास भी है। यहां मंदिर की ओर से आंखों तथा कानों के इलाज के लिए सप्ताह में एक दिन निशुल्क कैंप लगाया जाता है। गुरु रविदास जी के जन्मदिन के उपलक्ष्य पर लाखों की संख्या में श्रद्धालु यहां आते हैं तथा इस दिन को बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। व जन्मदिन के एक सप्ताह के बाद यहां वार्षिक मेला लगता है। और लोग लाखों की संख्या में यहां पर आते हैं तथा दूर-दूर से गांव व शहरों से श्रद्धालु झांकियां लेकर आते हैं।

इसे श्रद्धालुओं की आस्था का केंद्र माना जाता है। जब गुरु रविदास जी ने इस जगह पर एक रात के लिए आराम किया था तो उन्होंने पानी पीने के लिए इस जगह पर एक गड्ढा खोदा था। मंदिर सभा की तरफ से इसके पास कुई के नाम से एक शीला लगाई गई है। श्रद्धालु इस पवित्र जल का आचमन करते हैं। यहां तक की इसे गंगाजल के समान मानते हुए, श्रद्धालु बर्तनों में भरकर घर भी ले जाते हैं कि – यह पानी पीने से कहीं बीमारियां दूर हो जाती हैं।

डेरे से बना भव्य मंदिर कपाल मोचन में जहां आज गुरु रविदास जी का भव्य मंदिर है, वहां पर पहले 10 फीट चौड़ा चूने का एक कमरा होता था। आश्रम का यह कमरा आज भी मंदिर में सुरक्षित है। मंदिर के पहले महंत कृपा दास जी इस आश्रम में रहते थे। आश्रम के चारों तरफ जंगल हुआ करता था। मंदिर सड़क के किनारे पर स्थित है। कपाल मोचन में जब गुरु रविदास जी आए थे, उस वक्त यहां पर मंदिर नहीं था। 1515 ई० में गुरु रविदास काशी से पंजाब के जिला होशियारपुर स्थित खुरालगढ़ साहब जा रहे थे। तो वहां एक रात के लिए कपाल मोचन में इसी पर स्थान पर रुके थे। उन्होंने खुरालगढ़ में 4 साल, 2 माह 11 दिन तक तप किया था।

गुरु रविदास जी ने गड्ढा खोदकर पानी पिया था। पानी कपाल मोचन स्थित गुरु रविदास मंदिर डेरा बाबा लाल दास के प्रांगण में एक प्राचीन कुआं है। जब मंदिर में नए भवन के निर्माण के लिए खुदाई की जा रही थी, तो जे.सी.बी से एक जोरदार आवाज आई।

फावड़े से उसे जगह की साफ सफाई की गई तो वहां पर पानी का गहरा कुंआ था। मंदिर के महंत निर्मल दास ने बताया कि जब गुरु रविदास ने इस जगह पर एक रात के लिए आराम किया था, तो पानी पीने के लिए एक गड्ढा खोदा था। इसका वर्णन ग्रंथों में भी है। सैकड़ों साल पहले गुरु रविदास ने जिस जगह पर अपने पावन चरण रखे थे, आज वहां पर उनका भव्य मंदिर है। इसमें माथा टेकने के लिए रोजाना श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है।

➤ गऊ बच्छा मंदिर :-

गऊ बच्छा मंदिर, हरियाणा के यमुनानगर जिले में कपाल मोचन बिलासपुर में स्थित है। सनातन धर्म के सबसे पुराने तीर्थों में से एक कपाल मोचन तीर्थ है। वेदों में मान्यता है कि यहां पर सतयुग के समय के कई कुंड हैं। यहीं पर स्थित सोम सरोवर में स्नान करने से भगवान शिव, ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्त हुए थे। तथा इसके अलावा यहां स्थित ऋण मोचन सरोवर में स्नान करने से प्राणी सभी प्रकार के ऋणों से मुक्त हो जाता है।

किंवदंती के अनुसार रात के समय गऊ का बछड़ा गऊ माता से बात कर रहा था तथा बछड़ा अपनी मां से कह रहा था कि — कल ब्राह्मण आपको निःसंतान कर देगा। लेकिन उससे पहले वह ब्राह्मण की हत्या कर देगा। इस पर गऊ माता ने बछड़े को ऐसा करने से मना कर दिया, क्योंकि बछड़े को ब्रह्म हत्या का पाप लग जाता, लेकिन सुबह होते ही ब्राह्मण ने बछड़े को बधिया करने का कार्य शुरू किया, जिससे बछड़े को क्रोध आया, और उसने ब्राह्मण की हत्या कर दी, जिससे गऊ माता और बछड़े को ब्रह्म हत्या का दोष लगा।

जिससे गऊ माता दुखी हो गई तथा वे दोनों काले हो गए। लेकिन बछड़े ने गऊ माता को अपने पीछे आने के लिए कहा। वे दोनों ने सोमसरोवर तालाब को पार किया, जिसके कारण उनका रंग सफेद हो गया तथा वह ब्रह्म तथा हत्या के दोष से मुक्त हो गए।

➤ गुरुद्वारा कपाल मोचन :-

कपाल मोचन प्रसिद्ध हिंदू तीर्थ है। कपाल मोचन सरोवर के पूर्व में एक गुरुद्वारा है। सिखों के दसवें गुरु गोविंद सिंह जी महाराज का यहां इन सरोवरों पर दो बार आना हुआ। पहली बार 52 धाराओं को तथा पहाड़ी राजाओं से युद्ध करके कपाल मोचन सरोवरों के किनारे 52 दिन ठहरकर विश्राम किया और अपनी बहादुर सेना को श्रौंपे दिए तथा जो हत्यायें करके आए थे। इस पवित्र सरोवर में स्नान किया, जो शास्त्र उन्होंने युद्ध में प्रयोग किए उन्हें ऋणमोचन सरोवर में साफ किया। इसे 'शस्त्र-घाट, 'गुरु गोविंद सिंह' कहा गया।

इस स्थान पर पहली और 10वीं पातशाही के प्रकाश गुरुपर्व और खालसा सृजन बैसाखी का दिन विशेष रूप से मनाया जाता है। गुरु नानक साहब के प्रकाशोत्सव में दूर-दूर से अनेक श्रद्धालु आते हैं।

यह स्थान कपाल मोचन तहसील बिलासपुर, जिला यमुनानगर (हरियाणा) में रेलवे स्टेशन जगाधरी से थोड़ी ही दूर और बस स्टैंड बिलासपुर से 1 किलोमीटर की दूरी पर जगाधरी बिलासपुर रोड पर स्थित है।

➤ महर्षि कश्यप मंदिर :-

महर्षि कश्यप ऋषि मुनियों में श्रेष्ठ माने जाते थे। सुर – असुरों के मूल पुरुष मुनिराज कश्यप का आश्रम मेरु पर्वत के शिखर पर था। जहां पर वे ब्रह्म परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते थे। मुनिराज कश्यप नीति प्रिय थे और वे स्वयं भी धर्म नीति के अनुसार चलते थे। और दूसरों को भी इसी नीति का पालन करने का उपदेश देते थे। तथा ब्रह्म द्वारा दिए गए श्राप के कारण कश्यप ने कृष्ण के पिता वासुदेव के रूप में भी अवतार लिया था।

एक बार, ऋषि ने संसार के प्राणियों के कल्याण के लिए देवताओं को आहुति देने हेतु अपने आश्रम में एक यज्ञ (एक वैदिक अनुष्ठान) किया। साथ ही कश्यप ऋषि एक वैदिक ऋषि थे, इनकी गणना सप्तर्षि गाणों में की जाती है। हिंदू मान्यता के अनुसार वह ऋग्वेद के सात प्राचीन ऋषियों, सप्तर्षियों में से एक है।

➤ श्री राधा कृष्ण मंदिर :-

श्री राधा कृष्ण मंदिर कपाल मोचन (बिलासपुर) में बहुत प्राचीन मंदिर है। राधा कृष्ण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। कृष्ण (देवनागरी : कृष्ण) विष्णु का अवतार जिसका अर्थ है – “सभी आकर्षक” या “गहरा नीला” और उनकी शक्ति राधा (देवनागरी) लक्ष्मी का अवतार, जिसका अर्थ है – “मनभावन”, तथा इस मंदिर के पूज्य पुजारी दुर्गा गढ़वाली है। तथा हर वर्ष कृष्ण के जन्म उत्सव को बहुत ही धूमधाम से मनाया जाता है। तथा इस दिन यहां तथा श्रद्धालु हजारों की संख्या में एकत्रित होते हैं। वह अपनी इच्छाओं तथा मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए इस दिन को बहुत ही हर्ष उल्लास से मनाते हैं।

राधा के रंग की तुलना ताजे खिले हुए कमल या चमकते हुए सुनहरे सूर्योदय से की जाती है। राधा रानी की बड़ी आंखें अभिव्यंजक हैं, जो उनके भीतर असीम प्रेम और करुणा को दर्शाती हैं। उनकी उपस्थिति इतनी आकर्षक है कि सबसे सुंदर और दिव्य प्राणी आकर्षण से मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

➤ पांच पाण्डव मंदिर एवं स्नान घाट :-

पांच पाण्डव मंदिर एवं स्नान घाट काफी पुराना माना जाता है। परंतु काफी समय पहले गांव के लोगों द्वारा इस स्थान को विकसित किया गया। इस मंदिर में पांच पांडव पिंडी रूप में विराजमान है। इस मंदिर के इर्द गिर्द तीन गांव हैं। इस स्थान से थोड़ी दूरी पर बाड़ी धार नामक स्थान है। जहां पर दंतकथाओं के अनुसार — पांडव वनवास के दौरान आए थे तथा वहां पर पांडवों का बहुत सुंदर मंदिर है।

इसलिए ये मंदिर पांडवों को समर्पित है। इस मंदिर के भीतर लोगों द्वारा माँ दुर्गा की मूर्ति भी स्थापित की गई है तथा स्थानीय लोगों द्वारा यहां पर एक धर्मशाला का भी निर्माण किया गया है। जब से इस पांडव मंदिर का निर्माण हुआ है, तब से इस क्षेत्र में सुख व समृद्धि का वातावरण बना है।

चतुर्थ अध्याय

- कपाल मोचन (बिलासपुर) का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय

कपाल मोचन (बिलासपुर) का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय

मानव ने अपनी धार्मिक आस्थाओं को अभिव्यक्त करने के लिए जिन प्रतिकों का निर्माण किया। उनसे मूर्ति पूजा आरंभ हुई। ईश्वर की विविध रूपों में कल्पना की गई। देवी – देवताओं के मूर्त रूपों की पूजा हेतु स्थापना के लिए जो सुंदर भवन निर्मित हुए वह भवन मंदिर कहलाए। जगाधरी से कुछ ही दूरी पर बिलासपुर नामक स्थान पर भी अनेक मंदिर स्थित है। जहां से मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बिलासपुर बहुत प्राचीन नगर है।

इस स्थान के बारे में यह कहा गया है कि यह स्थान अपने अंदर धार्मिकता को समेटे हुए हैं। प्राचीन काल में इस स्थान पर वेदव्यास ऋषि का आश्रम होता था। और वेदव्यास एक ज्ञानी महात्मा था। इस कारण इसका नाम व्यासपुर रखा गया। बाद में इस स्थान का नाम व्यासपुर से बिलासपुर रख दिया गया।

यह नगर पुरातत्विक सर्वेक्षण की खोज द्वारा स्थापित किया गया। यहां से तीसरी शताब्दी के भारतीय सिक्के भी प्राप्त हुए हैं, तथा नौवीं दसवीं शताब्दी की उमा – महेश्वर की प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। दूसरा गणेश जी की ग्यारहवीं – बारहवीं शताब्दी की प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। बिलासपुर में अनेक तीर्थ स्थान है, जिसमें सबसे प्रसिद्ध स्थान कपाल मोचन है। यहां दो तालाब हैं, एक कपाल मोचन दूसरा ऋण मोचन है।

कार्तिक मास में सूर्योदय से पूर्व कपाल मोचन तीर्थ में स्नान किया जाता है और ऋणमोचन के किनारे पर दीपक जलाए जाते हैं। सारे मास में यही क्रम चलता है। हर साल कार्तिक में एकादशी से पूर्णिमा तक 5 दिन का मेला लगता है। यह पवित्र स्थान (कपाल मोचन) बिलासपुर से दो किलोमीटर दूर उत्तर में स्थित है। कपाल मोचन में अनेक प्राचीन मंदिर थे, जो समय के साथ-साथ ध्वस्त हो चुके हैं तथा उनका नव निर्माण किया गया है।

प्राचीन मंदिर के कुछ ही अवशेष तथा हिस्सा बाकी है। भारतीय कला के सौंदर्य विधान के लिए अनेक अलंकरणों का प्रयोग हुआ है। इस अलंकारिक प्रकृति के कारण भारतीय कला को विश्व में विशिष्टता प्राप्त हुई है। बिलासपुर कपाल मोचन के मंदिरों में भी भित्ति चित्रण हुआ है। इन अलंकारिक चित्रों में आकर्षक रंग योजनाओं का प्रयोग किया गया है। भित्ति चित्रों में फूल पत्तियों का अधिक प्रयोग किया गया है। इन भित्ति चित्रों के छोटे-बड़े आकारों में इतनी समानता है कि ऐसा लगता है कि मानों सभी एक साथ ही छापे से बनाए गए हैं। मंदिरों की छते काफी घुमावदार बनाई गई है।

कपाल मोचन में 1992 ई० में मंदिर के नवनिर्माण के समय खुदाई की गई तथा यह खुदाई कपालेश्वर महादेव मंदिर के प्रबंधक एवं संचालक डॉक्टर प्रेमचंद शर्मा की देखरेख में हुई। खुदाई के दौरान यहां से अनेक प्रकार की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं और यह मूर्तियां गुप्त काल की लगती हैं तथा पत्थर को उभारकर तथा तराशकर बड़े सुंदर तरीके से बनाई गई हैं, तथा जिनकी शोभा देखते ही बनती है।

कपाल मोचन के समीप एक प्राचीन गुरुद्वारा भी है। बाहर की दीवार में गुप्तकालीन अक्षरों में खंडित लेख के अंश हैं। इस गुरुद्वारे का समय के साथ-साथ नवनिर्माण कर दिया गया है।

कहा जाता है कि जब परशुराम ने अपनी माता का वध पिता के कहने से किया, तो परशुराम के हाथ से उनकी माता का सिर चिपक गया और वह किसी प्रकार से अलग नहीं हुआ। उस समय परशुराम तीर्थ यात्रा पर निकले और जहां हाथ से वह चिपका हुआ सिर छूटा, वहां कपाल मोचन तीर्थ बना।

कपाल मोचन की पौराणिक कथा का वर्णन महाभारत और अन्य पुराणों में किया गया है। स्कंद पुराण के अनुसार ब्रह्म ने यज्ञ के लिए तीन अग्नि कुंडों की रचना की थी। जो अग्निकुंड उत्तर में है। उसे पलाश तीर्थ के नाम से जाना जाता है और यह पुलस्त्य ऋषि के नाम से प्रसिद्ध है। जहां उन्होंने लंबे समय के लिए तपस्या की थी। यह स्थान रामपुर के नजदीक तथा कपाल मोचन के उत्तर में 6 किलोमीटर पर स्थित है। यह पवित्र तीर्थ सतयुग के समय से है। तीर्थ कपाल मोचन आदिकाल से ऋषि मुनियों का हवन कुंड रहा है और इसका सोम अर्थात् अर्धचंद्राकार है।

इस तीर्थ में ऋषि मुनियों, देवी — देवताओं ने एकत्रित बैठकर सोमयज्ञ किया। इसलिए इस पवित्र सरोवर का जल अमृत तुल्य है। कुछ समय बाद इस तीर्थ का नाम कपाल मोचन हो गया। कहा जाता है कि शिवजी भगवान पर ब्रह्म हत्या का पाप लगने पर, उन्होंने इस स्थान पर स्नान किया और इस दोष से मुक्त हो गए। स्कंद पुराण के अनुसार जो व्यक्ति कार्तिक मास में कपाल मोचन सरोवर में स्नान करता है, उसे मोक्ष प्राप्ति होती है।

पंचम् अध्याय

- कपाल मोचन बिलासपुर की मूर्तिकला का संक्षिप्त परिचय
- भित्ति चित्रण का वर्गीकरण
- कला कृतियों का कलात्मक विवरण

कपाल मोचन (बिलासपुर) की मूर्तिकला

➤ श्री कपाल मोचन :-

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक व धार्मिक स्थल कपाल मोचन विभिन्न वर्गों, धर्मों तथा जातियों की एकता का प्रतीक है। कपाल मोचन यमुनानगर जिले के सिंधुवन में बिलासपुर के साथ स्थित है। देश के कोने-कोने से लाखों की संख्या में हिंदू, मुस्लिम तथा सिक्ख श्रद्धालु हर वर्ष कार्तिक मास की पूर्णिमा के अवसर पर यहां लगने वाले मेले में भाग लेते हैं तथा मोक्ष की कामना से पवित्र सरोवर में स्नान करते हैं।

पुराणों के अनुसार कपाल मोचन तीर्थ तीनों लोकों में से पाप से मुक्ति दिलाने वाला स्थान है। पुराणों में कपाल मोचन तीर्थ का प्राचीन नाम सोमरस एवं औशनस तीर्थ था, जिसका वर्णन महाभारत और वामन महापुराण में मौजूद है। स्कंद पुराण के अनुसार कपाल मोचन बहुत प्राचीन तथा ब्रह्म हत्या नाशक, पुत्रधन आदि सब कामनाएं पूरी करने वाला पवित्र तीर्थ है। प्राचीन काल में पद्मकल्प में ब्रह्म जी ने यज्ञ कराने के लिए तीन कुंड बनवाये। वे ही प्लक्ष, सोम सरोवर तथा ऋण मोचन हुए। सोम सरोवर का नाम भगवान शंकर ने कपाल मोचन रखा। ब्रह्म का सिर काटने के कारण भगवान शंकर को ब्रह्म हत्या का भयंकर पाप लगा। उनके हाथ से ब्रह्मा के सिर के समान निशान हो गया। सब तीर्थों में स्नान, दान आदि करने से भी यह निशान दूर न हुआ।

उन्होंने उसी क्षेत्र की भद्रावती नाम की नगरी में देव शर्मा नाम के ब्राह्मण के घर उसकी गऊ के बछड़े से सोम सरोवर में स्नान करने से ब्रह्म हत्या दूर होने की महिमा सुनी और देव शर्मा को मारने के कारण गऊ के बछड़े तथा गऊ को लगी ब्रह्म हत्या को इसमें स्नान से दूर होते देखा। तब भगवान शंकर ने उसका नाम कपाल मोचन रख दिया। त्रेता युग में भगवान राम जी ने रावण को मारने के बाद ब्रह्म हत्या दूर करने के लिए परिवार सहित आए।

द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण व पांडव यहां आए। उन्होंने गुरु द्रोणाचार्य का वध किया था, इसी कारण पांडवों ने यहीं पर स्नान कर ब्रह्म हत्या दोष से मुक्ति पाई। एक कथा के अनुसार ब्राह्मण की हत्या करने के कारण बछड़े व उसकी माता को ब्रह्म हत्या का घोर पाप लगा, जिससे बछड़े व गाय का रंग काला पड़ गया। गऊ और बछड़े ने इसी सरोवर में स्नान किया और वे इस पाप से मुक्त हो गए। पुनः दोनों का रंग सफेद हो गया तथा एक जनश्रुति के अनुसार इस तालाब में स्नान करने से मनुष्य सभी प्रकार के ऋणों से मुक्त हो जाता है।

यहां भगवान श्री कृष्ण ने पांडवों के साथ ठहरकर यज्ञ किया और पांडवों के पूर्वजों का पिंडदान करवाया तथा पांडव पितृ ऋण से मुक्त हुए। पितृ ऋण से मुक्त होने के कारण यह सरोवर ऋण मोचन के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

मूर्ति कला का इतिहास उतना ही पुराना कहा जा सकता है, जितना कि मानव सभ्यता के विकास का इतिहास। सत्य तो यह है कि — मूर्ति बनाने की प्रवृत्ति सर्वदा से ही हमारे पूर्वजों में विद्यमान रही है। मनुष्य ने जिस समय प्रकृति की गोद में आंखें खोली उस समय से ही उसने अपनी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाकृतियों के माध्यम से गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अंकित कर अभिव्यक्त किया। अपना सांस्कृतिक विकास करने के लिए मानव ने जिन साधनों को अपनाया। उसमें चित्रकला भी एक साधन थी।

भारतीय चित्रकला का उद्गम भी प्रागैतिहासिक काल से ही माना जाता है। समय के साथ-साथ ज्यों — ज्यों मानव ने विकास किया। भारत में यह कला भी अपने उत्कर्ष को प्राप्त करती रही तथा विश्व में उसकी एक विशिष्ट पहचान है।

भारतीय मूर्तिकला का इतिहास दो हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है तथा प्राचीन काल से अब तक कपाल मोचन की मूर्ति कला में भी बहुत परिवर्तन आये। अनेक शैलियों बदली, साथ ही कला के प्रति रुचिया भी बदली। रीतियों, नीतियों में भी अनेक परिवर्तन हुए। दरअसल मूर्तिकला का इतिहास इन्हीं युग — युगान्तरों में कला की शैलियों, रीतियों, नीतियों व रुचियां में आये परिवर्तनों का ही इतिहास है, जिसमें यह जानना कहीं अधिक रुचिकर है कि — किस युग में कौन सी शैली ने विकास पाया कि यह जाना जाए कि यह मुक्ति बुद्ध की है, या सीता, पार्वती या शिव की है आदि।

किसी युग में उसी को अत्यंत अलंकरण पूर्ण तरीके से बनाना फैशन हो गया, तो कहीं पर अंगों को सुंदर बारीकी से तराशा गया। इसी को भिन्न-भिन्न युगों में कला की भिन्न-भिन्न शैलियों के नाम से जाना गया। कपाल मोचन का संपूर्ण इतिहास इन्हीं निरंतर परिवर्तित होती गई। शैलियों के परिवर्तन का ही इतिहास है जो अत्यंत रोचक व विविधतापूर्ण रहा है। शैलीगत व विषयगत दृष्टिकोण से।

मूर्तिकला इस युग में प्रचलित इस देश के धर्म और यहां की संस्कृति से अनुप्रमाणित होती रही है और किसी देवमूर्ति की पीठ या उसे पीछे से देखना उस मूर्ति का अपमान समझते हुए वह सदैव दीवारों, स्तंभों आदि पर ही उतारी जाती रही हैं। इसलिए जो मूर्तियां प्रारंभ में अकेली आकृति के रूप में बनाई गई वे सर्वथा यहां के लोकमानस की धार्मिक भावनाओं व अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं थीं। अतः आगे विकसित नहीं हो सकी। 2000 वर्ष के संपूर्ण इतिहास पर दृष्टिपात करने से हम यही पाते हैं कि पूरी की पूरी भारतीय मूर्तिकला उच्चित्रों के रूप में तराशी गई है।

मूर्ति कला मानव की शाश्वत भावनाओं का मूर्त रूप तथा परंपराओं व युगधर्म की संवाहक है। भारतीय शिल्पियों ने पार्थिव उपकरणों से सौंदर्य के साथ मन—प्राण का रूपांतरण भी शिल्प में किया है। शिल्प कला की यह आंतरिक अभिव्यक्ति संयोजन मध्य तथा आत्मबोध से प्रेरित होकर आकारों में देवत्व की भावना को साकार करती है।

नारायण रूप पुरुष तथा स्त्री रूप प्रकृति के बाह्य सौंदर्य के साथ आंतरिक सौंदर्य के संश्लेषण से भारतीय मूर्तिकला जीवंत हुई है। सिंधु सभ्यता, मोहनजोदड़ो व हड़प्पा काल में मध्ययुग से गुजरती हुई आधुनिक काल तक अनगणित मूर्तियां इसी संश्लेषण से भारतीय मूर्तिकला जीवंत हुई है। सिंधु सभ्यता मोहनजोदड़ो व हड़प्पा काल में मध्ययुग से गुजरती हुई आधुनिक काल तक अनगणित मूर्तियां इसी संश्लेषण की भावना का प्रतिनिधित्व करती हैं।

आध्यात्मिक सिद्धि की अनुभूति, आत्मलीनता तन—मन—प्राण प्रभाव भी परिलक्षित होता है। सोना, चांदी, तांबा, कांसा, पीतल, पारे का मिश्रण, रत्न, लाख, गंधक, शीश, मिट्टी, हाथीदांत, सीप, लकड़ी, फाइबर आदि प्राकृतिक था। कृत्रिम धातु उत्पादनों को प्रकृति अनुरूप गढ़कर खोदकर, उभारकर, कोरकर, औजार या हाथ के प्रयोग से, सांचे के माध्यम से या किसी अन्य प्रक्रिया से सृजित आकृति को मूर्ति प्रतिमा या शिल्प के रूप में जाना जाता है।

स्थापत्य व मूर्ति का अत्यंत गहन संबंध है। मंदिर, महल, निवास, स्तंभ आदि सभी में कुछ न कुछ तराशा या उकेरा जाता है। वस्तुतः स्थापत्य में जो भावना व कल्पना कलाकार डालता है, वही मूर्तिकला है। यह देश की सांस्कृतिक प्रगति, मानव जीवन, धार्मिक चिंतन की परिचायक है।

प्राचीन भारत के लगभग समस्त कलात्मक अवशेषों की प्रकृति धार्मिक है अथवा उनकी रचना धार्मिक उद्देश्यों से हुई थी। धर्मनिरपेक्ष कला भी अवश्य ही थी। प्राचीन भारतीय शिल्पकला धर्म के वटवृक्ष के छत्रछाया में विकसित हुई, जिनकी परिणाति मंदिरों व कलात्मक मूर्तियों में हुई। हमें शैशुनाक कालीन, यक्ष — यक्षिणी की चुनार प्रस्तर निमित्त विशाल और आदमकद प्रतिमाएं, मौर्य शुंग कालीन सारनाथ, सांची, भरहुत की मूर्तियां, गंधार शिल्प, कुषाण सातवाहन कालीन मथुरा मूर्तियां, अमरावती शैली, भारतीय मूर्तिकला का स्वर्णयुग, गुप्तकाल वाकारक सम्राटों के संबंध निर्मित अगणित बुद्ध मूर्तियां, स्तूप, चैत्य, गुहागृह तथा मंदिर : पूर्व मध्यकालीन अजंता, एलोरा, एलिफेंटा, मामर्तलपुरम व बदामी तथा उत्तर मध्यकाल में कोणार्क, भुवनेश्वर दिलवाड़ा राजस्थान, उड़ीसा चोल तथा होमशल मूर्तिकला में तत्कालीन शिल्पियों ने आदर्श व कल्पना को अलंकरणात्मकता के साथ भावारविभाजित किया। मुगल शासन काल में मूर्ति कला वर्जित होने के कारण उत्तरोत्तर हासोन्मुख होती गयी। किंतु उसका अस्तित्व स्थाई रहा है।

भारतीय कला की प्रवृत्ति मध्यकालीन यूरोप की कला से एकदम विपरीत है। देवता एवं उपदेवता एक समान युवा व सुंदर हैं। उनके शरीर गोलमटोल एवं परिपुष्ट हैं, जो प्रायः यूरोपीय मतानुसार नारीवत् प्रतीत होते हैं। कभी-कभी वे क्रूर अथवा क्रोधपूर्ण मुद्रा में चित्रित किए जाते हैं, परंतु सामान्य रूप से मुस्कुराते हैं तथा उनमें दुख का चित्रण बहुत ही कम किया जाता है। नृत्य करते हुए शिव के अतिरिक्त अन्य पवित्र प्रतिमाओं को बैठे हुए अथवा भूमि पर पैर फैलाए हुए दिखाया जाता है। यहां यह बताने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है कि — भारतीय मंदिरों की मूर्तियों में चाहे हिंदू हो, बौद्ध हो या जैन हो, सदैव कम वस्त्रों से युक्त तथा लगभग भारतीय सौंदर्य के स्तर के अनुरूप के नारी का उपयोग साज सच्चा की सामग्रियों के लिए किया गया है।

कलाकार ने मौलिकता के पास से मुक्त उस आत्मा की अभिव्यक्ति का प्रयास किया होगा जो संसार से ऊपर उठकर शाश्वत आनंद कलाकार की अंतिम विश्रामस्थली की ओर जाने वाली है। कलाकार का कुछ भी अभिप्राय रहा हो, गोमटेश्वर शांत चेतन शक्ति से मुक्त अपने समय का एक सामान्य युवक प्रतीत होता है। कहा जाता है कि — संत ध्यान में इतने समय तक की निमग्न खड़े रहते कि उनके गतिहीन चरणों के चारों ओर लताएं लिपट गईं और ये लताएं मूर्ति में दिखाई गई हैं। परंतु ये लताएं यद्यपि उनकी पवित्रता चित्रित करने के अभिप्राय से हैं, फिर भी वे इसी बात पर बल देती हैं कि वह इसी पृथ्वी का प्राणी है, जिसे पृथ्वी पीछे खींचती है।

ऐतिहासिक काल की प्रारंभिक अवधि मूर्तिकला में हड़प्पा से आरंभ होती है। सिंधु घाटी के नगरों की समाप्ति से मौर्यों के उदय तक एक हजार वर्ष से अधिक की अवधि में कोई भी कलात्मक कृति नहीं मिलती है। उत्तरी भारत में कहीं-कहीं यक्षशील पदार्थों में मूर्तिकला निश्चय ही जीवित रही। मौर्य सम्राटों के संरक्षण, पाश्चात्य प्रभाव, के प्रवेश एवं भौतिक समृद्धि की वृद्धि से इनका पुनः उद्धार हुआ और उन पाषाण प्रतिमाओं एवं नक्काशी की रचना हुई जो आज तक विद्यमान हैं।

सिंधु घाटी के नगरों के पश्चात अशोक स्तंभों के शीर्ष जिनमें से कुछ संभवतः उसके राज्य से पूर्व निर्मित हुए थे। मूर्तिकला के प्रमुख प्रारंभिक उदाहरण हैं। उनमें भारतीय मूर्तिकला की विशेषताएं नहीं हैं, यद्यपि उनमें अनेक स्वाभाविक गुण हैं। सारनाथ के स्तंभ के प्रसिद्ध सिंह तथा रामपुरवा के स्तंभ का कम प्रसिद्ध परंतु अधिक सुंदर वृषभ, यथार्थवादी मूर्तिकारों की कृतियां हैं जो कुछ ना कुछ ईरानी और यूनानी परंपरा के ऋणी हैं।

ईशा से कुछ शताब्दियों पूर्व की एकमात्र अन्य प्रमुख मूर्तियां, यक्षों की अनेक आकृतियां जो संजीव आकर से कुछ बड़ी हैं। वे सुदृढ़ वृषभ के समान ग्रीव वाली और भारी हैं। तथापि ठोसपन है, जो उत्तरकालीन मूर्तियों में कठिनाई से पाया जाता है। इन आकृतियों के विशाल उदर की तुलना हड़प्पा की मूर्ति के धड़ के उदर से की गई है।

➤ दक्षिण भारत के कला केंद्र :-

दक्षिण में छठी शताब्दी के बाद कला के नमूने मिलते हैं। यह महाराष्ट्र के अजंता में है। जहां बुद्ध की अनेक सुंदर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इनमें सपत्नीक बैठे नागराज की प्रतिमा उत्कृष्ट है। कन्हेरी की गुफा 66 वे अवलोकितेश्वर लोकेश्वर के प्रतिमा है। बादामी की गुफा में अनंतशाही विष्णु और श्री त्रिविक्रम विष्णु उल्लेखनीय हैं।

➤ गुप्त काल की श्रेष्ठ मूर्तियां :-

1. बुद्ध प्रतिमाएँ :-

पाषाण में निर्मित गुप्तकाल में मथुरा में अनेक सुंदर पाषाण में उकेरी बुद्ध की प्रतिमाओं का अंकन हुआ है। एक बुद्ध प्रतिमा से प्राप्त बुद्ध लिपि के लेख के अनुसार इस प्रतिमा की स्थापना 'यश दिन्न' नामक बौद्ध भिक्षु ने अपने माता-पिता, आचार्य एवं संतों के पुण्य के लिए बनवाई थी। मथुरा के जमालपुर टीले से प्राप्त यह प्रतिमा खड़ी मुद्रा में है और 7 फीट 2.50 इंच ऊंची है। मूर्ति में कुंचित केश, ऊंचे जटाजूट बंधे हुए लंबे कान, दोनों कंधों पर महीन सलवटों वाली संघाटी ओढ़े हुये, नासिका पर केंद्रित दृष्टि ध्यान मुद्रा में है। बुद्ध के शीर्ष के पीछे गोल विशाल अलंकृत प्रभाव मंडल दर्शित है।

2. धातु मूर्तियां :-

पत्थर के अतिरिक्त बुद्ध की 'धातु मूर्तियां' भी ढाली गई थी। इसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध मूर्ति बिहार प्रांत में 'भागलपुर' के निकट 'सुल्तानगंज' से पाई गई थी और वर्तमान में बरमिघम कला दीर्घा, लंदन में सुरक्षित है। शांत स्मित मुखमुद्रा में कांसे से ढली यह आदमकद मूर्ति 7 फीट ऊंची है। बायें हाथ में संघाटी और दायें हाथ अभय मुद्रा में है।

3. विष्णु मूर्तियां :-

कुषाण काल से ही मथुरा में विष्णु मूर्तियों का अंकन होने लगा था और गुप्तकाल में तो अनेक सुंदर मूर्तियों का निर्माण हुआ। जिनके अलंकृत प्रभाव — मंडल उद्बाहू तथा प्रलम्बबाहु भुजाएँ हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संरक्षित 'महानारायण' की विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है। इसके वर्तमान में केवल दो हाथ कोहनी तक अवशिष्ट हैं और प्रतिमा जंघाओं के नीचे खंडित है। 'मथुरा संग्रहालय' में दर्शित 'प्रलम्बबाहु विष्णु' की प्रतिमा में भी अलंकृत मुकुट, चौड़े कर्ण-कुंडल, भुजबन्ध, कंधों से होकर भुजाओं

पर लहराती आजानुलिम्बनी वनमाला एवं प्रभा मंडल का बाहरी घेरा, गोल पघदलों से अलंकृत है। प्रतिमा केवल घुटनों तक ही अवशिष्ट है।

4. मुखालिंग :-

प्राचीन काल से ही 'शिव' का अंकन 'लिंग' रूप में मिलता है। गुप्त काल में निर्मित 'शिवलिंग' एक, एवं चार मुख्य मथुरा कौशाम्बी खोह, भुमरा ऊँचेहरा, भीटा आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित पांचवी – छठी शताब्दी में निर्मित एक मुखी शिवलिंग, उँचेहरा, मध्य प्रदेश से प्राप्त 3 फीट 2 इंच ऊँचे शिवलिंग में 10 इंच लंबे, शिव मुख वाला 'एक मुख्य शिवलिंग शिव' गुप्तकालीन मूर्ति कला के उत्तम उदाहरण है।

5. पार्वती शीर्ष :-

'अहिच्छत्रा' से प्राप्त 'पार्वती' का एक मृण्मुख गुप्तकालीन मूर्ति कला का उत्तम उदाहरण है। गोल मुख, घुंघराले बालों से सजे केश, चौड़ा जूड़ा, कर्ण कुण्डल, अलंकृत चूड़ामणि तथा 'तिलकमणि' से सजाया गया है। मस्तक पर बने नेत्र से पार्वती की पहचान की गई है।

6. शिव शीर्ष :-

सारनाथ संग्रहालय से प्राप्त गुप्तकालीन शिव का शीर्ष 'स्मित मुद्रा' में है। ललाट पर तृतीय नेत्र, लम्बे कान तथा सादा, किंतु सुंदर रूप में संवारा गया जटाजूट उल्लेखनीय है।

गुप्तकालीन मृण्मूर्तियों में सौंदर्यपूर्ण संरचना लोक – जीवन से संबंधित कृतियों में दर्शनीय है। छोटी आकृतियों के ऊपरी भाग में बने छिद्र से घर में उनको लटकाकर सजाने के उद्देश्य से प्रयुक्त हुए हैं। स्त्रियों को केश सज्जा विशिष्ट है तथा आकृतियों की अनेक विषयों के साथ दिखलाया गया है जैसे— मिथुन, किन्नरमिथुन, उत्तेजक दृश्य, घटवाहिका, माँ-पुत्र शाल – भंजिका, कुम्हार, पहाड़पुर, राजघाट से प्राप्त स्त्री मूर्तियां सुंदर है।

पशु आकृतियां काल्पनिक और स्वाभाविक दोनों रूप में दर्शित हैं। पुरुषों को विविध वाद्य यंत्र बजाते, सैनिक वेश में खड़े ध्यानस्त, विभिन्न क्रियाओं को करते दर्शाया गया है। देव आकृतियों में विष्णु, शिव, सूर्य, कार्तिकेय, गणेश, पार्वती एवं गंगा – यमुना है। राजघाट से प्राप्त एक विष्णु मूर्ति को चक्र, गदा के साथ जांघिका और वनमाला धारण किए दर्शाया है।

महिषामर्दिनी को चतुर्भुजी, षट्भुजी और अष्टभुजी के रूप में दर्शाया है। इस प्रकार दृश्यांकन सहित फलक मंदिर और स्तूप पर अधिक संख्या में लगाये गए सहेत — महेत, भीतर गांव और पटना के मंदिरों में रामायण, महाभारत और गुफाओं के दृश्य फलक लगे थे।

भित्ति चित्रण का वर्गीकरण

➤ भित्ति चित्रण :-

भित्ति चित्रण दीवारों पर बनाए जाने वाले चित्रों को कहते हैं। यह मनुष्य द्वारा बनाई जाने वाली दृश्य कलाओं का सबसे पुराना रूप है। भित्ति चित्रों को फ़ेरेकों नामक तकनीक से बनाया जाता है।

चित्रकला के सर्वाधिक कोमल रूपों में से एक है, जो रेखा और वर्ण के माध्यम से, विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त होती है। इतिहास का उदय होने से पूर्व कई हजार वर्षों तक जब मनुष्य मात्र गुफा में रहा करता था, उसने अपनी सौन्दर्यपरक प्रेरणा को संतुष्ट करने के लिए शैलाश्रय चित्र बनाए। भित्ति चित्र को मिट्टी व गाय के गोबर का घोल बनाकर दीवारों पर लिपाई की जाता है। इसे घर के तीन खास जगह पर ही बनाने की परंपरा है जैसे – भगवान व विवाहितों के कमरे में और शादी या किसी खास उत्सव पर घर की बाहरी दीवारों पर।

भित्ति चित्र दीवार या छत पर बनाया गया चित्र भित्ति चित्र कहलाता है। यह कलाकृति का एक प्राचीन रूप है। भित्ति चित्रों को म्यूरल भी कहते हैं।

➤ भित्ति चित्रों की खास बातें :-

- भित्ति चित्रों का इस्तेमाल दीवार या छत की सतह पर किया जाता है।
- भित्ति चित्रों को कमरे में केंद्र बिंदु के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।
- भित्ति चित्रों का इस्तेमाल पूरी दीवार या उसके सिर्फ एक हिस्से को सजाने के लिए किया जा सकता है।
- भित्ति चित्रों का इस्तेमाल चर्च, स्कूल और सरकारी इमारत और सार्वजनिक स्थानों पर किया जाता है भित्ति चित्रों का इस्तेमाल घर में भी किया जा सकता है।

➤ भित्ति चित्र का अर्थ :-

भित्ति चित्र का अर्थ है – ऐसा चित्र जो दीवार पर बनाया गया हो। इनकी शुरुआत नव प्रस्तर मानव के उन प्रयासों के साथ हुई जब उसने गुफाओं की दीवारों पर प्राकृतिक रंगों से अपने जीवन से जुड़े चित्र बनाए।

➤ भित्ति चित्रण की प्रक्रिया :-

- भित्ति चित्र को किस तरह से देखा जाएगा, यह ध्यान में रखना चाहिए।
- डिजाइन तत्वों को इस तरह से शामिल करना चाहिए कि विभिन्न स्तर के कलाकार इसे समायोजित कर सकें।
- वस्तुओं के पैमाने को ध्यान में रखना चाहिए।
- भित्ति चित्रों का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से जुड़ा है। ये गुफाओं, कब्रों, छतों और दीवारों पर बनाए जाते थे। भित्ति चित्रों के जरिए लोग अपने अस्तित्व का इजहार करते रहे हैं।

➤ भित्ति चित्रों की शैलिया :-

- भित्ति चित्रों में प्राकृतिक रंगों और पिगमेंट को कैल्शियम कार्बोनेट (चूना) प्राकृतिक बाइंडरों में डाला जाता था और दीवारों के सुखे प्लास्टर पर लगाया जाता था।
- मंदिरों में भित्ति चित्रों को पवित्र माना जाता था।

➤ भित्ति चित्र की उत्पत्ति :-

भित्ति चित्र 30,000 ईसा पूर्व से शुरू होते हैं जो फ्रांस के चौवटे गुफा में सबसे पहले की पेंटिंग से मिलते हैं। सबसे ज्यादा पेंटिंग 3150 ईसा पूर्व में मिस्त्र के मकबरों 100 ईसा पूर्व, 79 ई0. में पोम्पई मिनइन स्थानों से है। प्राचीन पेंटिंग जिस पुरी अवधि में है उसे ऊपरी पुरापाषाण काल के रूप में जाना जाता है।

भित्ति चित्र की शुरुआत भित्ति चित्रकला की उत्पत्ति पूरा पाषाण युग के दौरान हुई थी। यह पेंटिंग गुफाओं, छतों, पत्थरों पर चित्रित की जाती थी। भारत में कहीं भित्ति चित्र 14वीं शताब्दी के हैं और केरल में पाए गए हैं।

➤ चित्र के जनक उत्तर एवं स्पष्टीकरण :-

हालांकि जोहान विंकलमैन (जर्मन) सहित कई उम्मीदवार हैं। लेकिन कला इतिहास के “पिता” सहित कई उम्मीदवार हैं। लेकिन कला इतिहास के “पिता” को अक्सर जियोर्जियो बासारी माना जाता है। बसारी जो 1511 में फ्लोरेंस के पास पैदा हुए थे और 1574 में वहीं पर मर गए। खुद एक वास्तुकार और चित्रकार थे।

➤ प्रकृति और तकनीक :-

भित्ति चित्रांकन सभी अन्य प्रकार की चित्रात्मक कलाओं से स्वाभाविक रूप से अलग है, क्योंकि यह वास्तुकला से जैविक रूप से जुड़ा हुआ है। रंग, डिजाइन और विषयगत उपचार का उपयोग भवन के स्थानिक अनुपात की अनुभूति को मौलिक रूप से बदल सकता है। इस अर्थ में, भित्ति चित्रांकन का एकमात्र ऐसा रूप है जो वास्तव में त्रि-आयामी है, क्योंकि यह किसी दिए गए स्थान को संशोधित करता है और उसमें भाग लेता है।

बीजान्टिन मोजेक सजावट ने जैविक वास्तुशिल्प रूप के लिए सबसे बड़ा सम्मान दिखाया। दूसरी ओर, पुनर्जागरण के महान कलाकारों ने अंतरिक्ष के लिए एक भ्रमपूर्ण भावना पैदा करने का प्रयास किया और बाद के बारीक, काल के उत्तादों ने ऐसे कट्टरपंथी प्रभाव प्राप्त किया कि ऐसा लगता है कि दीवारें या छतें लगभग पूरी तरह से घुल गई हैं। वास्तुकला से इसके जैविक संबंध के अलावा, भित्ति चित्रांकन की एक दूसरी विशेषता इसका व्यापक सार्वजनिक महत्व है। भित्ति चित्र कलाकार को दीवार की संरचनात्मक आवश्यकताओं और व्यक्त विचार दोनों के संदर्भ में उचित पैमाने पर एक सामाजिक धार्मिक या देशभक्ति विषय को चित्रात्मक रूप से समझना चाहिए।

➤ भित्ति चित्र के प्रकार :-

भित्ति चित्र कई तरह के होते हैं जैसे कि – फ्रेस्को, मोजेक, एनकास्टिक, सना हुआ गिलास, फोटोग्राफी, स्प्रेंटिंग, विज्ञापन भित्ति चित्र आदि। भित्ति चित्रों की शैली कलाकारों पर निर्भर करती है।

भित्ति चित्रकला सबसे पुरानी चित्रकला है। प्रागैतिहासिक युग के ऐतिहासिक रिकॉर्ड में पहले मिट्टी के बर्तन बनाए जाते थे। लेकिन कुछ समय बाद लोगों ने मिट्टी का प्रयोग दीवारों पर चित्र बनाने के लिए करने लगे। भित्ति चित्रकला में दीवारों पर चित्र बनाने के लिए करने लगे। भित्ति चित्रकला में दीवारों पर ज्यामितिक आकर कलापूर्ण अभिप्राय, पारंपरिक आकल्पन, सहज बनावट और अनुकरणमूलक सरल आकृतियों में निहित स्वच्छंद और आकल्पन, उन्मुक्त आवेग और रैखिक ऊर्जा, अनोखी ताजगी और चाक्षुष सौंदर्य सृष्टि करती है।

भारत के भित्ति चित्र कहां-कहां पाए जाते हैं – भारत भर में 20 से अधिक स्थानों पर इस अवधि के भित्ति चित्र पाए जाते हैं जिनमें मुख्य रूप से प्राकृतिक गुफाएं और चट्टान – कटाई वाले कक्ष शामिल हैं। इस समय की सर्वोच्च उपलब्धियां अजंता, बाघ, सितनवासल, अरमामलाई गुफा (तमिलनाडु), रावण छाया रॉक शेल्टर, एलोरा गुफाओं में कैलाश नाथ मंदिर की गुफाएं हैं।

शास्त्रीय युग में चेहरे पर अजंता प्रतिरूपण की वृताकार सुनम्यता और मध्यकालीन प्रवृत्तियों की भुजाओं के कोणीय मोड़ जैसी दोनों विशेषताओं को यहां भली भांति चिह्नित किया गया है। यह संभवत

सक्रांति काल का एक उत्पाद है। दक्षिण भारत में सर्वोधिक महत्वपूर्ण भित्ति चित्र तंजौर तमिलनाडु में है।

➤ भित्ति चित्रकला की कला शैलियाँ एवम् विशेषताएँ :-

भित्ति चित्रकला या कलाकृति इतिहास के पन्नों से परे के समय की हैं और प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक के जीवन की मूल्यवान गवाही के रूप में है। यह आधुनिक मनुष्य से जुड़ा है जो पहली बार अफ्रीका में दिखाई दिया था तथा कुछ समय बाद उत्तर की ओर यूरोप और पलायन करना शुरू कर दिया था। इस लेख में हम भित्ति चित्र की अवधारणा, परिभाषाएं और विशेषताएं दे रहे हैं। दक्षिण फ्रांस में लासकोक्स गोटसि में गुफा चित्रों से लेकर भारत में भीमबेटका गुफा चित्रकला से लेकर आज की सड़क कला भित्ति चित्रों तक लोग दुनिया भर में कई जगहों पर अपने अस्तित्व के निशान छोड़ते जा रहे हैं।

➤ विशेषताएं :-

यह एक प्राचीनतम मानव कला रूप है। जैसा कि कई प्राचीन मानव बस्तियों में गुफा चित्रों से पता चलता है और इसे पूरी दुनिया में पाया जा सकता है। भित्ति चित्रकला की विशेषताएं नीचे दी गई हैं।

- यह किसी विशेष सभ्यता के लोगों की गतिविधियों को दर्शाता है। समय के एक क्षण को समेटता है तथा शिकार संग्रहण पारिवारिक जीवन से लेकर धार्मिक और अत्येष्टि दृश्यों तक को दर्शाता है।
- यह विविध कलात्मक शैलियों यथार्थवाद, नाटकीय पैमाने और अदभुत गहराई का समायोजन है।
- कलाकृति में हाथों की मुद्राओं के माध्यम से भावनाओं की अभिव्यक्ति दर्शाई गई है।
- इसमें धर्म से लेकर सभी विषयों के चित्रण के माध्यम से राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन को प्रतिबंधित किया है।

भित्ति चित्रण चित्रकला के सर्वाधिक कोमल रूपों में से एक है जो रेखा और वर्ण के माध्यम से विचारों तथा भावों को अभिव्यक्ति देता है। इतिहास का उदय होने से पूर्व कई हजार वर्षों तक जब मनुष्य मात्र गुफा में रहा करता था। उसने अपनी सौंदर्यपरक अतिसंवेदनशीलता और सृजनात्मक प्रेरणा

को संतुष्ट करने के लिए शैलाश्रय चित्र बनाएं। चित्रकला का उद्देश्य या महत्व है कि यह चित्रकार की भावनाओं और विचारों की भौतिक अभिव्यक्ति प्रदान करती है। चित्रकार अपनी दृष्टि को सटीक रूप से प्रस्तुत करने के लिए कई अलग-अलग रूपों और कला शैलियों का उपयोग कर सकता है।

कला कृतियों का कलात्मक विवरण

1. गाय की प्रतिमा :-

चित्र संख्या – 1 गाय की प्रतिमा का है। गाय की यह प्रतिमा पत्थर को उकेरकर बनाई गई है, जिसमें उसके चेहरे को स्पष्ट नहीं दिखाया गया है। गाय को बैठी हुई अवस्था में बनाया गया है और गाय को काफी उभार देकर तथा मोटाई में बनाया गया है। यह प्रतिमा कपाल मोचन में सरोवर के पास स्थित है।

2. बछड़े की प्रतिमा :-

चित्र संख्या – 2 में दो बछड़े के प्रतिमा का है। बछड़े को पत्थर पर उकेरा गया है। यह भी मंदिर निर्माण के समय खोजा गया तथा काफी मोटा बनाया है, तथा बछड़े को काफी झुका हुआ बनाया गया है। यह प्रतिमा कपाल मोचन सरोवर के समीप ब्रह्मा कपाली की प्रतिमा के पास स्थित है।

3. हनुमान की प्रतिमा :-

चित्र संख्या – 3 में हनुमान जी की प्रतिमा का है तथा यह पत्थर की बनी हुई प्रतिमा है और पत्थर को उभारकर तथा उकेरकर बनाई गई है। चेहरे के भाव स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई पड़ रहे हैं और हनुमान जी ने अपने दाएं हाथ में गदा अपने कंधे पर रखी हुई है और दूसरे कंधे पर राम जी को बिठाया हुआ है। हनुमान जी की पूंछ उनके सिर के पीछे से काफी बड़ी और मुड़ी हुई दिखाई दे रही है। हनुमान जी का चेहरा लंबा तथा उभराकर बनाया गया है।

दाएं कान का कुंडल भी बनाया है जो की गोल तथा उभरा हुआ है। राम जी के चेहरे के भाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। मूर्ति की शरीर रचना में लयात्मकता दिखाई है। यह पत्थर की बनी हुई है।

4. ब्रह्मा कपाली की प्रतिमा :-

चित्र संख्या – 4 में ब्रह्म कपाली की मूर्ति का है जो कपाल मोचन सरोवर के पास स्थित है। यह कलाप भी खुदाई के दौरान मिला था और यह पत्थर का बना हुआ है। देखने में इसमें ब्रह्मा जी के तीन चेहरे दिखाई पड़ते हैं। दो चेहरे दोनों किनारों पर तथा एक चेहरा बीच में दिखाई पड़ता है। पत्थर के ऊपरी हिस्से में तीन – चार सुराख बनाए गए हैं जिसमें से एक बहुत बड़ा और तीन चार छोटे – छोटे हैं। यह कपाल लगभग 1.5 फुट का बना हुआ है।

5. दुर्गा की प्रतिमा :-

चित्र संख्या - 5 में दुर्गा की प्रतिमा को दिखाया गया है तथा यह प्रतिमा पत्थर से बनाई गई है। इसमें देवी दुर्गा को दीवार में स्थित दिखाया गया है। मूर्ति को शरीर रचना में खड़ापन और मुद्रा में स्थिरता विषय के अनुरूप बनाई गई है। दुर्गा के चार हाथ बनाए गए हैं। दो हाथों में कंगन पहने हुए दिखाया गया है। अलंकृत उदरबद्ध का अंकन भी इसी मूर्ति में हुआ था। कमर को काफी पतली तथा लचीली दिखाया गया है। मस्तक पर अलंकृत मुकुट शोभायमान है। दो हाथों में विभिन्न आयुध पकड़ाए गए हैं। दुर्गा को सिंह पर बैठे हुए दिखाया गया है। दूसरी तरफ राक्षस का सिर पड़ा हुआ है। पैर भग्न हो चुके हैं। मूर्ति संतुलित, ऊर्जावान, जीवंत तथा भव्य है।

भावों को मुख मुद्रा एवं शरीर की विभिन्न चेष्टताओं के माध्यम से सफलतापूर्वक व्यक्त किया गया है। मूर्ति की शरीर रचना में लयात्मकता दिखाई है। इसमें दुर्गा को वैष्णव मुद्रा में दिखाया गया है। दुर्गा के पीछे दाएं और बाएं और अस्पष्ट आकृतियों में बनाई गई हैं। इस प्रतिमा को अधिक सुंदर बनाने के लिए इसे अनेक रंगों से सजा दिया गया है। दुर्गा के मुकुट पर पीला रंग लगाया गया है। आंखें, भौंहे और सिर के बाल भूरे रंग से बनाए गए हैं। आभूषण हरे रंग से तथा राक्षस के चेहरे को गुलाबी रंग से दिखाया गया है। पीछे दीवार पर अस्पष्ट आकृतियों में पीला और हरा रंग लगाया गया है। दुर्गा के होंठ गुलाबी रंग से दिखाए गए हैं।

दुर्गा शक्ति एवं शौर्य का प्रतीक है। वह दुष्टों का संहार कर अपने भक्तों की रक्षा करती हैं। शुभ भेदागम में दुर्गा की उत्पत्ति आदिशक्ति से बताई गई है। भारत के विभिन्न दुर्गा मंदिरों में देवी को सिंहारूढ़ दिखाया गया है। उनके सिर पर मुकुट तथा हाथों में आयुध होते हैं।

6. गणेश :-

चित्र संख्या - 6 गणेश की प्रतिमा का है तथा यह प्रतिमा कपाल मोचन में मंदिर निर्माण के समय खुदाई के दौरान प्राप्त हुई थी। इसमें पत्थर पर आकृति को उभारा गया है। अनुमानित है कि यह प्रतिमा गणेश जी की है, क्योंकि देखने में इसमें गणेश जी का चेहरा प्रतीत होता है तथा इसमें दो बड़ी-बड़ी आंखों को उभारकर गोलाई में दिखाया गया है।

7. शिव पार्वती की प्रतिमा :-

चित्र संख्या - 7 में शिव पार्वती की प्रतिमा का है। यह प्रतिमा कपाल मोचन में शिव के मंदिर में विराजमान है तथा इस मूर्ति को पत्थर से उकेरकर बनाया गया है तथा शिव की गोद में गणेश भी

विराजमान है, व एक तरफ हनुमान जी स्थित है व शिव के एक हाथ में त्रिशूल है और दूसरा हाथ नंदी के ऊपर विराजमान है, तथा पीछे माता पार्वती हैं। हनुमान जी के एक हाथ में गदा तथा दूसरा हाथ मानव कल्याण व सुख समृद्धि के लिए स्थिर है। यह मानव कल्याण का अतिगमन का परिचायक है तथा यह मूर्ति बहुत ही आकर्षक व मन को संतुष्ट करने वाली आकृति है। शिव, पार्वती तथा गणेश, हनुमान जी की यह प्रतिमा बहुत ही आकर्षक तथा मानव मन को रिझाने वाली प्रतिमा है।

8. देवाकृति :-

चित्र संख्या - 8 किसी देव प्रतिमा का है। यह प्रतिमा कपाल मोचन मंदिर में स्थित है और इसमें एक आकृति को पत्थर से उकेर बनाया गया है। पत्थर पर एक मंदिर बनाया गया है और उसमें एक देवाकृति को बैठे हुए बनाया गया है तथा उस आकृति को स्पष्ट रूप से नहीं दिखाया गया है। चेहरा गोल बनाया गया है। चेहरे में भाव नजर नहीं आ रहे हैं तथा भुजाएं छोटी-छोटी बनाई गई है।

9. गणेश :-

चित्र संख्या - 9 गणेश की प्रतिमा का है जो कि कपाल मोचन मंदिर में स्थित है और वहीं से प्राप्त हुई है। यह एक रिलीफ मूर्ति है जिसमें पत्थर पर एक मंदिर को बनाया गया है और बीच में ही गणेश जी की प्रतिमा को स्थित किया गया है। गणेश जी की प्रतिमा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ रही। गणेश जी के दोनों तरफ खंबे बनाए गए हैं तथा यह प्रतिमा बहुत ही प्राचीन है।

10. राम, लक्ष्मण और सीता :-

चित्र संख्या - 10 राम, लक्ष्मण और सीता जी की प्रतिमा का हैं। ये तीनों मूर्तियां प्रस्तर की बनी हुई हैं। इसमें राम जी की प्रतिमा काले पत्थर से बनाई गई है और सीता तथा लक्ष्मण के प्रतिमा सफेद पत्थर से बनाई गई है। तीनों प्रतिमाओं की आंखें बड़ी-बड़ी तथा पैनी बनाई गई है। नाक सुंदर तथा होंठ पतले बनाए गए हैं। चेहरे में उभार, बड़ी अच्छी तरह से दिखाया गया है। चेहरे गोल दिखाए गए हैं। कपाल मोचन में प्रतिवर्ष मेला लगने के कारण अनेक श्रद्धालु आते हैं। इसलिए इन्हें सुंदर मुकुट और वस्त्रों से सुसज्जित कर दिया जाता है।

11. संत श्री शिरोमणि रविदास जी :-

चित्र संख्या - 11 रविदास जी की प्रतिमा का है तथा यह मूर्ति पत्थर को उकेरकर बनाई गई है। इस मूर्ति में गुरु जी की मोटी आंखें तथा पतले होंठ बनाए हुए हैं। तथा कान लंबे दिखाई दे रहे

हैं। मूर्ति बहुत ही भव्य तथा आकर्षक बनाई हुई है। व गुरु जी को सिंहासन पर विराजमान किया है। यह मूर्ति आकर्षक तथा मन को लुभावने वाली है। दाढ़ी को पत्थर से उकेरकर बनाया तथा यह बहुत ही भावक रूप को प्रकट करती है। व मूर्ति के चारों तरफ बहुत ही सुंदर दृश्य दिखाया गया हैं।

12. हाथी :-

चित्र संख्या – 12 हाथी की प्रतिमा का है तथा यह हाथी की मूर्ति पत्थर को उकेरकर बनाई गई है। यह मंदिर के दरवाजे के बाहर कपाल मोचन में सुरजकुंड मंदिर में स्थित है तथा हाथी के दांतों को नुकीला बनाया गया है। सलेटी व लाल रंग का पेंट किया गया है तथा सूड में सफेद तथा सलेटी रंग किया गया है। यह हाथी की मूर्ति बहुत ही भव्य व आकर्षण मूर्ति है।

13. राधा कृष्ण :-

चित्र संख्या – 13 राधा कृष्ण की प्रतिमा का है तथा यह प्रतिमा बहुत ही भावुक आकर्षक तथा मन को रिझाने वाली है व इसमें कृष्ण के काले रंग को दिखाया गया है। राधा के रंग की तुलना ताजा खिले हुए कमल या चमकते हुए सुनहरे सूर्योदय से की जाती है। राधा रानी की बड़ी आंखें अभ्यंजक हैं जो उनके भीतर असीम प्रेम और करुणा को दर्शाती हैं। उनकी उपस्थिति इतनी आकर्षक है की सबसे सुंदर और दिव्य प्राणी भी उनके दिव्य आकर्षण से मंत्रमुग्ध हो जाते हैं तथा इस प्रतिमा में राधा कृष्ण के संतरी वर्ण के वस्त्रों को दिखाया गया है।

सिर पर बहुत ही आकर्षक तथा सुंदर मुकुट विराजमान है तथा गले में बहुत ही सुंदर मोतियों की माला पहने हुए हैं। कृष्ण के हाथों में, कानों को रिझाने वाली, मीठी वाणी से निर्मित बांसुरी को आकर्षक रूप में बनाया गया है तथा बांसुरी के मधुर आवाज सुनकर मन महक उठता है तथा बांसुरी की मधुर वाणी मन को बहुत ही भावुक तथा मन को मनमोहन बनाती है।

14. महर्षि कश्यप एवं बाबा कालु जी :-

चित्र संख्या – 14 महर्षि कश्यप एवं बाबा कालु जी की प्रतिमा का है तथा यह प्रतिमा महर्षि कश्यप के मंदिर में स्थित है। कालू बाबा को हल्द्वानी का रक्षक भी माना जाता है और कहा जाता है कि कालु सिद्ध बाबा ने श्रद्धालुओं को पहले हल्द्वानी पहुंचकर यहां भगवान शनि देव की उपस्थिति जानकर एक मठ की स्थापना की थी। यह मठ कालू बाबा के नाम से बन गया तथा मंदिर में महर्षि कश्यप तथा कालू बाबा की प्रतिमा के साथ दाएं तरफ शनि देव की प्रतिमा भी है।

15. द्रौपदी :-

महाभारत की पात्र द्रौपदी एक राजकुमारी थी। वह पांचाल देश के राजा द्रुपद की पुत्री थी। द्रौपदी को कृष्णा, पांचाली और यज्ञसेनी भी कहा जाता है। यह पांचो पांडवों की पत्नी थी। वह एक सुंदर, बुद्धिमान और सदाचारिणी स्त्री थी। वह स्वाभिमानी, सबला और विवेकशील थी तथा वह नारी जाति के पक्षधर थी। वह सत्य धर्म की एक निष्ठा साधिका थी। वह एक प्रसिद्ध गरिमामय और वफादार पत्नी थी। वह बड़ों की सेवा और माता-पिता के आज्ञा पालन को अपना धर्म समझती थी।

16. अर्जुन :-

अर्जुन महाभारत के मुख्य पात्र हैं तथा वह इंद्रदेव एवं कुंती के पुत्र थे। पांडवों के तीसरे स्थान पर थे। महाराज पांडव उनके आध्यात्मिक पिता थे तथा अर्जुन सबसे अच्छे धनुर्धर और द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य थे। जीवन में अनेक अवसर पर उन्होंने अपने श्रेष्ठ धनुर्धारी होने का परिचय दिया। इन्होंने द्रौपदी को स्वयंवर में जीता था। कुरुक्षेत्र युद्ध में यह भी एक प्रमुख योद्धा थे। अर्जुन ने ही कुरुक्षेत्र में श्री कृष्ण से अनेकों प्रश्नों को किया जो गीता में वर्णित है।

यह मूर्ति दीवार पर सीमेंट से बनाई गई है तथा अर्जुन के एक हाथ में धनुष विराजमान हैं। व उनको थोड़ी सी तिरछी तरह से बनाया गया है। व वस्त्रों की रूपरेखा तथा रंग रूप बहुत अच्छा है।

17. युधिष्ठिर :-

युधिष्ठिर महाभारत के पांचो पांडवों में सबसे बड़े भाई थे। वे धर्मराज (यमराज) के पुत्र थे और धर्म का विशेष ज्ञान रखते थे। युधिष्ठिर को धर्मराज युधिष्ठिर भी कहा जाता है। प्राचीन भारतीय महाकाव्य महाभारत के अनुसार पांच पांडवों में सबसे बड़े भाई थे व ये यम और कुंती के पुत्र थे, जो भाला चलाने में निपुण थे और वह कभी झूठ नहीं बोलते थे। महाभारत के अंतिम दिन उन्होंने अपने मामा शाल्य का वध किया, जो कौरवों की तरफ थे।

मूर्ति को सीमेंट से दीवार पर बनाया गया है। तथा मूर्ति कपाल मोचन में एक मंदिर सूरजकुंड पर बनाई गई है तथा इसकी पूर्णता स्पष्ट रूप से दिखाया गया है।

18. भीम :-

महाभारत के पात्र भीम, पांडवों में दूसरे नंबर के योद्धा थे। वह पवन देव के वरदान से कुंती के गर्भ से पैदा हुए थे। भीम को वायु देव के अंशावतारी माना जाता है। भीम की ताकत और बहादुरी के कई प्रसंग महाभारत में मिलते हैं तथा भीम को युधिष्ठिर का सबसे प्रिय सहदर माना जाता है। भीम

का जीवन असधारण घटनाओं से भरा हुआ था। भीम ने कुरुक्षेत्र युद्ध में सौ कौरव भाइयों को मारा था। भीम की प्रतिद्वंद्विता कौरवों खास तौर पर दुर्योधन से रही है।

भीम की इस मूर्ति को बहुत ही आकर्षक तथा सहज रूप में दिखाया गया है।

19. नकुल :-

नकुल प्राचीन भारतीय महाकाव्य महाभारत में पांच पांडव भाइयों में से चौथे थे। वह और उनके जुड़वा भाई सहदेव माधुरी के पुत्र थे, जो पांडव कुल पिता पांडु की पत्नियों में से एक थी और अश्वनी कुमार देवताओं के दिव्य जुड़वा चिकित्सक जिन्हें पांडु की संतान पैदा करने में असमर्थता के कारण अपने पुत्रों को जन्म देने के लिए बुलवाया था तथा नकुल को अपने वंश का सबसे अच्छा पुत्र बताया गया है। वह अपनी सुंदरता, तलवारबाजी और घोड़े रखने में कौशल के लिए प्रसिद्ध था।

यह प्रतिमा कपाल मोचन में सूरज कुंड पर एक मंदिर में है तथा इसमें नकुल के हाथ में तलवार को दिखाया गया है तथा वस्त्र भूषा को बहुत ही आकर्षक रूपों में बनाया गया है व नकुल के सहज स्वभाव को परिभाषित किया गया है।

20. सहदेव :-

महाभारत के पात्र सहदेव का जन्म माता माद्री के गर्भ से हुआ था। वे पांडवों में सबसे छोटे थे। सहदेव और उनका जुड़वा भाई नकुल देव चिकित्सक अश्विनी के वरदान से पैदा हुए थे। सहदेव पांडु के पांचों भाइयों में से एक थे जो चंद्र वंश के प्रसिद्ध सदस्य और कूरु के सिंहासन के उत्तराधिकारी थे तथा सामूहिक नाम पांडव उनके पिता से उत्पन्न हुआ है। हालांकि पांडव एक श्राप से पीड़ित थे, जिसके अनुसार अगर वह किसी महिला के साथ यौन संबंध बनाते तो उनकी मृत्यु हो जाती। तथा वह सरल स्वभाव के महान व्यक्ति थे।

उनके हाथ में तलवार विराजमान है तथा चेहरे को बहुत ही सरल तरीके से बनाया गया है। तथा वह आकर्षित स्वभाव को स्पष्ट करता है।

21. वाल्मीकि :-

रामायण वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य है जिसमें श्री राम की गाथा है। इसे आदिकाव्य तथा इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि भी कहा जाता है। संस्कृत साहित्य परंपरा में रामायण और महाभारत को इतिहास कहा गया है और दोनों सनातन संस्कृति के सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ हैं तथा इस प्रतिमा में वाल्मीकि जी को बहुत ही सुंदर रूप को प्रस्तुत किया गया है।

तथ व इसमें वाल्मीकि जी को हल्के रंग के वस्त्रों में दिखाया गया है। यह प्रतिमा बहुत ही आकर्षक रूप को स्पष्ट करती है।

22. बाबा श्री पुरण नंद जी :-

बाबा पुरण नंद जी की यह प्रतिमा कश्यप मन्दिर कपाल मोचन में स्थित है। तथा यह प्रतिमा को सृदढ़ तथा स्वभाव पूर्ण से बनाया गया है। यह महर्षि कश्यप मन्दिर में एक सेवादार थे व सन् 2016 में यह समाधि लीन हो गये थे। यह प्रतिमा पत्थर को उकेरकर बनाई गई है व आंखों तथा चहरे को स्पष्ट रूप में दिखाया गया है तथा गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है।

23. परशुराम :-

परशुराम शाब्दिक रूप से कुल्हाड़ी वाला राम जिन्हें राम जामदग्न्य, राम भार्गव और वीरराम भी कहा जाता है। हिंदू धर्म में संरक्षक भगवान विष्णु के दशावतार में से छठे अवतार हैं। हिंदू परंपरा में उन्हें पृथ्वी पर बुराई का नाश करने वाला माना है। किंवदन्ती के अनुसार शिव ने उन्हें सलाह दी कि वे जाकर धरती माता को अपराधियों, बुरे व्यवहार वाले पुरुषों, चरमपंथियों, राक्षसों और घमंड से अंधे लोगों से मुक्त करें। उन्हें चिरंजीवी में से एक के रूप में वर्णित किया गया है, जो कलयुग के अंत में विष्णु के दसवें और अंतिम अवतार कल्कि के गुरु के रूप में प्रकट होंगे।

24. गणेश :-

भगवान गणेश देवों के देव भगवान शिव और माता पार्वती के सबसे छोटे पुत्र हैं। भगवान गणेश की पत्नी का नाम रिद्धि और सिद्धि है। रिद्धि और सिद्धि भगवान विश्वकर्मा की पुत्रियाँ हैं। भगवान गणेश का नाम हिंदू धर्म में किसी भी शुभ कार्य करने से पहले लिया जाता है। उन्हें गजानन इसलिए कहा गया है कि उनके सिर को भगवान शंकर ने काट दिया था। बाद में उनके धड़ पर हाथी का सिर लगाकर उन्हें पुनः जीवित किया गया। शनि देव जब बाल गणेश को देखने गए तो उनकी दृष्टि से उनका मस्तक भस्म हो गया। बाद में विष्णु जी ने एक हाथी का सिर उनके धड़ पर लगाकर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया था।

25. मंदिर का भित्ति चित्रण :-

चित्र संख्या – 25 में मंदिर के भित्ति चित्रण का है। कपाल मोचन में प्राचीन समय के मंदिरों का कुछ ही अंश शेष है। मंदिरों की दीवारों पर इसी तरह की चित्रकारी की गई हैं। दीवार के ऊपरी

हिस्से में कोणाकार आकृतियां बनी हुई है, जो आपस में जुड़ी हुई हैं, तथा इन आकृतियों के बीच सितारे बने हुए हैं। दीवार का कुछ हिस्सा नष्ट हो चुका है। दीवार पर आले की तरह रेखा चित्रण किया गया है। उनके बीच में फूल बने हुए हैं।

26. हनुमान जी :-

हनुमान जी जिन्हें बजरंगबली और पवन पुत्र के नाम से भी जाना जाता है। हिंदू धर्म में एक महत्वपूर्ण देवता हैं। वे भगवान राम के अनन्य भक्त और हनुमान के रूप में जाने जाते हैं। उनका जन्म अंजना और केसरी में हुआ था और वह भगवान शिव के रुद्र अवतार माने जाते हैं तथा हनुमान जी का मुख्य अस्त्र गदा माना जाता है। हनुमान जी शक्तिशाली, बलवान और भगवान राम के प्रति उनकी भक्ति के लिए जाना जाता है। हनुमान जी को शिव के 11 वें रुद्र अवतार के रूप में भी माना जाता है। बचपन से ही दिव्या होने के साथ-साथ उनके अंदर असीमित शक्तियों का भंडार था। हनुमान सूरज को फल मानते हुए पकड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं तथा जो दैवीय उद्देश्य और आकाश से शक्ति का प्रतीक है।

27. शिवलिंग :-

शिव जो कि हिंदी में शिवा है। यह महत्वपूर्ण हिंदू देवता है जिन्हें जगत का संहारक और शैव संप्रदाय में सर्वोच्च ईश्वर माना जाता है। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ त्रिमूर्ति के रूप में भी पूजे जाते हैं। शिव को कई नाम से जाना जाता है जैसे कि महादेव, शंकर, भोलेनाथ, शिव को अनादि और सृष्टि प्रक्रिया के आदि स्रोत के रूप में माना जाता है। उन्हें जगत का संहारक देवता भी माना जाता है, जो त्रिमूर्ति के विनाश का प्रतिनिधित्व करते हैं। योग परंपरा में शिव को एक गुरु के रूप में पूजा जाता है।

28. शिव गणेश तथा पार्वती :-

शिव (महादेव), गणेश और पार्वती हिंदू धर्म में से एक महत्वपूर्ण त्रिमूर्ति का हिस्सा है। पार्वती शिव की पत्नी और गणेश उनका पुत्र एक दूसरे के पूरक हैं और ब्रह्मांड को बनाए रखने वाली शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। गणेश को विघ्नहर्ता (बाधाओं को दूर करने वाला) के रूप में जाना जाता है। जबकि पार्वती को शक्ति और ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है। शिव को हिंदू धर्म में सर्वोच्च देवता माना जाता है। वह विनाश और परिवर्तन के देवता हैं और उन्हें ब्रह्मांड को बनाए रखने वाली शक्ति माना

जाता है तथा शिव के हाथ में त्रिशूल तथा दूसरे में डमरू है तथा शिव पार्वती के बीच गणेश विराजमान है।

29. शिव पार्वती और हनुमान जी :-

शिव, पार्वती और हनुमान जी की प्रतिमा बहुत ही आकर्षक तथा सुंदर बनाई हुई है तथा शिवजी की गोद में गणेश जी विराजमान है तथा शिव के एक हाथ में त्रिशूल व एक हाथ में गणेश जी को पकड़ा हुआ है। व उनकी और एक तरफ माता पार्वती विराजमान है। शिव गणेश नंदी पर विराजमान है व हनुमान जी के हाथ में गदा है। वह बुद्धि, ज्ञान, शक्ति और प्रेम का प्रतीक है। व हिंदू धर्म की महत्वपूर्ण शिक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

30. नारद जी :-

नारद जी हिंदू धर्म में एक महत्वपूर्ण ऋषि और संदेश वाहक हैं। उन्हें ब्रह्मा जी का मानस पुत्र और भगवान विष्णु का परम भक्त माना जाता है। वे तीनों लोकों के बीच समाचार और ज्ञान का आदान-प्रदान करने के लिए जाने जाते हैं। नारद जी को ब्रह्मा जी के सात मानस पुत्रों में से एक माना जाता है। वे भगवान विष्णु के परम भक्तों में से एक हैं। नारद जी को तीन लोकों के बीच सुंदर संदेश ले जाने वाला भी माना जाता है। नारद जी को ऋषि भी माना जाता है जो देवताओं और मनुष्य के बीच संबंध स्थापित करता है।

उपसंहार

भारतीय मूर्तिशिल्प का इतिहास 2000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। इस दौरान इसमें भी अनेक परिवर्तन आए, अनेक शैलियाँ बदली, साथ ही कला के प्रति रुचियाँ भी बदली, रीतियों – नीतियों में भी अनेक परिवर्तन हुए। दरअसल मूर्ति कला का इतिहास इन्हीं युग – युगान्तरों में कला की शैलियों, नीतियों व रुचियों में आए परिवर्तनों का ही इतिहास है। जिसमें यह जानना कहीं अधिक रुचिकर है कि किस युग में कौन सी शैली ने विकास पाया। बनिस्बत इसके कि जाना जाए कि किस युग में शैली में विकास पाया, और यह कि मूर्ति बुद्ध की है या सीता, पार्वती या शिव की है आदि।

किसी युग में मूर्तियों को अत्यंत सादगीपूर्ण तरीके से बनाया गया, तो किसी युग में उसी को अत्यंत अलंकरण – पूर्ण तरीके से बनाना फैशन हो गया, तो कहीं पर अंगों को सुंदर-सुंदर बारीकी से तराशा गया। इसी को भिन्न-भिन्न युगों में कला की भिन्न-भिन्न शैलियों के नाम से जाना गया।

मूर्तियों की गणना इतिहास के अच्छे साधनों में होती है। इससे तत्कालीन समाज के स्तर का, धर्म और आर्थिक दशा आदि का ज्ञान होता है। हरियाणा से प्राप्त मूर्तियाँ अधिकतर धार्मिक संप्रदाय वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि से संबंध है। गैर धार्मिक मूर्तियाँ भी यहां से मिली हैं। दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व से 10वीं – 11वीं शताब्दी तक की है। हरियाणा के कुछ स्थान जैसे खोकराकोट, अस्थल बाहेर, सिरसा, कलायत, सिकंदरपुर, गुजरखेड़ी, कुरुक्षेत्र, सतकुम्भ, रूखी, कपाल मोचन, बिलासपुर और कंवारी से प्रस्तर की कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। पक्की मिट्टी के सांचे भी मिले हैं। सिरसा से दो सांचे मिले हैं एक शिव का, दूसरा कुषाणकालीन स्त्री का। पक्की मिट्टी के अनेक फलक जिन पर नमूने, दृश्य व आकृतियाँ अंकित हैं। नौरंगाबाद, खोखरकोट, अग्रोहा तथा पिहोवा से प्राप्त हुए हैं।

मानव ने अपनी धार्मिक आस्थाओं को अभिव्यक्त करने के लिए जिन प्रतिकों का निर्माण किया उनसे मूर्तिपूजा आरंभ हुई। ईश्वर की विविध रूपों में कल्पना की गई। देवी – देवताओं की मूर्त रूपों की पूजा हेतु स्थापना के लिए जो सुंदर भवन निर्मित हुए, वह भवन मंदिर कहलाए। जगाधरी से ही कुछ ही दूरी पर बिलासपुर कपाल मोचन में भी अनेक मंदिर स्थित हैं, जहां से प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कपाल मोचन में 1992 ईस्वी में कपालेश्वर महादेव मंदिर के प्रबंधक एवं संचालक डॉक्टर प्रेमचंद की देखरेख में मंदिर के नवनिर्माण के लिए खुदाई की गई, जहां से गुप्तकालीन अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई, जिनकी सुंदरता देखते ही बनती हैं। यह मूर्तियाँ धार्मिक हैं तथा इन्हें पत्थर पर उभारा गया है। तथा इन्हें बड़ी लयात्मकता के साथ बनाया गया है।

कुछ प्रतिमाएं काले पत्थर से बनाई गई हैं तथा कुछ सफेद पत्थर से बनाई गई हैं। कपाल मोचन में पुरातन मंदिरों के नष्ट होने के कारण इनका नवनिर्माण कर दिया गया और अब इनका कुछ भी अंश शेष बचा है जैसे मंदिर की आमलख शीला और भित्ति चित्रण। कपाल मोचन से प्राप्त कलाकृतियों की शोभा देखते ही बनती है।

इस शोध का उद्देश्य इतिहास में बसी कला पर प्रकाश डालना है। जिस प्रकार कलाकार अपनी कला व रचना को चित्रित करता है, उसी प्रकार यहां पत्थर पर चित्रण उकेरा देखकर लगता है कि मानव पत्थर में जान डाल दी गई हो। इसकी प्रतिमा देखते ही बनती है। अतः हमें अपनी संस्कृति व इतिहास से जुड़े रहना चाहिए, क्योंकि बिना इतिहास के कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। मैंने अपनी लघु शोध कार्य को पूर्ण निपुणता से पूरा किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ०. प्रकाश वीरेश्वर एवम् डॉ०. नुपूर शर्मा : कला दर्शन, पृ०. सं०. 1, 2, 5
2. डॉ०. ममता चतुर्वेदी : समकालीन भारतीय कला, पृ०. सं०. 115, 116
3. डॉ०. रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ०. सं०. 441, 45, 46
4. शास्त्री पंडित स्थाणुदत्त (1978) हरियाणा एक संस्कृति अध्ययन, पृ०. सं०. 75
5. अम्बाला डिस्ट्रिक्ट गजटियर (1970-74)
6. मनमोहन कुमार, अम्बाला एण्ड कुरुक्षेत्र (1978)
7. राजेन्द्र प्रताप : हरियाणा संस्कृति दिग्दर्शन (हरियाणा के तीज त्योहार)
8. अग्रवाल जगन्नाथ : हरियाणा संस्कृति दिग्दर्शन (हरियाणा का पुरातत्व)
9. डॉ०. शुकदेव क्षेत्रिय : भारतीय कला गौरव
10. yamunanagar.nic.in

चित्र संग्रह सूची

क्र० सं०.	चित्र
1	गाय की प्रतिमा का चित्र
2	बछड़े की प्रतिमा का चित्र
3	हनुमान की प्रतिमा का चित्र
4	ब्रह्म कपाली की प्रतिमा चित्र
5	दुर्गा की प्रतिमा
6	गणेश जी
7	शिव पार्वती की प्रतिमा
8	देवाकृति की प्रतिमा का चित्र
9	गणेश की प्रतिमा का चित्र
10	राम, लक्ष्मण और सीता
11	संत शिरोमणि रविदास जी
12	हाथी की प्रतिमा का चित्र
13	राधा कृष्ण का चित्र
14	महर्षि कश्यप एवं बाबा कालु की प्रतिमा
15	द्रोपदी की प्रतिमा का चित्र
16	अर्जुन की प्रतिमा का चित्र
17	युधिष्ठिर का चित्र
18	भीम की प्रतिमा का चित्र
19	नकुल की प्रतिमा का चित्र
20	सहदेव की प्रतिमा का चित्र
21	वाल्मीकि जी की प्रतिमा का चित्र
22	बाबा श्री पुरण चंद जी
23	परशुराम की प्रतिमा का चित्र
24	गणेश की प्रतिमा का चित्र
25	मंदिर का भित्ति चित्रण
26	हनुमान जी

- 27 शिवलिंग
- 28 शिव, गणेश तथा पार्वती की प्रतिमा का चित्र
- 29 शिव पार्वती तथा हनुमान की प्रतिमा का चित्र
- 30 नारद जी की प्रतिमा का चित्र

चित्र सूची



गाय की प्रतिमा का चित्र



बछड़े की प्रतिमा का चित्र



हनुमान की प्रतिमा का चित्र



ब्रह्म कपाली की प्रतिमा चित्र



दुर्गा की प्रतिमा



गणेश जी



शिव पार्वती की प्रतिमा



देवाकृति की प्रतिमा का चित्र



गणेश की प्रतिमा का चित्र



राम, लक्ष्मण और सीता



संत शिरोमणि रविदास जी



हाथी की प्रतिमा का चित्र



राधा कृष्ण का चित्र



महर्षि कश्यप एवं बाबा कालु की प्रतिमा



द्रोपदी की प्रतिमा का चित्र



अर्जुन की प्रतिमा का चित्र



युधिष्ठिर का चित्र



भीम की प्रतिमा का चित्र



नकुल की प्रतिमा का चित्र



सहदेव की प्रतिमा का चित्र



वाल्मीकि जी की प्रतिमा का चित्र



बाबा श्री पुरण चंद जी



परशुराम की प्रतिमा का चित्र



गणेश की प्रतिमा का चित्र



मंदिर का भित्ति चित्रण



हनुमान जी



शिवलिंग



शिव, गणेश तथा पार्वती की प्रतिमा का चित्र



शिव पार्वती तथा हनुमान की प्रतिमा का चित्र



नारद जी की प्रतिमा का चित्र

“सांझी कला के संरक्षण और सवर्धन में
नारी की भूमिका”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
की
ललित कला स्नातकोत्तर
उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा
श्रीमती संतोष
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री
रूपा रानी
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **रूपा रानी**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “सांझी कला के संरक्षण व संवर्धन में नारी की भूमिका” शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं रूपा रानी, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध " सांझी कला के संरक्षण व संवर्धन में नारी की भूमिका " विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है, उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिका

श्रीमती संतोष

शोधकर्त्री

रूपा रानी

आर्य कन्या महाविद्यालय,

शाहाबाद (मा0)

कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **रूपा रानी**, अनुक्रमांक न0. 130249902, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “ **सांझी कला के संरक्षण व संवर्धन में नारी की भूमिका** ” शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक:

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

लोककला के दायरे में वे सभी कलाएं आती हैं जिनके आधार लोक संस्कृति से है। लोक संस्कृति के आधार पर अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग लोक कलाएं देखने को मिलती हैं। लोक कलाओं की उत्पत्ति या चलन हर देश के क्षेत्रीय, परम्परागत व जनजातीय जीवन के आधार पर देखने को मिलता है। लोक कला का मानव जीवन से बहुत गहरा संबंध है। इसमें ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति बड़े सशक्त रूप में होती है। इसका विकास बिना किसी आयोजित प्रयास के अपने आप होता रहा है।

लोक कला दो शब्दों से मिलकर बना है — लोक + कला। अतः इसके शाब्दिक अर्थ को जानने के लिए इन दो शब्दों को अलग-अलग समझना होगा। लोक शब्द का मतलब लोगों से होता है। लोक लोगों के समूह का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार लोक कला का अर्थ लोगों की कलाओं से है।

दुनिया भर में हर क्षेत्र में देश की कोई ना कोई अपनी लोक कला होती है। अतः लोक संस्कृति में लोक कला भी एक महत्वपूर्ण भाग होता है। इसलिए हर देश या क्षेत्र में कोई ना कोई लोक कला पाई जाती है। सभी कलाओं में सबसे पहले नाम लोक कला का आता है। लोक कला एक ऐसी कला है जो सामान्य लोगों द्वारा रची जाती है। यह कला संरक्षक या प्रभु को प्रसन्न करने के लिए नहीं की जाती और न किसी के दबाव में आकर इसे अपनाया जाता है। इस लोक कला के पीछे लोगों की देवी-देवताओं के प्रति आस्था और विश्वास प्रबल रूप में कार्य कर रहा है।

लोक कला के अंतर्गत सांझी कला का नाम भी आता है। सांझी कला के शोध कार्य में मैंने पांच अध्याय बनाए हैं।

- प्रथम अध्याय में — मैंने कला और क्षेत्रीय कला व लोक कला तथा हरियाणा में सांझी कला का विशेष रूप से भित्ति चित्रकला का विस्तार से अध्ययन किया है। मैंने इसमें बताने की कोशिश की है कि अजंता के भित्ति चित्र सांझी के भित्ति चित्रों से काफी मिलते-जुलते हैं और यह एक प्रसिद्ध लोक कला है।
- द्वितीय अध्याय में — मैंने सांझी माता के इतिहास के बारे में बताया है। इसमें पौराणिक आस्थाओं का अध्ययन किया गया है।
- तृतीय अध्याय में — मैंने सांझी कला का प्रयोजन व रचना, सांझी की कलाकृतियों में निर्माण तथा सांझी के रंग, रूप, आभूषण, सजावट व सांझी के श्रृंगार का विस्तार से वर्णन किया है।

→ चतुर्थ अध्याय में – सांझी कला का धार्मिक व सामाजिक पक्ष तथा लाके विश्वास, लोक गीतों में सांझी का वर्णन, लोकगीत तथा सांझी का पूजन व विसर्जन विधि आदि का वर्णन किया गया है और सांझी के विषय में अध्ययन करके अपने शोध कार्य को किया है।

→ पंचम अध्याय में – मैंने लोगों की विभिन्न मान्यताओं या धारणाओं के बारे में वर्णन किया है। सांझी के विषय में और यह जानकारी लेने के लिए मैं गांव में गई और उनसे पूछा सांझी के बारे में और उनके विचारों को अपने शोध पत्र में वर्णित किया। सांझी के संरक्षण व संवर्धन में नारी की भूमिका तथा विरासत हेरीटेज कुरुक्षेत्र, मसाना में आयोजित सांझी उत्सव प्रतियोगिता का भी वर्णन किया गया है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची, चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया गया है। मैं गांव में रहने वाली लड़की हूँ। हमारे गांव व आसपास के गांव में सांझी को बड़े प्रेम और आस्था से लगाया व बनाया जाता है। हमारे परिवार में सांझी नहीं लगाते, लेकिन नवरात्रे मनाए जाते हैं। मैं पड़ोसे में सांझी लगाते हुए लोगों को देखती थी। सांझी कला को जानने और भोले भाले लोगों की इस रचना को सामने लाने के लिए मैं सांझी कला पर शोध कर रही हूँ और मेरे लिए यह रुचिकर का विषय है। इस शोध प्रबंध को लिखने के लिए मैंने कठिन परिश्रम किया है। इस शोध प्रबंध को बड़ी सावधानी से लिखने के बावजूद भी इसमें बहुत सी त्रुटियां रह गई हैं। इसके लिए मैं अपने गुरुजनों एवं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

रूपा रानी
शोधकर्त्री

आभार

कला मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक सुंदर माध्यम है। हम कह सकते हैं कि – कोई कार्य जो सौंदर्य बोध उत्पन्न करें एवं जिसके संपन्न होने में दक्षता एवं सृजनात्मकता की आवश्यकता हो, उसे हम कला कह सकते हैं। कला मानव संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। मनुष्य जिस माध्यम से अपने विचारों व भावनाओं को व्यक्त करता है – उसे कला कहते हैं।

सांझी भी एक कला का रूप है। मैं सांझी कला पर शोध कार्य कर रही हूँ। इस शोध कार्य के लिए जिन पुस्तकों की सहायता ली गई उनके लेखकों एवं विद्वानों का कृतज्ञता पूर्वक आभार प्रदर्शित करती हूँ।

मैं इस शोध कार्य को साकार रूप दे पाई, इसके लिए सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकंडा के ललित कला विभाग की अध्यक्ष आदरणीय श्रीमती संतोष जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने पूरे शोध के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया।

मैं अपने गुरु आदरणीय श्री महेश धीमान जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं विरासत हेरीटेज विलेज के संयोजक डॉ०. महासिंह पूनिया जी की बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने सांझी के शोध कार्य में मेरी बहुत सहायता की है और मुझे सांझी के विषय में जानकारी प्रदान की है तथा मैं अपने सहपाठियों की भी आभारी हूँ।

मुझे आशा तथा विश्वास है कि इस शोध कार्य में महत्वपूर्ण विषय पर पूर्ण और उपयोगी जानकारी प्राप्त हो सकेगी। मेरे इस शोध ग्रंथ में सांझी के सभी कलात्मक पहलुओं का अध्ययन है।

अंत में, मैं प्राचार्य महोदय डॉ०. श्रीमती आरती त्रेहन जी का भी आभार व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने महाविद्यालय में ललित कला विषय में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रारंभ कर हमारे स्वप्न को साकार करने का मौका दिया। यदि इस लघु शोध प्रबंध में पाठक वर्ग को कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

रूपा रानी

शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आभार	
प्रथम अध्याय: —	01 — 11
— कला	
— क्षेत्रीय कला से अभिप्राय	
— लोक कला से अभिप्राय	
— हरियाणा में सांझी कला	
— हरियाणा का लोक जीवन	
द्वितीय अध्याय : —	12 — 18
— सांझी का इतिहास	
तृतीय अध्याय: —	19 — 31
— सांझी कला का प्रयोजन व रचना	
— सांझी की कलाकृतियां व निर्माण	
— सांझी का रंग — रूप	
— सांझी के आभूषण व सजावट	
— सांझी का श्रृंगार	
चतुर्थ अध्याय: —	32 — 44
— सांझी कला का धार्मिक पक्ष	
— सांझी कला का सामाजिक पक्ष	
— लोक विश्वास	
— लोकगीतों में सांझी का वर्णन व लोकगीत	
— सांझी की पूजा और विसर्जन की विधि	
पंचम अध्याय : —	45 — 54
— सांझी के विषय में लोगों की भिन्न-भिन्न धारणाएं	
— सांझी के संरक्षण व संवर्धन में महिलाओं की भूमिका	
— लोक कला — सांझी	
— चित्रों का कलात्मक विवरण	
— उपसंहार —	55 — 56
— संदर्भ ग्रंथ सूची —	57 — 57
— चित्र संग्रह सूची —	58 — 59
— चित्र सूची —	60 — 88

प्रथम अध्याय

- कला
- क्षेत्रीय कला से अभिप्राय
- लोक कला से अभिप्राय
- हरियाणा में सांझी कला
- हरियाणा का लोक जीवन

कला

कला एक सार्वभौमिक मानवीय क्रिया है जो हर युग, हर स्थान, हर समय में पाई जाती है। चाहे वह अभिव्यक्ति के रूप में हो या मनोरंजन के रूप में। कला को समाज और संस्कृति से कभी भी काटा नहीं जा सकता।

जब भी मानव में चेतना जागी वह अपने आसपास के संसार के विषय में जागरूक हुआ, उसने अपनी जिज्ञासु दृष्टि चारों ओर डाली।

कला एक कौशल है, कला एक क्रिया है, कला शिल्प है, कला कल्पना है, कला सोच है, कला क्रीड़ा है, कला उड़ान है, कितने ही प्रश्न उठते हैं मानव के जहान में, इन्हीं का निवारण छिपा है कला के अर्थ में।

जीवन की अस्त व्यस्तता को एक स्थिर रूप देना ही कला है। जब से मानव ने अपनी भावनाओं को कला के माध्यम से अभिव्यक्त करना शुरू किया, तभी से कला का विकास हुआ। सबसे पहले मानव ने नुकीले पत्थर, कोयला, गेरु भित्ति पर ही चित्र अंकित करना शुरू किया।

कला शब्द का आज के समय में विभिन्न वर्गों में पृथक अर्थों में प्रचलित है अर्थात् कला मानव की सौंदर्य भावना का परिचायक है। कला शब्द का प्रयोग ललित कला हेतु किया जाता है। श्री रविंद्र नाथ टैगोर के अनुसार – कला में मनुष्य अपने मन की अभिव्यक्ति करता है, न की बाह्य रूप की। मनुष्य की रचना जो उसके जीवन में आनंद प्रदान करती है, कला (आर्ट) कहलाती है।

कला शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ। इसके अतिरिक्त कला शब्द का प्रयोग सत्पय ब्राह्मण सांढ्यायन ब्राह्मण तथा अथर्ववेद में मिलता है। कला संस्कृत भाषा का शब्द है। 'कल' धातु से कला की उत्पत्ति मानी जाती है, जिसका अर्थ – प्रसन्न करना है। कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति 'कड़' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ – प्रसन्न करना है। संस्कृत में कला शब्द का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है। इसका व्यावहारिक अर्थ है – किसी भी कार्य को पूर्ण कुशलता के साथ करना। (Art) आर्ट शब्द का प्रयोग 13वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ। आर्ट शब्द लैटिन भाषा के (ARS) शब्द से बना है। इस शब्द का अर्थ क्राष्ट है। जैसे स्वर्णकारी।

कला मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है। कला कल्याण की जननी है, कल्पना की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति का नाम ही कला है। कल्पना की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से एवं विभिन्न माध्यमों द्वारा हो सकती है। यह अभिव्यक्ति जिस भी माध्यम एवं जिस भी प्रकार से हो, वही कला का पर्याय कहलाती है।

➤ कला का अर्थ :—

मनुष्य की रचना, जो उसके जीवन में आनंद प्रदान करती है, कला (Art) कहलाती है।

कला सुंदर, मधुर, कोमल और सुख देने वाला एवं शिल्प हुनर अथवा कौशल है। कला के संबंध में पाश्चात्य दृष्टिकोण भी कुछ इस प्रकार का है। अंग्रेजी भाषा में कला को आर्ट कहा जाता है। फ्रेंच में 'आर्ट' और लैटिन में 'आर्टम' और 'आर्स' से कला को व्यक्त किया जाता है। यह शरीर या मानसिक कौशल आर्ट माना गया है। इनके अर्थ वे ही हैं जो संस्कृत भाषा में मूल धातु 'अर' के हैं। 'अर' का अर्थ है — बनाना पैदा करना या रचना करना। इन अर्थों के अंतर्गत कुछ सुखद, सुंदर एवं मधुर सृजन है। कला शिल्प कौशल की प्रक्रिया है। अतः कला का अर्थ है — शिल्प कौशल की प्रक्रिया से युक्त सुंदर व सुखद सृजन रूप। दूसरे शब्दों में 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' की अभिव्यक्ति ही कला है।

कला सृजन से मन और आत्मा का साक्षात्कार सौंदर्य से होता है, उसे शांति मिलती है। कलाकार का सृजन कला का सृजन है। उसकी अनुभूति कला की अनुभूति है। कला के माध्यम से रूप और सौंदर्य का सृजन होता है। कला अव्यक्त को व्यक्त करने वाली तथा अमूर्त को मूर्त प्रदान करने वाली है। कला मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। अतः दार्शनिकों ने कहा है — कला ही जीवन है। वास्तव में कला जीवन जीने की पद्धति, जीने का एक ढंग है। कला के द्वारा ही जीवन को पूर्णता व दक्षता के साथ बिताया जा सकता है। कला मानवीय क्रिया है जिसमें उसकी प्रकृति, रूप और भाव सम्मिलित रहते हैं। सर्वश्रेष्ठ कला सदैव चेतन को स्पर्श करती है।

प्राचीन भारतीय मान्यताओं में कला के लिए 'शिल्प' और कलाकार के लिए 'शिल्पी' शब्द का ही अधिक प्रयोग होता था। प्राचीन काल में इस प्रकार का कोई भी विभाजन नहीं था। प्राचीन ग्रीक और रोमन भाषा का आर्ट शब्द भी केवल शिल्प के लिए ही प्रयुक्त किया जाता था।

18वीं शताब्दी में सौंदर्य शास्त्रियों ने 'शिल्प' और कला का विभाजन, उपयोगी एवं 'ललित कला' के रूप में किया और 19वीं शताब्दी के आते-आते 'कला' शब्द में छिपा हुआ 'सौंदर्य बोध' इतना प्रबल हो उठा कि अपने पुराने विशेषण 'ललित' (Fine) को हटा देने पर भी वह अपने अपेक्षित अर्थ को पूर्ण रूप से ध्वनित करने लगी और सामान्य व्यवहार ने ललित कला के लिए केवल मात्र 'कला' शब्द का ही प्रयोग किया जाने लगा।

प्राचीन भारतीय साहित्य में कला के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार — प्राचीन भारतीय साहित्य में कला को महामाया का चिन्मय — विलास कहा गया है। उन्होंने कला को महाशिव की आदि शक्ति से संबंध माना है। अतः प्राचीन मत के अनुसार ललित कलाएं आनंद की निधि हैं। माया के पंच कुलकों काल, नियति, राग, विद्या और कला में 'कला' भी एक है।

क्षेत्रीय कला से अभिप्राय

किसी भी क्षेत्र की संस्कृति को अच्छी तरह समझने के लिए उस क्षेत्र की लोक कला को जानना जरूरी होता है। कला और संस्कृति का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। भारतीय संस्कृति में पौराणिक कथाओं, व्रत, उत्सव और पर्वों की जो प्रणाली चली आ रही है, उसी से लोक संस्कृति का संपादन हुआ है। लोक जीवन की सच्ची झांकी उस क्षेत्र की लोक कलाओं में देखने को मिलती है। प्रत्येक जाति के लोगों का रहन-सहन, धर्म संस्कार, एक दूसरे से थोड़ा भिन्न होता है। यह भिन्नता उनके दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में व्यक्त होती है। यह लोक कला का एक ऐसा पक्ष है जिससे क्षेत्र की पहचान बनती है।

क्षेत्रीय कलाओं में सांझी, रंगोली, अहोई आदि ऐसी लोक परंपराएं हैं, जिससे एक निश्चित क्षेत्र की लोक कला का बोध होता है। प्रत्येक क्षेत्र की सामान्य क्रियाकलापों में जो लोक कला बनाई जाती है, उसकी जानकारी उस क्षेत्र में रहकर ही प्राप्त हो सकती है। कारण लोक कलाओं के अनेक रूपों को बनाने का एक निश्चित समय होता है और वह उसी समय बनाई जाती हैं तथा निश्चित समय बाद उन्हें नष्ट कर दिया जाता है।

हमारा ऐसा विश्वास है कि जो व्यक्ति जिस क्षेत्र का होता है, उसे उस क्षेत्र के बारे में विशेष जानकारी होती है। क्षेत्रीय कला वह कला है जो किसी क्षेत्र के निवासियों के बीच शुरू हुई हो। स्थानीय कला, दृश्य कला की एक शैली है, जिसे आमतौर पर स्व-शिक्षित कलाकारों द्वारा बनाया जाता है। क्षेत्र के लोगों के बीच उत्पन्न होने वाली कला जो उनके पारंपरिक संस्कृति को दर्शाती है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी कुछ विशिष्टता होती है जो वहां के लोक की व्याख्या करने पर सामने आती है। इस व्याख्या से उस समाज के रहन-सहन, सभ्यता तथा संस्कृति की व्याख्या होती है जिसमें वह जीता है। किसी स्थान के निवासियों की कलात्मक अभिव्यक्तियों का स्वरूप निर्धारण करने में अनेक तत्व उत्तरदाई होते हैं जैसे – उस क्षेत्र का लोक जीवन, धर्म एवं संस्कृति, परंपराएं, प्रकृति, क्षेत्रीय, साहित्य वहां के निवासियों की वेशभूषा, सौंदर्य, प्रसाधन तथा वहां के निवासियों का तकनीकी ज्ञान, अपितु यही नहीं वहां की जलवायु, वातावरण भी उस क्षेत्र की कला को प्रभावित करते हैं।

किसी क्षेत्र की प्रकृति एवं जलवायु चित्रकला शैली को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण तत्व है। कलाकार अपने आसपास के वातावरण में जो भी कुछ प्राकृतिक रूप में देखता है, जो जीव जगत उसके आसपास विद्यमान रहता है वह उसका प्रयोग अपने चित्रों में वातावरण को बल देने के दृष्टिकोण से करता है।

किसी क्षेत्र विशेष की वेशभूषा वस्त्रालंकार एवं प्रसाधन वहां के चित्रों के रूप आकारों को शैली निर्धारण करने में महत्वपूर्ण हाथ रखते हैं। लोक जीवन की सच्ची झांकी उस क्षेत्र की लोक कला में देखने को मिलती है। क्षेत्र विशेष के लोकगीत, लोक चित्र, लोक नृत्य, लोक अभिनय और लोक चर्चाएं आदि सभी कला, क्षेत्रीय कला के स्वरूपों को प्रतिबिंबित करती हैं। चौक पूरना, सांझी, अहोई आदि ऐसी लोक परंपराएं हैं, जिससे एक निश्चित क्षेत्र की लोक कलाओं का बोध होता है।

किसी भी क्षेत्र की कला वहां के जन सामान्य के हृदय के भावों की अभिव्यक्ति होती है। एक लोक कलाकार अपनी अंतः प्रेरणाओं को एवं सूक्ष्म अनुभूति की अभिव्यक्ति को मूर्त रूप प्रदान करता है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी कुछ विशिष्टता होती है जो वहां के लोक की व्याख्या करने पर सामने आती हैं। इस लोक की व्याख्या से उस समाज, लोक कलाओं, रहन-सहन, सभ्यता तथा संस्कृति की व्याख्या होती है, जिसमें वह जीता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी क्षेत्र के जनजीवन का अध्ययन वहां की लोक कला के अध्ययन के बिना अधूरा है।

लोक कला से अभिप्राय

लोक कला के संबंध में कुछ लिखने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम लोक को पहले समझे। ऋग्वेद में लोक शब्द का प्रथम अर्थ 'स्थान' मिलता है। बाद में तीन लोक, 'चौदह लोक' आदि अर्थ मिलते हैं। वेद या शास्त्र में भी निम्न के लिए लोक शब्द का प्रयोग हुआ है।

हिंदी में सूर, तुलसी और मीरा आदि ने लोक शब्द का प्रयोग 'जनसमाज' मानव मात्र के लिए किया है।

लोक शब्द के अर्थ को लेकर अभी तक पाश्चात्य और भारतीय भाषाविदों में मतभेद नहीं हो पाया है। ऋग्वेद में प्रयुक्त देहिलोकम के अनुसार लोक शब्द का स्थान के रूप में प्रयोग हुआ है — लोक, परलोक, मृत्यु लोक आदि। शब्दों में लोक की अभिव्यक्ति लोक के संबंध में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

वेदवेत्ता महर्षि वेदव्यास ने स्वयं लोक धर्म और विधान के प्रति आस्था प्रकट करते हुए कहा है — प्रत्यक्ष-दर्शी लोका ना सर्वदर्शी भवेन्नर।

लोक के समानार्थी अंग्रेजी शब्द 'फोक' की उत्पत्ति एंग्लो सैक्शन शब्द (Fore) से हुई है। जर्मनी में यह Volk के रूप में प्रचलित है।

फोक शब्द से असंस्कृत और मूढ़ समाज का बोध होता है तथा व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोगों के लिए होता है। फोक शब्द के लिए हिंदी में लोक जन और ग्राम तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है। परंतु लोक शब्द को ही उपयुक्त स्थान प्राप्त है।

लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पंडित्य को चेतना के अहंकार से शून्य हैं और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित हैं।

डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लोक शब्द का अर्थ बताते हुए कहा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है। बल्कि गांव व नगरों में फैली हुई समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वालों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए भी जो वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उन्हें उत्पन्न करते हैं।

डॉ कृष्ण बिहारी द्विवेदी ने 'लोक' की सुंदर व्याख्या करते हुए लिखा है — लोक कला उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रवाहों से परे रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।

इस लोक का अर्थ वह सरल स्वाभाविक मानव समाज है, जिनकी भावनाओं, विचारों, परंपराओं, क्रियाओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं, इसी को लोक संस्कृति भी कहा जाता है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में — लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक ही राष्ट्र का प्रतीक है। लोक के कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। लोक की छात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव — यही हमारे नए जीवन का आध्यात्मिक शास्त्र है। इनका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का, कल्याणमय रूप है।

लोक समाज में व्याप्त समस्त विचार, आदर्श, मनोभाव, विश्वास, परंपरा, रहन-सहन, रीति रिवाज, अनुष्ठान, क्रियाओं आदि का समन्वित रूप लोक की सम्पत्ति है।

लोक शब्द की व्याख्या करते हुए सोफिया बर्न का कहना है कि — यह एक जाति बोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अंतर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समूह, जातियों के असंस्कृता समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानी, गीत तथा कहावतें आदि आते हैं।

उपरोक्त विचारों को देखने से ज्ञात होता है कि लोक का अर्थ — अधिकांश विद्वानों ने आदिमानव या असभ्य ग्रामीण मानव के संबंध तत्वों के संदर्भ में किया है।

पश्चिमी और भारतीय लोक संबंधी विचारधारा को देखते हुए हम कह सकते हैं कि लोक से हमारा तात्पर्य उस समाज से है जो शास्त्रीयता और पांडित्य से कोसों कोसों दूर है, जिसे नागरिक संस्कृति ने प्रभावित नहीं किया, जो अनपढ़ और ग्रामीण, जिसमें कृत्रिमता नहीं है, जो आदिम संस्कृति के परंपरागत तत्वों को वहन किए हुए हैं। इसी लोक समाज की रंगों और तूलिका द्वारा रूपाभिव्यंजना को लोक कला कहते हैं।

लोक कला स्वाभाविक होती है। इसका रूप सरल होते हुए भी हृदय को स्पर्श करने वाला होता है।

लोक का अभिप्राय एक संपूर्ण समाज से है। इस प्रकार संपूर्ण समाज में व्याप्त कला को ही लोक कला कहा जा सकता है। लोक कला आंतरिक सौंदर्य का अभिव्यक्त प्रत्यक्ष या सरलतम रूप है। इसमें न कोई शास्त्रीय बंधन होता है, न कोई बनावटी पन।

लोक आकृतियों में प्रकटीकरण की स्वाभाविकता इतनी सीधी और प्रकृति सदृश्य माधुर्य से पूर्ण होती है। सजावट क्या है? लोक कला के कलाकार नहीं जानते। भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक और

हृदय से निकली हुई लय के साथ होती है, जिस प्रकार हरे जंगल में पक्षी स्वतः गा उठते हैं, उसी प्रकार लोक आकृतियां स्वाभाविक रीति से हृदय से फूट निकलती हैं।

लोक कलाकृतियां, कला के तत्वों और नियमों की मुख्यापेक्षण नहीं है। वे अपने आप में परिपूर्ण है। इस प्रकार लोक कलाकृतियों की वास्तविक दुनिया शहरी चमक दमक से कोसों दूर है तथा पारदर्शी शीशे की तरह स्वच्छ है। प्रकृति के इन श्रृंगारों को सजाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक हाथ रहा है। इतिहास इनमें छिपा बैठा है। देश की तत्कालीन रीति-नीति की जानकारी हमें इन कलाकृतियों से मिलती है। नारी हृदय की विशालता हम पग – पग पर इनमें पाएंगे। मानव का इन कलाकृतियों से जन्म से लेकर मृत्यु तक संबंध है। जन्म पर सतिये, विवाह पर हल्दी से चोक पूरना, अल्पना, मृत्यु पर आत्मा की शांति के लिए हवन पर बनने वाली आकृतियों आदि एक रिवाज के रूप में प्रचलित हैं।

लोक का अभिप्राय एक देश के संपूर्ण समाज से है। इस प्रकार संपूर्ण समाज में व्याप्त कला को ही लोक कला कहा जा सकता है। लोक द्वारा बनाई गई इस कला को अज्ञानता वस प्रायः लोग विकसित अथवा ग्वारों या ग्रामीण कला के नाम से पुकारते हैं। लोक कला परंपरा प्राप्त कला का एक ऐसा महत्वपूर्ण रूप है, जिसकी उपेक्षा गंवारू, कला कहकर नहीं की जा सकती। लोक कलाकार आधुनिक तथा शहरी तड़क भड़क से दूर गांवों और वन, पर्वतों में निवास करता है। इसलिए उन्हें उसी से जोड़कर देखा जाता है।

लोक कला सीधे-साधे लोगों की अभिव्यक्ति है। लोक कला में एक ताजगी एवं स्थायित्व होता है जो कभी न पुराना पड़ता है और न बदलता है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अपने आप हस्तांतरित होता रहता है।

लोक कला की कहानी मानव जीवन की सचित्र कहानी है। जन्म से मृत्यु तथा सुबह से शाम तक किए जाने वाले मनुष्य के हर कार्य में देखी जा सकती है। लोक कला हमारे जीवन का अविच्छिन्न अंग है। हमारे प्रतिदिन के जीवन में समाहित है जिसका हम अपने घरों में, अपने उत्सवों पर, अपने रस्मों तथा अनुष्ठानों में, अपनी आत्मअभिव्यक्ति के साधनों के प्रयोग करते हैं।

लोक कला मानव जीवन में बड़ी सहजता और सफलता से उतरी है। मनुष्य के अंदर विद्यमान तत्वों से उसका अटूट संबंध है। आस्था और विश्वास के कारण ही मनुष्य के अंदर धर्म का बीजारोपण हुआ। आस्था प्रारंभ में प्रकृति के कुछ मूल तत्वों तक सीमित थी, जो कालांतर में अपने क्षेत्र बढ़ाती गई। जिससे धर्म का विस्तार होता गया, दूसरे प्रकृति ने मनुष्य को अपने सौंदर्य से अपनी ओर आकृष्ट किया और जब मनुष्य ने अपने भावों को व्यक्त करने के लिए कला का सहारा लिया, तो यह दोनों तत्व धर्म और सौंदर्य उसके माध्यम से व्यक्त होने लगे।

कमला देवी चट्टोपाध्याय ने भी लोक कला के सौंदर्य तत्वों को स्वीकार है। जब कोई मुझे पूछे कि लोक कला का मुख्य गुण या पहचान क्या है तो कह सकते हैं – सुंदरता। सुंदरता का अर्थ केवल आकार, डिजाइन या रंग ही नहीं है वरन् जीवन का एक व्यापक मोक्ष सिद्धांत अथवा तत्व है। लोक कला एक सृजनात्मक अभिव्यक्ति है, जो सरल एवं स्पष्ट लोकमानस द्वारा रची गई है तथा वादों के झमेले से दूर हैं। लोक कला को समझने के लिए कुछ परंपराओं की जानकारी आवश्यक हो जाती है। कला धीरे-धीरे एक स्थाई रूप ग्रहण कर लेती है।

इन शास्त्रीय नियमों को ध्यान में रखकर जिस कला का निर्माण हुआ उसे शास्त्रीय कला के नाम से जाना गया है। लोक कला और शास्त्रीय कला दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। जिस समय शास्त्रीय कला रची गई उस समय वहां जो लोक कला विकसित थी, उसका शास्त्रीय कला पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ा। कला को भारत वर्ष की सबसे अच्छी कला के रूप में जानते हैं। वह पूर्णरूपेण शास्त्रीय कला है। ऐसी बात नहीं, अजंता की कला में भी लोक कला का प्रभाव देखने को मिलता है।

लोक कला से हमारा स्वाभाविक अपनत्व है। उसकी रचना के लिए हमें तरह-तरह की कला विधाओं की खोज नहीं करनी पड़ती। आसानी से जो भी प्राप्त हो जाता है, गांव की स्त्रियां विभिन्न तीज, त्यौहार अथवा विभिन्न अवसरों पर सपाट रंगों और सरल रेखाओं द्वारा पूरा चित्र एक कहानी के रूप में लिख डालती हैं। लोक कलाकार कला का ज्ञान पुरानी पीढ़ी से दिन प्रतिदिन बनने वाले घर आंगन के चित्रों को देखकर करता है।

हरियाणा में विभिन्न लोक कलाएं होती हैं जैसे – अहोई अष्टमी, गोवर्धन पूजा, दशहरा, सांझी आदि सभी लोक कलाएं मानी जाती हैं और लोग इन लोक कलाओं को बड़े उत्साह और धूमधाम से मनाते हैं। इन सभी कलाओं में लोग बड़ी आस्था और विश्वास रखते हैं।

हरियाणा में सांझी कला

हरियाणा में सभी तीज – त्योहारों को बड़ी धूमधाम और उत्साह से मनाया जाता है। हरियाणा में बहुत से त्योहार मनाए जाते हैं और इन्हीं में से एक है – सांझी का त्योहार। हरियाणा में सांझी को बड़ी ही आस्था और विश्वास से बनाया जाता है। अश्विन मास में बनाई जाने वाली सांझी लोक का एक उत्कृष्ट नमूना है। लोग सांझी माता को बनाने के लिए जोहड़ की चिकनी मिट्टी का प्रयोग करते हैं। अश्विन मास आरंभ होते ही लोग, कन्याएं किसी वृद्ध की देखरेख में मिट्टी से सांझी देवी का सुंदर मुख मंडल, हाथ, पैर, वृक्षस्थल, शरीर पर सजाने वाले सितारे, नाक, कान, गला, हाथ, पैरों में धारण किए जाने वाले आभूषण, पैरों में पहनने के लिए चप्पल या जूतियां आदि बनाकर धूप में सुखा लेती हैं। इसके साथ ही सूर्य, चांद और तारे भी बनाए जाते हैं और सांझी माता का लणिहार बनाने के लिए भी मुख, हाथ, पैर, जूते आदि बनाकर सुखा लिए जाते हैं।

सभी आकृतियों के सूखने पर सफेद खड़िया मिट्टी या सफेदी से लीप कर इन्हें अपनी-अपनी रुचि के अनुसार रंगा जाता है, फिर सांझी को लगाया जाता है और 9 दिनों तक पूरी आस्था के साथ सांझी की पूजा अर्चना की जाती है। यह सब दशहरे से ठीक 10 दिन पहले शुक्ल पक्ष की प्रथमा को घर की बड़ी सी दीवार पर पहले गोबर का लेप किया जाता है। गाय के ताजा गोबर से नारी की आकृति बनाकर, उपरोक्त सभी अंगों, आभूषणों को बड़े करीने से इस पर चिपका दिया जाता है।

साथ में गोबर की आकृतियों पर सांझी के लणिहार के अंग-प्रत्यंग और सूरज व चांद चिपकाकर सांझी का परिवार बना लिया जाता है। ऊपर आकाश के प्रतीक के रूप में तारे चिपका दिए जाते हैं। इसके बाद सांझी माता का नारी सुलभ बनावट सिंगर कर दिया जाता है – गोटा, पेमक, सितारे आदि लगे प्रतीकात्मक वस्त्र भी पहना दिए जाते हैं और विशेषकर हरियाणवी नारियों की तरह मुख पर घूंघट भी लगा दिया जाता है।

➤ हरियाणा का लोक जीवन :-

हरियाणा का जनजीवन, धर्म-कर्म, लोक परंपरा, संस्कृति, परिश्रम का आदित्य समन्वय है। हरियाणा प्रदेश के लोग धरती की परिश्रमी संतान की भांति कर्म पथ पर अग्रसर होते हुए प्राचीन रीति रिवाज, पर्व त्योहारों एवं नृत्य का भरपूर आनंद लेते हैं। हमारे जीवन का ढंग ही हमारे संस्कृति है। दैनिक जनजीवन में व्यवस्था स्थल, साध-समाज आदि बातों का विशिष्ट ढंग से प्रयोग मिलता है। जैसे- यहां चौपाल, गाय, बैल, रेहडू, जोहड़, गाबरू छोरा आदि कितने ही नाम लोकजीवन से संबंधित कहे जा सकते हैं। सभी लोक कलाओं के अभिन्न अंग होते हैं।

यहां के लोक जीवन की तस्वीर हमें गांव में बसे हुए लोगों के जीवन में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। यहां की स्त्रियां पुरुषों से भी अधिक श्रमशील होती हैं। हरियाणा के लोगों का रहन-सहन सरल होता है। यहां के अधिकतर लोग गांव में बसते हैं। गांव में वृक्षों से घिरे हुए कुएं तथा सीढ़ीओ वाले तालाबों को पनघट कहते हैं। हरियाणा का कर्मठ किसान, मजदूर, अपने पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिए संघर्ष में जुटा हुआ है।

हरियाणा ही भारत का एकमात्र ऐसा प्रदेश है — यहां परंपरा प्रेरित लोग परंपराओं, मान्यताओं, विश्वास, लोक कलाओं आदि व्यक्त होती रहती हैं। हरियाणा का रहन-सहन, खान पान, बाकी प्रदेशों से उच्च और भिन्न है ।

द्वितीय अध्याय

➤ सांझी का इतिहास

सांझी का इतिहास

सांझी एक लोक कला है। यह लोक कला संपूर्ण हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्रों में पितृपक्ष के अंतिम दिन अमावस्या को स्थापित की जाती है। यह कुवारी कन्याओं का पर्व है। इस पर्व की तैयारी में कुछ कच्चे व परिपक्व हाथों का सहयोग होता है। सांझी का त्योहार बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है। अश्विन मास के नवरात्रों में सांझी लगाई जाती है। सांझी को देवी शक्ति के रूप में माना जाता है। सांझी को अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से जाना जाता है यथा – सांझी, सांची, संजुली, सिंझा, माई, संझुलदे, सांझी माई आदि।

स्त्री एवं पुरुष सभी सांझी का व्रत रखते हैं। लोक जीवन में इसे देवी का रूप माना जाता है। स्त्रियों एवं कन्याओं द्वारा विभिन्न प्रकार व आकारों में आकृति मूलक चित्रण करके उसे गोबर से दीवार पर चिपकाया जाता है। सांझी कला अति प्राचीन है। पौराणिक आख्यान के अनुसार श्री कृष्ण ने राधिका जी को प्रसन्न करने के लिए शरद काल में सांयकाल में सांझी बनाई थी। इस प्रकार यह कला श्री कृष्ण से तथा सांझ शब्द से संबंध रखती है। श्री कृष्ण विविध प्रकार के फूलों का चयन करके यमुना पुल अथवा उपवन में जाकर पुष्पों को भूमि पर कलात्मक रूप में प्रदर्शित करते थे, तभी से यह कला प्रदर्शित सांझी के रूप में ब्रज में प्रचलित हुई है।

सांझी के इतिहास का अगर हम गहराई से अध्ययन करें तो पता चलता है कि सांझी कौन थी। इसका कोई पुष्ट प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं है, यथापि धरती पुत्रियां इसे ब्रह्मा की मानसी कन्या संध्या, दुर्गा, पार्वती, वरदायिनी, आराध्य देवी के रूप में पूजती हैं। यह विद्या की अधिष्ठात्री देवी है। सरस्वती का पूजन सांझी के रूप में आदिकाल से छात्र-छात्राओं में प्रचलित रहा है।

सांझी एक भित्ति चित्र है। इस दीवार पर ही लगाया जाता है। सांझी का इतिहास हमें बताता है कि योग्य वर पाने की लालसा में प्रथम उमा (पार्वती) ने सांझी माड़ने का व्रत लिया था, तभी से यह सांझी की परंपरा शुरू हुई।

मोहनजोदड़ो व हड़प्पा की खुदाई के दौरान मिली मातृदेवी की प्रस्तर प्रतिमाओं में यही बात प्रमाणित हो चुकी है कि वैदिक सभ्यता के अधिर्भाव से कई पहले से हमारे देश में आदिशक्ति की पूजा प्रचलित है। ग्राम्य में आंचलों में कन्याएं आदिशक्ति की प्रतीक दुर्गा, पार्वती के लोग ग्रहित रूप और गौर की पूजा, सदैव से करती रही हैं। सांझी भी सिंहवाहिनी सनातन आराध्य माता दुर्गा का लोक प्रतिरूप है तथा इसके पूजन के पीछे भी यही भावना प्रबल है।

राजस्थान के हड़ौती के शेखावाटी मारवाड़ राजपूताना व भरतपुर तथा दूनघाटी से लेकर बुंदेलखंड तथा मालवा निमाड़ छत्तीसगढ़ सहित हरियाणा के ग्रामीण, पंजाब के देहाती हिस्सों, महाराष्ट्र

के ग्रामीण अंचलों में, दिल्ली के आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों में सांझी अपूर्व हर्षोल्लास के साथ मनाई जाती है।

राजस्थान मालवा और निमाड़ में यह पितृपक्ष, ब्रजमंडल में श्रावण एवं शेष जगह पर नवरात्रों के पितृपक्ष और दशहरे के बीच के दिन मांडी जाती है। मालवा में श्री गोंड ब्राह्मणों के घरों में शादी विवाह के मौके पर भी सांझी पूजने की प्रथा है। गणेश स्थापना के साथ इसे विस्थापित किया जाता है। कुछ अन्य जातियों में अश्विन पंचमी को श्राद्ध करते समय कुल के कुंवारा की मृत्यु की समृति में उनकी गोबर की मूर्तियां बनाकर भोग लगाने की परंपरा है। हरियाणा और उत्तर प्रदेश में सांझी काल से ही अलौकिक शक्ति के रूप में मान्य है।

इन प्रदेशों में इसे भित्ति मूर्तियों के रूप में जाना जाता है तथा यहां के आंचलिक प्रदेशों में इसे देवी माना जाता है। किंतु इन आंचलों में मूर्ति प्रतीक सांझी के दायरे को इससे कोसों आगे ठहराते हैं। ऊपर वर्णित राज्यों के किसी भी ठेठ ग्रामीण आंचल में जाइए, गांव के करीब अनपढ़, उजड़ व अनुकूलिन कहे जाने वाले एवं कृत्रिम चकाचौंध से कोसों दूर बसने वाले सामान्य लोगों के घरों में सांझी अपनी समूची विविधता और भव्यता के साथ प्रस्फुटित होती दिखाई देगी। इन गांव में जीवन के कठोर यथार्थ व इसके टेढ़े-मेढ़े उतार चढ़ावों का रेखाओं के माध्यम से जो सरल व सूक्ष्म चित्रण किया जाता है उसका जवाब नहीं है। गोबर, मिट्टी द्वारा घरों को सजाने संवारने की उक्त परंपरा गांव में सृष्टि के आरंभ से ही है।

गांवों के प्रत्येक घर में विभिन्नता के आवरण में अनेकों समृद्ध कलाविधियां मौजूद हैं जो सौंदर्य रूपी आनंदानुभूति देने के साथ-साथ जीवन के गूढ़ रहस्यों से पर्दा हटाती हैं। वह काफी कुछ सीखने को प्रेरित करती हैं। गोबर लिपि भित्तियों, गेरु, मेहंदी गोबर द्वारा बनी आकृतियों को आटे, हल्दी, पन्नी व फूलों द्वारा सजिप्त करने में जो सुख है, वह बाजार कला वस्तुओं से घर भरने में कदापि नहीं है। भित्तियों पर अंकित उपरोक्त रंग-बिरंगी रेखाओं का अनुपातिक संयोजन आधुनिक प्रयोग, धर्म कलाकारों की पकड़ से अब भी बाहर है।

सांझी सहित विभिन्न विषयों पर बनी इन कोणीय आकृतियों का कला वैशिष्ट्य इतना अनुपम है कि इन लोक कलाओं का सराहनीय व उज्ज्वल पहलू यह है कि इनमें कलाकार स्व की लेशमात्र अभिव्यक्ति नहीं है। केवल लोक जीवन की आत्मअनुभूति की अभिव्यक्ति है।

सांझी का क्षेत्र व स्वरूप जितना विस्तृत एवं विराट है, उसको बनाने के ढंग भी उतने ही निराले हैं। जहां इसका कन्या रूप प्रचलित है, वहां इसकी मूर्ति धरती पर बनाई जाती है और जहां देवी है, वहां इसे दीवार पर निर्मित किया जाता है। मूल रूप से एक होते हुए भी अलग-अलग स्थानों पर सांझी की कृतियां अंतर लिए होती हैं। इसकी आकृतियां ढंग से बनी सांझीया अमूर्तता और सहजता

का आभास देती हैं। जबकि शहरी घरों में कीमती श्रृंगारिक कृतियां मात्र नारी के प्रेयसी रूप को उभारती हैं। आंचलिक सांझी घर की लज्जाशील बहु के रूप में निखरती है। ऐसी बहूएं जो दशहरे के दिन अपने भाई के साथ ससुराल से पीहर जाती हैं। लाल कपड़े से उसके मुंह का ढका रहना उसे प्रमाणित करता है।

मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा व राजपूताना आदि में सांझी वर्षों से सर्दी के संध्याकाल के समय नई फसल पकने के अवसर भादों की पूर्णिमा की सर्वोपिंतु अमावस्या तक मनाई जाती है। कन्याएं सज्जा बाई की मूर्ति बनाके 16 दिनों तक उसकी पूजा करती हैं। अपने परिकल्पनाओं को गोबर द्वारा आकार देकर सभी बालिकाएं अपनी-अपनी सांझीयों में प्राण भरती हैं तथा उन्हें पूजती षोडसो वय की तीव्रता से लांघती हुई कन्या के जरिए 16 दिन की यह पूजा कुंवारी के केशोर्य की पूर्णता को दर्शाती हैं। उक्त सोलह दिवसीय सांझी चित्रण में घर गृहस्थी से जुड़ी वस्तुओं को प्रमुखता दी जाती है।

तमाम आकृतियां मनुष्य जीवन की दिनों दिन बढ़ती भौतिक आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करती हैं। भादृपद की पूर्णमासी को पाटा माडने के साथ सांझी बनाने की प्रक्रिया आरंभ की जाती है। इसके बाद श्राद्ध पक्ष (अश्विन) की प्रथमा को केला (कदली दर वृक्ष), द्वितीया को बिजोरा (बालक की नजर उतारने का टोटका) व एक-एक कर अन्य चीजें मांडी जाती हैं। नवमी को डोकरी (बूढ़े बुढ़ियां) मांडते समय मृत-वृद्धाओं की याद में कई अन्य रस्में की जाती हैं। दशमीं को पंखा उखैरने के बाद एकादशी से अमावस्या तक किलाकोट (बड़ी एवं भरी पूरी हवेली) का प्रतीक बनाया जाता है।

इसके अंतर्गत सूरज, चांद, घोड़े, खेत, खलिहान, अन्न-धन्य के कोठे, आभूषण, बंदनवार, सारीखा गृह सज्जा की वस्तुएं, दूल्हा-दुल्हन, बाराती, सांझी की सहेलियां, पनिहारी व मेहतर आदि बनाए जाते हैं। सोलहा सांझी पुरी होने के बाद व्रत खोला जाता है। सांझी बनाने से लेकर पूजा विसर्जन तक के सब कार्य महिलाएं ही करती हैं। नित्य हंसती गाती हैं, व मन की कुठा को भुलाकर लोटपोट होती हैं।

दशहरे वाले दिन सांझी को दीवार से उतार कर मिट्टी के मटके में डालते हैं। मटके में 17 से 21 तक छेद करती हैं जो संभवत भारतीय अंक विद्या के घोटक हैं। मिरासण संगीत विद्या में परांगत होने अथवा स्तुति गान का बोध कराती हैं। बरगद व पीपल के पेड़ों को सांझी की अनुकंपा से मिले यौवन और दूध को मां की कृपा से मिली समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। इस भांति प्रवृत्ति का नवीनीकरण और धरती की उर्वरता का उल्लास सांझी के जरिये लोक जीवन में बैठकर भावनात्मक सुरक्षा का आभास देता है।

सांझी के आयोजन से घर व खेत की समृद्धि बढ़ती है। अंधेरा घिरने पर असली घी का चौमुखवा दीया व विभिन्न पकवान सांझी के साथ रखे जाते हैं। तब किसी सुहागिन के सिर पर यह जगमगाता हुआ मंगलघट रखकर होलियों में गीत गाती हैं और लेट, जोहड़ अथवा नदी की ओर चलती हैं तथा नम आंखों में बोझिल हृदय से, बंगाल के दुर्गा की भांति सांझी को जल में प्रवाहित कर विदा करती हैं।

तारों की छांव में अंधेरे की चादर तले डबडबायी आंखों से लड़कियां इसे प्रवाहित होते देख ही रही होती हैं कि एकाएक ग्वाले (पाली) उक्त प्रकाश भरी हंडिया जोहड़ दूसरे छोर (किनारो) पर जाने से पहले ही तोड़ देते हैं। धरणा है कि सांझी का निर्विध पार होना अनिष्ट का सूचक है। अतः आपत्ति का कारण बनने से पूर्व ही उसे मिटा दिया जाता है।

देश भर में देवी की पूजा करके मूर्ति को या तो मंदिर में प्राण प्रतिष्ठा करते हैं या उसे जल में प्रवाहित किया जाता है। इसी भान्ति खंडित मूर्ति, जेनेऊ, व धार्मिक पुस्तक आदि को भी भारतीय परंपरा अनुसार जल में बहाने की प्रथा है। श्री कृष्णा और सुदामा भी नौ दिनों तक पुस्तकों सुला कर दसवें दिन यमुना में सरस्वती को बहा देते थे। पुस्तकों के शयन की यह परंपरा प्राचीन पाठशालाओं व गुरुकुलों में सर्वत्र प्रचलित थी।

छात्र-छात्राएं नवरात्रों में 9 दिन पुस्तकों को शयन इस विचार से करवाते थे कि इन दिनों देवी नींद लेती है। पुस्तकों का शयन करने वाली जगह रखकर, सरस्वती देवी को भीत पर चित्रित कर उसे पूजने की परंपरा थी। इस भांति आपस में मिलजुल कर सांझी रूप में जिस देवी की पूजा की जाती थी उसे ही सांझी के नाम से अभिहित किया जाता था। अब भी उससे मिलती-जुलती परंपरा है।

कुंवारी लड़कियां ज्ञान पाने के लिए सांझ के झूटपटें में सांझी गीतों द्वारा सरस्वती की आरती उतारती हैं। कुछ लोगों की प्रबल धारणा है कि सांझी एक जुलाहे की लाडली बेटी थी। सांझी के इतिहास में हमें यह प्रमाण मिलता है कि श्री कृष्ण ने अपनी प्रियतमा राधा को रिझाने की खातिर जाड़े की एक सांझ में अपने घर फूलों की चित्रात्मक आकृति बनाई थी। अन्य गोपियां भी अपने घरों के बाहर श्री कृष्ण की विविध लीलाओं को आकृतियों में ढालने लगीं। वह परंपरा ब्रज क्षेत्र की प्राचीन हवेलियों में, मंदिरों में आज भी जीवित वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में रसभाव तुलिका में खींचे ऐसे अनेकों चित्र मिलते हैं। पहले ये चित्र ब्रज के तमाम घरानों में बनाए जाते थे, किंतु अब इसका विस्तार केवल मंदिरों की देवहरी तक सिमटकर रह गया है।

इतना सब होने के बावजूद पहले वर्णित मान्यताओं के मुकाबले में यह उक्ति अधिक सार्थक प्रतीत नहीं होती। सत्य जो भी हो पर कुंवारी कन्याएं एक ममतामई देवी के रूप में सांझी की पूजा

आज भी करती हैं और उससे वे अपने घर में मां-बाप एवं भाइयों की सुख समृद्धि मांगती हैं। उन्हें कितना मिल पाता है यह तय नहीं है, किंतु युगों से उनका विश्वास अटल बना हुआ है।

गांव की भोली-भाली कुमारिया जिन्हें मूर्तिकला सीखने के लिए कहीं कोई प्रशिक्षण न लिया हो, केवल देखा देखी ही प्रतिमा बनाने की चेष्टा की हो, मूर्ति कला में इतनी परंपरागत सिद्ध हो जाएं यह बुद्धि को विस्मय में डाल देती हैं।

सांझी के पास ही छोटी सी आकृति और बनाई जाती है, जिसे सांझी की सखी "धूंधा" के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त सांझी को उतरने से पहले सांझी के पास घोड़े पर सांझी के भाई की भिन्न-भिन्न जातियों के संस्कारों एवं भावनाओं से प्रभावित होती हैं। इस तरह बालिकाओं की बिखरी मनोवृत्ति और सुसंबंध कल्पनाएं आकृतियों में लक्षित होती हैं।

सांझी के इतिहास का गंभीरता से अध्ययन करने के पश्चात यह प्रमाण मिला है सांझी मुख्य तौर पर बालिकाओं के भावी जीवन की सौभाग्य कामना से संबंधित है। सांझी एक ऐसा आदर्श व्यक्तित्व है जिसमें देवी भावना निहित होती है। निश्चय ही उसके प्रति बालिकाओं की आस्था भावी मंगल की कामनार्थ है। हरियाणवी लोग में सांझी का पूजन प्रत्येक कुंवारी कन्या से अपेक्षित है। घर की बड़ी बहनें, माता या दादी बालिकाओं की सांझी बनाने के उपक्रम में सहायता करते हैं। बालिकाओं को उनके संपर्क में आने से आनंद आने लगता है। वे गीत सिखाती हैं और क्रमशः सांझी के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा भाव जागृत हो जाता है।

लोकगीतों के विश्लेषण से इतनी जानकारी अवश्य मिलती है कि ससुराल में सांझी की देवरानी, जेठानी उसे तंग करती थी। जब सांझी रास्ते में अपने भाई को आता हुआ देखती हैं तो भाई के प्रति उसका प्यार उमड़ जाता है। वह अपने भाई से मिलने के लिए दौड़ती है। उसके गले का नौलखा हार टूट जाता है, परंतु वह उसकी परवाह न करते हुए अपने भाई से मिलने को ज्यादा महत्व देती है।

सांझी का भाई घोड़े पर सवार होता है। वह उसके बैठने के लिए तख्त बिछाती है, उसके घोड़े को दाने डालती है और उसके लिए रसथर खीर बनाती है। हरियाणवी लोकगीतों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है की सांझी का भाई फौज को लेकर सांझी के ससुर पर चढ़ाई करता है। दोनों में युद्ध होता है, परंतु ससुर की फौज हार जाती है।

हरियाणवी सांझी के लोकगीतों में "लणिहार" शब्द का प्रयोग मुख्यतः सांझी के भाई के लिए प्रयोग किया गया है। हमारे यहां सांझी के संबंध में लड़कियों द्वारा गाया जाने वाला गीत बहुत लोकप्रिय है :-

सांझी समझो ए कनांगत परलो पार।

देखण चालो है सांझी के लणिहार।।

सांझी का भाई तेज घोड़ी दौड़ाता है। वह अपनी बहन से बहुत प्यार करता है। सांझी के ससुराल चले जाने पर उसके भाई का बगीचा सूखने लगता है। ऐसी स्थिति में वह अपनी सांझी को ससुराल लेने जाता है, जब सांझी गांव की सीमा में प्रवेश करती है, तो उसके भाई का बगीचा हरा हो जाता है।

हरियाणवी लोकगीतों में सांझी के नौ-दस भाइयों एवं पचास भतीजों का वर्णन मिलता है। वैसे तो सांझी के नौ-दस भाइयों का वर्णन मिलता है, परंतु गीतों का मूल्यांकन करने पर उसके तीन ही भाइयों का नाम सांझा (उक्त), चंदा एवं सूरज मिलता है।

तृतीया अध्याय

- सांझी कला का प्रयोजन व रचना
- सांझी की कलाकृतियां व निर्माण
- सांझी का रंग – रूप
- सांझी के आभूषण व सजावट
- सांझी का श्रृंगार

सांझी कला का प्रयोजन व रचना

हरियाणा में सांझी का त्यौहार बड़े ही उल्लास के साथ मनाया जाता है। अश्विन मास के नवरात्रों में सांझी लगाई जाती है। सांझी को देवी शक्ति का रूप भी माना जाता है। सांझी को अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे – सांझी, सांची, संजुली, सिंझा माई, सांझी माई आदि। लोक जीवन में सांझी को देवी का रूप माना जाता है।

सांझी के विषय में यह माना जाता है कि दशहरा सांझी का जेठ होता है। इसलिए सांझी को घर से एक दिन पूर्व ही विदा कर दिया जाता है। कन्याओं के मन में सांझी माता के प्रति कुछ ज्यादा ही श्रद्धा भावना है। स्त्रियों और कन्याओं की यह मान्यता है कि – सांझी कन्याओं को अच्छा वर पाने और अखंड सुहागन होने का वरदान देती है। सांझी की पूजा बड़ी श्रद्धा के साथ की जाती है। सांझी हमारे लोग जीवन का महत्वपूर्ण अंग है।

सांझी अभिव्यक्ति के माध्यम की वह कला है जिसकी संरचना में स्त्रियाँ व कन्याएं ज्यामितिय, त्रिकोणमितीय तथा लोक शिल्प का सरल सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। सांझी दो प्रकार से बनाई जाती है।

हरियाणा लोक कला संपन्न प्राप्त है। यह प्रान्त अपनी संस्कृति एवं कला के लिए विख्यात है। वैसे तो 1966 से पूर्व हरियाणा एवं हिमाचल भी पंजाब के ही अंग थे। अतः पंजाब की लोक कला भी हरियाणा लोक कला से अधिकतर साम्य रखती है। इसके भारतवर्ष में विभिन्न प्रमुख पर्वों दीपावली, दशहरा में भी लोक कला के सहज दर्शन हो जाते हैं। सांझी को हरियाणा में पर्व के रूप में मनाते हैं। सांझी हरियाणा की लोक कला का अनूठा उदाहरण है। सांझी का निर्माण व रचना दीवार पर गोबर, मिट्टी द्वारा की जाती है। लड़कियां सांझी की कला में विशेष रुचि एवं निपुणता दिखाती हैं। सांझी लोक कला का अनूठा नमूना होती है। गोबर की इस कला में लड़कियां अपनी कला का चमत्कार प्रस्तुत करती हैं। सांझी माता का मुँह, उसका गहनों से भरा माथा, एक और चांद और दूसरी और छिपता सूरज बना कर लोक कला की सारी प्रतिमा जीवित हो जाती हैं।

➤ सांझी कला का प्रयोजन :-

सांझी आश्विन माह की कृष्ण पक्ष (पितृपक्ष) की अमावस्या में दोपहर के बाद लगाई जाती है और सांझी की पूजा अगले दिन यानी आश्विन माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरंभ की जाती है। इस दिन से नवरात्रि भी प्रारंभ होती है। नवरात्रों में सांझी माता की पूजा का बहुत महत्व माना जाता है।

सांझी को देवी शक्ति का प्रतीक माना जाता है। लोगों में मान्यता है की सांझी की पूजा करने से उनके घर पर कभी विपत्ति नहीं आएगी और उनके घर में सुख शांति, समृद्धि बनी रहेगी और अपने घर, परिवार की उन्नति और सुरक्षा के लिए इनमें उनकी आस्था होती है और सांझी में लोगों की गूढ़ आस्था है।

सांझी लगाने को एक त्यौहार की तरह मनाया जाता है। सांझी लगाने से लगभग पन्द्रह दिन पहले से ही उसकी तैयारी शुरू हो जाती है और गांव के लोगों में तो सांझी बनाना व लगाना एक जुनून सा होता है। शहरों में भी सांझी बनाई जाती है क्योंकि वहां के लोग अभी भी काफी हद तक लोक जीवन के नजदीक हैं। सांझी को बनाने का कार्य लगभग पन्द्रह दिन में पूरा कर लिया जाता है और नवरात्रि के प्रारंभ से इसकी पूजा अर्चना प्रतिदिन शुरू कर दी जाती है।

सांझी की पूजा नित्य प्रातः काल में बिना कुछ खाए पिये की जाती है व सांयकाल सूर्यास्त के पश्चात भी सांझी की पूजा की जाती है और सांझी के गीत गाकर शाम को भीगे चने व पतासे का प्रसाद बांटा जाता है। नवरात्रि में सांझी की पूजा देवी शक्ति का स्वरूप मानकर की जाती है तथा लड़कियां व स्त्रियां इन नवरात्रि में उपवास (व्रत) रखती है। दशहरे से पूर्व सांझी को उतार दिया जाता है। जो लोग अष्टमी की पूजा करते हैं, वे अष्टमी को कढ़ाई करके सांझी को उतार देते हैं। जो लोग नवमी की पूजा करते हैं, वे नवमी की कढ़ाई (प्रसाद) करके सांझी को उतार देते हैं।

सांझी के साथ सभी वस्तुएं उतारी जाती हैं, परंतु सांझी का भाई व पांच तिकड़ियां तारे नहीं उतारते। सारे साल इन्हें दीवार पर जों का त्यों लगा रहने देते हैं। सांझी की पवित्रता को ध्यान में रखते हुए सारे सामान के साथ हलवा पूरी रखकर बहते पानी में विसर्जित कर दिया जाता है और कामना की जाती है कि अगले साल सांझी फिर से उनके घर आएगी और साथ में शांति और समृद्धि लायेगी।

➤ सांझी कला की रचना प्रक्रिया :-

सांझी बनाने के लिए लंबी प्रक्रिया से गुजरना होता है, जिनमें क्रमशः मिट्टी से आकृति बनाना, उनको सुखाना, रंगों को तैयार करना, आकृतियों को रखना, दीवार को तैयार करना, व इन्हें व्यवस्थित रूप से दीवार पर लगाना इत्यादि।

सांझी को दो भागों में विभक्त किया गया है :-

1. प्रथम :- सांझी को मिट्टी से बना कर दीवार पर गोबर से चिपकाया जाता है।
2. द्वितीय :- सांझी को दीवार पर गेरु से लिखा जाता है।

सांझी को बनाने के प्रथम प्रकार में सांझी को मिट्टी से बनाकर गोबर से दीवार पर लगाया जाता है। सांझी को बनाने का ढंग व समय हर जगह पर भिन्न-भिन्न होता है। सांझी बनाने के लिए मिट्टी को तैयार करना, सांझी की बेजोड़ कलाकृतियां व अन्य सभी चित्र मिट्टी से ही बनाए जाते हैं। अतः इसमें मिट्टी का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। मिट्टी कैसी होनी चाहिए, कैसी गुथी हो, कैसे गुथनी चाहिए, गुथते समय क्या-कब-कितना मिलना है, इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए। लोग अपने रीति-रिवाज व परंपराओं के अनुसार ही सांझी लिखते व बनाते हैं। इसमें समय का बंधन नहीं होता है।

मिट्टी की सांझी बनाने के लिए चिकनी मिट्टी सबसे उपयुक्त उत्तम मानी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह सरलता से मिल जाती है, परंतु शहरों में मिट्टी को कुम्हार से या ग्रामीण क्षेत्रों से मंगवाना पड़ता है। सांझी बनाने के लिए सबसे पहले मिट्टी को जोहड़ो या तालाबों से लाया जाता है, फिर मिट्टी को अच्छी तरह बारीक पीसा जाता है। मिट्टी को छानकर उसमें से कूड़ा-कंकर निकालकर साफ कर लिया जाता है। उसके बाद मिट्टी में पानी मिलाकर अच्छी तरह गुंथा जाता है। मिट्टी को मजबूत बनाने के लिए कुछ लोग इसमें कागज, रूई या भूसी भी मिलाते हैं, परंतु ऐसा करने से सांझी की आकृतियां ज्यादा अच्छी नहीं बन पाती। सांझी के नाक – नक्श तीखे नहीं निकाल पाते हैं, इसलिए ज्यादातर लोग मिट्टी में कुछ नहीं मिलाते हैं।

मिट्टी को तैयार करने के बाद इससे सांझी की आकृतियां बनाई जाती हैं। मिट्टी सांझी की ये आकृतियां दो प्रकार से बनाई जाती हैं। कुछ लोग तो सांझी को एक मूर्ति बनाते हैं। सांझी को उसके शेर के साथ एक मूर्ति के रूप में बनाया जाता है। कुछ लोग सांझी को विभिन्न भागों में बनाते हैं जैसे – सिर अलग, हाथ अलग, पैर अलग, सांझी की शेष आकृति को टिकड़ियों द्वारा पूर्ण किया जाता है। सांझी के साथ अन्य आकृतियां भी बनाई जाती हैं जिन्हें विभिन्न भागों में तैयार किया जाता है जैसे – परी, सांझी का भाई दुलीचंद या सांझा, पेटू ब्राह्मण, डूम डूमणी, नाईन, बामणी, चाटवाला, सब्जी वाला, दर्जी आदि।

पशु, पक्षियों में मोर, तोता, बंदर, शेर, हाथी, चिड़ियाँ, गाय, घोड़ा, गाड़ी आदि बनाए जाते हैं। इसके साथ ही बड़ का पेड़, चौपड़, हुक्का, साबुन, कंघा, सूरज, चांद सितारें, पर्स, जूते, चप्पल टोडा, छाता, सीढ़ी, ढोलक, पटियारी, कढ़ाई, पीढ़ा आदि मिट्टी से अलग-अलग भागों में बनाते हैं। कुछ लोग टिकड़ियों की सांझी की आकृति के बीच में सलवार कुर्ता व चुन्नी भी मिट्टी से बनाते हैं।

सांझी के साथ अन्य आकृतियां भी बनाई जाती हैं। इनके अलावा सांझी के साथ भगवान व देवियों की आकृतियां भी बनाई जाती हैं। जिनमें मुख्यतः राधा, कृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश, राम, सीता, लक्ष्मण, दुर्गा आदि को बनाया जाता है।

आकृतियों को बनाने के बाद उन्हें सुखाया जाता है। परंतु आकृतियों को धूप में न सुखाकर छाया में सुखाया जाता है, क्योंकि धूप में सुखाने से उनमें तरेड़ (दरार) आ जाती है। इन आकृतियों को सुखाने में 5 से 7 दिन का समय लग जाता है।

जितने समय में आकृतियां सूखती हैं। इसी समय में रंगों को तैयार कर लिया जाता है। सांझी कला में प्रयुक्त होने वाले अधिकतर रंग प्राकृतिक ही होते हैं जैसे — पीला रंग हल्दी से, लाल रंग गेरू से, नीला रंग नील से, काला रंग काजल से, व सफेद रंग चूने से तैयार किया जाता है। लेकिन आज इन रंगों के स्थान पर अनेकों अप्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता है, क्योंकि ये आसानी से हर जगह उपलब्ध हैं और इन्हें तैयार करने में समय भी नहीं लगता। इन रंगों में सफेद, लाल, नीला, काला, पीला, गुलाबी, जामुनी, फिरोजी व इनके अतिरिक्त सुनहरे चांदी के रंगों का भी प्रयोग किया जाता है। आकृतियों के सूखने के बाद तैयार रंगों से रंगने का कार्य प्रारंभ किया जाता है।

रंगों को लगाने के लिए कुंची (ब्रश) का प्रयोग किया जाता है, ग्रामीण क्षेत्रों में सीक पर रूई लगाकर कुंची बनाई जाती है अथवा झाड़ी की डंडी को आगे से कुट कर उसके रेशे बनाकर भी कुंची का प्रयोग किया जाता है। ये कुंची ब्रश मोटी या पतली भी हो सकती है, परंतु आजकल बाजार से लाई गई कुंची/ब्रश का अधिक प्रयोग किया जाता है। आकृतियों को प्राकृतिक रंगों में रंगने की प्रक्रिया में सबसे पहले उन्हें चूने के घोल में डूबा कर निकाला जाता है। चूने के घोल में डूबने से उन पर रंगों की चमक अधिक आती है। सूखने के बाद यह आकृतियां सफेद रंग की हो जाती हैं। इसके बाद अन्य रंगों को हल्के रंग से गहरे रंगों की तरफ रंगते हुए चलते हैं।

अप्राकृतिक रंगों का प्रयोग करते समय भी पहले आकृतियों को सफेद रंग से रंगा जाता है। उसके बाद अन्य रंग किए जाते हैं। इनको रंगने में दो या तीन दिन का समय लग जाता है। आकृतियों को तैयार करने के बाद उन्हें दीवार पर लगाने की तैयारी की जाती है। सांझी को दीवार पर लगाने से पहले देखा जाता है की दीवार साफ सुथरी हो। इसके लिए रसोई के अंदर की दीवार अथवा बाहर की दीवार को अधिक उत्तम मानते हैं, क्योंकि रसोई को साफ सुथरा रखा जाता है और उसमें चप्पल — जूते पहनकर नहीं जाते।

दीवार को तैयार करने के लिए पहले उसे धोया जाता है। उसके बाद उस पर गोबर का पतला लेप किया जाता है। लोगों का मानना है कि ऐसा करने से दीवार शुद्ध व पवित्र हो जाती है क्योंकि सांझी को देवी के रूप में पूजते हैं और देवी की स्थापना को पवित्र दीवार पर ही की जाती है। सभी तैयारी के बाद सांझी को लगाने का कार्य प्रारंभ किया जाता है। जिसमें सांझी की विभिन्न आकृतियों को गोबर से दीवार पर लगाया जाता है। सांझी को लगाते समय सांझी के गीत गाते हुए आकृतियों को लगाते हैं।

सांझी की आकृतियों को विभिन्न आकारों में लगाया जाता है जो अत्यंत सुंदर लगती हैं। सांझी की आकृतियों को सजाने के बाद अगले दिन प्रातः से ही उसकी पूजा अर्चना प्रारंभ कर दी जाती है तथा सांझी की आरती व गीत गाए जाते हैं और यह क्रम अष्टमी या नवमी तक निरंतर चलता रहता है और इसी दिन जौं बोये जाते हैं, जिनसे दशहरा पूजन किया जाता है।

कुछ लोग सांझी को दीवार पर गेरू से लिखते हैं। इसमें सांझी को गेरू से दीवार पर आंकित किया जाता है, परंतु इसे लोक संचार की भाषा में सांझी लिखना कहा जाता है। इस प्रकार की सांझी को लिखने में दो दिन का समय लगता है। सांझी को लिखने के लिए सबसे पहले चुने या गैरू को अलग-अलग दो दिन पहले भिगो दिया जाता है और सांझी को लिखने के लिए ऐसी दीवार का चयन किया जाता है जिस पर बारिश न पड़े अथवा जो किसी भी प्रकार की ओट में हो।

जिस दिन सांझी को लिखते हैं उस दिन सबसे पहले दीवार को धोकर उस पर गोबर का पतला लेप किया जाता है, जिससे दीवार पवित्र व शुद्ध हो जाए। यह माना जाता है कि गोबर का लेप करने से दीवार पवित्र हो जाएगी। गोबर का लेप सूखने पर उस पर चूने का बारीक लेप किया जाता है। यह लेप सूखने के बाद सफेद रंग का हो जाता है। इस लेप के सूखने के बाद उस पर गेरू से कुंची (ब्रश) की सहायता से सांझी की आकृतियों को अंकित किया जाता है।

सांझी लिखने में सबसे पहले एक चौरस (चकोर) खाना बनाया जाता है। इसके ऊपर की तरफ सांझी का सिर बनाया जाता है, दाएं और बाएं और हाथ बनाए जाते हैं और नीचे पैर बनाए जाते हैं। सांझी की बाकी आकृतियां चौरस खाने के अंदर बनाई जाती हैं। इन आकृतियों में सूरज, चांद, तारे, कंघा, शिशा, साड़ी, भाई, पेटू, ब्राह्मण, मोर, चिड़िया आदि बनाए जाते हैं। इनमें सांझी के आभूषण को भी गेरू से ही लिखा जाता है।

सांझी के सिर पर गोबर से लाल रंग की चुनरी चिपकाई जाती है, क्योंकि सांझी को दैवीय शक्ति का प्रतिरूप माना जाता है। सांझी के दायीं व बायीं तरफ गोबर से बने नौ नौरतें बनाये जाते हैं, जो नौ देवीय शक्ति के प्रतीक हैं। सांझी के लिखे जाने के अगले दिन प्रातः मिट्टी में जौं बोकर, सांझी के सम्मुख रख दिए जाते हैं। यह आगामी फसल का प्रतीक माने जाते हैं। लोगों में यह मान्यता है की देवी के आशीर्वाद के कारण यदि नौरतें अच्छे होते हैं तो घर परिवार में समृद्धि आती है।

सांझी की आकृतियों को लगाने के बाद अगले दिन प्रातः से ही सांझी की पूजा अर्चना शुरू कर दी जाती है और सुबह शाम आरती की जाती है और भोग लगाया जाता है। यह प्रक्रिया पूरे नौ दिनों तक की जाती है और खुशियां मनाई जाती हैं। लोग सच्चे मन से सांझी की पूजा अर्चना करते हैं और यह कामना करते हैं की सांझी माता उनसे खुश रहे और उनके परिवार में सुख शांति बनाए रखने का

आशीर्वाद दें। नौ दिनों तक सांझी माता की पूजा अर्चना की जाती है और दशहरे से एक दिन पहले यानी नवमी के दिन सांझी को विदा कर दिया जाता है, यानी के पानी में विसर्जित कर दिया जाता है।

सांझी की कलाकृतियां व निर्माण

मिट्टी से जो सांझी बनाई जाती है वह भी दो तरीकों से बनाई जाती है।

1. एक-एक टिकड़ियों को जोड़कर।
2. दूसरे – पूर्ण आकृति

1. टिकड़ियों या सितारों को जोड़कर :-

सांझी के लिए जो मिट्टी तैयार की जाती है, उसको एक छोटे पटरे पर रखकर छोटे-छोटे टुकड़े व सितारे बनाए जाते हैं, जो कई तरह के डिजाइनों के बने होते हैं। फिर इन टिकटों को बहुत अधिक संख्या में बना लिया जाता है ताकि दीवार पर चिपकाते समय उनकी कमी न पड़े और अगर शेष रह जाते हैं तो उनको सांझी की आकृति के चारों ओर लगा दिया जाता है। इन टिकटों को ही आकृति रूप में चिपकाकर सांझी माता की आकृति को पूरा किया जाता है।

2. पूर्ण आकृति :-

कई स्थानों पर तो सांझी को टिकड़ियों के बिना बनाया जाता है। पहले एक लकड़ी का बड़ा सा पट्टा / टुकड़ा लिया जाता है। फिर उस पर अखबार या कागज बिछाया जाता है और तब उस पर सांझी माता की आकृतियां बनानी शुरू की जाती हैं इसमें शेर पर बैठी माता को एक साथ जुड़ा हुआ बनाते हैं, जबकि टिकड़ों वाली सांझी में माता बड़ी व अन्य सभी चीजें उसी के अंदर बनाई जाती हैं जैसे – शेर सबसे नीचे व छोटा बनाया जाता है। इस प्रकार की सांझी छोटी बनती है व इसके चारों ओर लगाने के लिए अन्य चीजें बनाई जाती हैं।

अन्य आकृतियां :-

सांझी माता को बनाने के बाद उसको किसी सुरक्षित स्थान पर धूप छाया में रख देते हैं ताकि तेज धूप में वह चटके नहीं, फिर अन्य आकृतियां बनाई जाती हैं। उनको टिकड़ों द्वारा नहीं बनाया जाता बल्कि उनको एक पट्टे पर रखकर पूर्ण आकृतियों में बनाया जाता है। पूर्ण आकृतियों को भी तीन भागों में बांट सकते हैं :-

1. धार्मिक आकृतियां

2. सामाजिक आकृतियां

3. पशु – पक्षी व पेड़ – पौधे

➤ धार्मिक आकृतियां :-

इन आकृतियों को प्रतीक रूप में बनाते हैं। देवी के रूप में इसलिए बनाते हैं ताकि धन देवी के रूप में वृद्धि हो। दुर्गा के रूप में इसलिए बनाते हैं ताकि संघर्ष करने की शक्ति मिले और कठिन कार्यों को हल करने व मुसीबत में हिम्मत न हारने की शक्ति मिले।

➤ सामाजिक आकृतियां :-

बैंड बाजा, डूमणी, सेवक, ब्राह्मण, काजल से पुते चेहरे वाला उल्टा चोर, गुजरी – युक्ति आदि।

➤ पशु पक्षी व पेड़ पौधे :-

इसमें बरगद व पीपल का पेड़ और उस पर बैठे तोता, मोर बनाए जाते हैं। गाय – बैल बनाए जाते हैं और इन सब के अतिरिक्त सजाने के लिए चारों ओर तारे बनाकर लगाए जाते हैं। व चांद और सूरज भी मुख्य रूप से बनाए जाते हैं।

सांझी का रंग – रूप

सांझी को आनंदमयी माना जाता है। सांझी को लोग अलग-अलग रंग रूपों में बनाते हैं और सभी रूप बहुत ही सुंदर और मनमोहक लगते हैं। सांझी का श्रृंगार लोग अपने-अपने तरीके से करते हैं और हर रूप में सांझी माता बहुत ही सुंदर लगती है और सांझी के अलग-अलग रूप बनाए जाते हैं।

कुछ लोग सांझी को दुर्गा के रूप में बनाते हैं, कुछ लक्ष्मी जी के रूप में, कुछ शेर पर सवार देवी के रूप में बनाते हैं।

सांझी के आभूषण व सजावट

सांझी में सांझी माता के आभूषणों का भी बहुत महत्व होता है। सांझी के आभूषणों को भी विभिन्न भागों में मिट्टी से बनाया जाता है जिसे सजीव रूप प्रदान किया जाता है। सांझी माता को विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सजाया जाता है जिनमें सिर पर मुकुट, छत्र व बालों का तागा होता है तथा कहीं-कहीं पर तो सांझी के सिर पर प्रभा मंडल भी बनाया जाता है। गले में चम्पाकली, गुलेबन्द, हसला, हार, चांदी के रूपए का कड़ा, मटरमाला, कोलर, नेकलेस, चैन पेंडिल आदि गले के आभूषण हैं।

कानों में डांडे बाले, नाक में लोंग व नथ, चोटी में चक्र तथा चांदी की चोटी, हाथों में कड़े, गजरे, मट्ठी, पहुंची, छन, कंगन, दस्ती, घड़ी व पछेली तथा अंगूठी तथा पंचांगला, चूड़ियां आदि बनाए जाते हैं। पैरों में रमझौल पायल, सुतवा लच्छे, चुटकी गोभी, पाजेब, अलाजोड़ बिछुए आदि बनाए जाते हैं और इन सबको बनाने के बाद आकृतियों को सुंदर रंगों से रंगा जाता है, जिससे बहुत सुंदर लगती हैं और सांझी माता को लगाते समय ही इन आकृतियों को सांझी माता को पहनाया या लगाया जाता है और सांझी को पूर्ण आकृति प्रदान की जाती है।

सांझी माता को लाल चुनरी विभिन्न आभूषणों आदि से सजाया जाता है और फूलों की माला आदि से भी सांझी की सजावट की जाती है, जिससे सांझी माता बहुत सुंदर लगती है।

सांझी की रूपाकृति को एक शाश्वत व सब कुछ प्रदान करने वाली देवी माना जाता है। इसलिए कलाकारों की यह धारणा है कि सांझी एक स्त्री आकृति है, जिसे औरतें बनाती हैं। रूप प्रदान करती हैं। कुछ कलाकार तो इस आकृति को चावल या बारीक छोटी सिंखों की छोटी श्रृंखला से दांत भी बनाते हैं। “कोरी” के प्रयोग से आंख बनाई जाती है। इस तरह की रूपाकृति को तीन प्रकार के वस्त्रों से सुशोभित किया जाता है :-

1. कपड़े के वस्त्र
2. कागज के वस्त्र
3. मिट्टी के बने वस्त्र

➤ कपड़े के बने वस्त्र :-

कपड़े के बने वस्त्र में सांझी माता के लिए लहंगा सुंदर कपड़े का बना हुआ होता है या उस पर सुंदर-सुंदर डिजाइन निकालते हैं और चुनरी तो ऐसी मानो की दुल्हन की हो। चुनरी पर सितारे, चमकदार गोटा, लेस लगाकर तैयार की जाती है। ग्रामीण औरतें सांझी माता को घूंघट में बनाती हैं।

➤ कागज के वस्त्र :-

कहीं-कहीं पर तो सांझी माता को रंगीन कागजों से बने वस्त्र पहनाये जाते हैं। इन्हें गोबर की सहायता से ही चिपकाते हैं जैसे – लाल रंगीन चमकदार अबरी से माता की चुनरी व साड़ी बनाकर चिपकाया जाता है।

➤ मिट्टी के बने वस्त्र :-

मिट्टी के बने वस्त्रों में मिट्टी से ही कुर्ता सलवार बनाते हैं, जिनको टिकड़ो वाली विशाल सांझी के बीच में गोबर की मदद से चिपकाते हैं और जहां पर छोटी सांझी बनाते हैं, वहां पर मिट्टी के कपड़ों सहित की मूर्ति बना देते हैं और फिर उस पर रंग कर देते हैं, जिससे वह बहुत सुंदर लगती है। इस तरह अन्य आकृतियों के कपड़े भी बनाए जाते हैं।

इस रूपाकृति को विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सजाया जाता है। कुंवारी कन्याएं, औरतें बड़ी-बूढ़ी सांझी को जो पहनाती हैं, वह मिट्टी से बनाकर रंगे जाते हैं और फिर गोबर से चिपकाकर सांझी माता की सजावट की जाती है। इन्हें बहुत ही सावधानी पूर्वक से चिपकाया जाता है। हाथों और नाखूनों की सहायता से उनको चिपकाते हैं।

सबसे पहले सांझी के स्वर्ण मुकुट का नाम आता है जो सिर पर सजाया जाता है, जो मिट्टी का ही बना होता है और मिट्टी के रंगों से ही रंगा होता है। अब सांझी माता के मुख मंडल की शोभा बढ़ाने वाले आभूषणों का नाम आता है, इसमें मांग पट्टी विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसे माथे पर सजाया जाता है और इसके बाद नाक में नथ बेसरी लोंग आदि चिपकाए जाते हैं। फिर कानों में कुंडल, झुमकी आदी लगाते हैं। फिर सांझी माता के गले के हार आभूषणों का स्थान आता है, जिनमें मटरमाला, जुगनी, कंडला, हंसली, तोड़ा, हुसन का फूल, कटसरी आदि का नाम आता है।

और फिर पैरों के आभूषण को भी सजाया जाता है। इन सभी आभूषणों को पहले से ही मिट्टी से बनाकर रंगों से रंग कर रख दिया जाता है और सांझी माता के अंगों पर गोबर की सहायता से चिपका दिया जाता है। इस तरह से लोग आभूषणों आदि से सांझी माता की सजावट करते हैं। जिससे सांझी बहुत ही सुंदर और आनंदमय लगती है और सांझी माता का रंग रूप बहुत ही आकर्षक लगता है। ऐसा लगता है कि सांझी को ऐसे ही देखते रहें और सांझी माता को देखकर मन में बहुत खुशी होती है।

सांझी का श्रृंगार

सांझी माता को एक सुहागन की तरह सजाया व श्रृंगार किया जाता है जैसे – हाथों, पांव, सिर पर, माथे पर, गले में आदि जो भी आभूषण महिलाएं पहनती हैं, सभी आकृतियों के आभूषणों से सांझी माता का श्रृंगार किया जाता है और गले में फूलों की माला सिर पर लाल चुनरी, माथे पर सिंदूर और श्रृंगार का सभी सामान भी सांझी के पास रखा जाता है। सांझी के श्रृंगार से सांझी माता बहुत सुंदर लगती है।

चतुर्थ अध्याय

- सांझी कला का धार्मिक पक्ष
- सांझी कला का सामाजिक पक्ष
- लोक विश्वास
- लोकगीतों में सांझी का वर्णन व लोकगीत
- सांझी की पूजा और विसर्जन विधि

सांझी कला का धार्मिक पक्ष

कला को आरंभ से ही धार्मिकता से जोड़ा गया। पूरे विश्व में जहां भी धर्म ने जड़े फैलाई, कला ने उसे अधिक विस्तार दिया। गांव, जंगलों एवं शहरों में बसे लोग अपनी धार्मिक अभिव्यक्ति को कला के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक धर्म में कला का उच्च स्थान रहा है, विशेष कर हिंदू, बौद्ध, जैन, ईसाई धर्म तो कलाओं का आधार लेकर आगे बढ़े हैं। हिंदू धर्म में मूर्तियों का धर्म फैलाव में बहुत बड़ा योगदान रहा है।

कलाओं का ध्येय केवल धर्म प्रचार नहीं था, बल्कि कलाओं के माध्यम से ईश्वर या परमसत्ता को साकार करने का प्रयास किया गया। कला प्रतिकों के रूप में भी अपनाई गई। आराधना के लिए ईश्वर को मूर्तियों के माध्यम से मूर्तमान किया गया। ग्रीक कला में ईश्वर को मनुष्य के रूप में अपनाया गया तथा मनुष्यों को ईश्वर के रूप में।

प्राचीन काल में भी धर्म के प्रचार प्रसार के लिए कला का प्रयोग किया गया, परंतु लोक कला के अस्तित्व के जीवित रहने का एकमात्र व कारण इसका धर्म से जुड़े रहना माना गया है, क्योंकि लोक कला के अंतर्गत धर्म से संबंधित मनोभावों की अभिव्यक्ति लोक कलाकारों द्वारा की जाती है। सांझी के परिपेक्ष्य में भी यही बात सिद्ध होती है क्योंकि सांझी देवी का रूप है और सांझी रचना में सांझी के साथ अन्य देवी देवताओं का अंकन भी करता है।

सृष्टि के आदिकाल से मात्र शक्ति की पूजा चली आ रही है। जीवन के उद्गम और विकास का कोई अंग ऐसा नहीं है जो मात्र शक्ति द्वारा उद्भाषित न हुआ हो। सांझी माता के रूप में मानव के उत्पादन और संवर्धन के लिए सदा से आवश्यक रही है।

इसे कहीं गौरी या सती का रूप मानकर पूजा जाता है, तो कहीं इसे नवरात्रों से भी जोड़ा जाता है। भारतीय दर्शन की आद्या शक्ति प्रकृति है या प्रकृति की शक्ति हैं। इसलिए शक्ति को जगत में प्रमुख स्थान दिया गया है। यही से माँ की पूजा की परंपरा प्रारंभ हुई और आगे चलकर मातृ शक्ति की आराधना शक्ति पूजा के रूप में परिवर्तित हो गई। शक्ति उपासना की परंपरा केवल भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में थी। भारत में तो मात्र शक्ति को सर्वोपरि महत्वता दी है।

!! सर्वदेवमयी देवी सर्वदेवीमयम् जगत।

अवोडहं विश्वरूपा तवां नमामि परमेश्वरीम् !!

प्राचीन भारत की सभ्यता के केन्द्रों मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि स्थलों से प्राप्त मृण्मय स्त्री मूर्तियों की ही प्रधानता है जो मातृ देवी की है।

हरियाणा में सांझी को देवी दुर्गा का शक्ति रूप माना जाता है तथा शक्ति के रूप में ही सांझी की पूजा अर्चना की जाती है। लोगों का यह विश्वास है कि अगर वे सांझी की पूजा नहीं करेंगे, तो देवी उनसे रुष्ट हो जाएगी और भविष्य में अनिष्ट होने का भय भी बना रहेगा। इसी कारण लोग सांझी का निर्माण करते हैं व सांझी की पूजा अर्चना करते हैं। विशेष रूप से स्त्रियां व कन्याएं ही सांझी की पूजा करती हैं। स्त्रियां अपने घर, परिवार, संतान, व सुहाग की मंगल कामना के लिए तथा परिवार की समृद्धि एवं कल्याण के लिए सांझी माता की पूजा करती हैं।

सांझी रचना के साथ-साथ विभिन्न देवी देवताओं की आकृतियों की रचना, सुख समृद्धि, मंगल कामना, संतान की रक्षा हेतु प्रतीक के रूप में की जाती है। इनमें भगवान शिव व विष्णु जी को पालन करता के रूप में, व अनिष्ट से बचने के रूप में, माता पार्वती जी की पूजा सुहाग की रक्षा के रूप में, भगवान श्री कृष्ण को विष्णु के अवतार व बुराइयों के विनाश के रूप में तथा राधा जी को अटूट प्रेम के प्रतीक के रूप में पूजते हैं। माता सरस्वती की पूजा इसलिए की जाती है क्योंकि वह ज्ञान देने/प्रदान करने वाली देवी माना जाता है। माता लक्ष्मी जी धन संपदा व वैभव प्रदान करने वाली देवी मानते हैं। माता दुर्गा जी बुराइयों का संहार करने वाली देवी है। भगवान श्री राम जी पुरुषोत्तम गुण के कारण और बुराई पर विजई के रूप में, हनुमान जी को श्रद्धा शक्ति व भक्ति के प्रतीक के रूप में व माता सीता जी को त्याग के प्रतीक के रूप में पूजा जाता है।

दुर्गा नवरात्र शक्ति की आराधना और उपासना का सबसे महत्वपूर्ण काल होता है। आदि शक्ति दुर्गा के नाम की एक कथा देवी भागवत महापुराण में वर्णित है। रुद्र दैत्य के पुत्र दुर्ग दैत्य ने कठोर तपस्या कर पुरुषों से अजेय होने का ब्रह्म से वरदान प्राप्त कर लिया था। फलस्वरूप उसने अपने पराक्रम से तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया। इंद्र, चंद्र, वरुण, कुबेर यम, प्रभृति आदि सभी देवताओं का पद छीन लिया। सभी देवगण दीन होकर महेश्वर (शिव) के पास पहुंचे, तब शिव ने दयार्थ होकर दैत्यों को विनष्ट करने के लिए देवी की प्रार्थना की।

देवी के द्वारा उस आततायी दैत्य के मारे जाने पर देवता प्रसन्न हुए। दुर्गासुर को मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा प्रसिद्ध हो गया। आगे चलकर दुर्गा से संबंधित कल्पना का पूर्ण विकास नवदुर्गा की कल्पना में हुआ और नवदुर्गा के कौन-कौन से नाम हैं? मार्कण्डेय पुराण में देवी महात्म्य वाले भाग में नवदुर्गाओं का उल्लेख मिलता है।

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।

तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥

पंचमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।

सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥

नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।

उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥

इन नौ दिनों में श्री दुर्गा सप्तशती का पाठ करना उत्तम व अच्छा माना जाता है तथा लोगों में यह मान्यता है कि ऐसा करने से देवी सांझी उनकी सारी मनोकामनाओं को पूरा करेगी। सांझी माता के अधिक प्रभाव का कारण यह है की देवी के दो सिद्ध पीठ स्थापित है। माता शाकुंभरी व माता बाला सुंदरी ने आपदा के समय यहां के लोगों की रक्षा की थी। कई वर्षों तक जब इस क्षेत्र के लोग भूख प्यास से व्याकुल रहे, तब माता शाकुंभरी ने अपने शाकों से लोगों का भरण पोषण किया था तथा माता बाला सुंदरी ने दुर्ग नाम के एक बहुत उद्वत असुर का संहार किया था और यहां के लोगों को उसके प्रकोप से मुक्ति दिलाई थी। अतः इस क्षेत्र के लोग माता के प्रति अधिक आस्था रखते हैं।

जिस प्रकार जनपद सहारनपुर, हरियाणा में आश्विन माह में सांझी की पूजा की जाती है। इसका क्रम निरंतर नौ दिनों तक चलता है। इसी प्रकार बंगाल में दुर्गा माता के रूप में शक्ति की पूजा तथा गुजरात में अंबा की पूजा निरंतर नौ दिनों तक चलती रहती है। जिस प्रकार सहारनपुर, हरियाणा जनपद में सांझी के गीत गाए जाते हैं, उसी प्रकार गुजरात में गरबा गाये और किया जाता है। सांझी माता शक्ति का प्रतीक है।

ऐसा माना जाता है कि यदि किसी कन्या को नौ सांझी एक साथ देखने को मिल जाए तो उसे सौभाग्य की प्राप्ति होती है। सांझी धर्म से जुड़ी होने के कारण निरंतर चली आ रही है। यद्यपि इसके स्वरूप पर आधुनिकता का प्रभाव आ गया है परंतु यह परंपरा अटूट बनी रही है।

सांझी कला में सामाजिक पक्ष

सांझी कला में क्षेत्र विशेष का सामाजिक परिवेश झलकता है। इसमें रहन-सहन, खान पान, पहनावा, रोजमर्रा में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएं, सामाजिक गतिविधियों तथा आवश्यक वस्तुएं आदि परिलक्षित होती हैं।

सांझी कला में सांझी माता को देवी शक्ति के अतिरिक्त एक सामाजिक नारी भी माना गया है। अतः सांझी कला में सामाजिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं का भी चित्रण किया जाता है और इसके साथ-साथ सामाजिक संबंधों को भी दर्शाया जाता है। सांझी कला में सांझी को एक सुहागन नारी के रूप में दर्शाया गया है। अतः इसलिए सांझी को सुहागिन के रूप में सजाया जाता है। जैसे – सुहागिन के आभूषणों में बिछुवे, नथ, पंचागला आदि होते हैं। क्षेत्र में जो भी आभूषण प्रचलित है, उन सभी आभूषणों को सांझी कला में चित्रित किया जाता है।

सांझी कला में सामाजिक परिवेश उनके पहनावे में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जिन जातियों में विशेषतया साड़ी पहनी जाती है, वे सांझी को साड़ी पहनाते हैं तथा जिममें सूट पहना जाता है, उन घरों में सांझी चित्रण में पहनावे के रूप में सूट ही दृष्टिगोचर होता है। सांझी कला में सामाजिक संबंधों का चित्रण भी किया जाता है जिसमें दर्जी, पेटू ब्राह्मण, डूम डूमणी, नाईन, बामणी, पनिहारिन तथा सांझी का भाई दुलीचंद को अवश्य बनाया जाता है।

सांझी कला में सामाजिक रूप से प्रयोग में आने वाली वस्तुओं को भी अंकित या चित्रित किया जाता है, जिससे क्षेत्र विशेष की अभिव्यक्ति होती है। इनमें बड़ का पेड़, चोपड़, हुक्का, दीवट, साबुन, कंधा, पर्स, जूते चप्पल, पंखा, छाता, सीढ़ियां, डोला, पटियारी, पीढा आदि को चित्रित / अंकित किया जाता है।

जैसे-जैसे समाज आधुनिकता की ओर बढ़ता गया, उसी के अनुरूप आधुनिकता का प्रभाव सांझी चित्रण में भी पड़ता गया। ग्रामीण क्षेत्रों में तो सांझी माता का आकार आदमकद या उससे भी बड़ा होता है, परंतु शहरीकरण के कारण नगरीय क्षेत्रों में सांझी का आकार छोटा होता गया है। सांझी के चित्रण में सांझी का भाई दुलीचंद भी आधुनिकता के प्रभाव से अछूता नहीं है। अब इसके चित्रण में बैलगाड़ी पर बैठा है तथा आधुनिक पैंट शर्ट में जूते पहने हुए हैं और कहीं-कहीं पर सूट पहने हुए हैं। सांझी के चित्रण में अब प्राकृतिक रंगों के स्थान पर रासायनिक रंगों का प्रयोग किया जाने लगा है। मिट्टी से सांझी की आकृति बनाने में तो परिवर्तन देखा ही जा सकता है, परंतु सांझी लिखने में आधुनिकता के दर्शन हुए हैं जैसे – गोबर लिपने के स्थान पर गोबर का छिंटा लगाकर गेरू के स्थान पर चूने से ही सांझी लिख दी जाती है और मुंह के स्थान पर मिट्टी का चेहरा लगा दिया जाता है।

लोक विश्वास

हरियाणा की अधिकांश जनता शताब्दियों से गांव में रहती है। गांव की कुछ जनता शिक्षा के अभाव में तथा समुन्नत जनता के संपर्क में होने के कारण अंधविश्वास और जादू टोने के प्रभाव में थी। अब इसमें बहुत परिवर्तन हुआ है और यह शिक्षा के कारण ही हो सका है।

देवी देवताओं के रूप में यहां के वासी सूर्य, चंद्रमा, गंगा, जमुना से लेकर रामकृष्ण, शीतला माता, दुर्गा पूजा, सांझी, गोरी या निर्जला एकादशी, गोगा पीर, पीपल पूजन, कुंआ, तुलसी, जोहड़ आदि में अपना अटूट विश्वास रखते हैं। इसके अतिरिक्त हरियाणा में निम्नलिखित वृत्तानुष्ठानों को मांगलिक समझा जाता है :-

रक्षाबंधन या श्रावणी, जन्माष्टमी, गुग्गा नवमी, अन्नत चौदस, श्राद्ध, दशहरा, दीपावली, सांझी शरद पूर्णिमा, कार्तिक स्नान, मंडलीय नौमी, करवा चौथ, अहोई अष्टमी, संक्रांति, शिवरात्रि एवं भैया दूज आदि।

हरियाणा प्रदेश में प्रयुक्त शब्दों में से रीति-रिवाज शब्द ही अधिक बोला समझा और लिखा जाता है। इसको नगरों में रहने वाले शिक्षित व अशिक्षित लोगों से लेकर गांव में बसने वाले साधारण स्त्री पुरुषों तक सभी लोग अपनी बोलचाल के व्यवहार में लाते हैं। व्यक्ति एवं समाज का पारंपरिक संबंध इतना घनिष्ठ है कि इसे अलग नहीं किया जा सकता है।

लोकगीतों में सांझी का वर्णन

हरियाणा में सांझी के लोकगीतों का विशेष महत्व होता है। लोकगीतों के अंतर्गत लोक कथाओं को भी किया जाता है, जिसमें लोक कथाओं के प्रति एक पक्ष के लिए गीतों को बनाया व गया जाता है।

किसी भी क्षेत्र की लोक कलाओं में नृत्य तथा संगीत का बहुत बड़ा स्थान होता है। हरियाणा में भी संगीत लोगों के जीवन में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गीतों को पढ़ाया बोला जाता है। लोग अपने घरों में त्योहारों, शादी, विवाह आदि के समय गाते हैं और वह पूरी तरह गीत नहीं कहे जा सकते, उन्हें दोहा, सोरठा आदि के नाम से जानते हैं।

सही अर्थों में लोकगीत पढ़ने की चीज नहीं है, अपितु यह एक शब्द के पीछे का सुर उस गीत की आत्मा होती है। इसलिए लोकगीतों के शब्द तभी अर्थपूर्ण होते हैं जब उनके शब्दों के साथ लय का समावेश होता है।

लोकगीत पारिवारिक या सामाजिक मामलों, मौसमों, पर्व – त्योहारों, विधि – विधान और कर्मकांड आदि से संबंधित होते हैं। लोकगीत सीधे-साधे मानवीय भावनाओं से संबंधित होते हैं। लोगों का मानना है की सांझी माता सिर्फ नौ दिन के लिए ही अपने ससुराल में आती है और बाकी शेष 11 महीने 21 दिन अपने मायके में चली जाती है। जब सांझी अपने ससुराल आती है तो उसका भव्य स्वागत किया जाता है और इसकी विदाई पर उतना ही दुख होता है और इसके ससुराल निवास के दौरान गांव में मोहल्ले, पड़ोस की औरतें इकट्ठा होकर सांझी माता के गीत गाती हैं।

सांझी के संबंधों में गीतों को गया जाता है। वैसे तो सांझी के विषय में कोई विशिष्ट साहित्य नहीं मिलता, परंतु कुछ लोकगीतों के आधार पर सांझी का वर्णन मिलता है। सांझी माता की पूजा आश्विन माह की प्रतिपदा से की जाती है और शाम के समय पूजा के साथ सांझी माता के आगे गीत गए जाते हैं, जो बहुत ही रोचक और आनंदमय होते हैं। इन गीतों में सांझी माता की लोक कथा का पूरा वर्णन मिलता है। गीतों का शुभारंभ हमेशा एक ही गीत से किया जाता है :-

जाग सांझी जाग, तेरे माथे लागे भाग,
तुझे दिल्ली शहर, से व्यावहण आये, अटकण मटकण जूते लाये,
पैरों की तेरी पायल लाये, हाथों की तेरी चूड़ी लाये,
कमर की तेरी तगड़ी लाये, गले का तेरी नैकलंस लायें,
सिर का तेरा टीका लाये, जाग सांझी जाग, तेरे माथे लागे भाग.....

प्रत्येक क्षेत्र में गीतो की शुरुआत इसी गीत से की जाती है। इस गीत के माध्यम से सांझी माता को जगाया जाता है और अनेकों वस्तुओं का नाम लेकर सांझी को रिझाया जाता है। इसके बाद सांझी माता की आरती की जाती है, यह आरती दूसरे देवी— देवताओं की आरती से भिन्न है:—

आरता री आरता, सांझी माई आरता
काहे का दीवला, काहे की बाती,
काहे का तेल जले सारी राती,
चांदी का दीवला, सोने की बाती ,
सरसों का तेल, जले सारी राती,
जल मेरे दिवले, झमक सारी राती.....

इस गीत के द्वारा सांझी माता की आरती उतारने के साथ ही जलाये जाने वाले दीपक की भी प्रशंसा की गयी है। गांव के लोगों का सांझी माता की आरती उतारने का वर्णन इस प्रकार है :-

सांझी माई आरता, आरता के फूल गुलाब सीका,
देवरा मेरा कौन सा भईया गौरा, ये सांझा भईया गौरा,
गौरी हैं बवडीया, श्याम कह चुड़ीं ले,
छन कह बीडी लें, सांझी माई आरता री आरता.....

आरता करने के बाद सांझी के अन्य गीत भी गाये जाते हैं जो सामाजिक संबंधों जैसे—भाई—बहन का प्यार, ननद — भवज की नौक — झोंक, सास की बुराई आदि को दर्शाते हैं। :-

1. नीली घोड़ी रे कौन फिरे है सवार, मैं था दुलीचन्द भैया रहे, सांझी का लेवन हार।
बोबो थोड़ा पानी पिला दे हे, तेरा वीरा पियासा जाय, मेरी नेजु टूटी रे, गुडवा गया पताल,
घर में सासु बुरी रे, दे भाइयों की गाल, गाली मत खाइए हे, गडवें से तू पचास.....

2. बनरी से क्या क्या लाय रे, वनरा टेसुरा, माय कु तो हंसला, बहन कु तो कटला,
गौरी कु तो काली कंठी लाय रे, वनरा टेसुरा, माय वा की रोवे, बहन वा की सुबके,
गौरी वा की फूली न समाय रे, वनरा टेसुरा.....

जब दुलीचन्द को अपनी बहन सांझी के दुखी होने का पता चलता है। तब दुलीचन्द निर्धन होते हुए भी अपनी बहन की हर इच्छा को पूरा करने का आश्वासन देता है और सांझी भी ससुराल में

हर बड़ी छोटी वस्तु के लिए अपने भाई को हो याद करती है। सांझी और उसकी ननद कि बातचीत से यह बात काकी साफ हो जाती है :-

3. सांझी री मांगे हरा— हरा गोबर, कहां से लाऊ सांझी हरा— हरा गोबर ,
मेरा री बीरा वो धुसियों के बैठा, ले मेरी सांझी तू हरा— हरा गोबर,
सांझी री मांगे सोने के कंगन, कहां से लाऊ सांझी सोने के कंगन,
मेरा री बीरा वो सुनारों के बैठा, ले मेरी सांझी तू सोने के कंगन,
सांझी री मांगे बनारस की साड़ी, कहां से लाऊ सांझी बनारस की साड़ी,
मेरा री बीरा वो बनारस में बैठा, ले मेरी सांझी तू बनारस की साड़ी,
सांझी री मांगे पानीपत के बिछवे, कहां से लाऊ सांझी पानीपत के बिछवे,
मेरा री बीरा वो पानीपत में बैठा, ले मेरी सांझी तू पानीपत के बिछवे,
सांझी री मांगे कोल्हापुर की चप्पल, कहां से लाऊ सांझी कोल्हापुर की चप्पल,
मेरा री बीरा वो कोल्हापुर में बैठा, ले मेरी सांझी तू कोल्हापुर की चप्पल,
सांझी री मांगे हलवा पूरी, कहां से लाऊ सांझी हलवा पूरी ,
मेरा री बीरा वो हलवाई के बैठा, ले मेरी सांझी तू हलवा पूरी,.....

सांझी माता अपने भाई पर ही विश्वास करती है, व उससे अत्यधिक प्रेम करती है। —

4. मेरी सांझी के ओरे— धोरे हरी—हरी, काई, मैं तुझसे पूछूँ सांझी बोबो कै थारे भाई,
म्हारे पांच पचासी म्हारे नौ दस भाई, म्हारे नौ—दसो का छठी मुण्डल बड़े की सगाई,
कचहरियों में बैठन वाला सांझा म्हारा भाई।
मेरी सांझी के ओरे.....

इसे कुछ लोग इस तरह भी गाते हैं जैसे :-

5. मेरी सांझी के ओरे— धोरे हरी है कढ़ाई, मैं तुझसे पूछूँ हे सांझी के तेरे भाई ?
मेरे पांच भतीजे, मेरे नौ दस भाई, मेरे पांचों का उण्डन मुण्डन दसों की सगाई ,
मेरी सांझी के ओरे.....

इस गीत के द्वारा सांझी से ससुराल में भतीजों व भाइयों के बारे में पूछा जा रहा है और सांझी बड़े गर्व से उन्हें बताती है कि मेरे बहुत से भाई और भतीजे हैं।

6. नौ नौरते देवी के सोलह कनागत पितरों के, उठ मेरी गरजा, खोल किवाड़ ,

पूजन आई तेरे द्वार, पूज, पूज्जापा अपना ले,
भाइयों के घर बेटा दे, मेरी गोद भतीजा दे ,
नौ नौरते देवी के सोलह.....

इस गीत से लोगों में यह मान्यता है कि जब भी इस गीत को गाया जाए तो नौ बार ही गाया जाये क्योंकि देवी की नौ दिन पूजा होती है।

7. म्हारी सांझी है कनागत परली पार, देखण चालो है संझा के लणिहार ,
वह तो देखियो माला है चन्दा लाम जडाम, देखण चालों है साति के लणिहार ,
वह तो देखिया माला है चन्दा लाम जडाम.....

8. म्हारी सांझी ए के औढेगी के पहरेगी, क्याएं की मांग भरावैगी ,
मिसरू पहरुगी स्यालु ओढूगी, मोतियां की मांग भरांडगी ,
म्हारी सांझी ए के जीमेगी के झूठूंगी, क्याएं की चलुए भरावैगी ,
लाडू जीमूगी पेडा झूठूंगी, इमरत की चलुएँ भराऊगी।

9. हैं मेरी सांझी, तेरी फूली आगी कुरबान सांझी, हो मेरा सुसरा ,
तेरी डाढी लिकडा कचरा कुरबान सांझी, है मेरी सासू ,
तेरे गिण गिण तोडू पास कुरबान सांझी ।

10. सांझी चाली सांझ नै, गैल बसता पूल
और सब चीज सिर पर धरी बगल में मारा सूत।

11. चाब दे री, चाब दे, भरी कटोरी चाब दे, ऊपर पांच बतासौ दे।
कडवी कचरी कडूवा तेल पूतो फलियों सारी बेल,
चाब दे री हरी चाब दे, अनिल— सुनिल की अम्मा,
चाब दे री चाब दे, तेरे दोनों जिए चाब दे ।

12. चाब दे री चाब दे, सांझी की अम्मा चाब दे ,

तेरी सांझी जीवे चाब दे, भरी सराई चावलों की,
ऊपर पांच पताशे दे, चाब दे री चाब दें.....

13. अटन-बटन मेरी उन सिलाई / नौ डांडी का बीजणा ॥
आवेगा दिल्ली का राजा / कभी ना झोल्लू बीजणा ॥
आवेगा सांझा का वीर / ले झोल्लगी बीजणा ॥
अटन- बटन मेरी उन सलाई / नौ डांडी का बीजणा ॥
आवेगा दिल्ली का राजा / कभी ना झोल्लू बीजणा ॥
आवेगा नीरज सा वीर / ले झोल्लंगी बिजणा ॥

14. कच्चे मरवे रे तेरे जोड़े पातते / तोड़ भरु डलिया फूल्लों से ॥
कौन सी मालन, रे बीरा पूछेगी बात / बीरा का घर कौन सा ॥
ऊंची माडी रे बीरा, लाल किवाड / जगमग चिबले जलै सदा
कच्चे मरवे रे तेरे चौड़ पत्ते / तोड़ भरु डालियां फूल्लों से ॥
कौन सी मालन, रे बीरा पूछेगी बात / बीरा का घर कौन सा ॥
ऊंची छजली रे बीरा, लीले किबाड़ / जगमग चिबले जलै सदा ॥

15. हल्दी गांठ गठेली सांझी को भउ हैं हठेली ॥
दो मांगे सोने का बिन्दा / म्हारे सोना बतेरा, म्हारे चांदी बतेरी ॥
बबुल बैड गडाइया / डपर मोरनी, नचवाइयो ॥
नीचे घुघरु, लगवाईयो / हल्दी गांठ गठेली ॥
नीरज की भउ है हठेली / वो मांगे सोने का टीका ॥
म्हारै सोना बतेरा, म्हारै चांदी बतेरी.....

सांझी माता की पूजा और विसर्जन विधि

➤ सांझी माता की पूजा :-

सांझी का त्यौहार लोग बड़े उल्लास के साथ मनाते हैं। पितृपक्ष (श्राद्ध) के अन्तिम दिन अमावस्या को सांझी देवी को स्थापित किया जाता है। आश्विन मास के नवरात्रों में सांझी लगायी जाती है। सांझी माता को देवी शक्ति का रूप माना जाता है। नवरात्रि के प्रारम्भ से सांझी की पूजा अर्चना प्रतिदिन करना शुरू कर दी जाती है। सांझी की पूजा नित्य प्रातः काल में बिना कुछ खाये की जाती है व सांयकाल सूर्यास्त के समय भी की जाती है। और गीत भी गाये जाते जाते हैं। सांझी के गीत गाकर शाम को भीगे चने व पतासे का प्रसाद बांटा जाता है। लड़कियों व स्त्रियां इन नवरात्रि में उपवास रखती हैं।

सांझी को लगाने के साथ- साथ ही गांव की औरतें व लड़कियां सब मिलकर खेतों से मिट्टी लाती हैं और सांझी माता जी के पास हांडी या जमीन पर रखकर इसमें जौ के दाने बिखेर देती हैं इसे सांझी बौना या, जौ बौना भी कहते हैं और इससे रोजाना त्यौहार जैसा वातावरण रहता है। सांझी को नौ दिनों तक नौ दुर्गा के रूप में पूजा जाता है। कोई कोई तो सांझी को नवदुर्गा रूपों में रोजाना पूजा करते हैं। इनमें जो लोग पूजा करते हैं उनमें से कुछ व्रत/उपवास रखते हैं। और कुछ व्रत/ उपवास नहीं रखते हैं। लोग उपवास/व्रत भी दो तरह से रखते हैं।

एक वे लोग जो नवरात्रि के नौ दिनों तक अनाज का भोजन नहीं करते हैं। वे केवल शाम को ही माता की पूजा करके थोड़ा सा फल या दूध ही लेते हैं। और इसके अलावा कुछ ग्रहण नहीं करते हैं। वैसे भी माता के व्रत और पूजा में भूख नहीं लगती और माता के भजन किर्तन रोजाना करते हैं। और नौवें दिन शाकुंभरी देवी जाकर अपना व्रत खोलते हैं। और जो शाकुंभरी देवी नहीं जाते वे अष्टमी के दिन अपना उपवास खोलते हैं। और छोटी-छोटी कन्याओं को भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद लेते हैं और फिर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण कर उपवास / व्रत खोलते हैं और भोजन ग्रहण करते हैं। तथा शाम को सांझी माता का विसर्जन भी करते हैं।

दूसरे वे लोग जो व्रत नहीं रख पाते पर माता की पूजा पूरे मन से करते हैं। किसी कारणवश वे व्रत नहीं रख पाते इसलिए वे पहला और आखिरी दिन का व्रत रखते हैं। और वे भी छोटी कन्याओं को भोजन करा कर ही अपना उपवास खोलते हैं। प्रत्येक घर में इतना अच्छा वातावरण बना रहता है कि नौ दिनों का पता ही नहीं लगता के कब बित जाते हैं। शाम के समय औरतें और लड़कियां साथ में बैठकर सांझी माता की पूजा आरती करते हैं। गीत गाती हैं, वातावरण, भक्ति भरा और आनन्दमय

होता है। सबसे पहले औरते सांझी माता को सिंदूर देकर माथे पर लगाती है। सांझी की आरती करती है और गीत गाती है। सांझी माता को भोग लगाया जाता है और सभी मिलकर सांझी के गीत गाते हैं।

कहा जाता है कि जो भी लड़की पितृ पक्ष के दिनों में सच्चे मन से 'सांझी' की पूजा करती है उसे बहुत ही संपन्न और सुखी ससुराल मिलता है। अपने सुखी जीवन के लिए ही सभी कुंवारी कन्याएं इन दिनों में सांझी माता की पूजा करती हैं और उनका आशीर्वाद लेती हैं।

➤ सांझी माता की विसर्जन विधि :-

विजयदशमी यानि दशहरे से पूर्व सांझी को उतारा जाता है। सांझी माता को उतारने से पहले घर में देवी की कढ़ाई की जाती है और माता के खाने के लिए हलवा बनाया जाता है। जो लोग अष्टमी की पूजा करते हैं वे अष्टमी की कढ़ाई करके सांझी को उतार देते हैं और जो लोग नवमी की पूजा करते हैं वे नवमी की कढ़ाई करके सांझी को उतार देते हैं।

सांझी को उतारने से पहले प्रतिदिन सांझी की पूजा अर्चना की जाती है। सांझी को हलवा जिमा –झूठाकर दीवार से उतार लेते हैं। और परंपरा के अनुसार लड़कियाँ व औरते गीत गाते हुए सांझी को एक सुराखदार मिट्टी की हांडी में रखा जाता है। और उसमें चारों दिशाओं में जलते हुए दीपक रखे जाते हैं और घी का ज्ञान बखान किया जाता है।

सांझी के साथ विभिन्न पकवान भी रखे जाते हैं। सांझी माता को उतारने के साथ सभी वस्तुएं उतारी जाती हैं। परंतु सांझी का भाई व पांच (टिकड़ियां) तारें नहीं उतारते। सारे साल इन्हें दीवार पर ज्यों का त्यों ही रहने दिया जाता है। सांझी माता की पवित्रता को ध्यान में रखते हुए सारे सामान के साथ बहते पानी में विसर्जित कर दिया जाता है। और धार्मिक गीत गाये जाते हैं। सांझी माता को अंधेरा घिरने पर ही विसर्जित कर विदा किया जाता है। व कामना करते हैं कि अगले साल सांझी फिर से उनके घर आयेगी और साथ में सुख, समृद्धि लायेगी। इस प्रकार श्रद्धा से सांझी माता को विदा किया जाता है।

पंचम् अध्याय

- सांझी के विषय में लोगों की भिन्न भिन्न धारणाएं
- सांझी के संरक्षण व सवर्धन में महिलाओं की भूमिका
- लोक कला सांझी

सांझी के विषय में लोगों की भिन्न भिन्न धारणाएं

हरियाणा में बहुत से त्योहार मनाए जाते हैं और इन्हीं में से एक है सांझी का त्यौहार या सांझी कला। हरियाणा की लोक कलाओं में सांझी कला बहुत ही प्रसिद्ध कला मानी जाती है। हरियाणा लोक कला संपन्न प्रांत है। यह प्रांत अपनी संस्कृति एवं कला के लिए विख्यात है। सांझी को हरियाणा में पर्व के रूप में मनाते हैं। यह हरियाणा की लोक कला का अनूठा उदाहरण है।

सांझी का निर्माण दीवार पर गोबर द्वारा या मिट्टी द्वारा किया जाता है। लड़कियां व औरतें सांझी की कला में विशेष रुचि एवं निपुणता दिखाती हैं। सांझी के बारे में भी लोगों के भिन्न-भिन्न विचार हैं जैसे अन्य किसी लोक कलाओं के बारे में होते हैं। लोगों की यह धारणा है कि सांझी एक जुलाहे की बेटी थी और विवाह के बाद उसके पति ने उसे एक लड़का होने पर घर से निकाल दिया था। वह रात भर जाग कर सूत कातती व बुनती और उसे बेचकर अपना व अपने बेटे वसंत का पेट भरती थी और कुंवारी कन्याओं / लड़कियों को मिलते ही वह अपना ज्ञान बांटती, जो उसने विद्वानों की संगत में सीखा था।

लेकिन यह पुण्य काम भी ससुराल वालों को सहन नहीं हुआ था। वे उस पर अत्याचार करने के लिए अवसर देखते रहते थे। एक दिन सांझी ससुराल वालों के अत्याचारों से तंग आकर अपने बेटे सूत के साथ (बापके) अपने घर आ रही थी, रास्ते में ही उसके ससुराल वालों ने उसे पीट-पीटकर मार डाला। रोती बिलखती उसकी भक्तियों ने सांझी के शव को जल में प्रवाहित कर दिया। तभी से सांझी पूजन व विसर्जन का प्रारंभ हुआ।

अन्य कथा के अनुसार सांझी माता के सात भाई थे, जिनमें से उसके 6 भाइयों की शादी हो चुकी थी। एक भाई कुंवारा था। वह सांझी माता से छोटा था। जब सांझी माता की शादी हुई थी, तो कुछ ही समय के बाद उसके पति की मृत्यु हो गई थी, जिसके कारण उसके भाई व भाभियां सांझी को कोसने लगी कि — मैं कहां रहूं ? तब सांझी के छोटे भाई दुलीचंद ने उसकी रक्षा की ओर अपने पास रखा। तभी इसी कारण सांझी माता के साथ उसका भाई ढोलू अवश्य बनाया जाता है।

सांझी माता में बनने वाली प्रत्येक आकृतियां प्रतीकात्मक होती हैं। सभी आकृतियों या वस्तुओं का कोई ना कोई तात्पर्य अवश्य होता है। घर में चोरी न हो, इससे बचने के लिए चोर की आकृति को उल्टा लटकाया जाता है, जिसका चेहरा काले रंग यानी कि काजल से रंगा होता है। इसका यह तात्पर्य है कि वह घर में चोरी करने आया था, सांझी माता ने उसे दंड देकर उल्टा लटका दिया है और वह सांझी माता से माफी / क्षमा चाहता है।

सांझी के भाई के प्रदर्शन का संबंध औरतें, बूढ़ियों, कुंवारी कन्याओं का अपने-अपने भाई की लंबी जीवन उम्र की कामना से होता है। सभी अलग-अलग प्रकार के गीत गाती हैं और सांझी माता से अपने भाइयों के मंगलमय की कामना करती हैं और प्रसन्न होती है।

गुजरी युक्ति सिर पर हंडिया रखकर बनाई जाती हैं जो दूध का परिचायक है और ब्राह्मणों के हाथ में चकला बेलना, पुरुषों द्वारा हर कार्य में निपुणता को दर्शाता है और मिरासण के हाथों में ढोल या डमरू को दर्शाया जाता है, यह संगीत की विद्या में परंपरागत अथवा स्तुति गान का बोध कराता है। विवाहित जीवन के सारे प्रतीक आभूषणों जैसे कंधा, पंखा, पर्स आदि और बिंदी, टीका, चूड़ी यह सब स्त्री के सुहाग की सुरक्षा रक्षक के रूप में बनाए जाते हैं और औरतें पहले सांझी माता को सिंदूर देती हैं और फिर बाद में अपने माथे पर लगाती हैं।

माना जाता है कि अश्विन मास के शुक्ल पक्ष से दसवीं तक सांझी की पूजा की जाती है। सांझी बनाते समय कुंवारी कन्याएं सांझी से उसके प्रश्न के संबंध में प्रश्न करती है कि सांझी माता क्या पहनेगी, कौन सा जेवर या आभूषण पसंद करेगी और उसकी मोतियों से मांग भी भरती है। यह कहना तर्कसंगत है की सांझी में रंगों का समावेश व आवश्यक रेखांकन रंग मिश्रण करने के पीछे कुंवारी कन्याओं को रंगों का ज्ञान कराना, प्रतिस्पर्धा को सृजित करना एवं उनके भावात्मक सोच को सुदृढ़ करना भी रहा होगा।

कन्याओं को वृद्ध महिलाओं द्वारा सांझी माता का ज्ञान दिया जाता है। कन्याओं की बिखरी हुई मनोवृत्ति को इन कृतियों द्वारा एकाग्र किया जाता है।

सांझी माता को देवी का रूप माना जाता हैं। यह बात भी प्रचलित है कि जब सांझी माता को दीवार पर लगाया जाता है तो उसके मुंह को लाल चुनरी या कपड़े से ढक दिया जाता है, जो पर्दा प्रथा की ओर संकेत करता है। औरतों और कन्याओं की यह मान्यता है भी है की शादी के 10 दिन के बाद वह अपने पीहर आती हैं।

सांझी माता का संबंध सांझ से जोड़ा जा सकता है और इससे अभिप्राय है की लड़की के रूप में सांझी सांझ (शाम) को विदा हुई होगी। इसलिए हो सकता है कि इसको सांझ (शाम) को विसर्जित किया जाता है। नवरात्रों में पूरे 9 दिन सांझी माता के गीत गाए जाते हैं तथा दशहरे के दिन सांझी माता को दीवार से उतार कर जल में विसर्जन के लिए नदी तालाब या जोहड़ आदि में परंपरागत ढंग से ले जाया जाता है।

कुंवारी कन्याओं द्वारा मनाए जाने वाले व्रत को हरियाणा में ही नहीं बल्कि समुचे उत्तर भारत में इसकी मान्यता है। विभिन्न कन्याएं अपनी-अपनी सांझी को एक दूसरे से अत्यधिक सुंदर व सजीव बनाने की कोशिश करती हैं, ताकि उनकी सांझी सबसे सुंदर और अलग नजर आए। वे सांझी को

बनाते समय बहुत ही खुश होती हैं। लोगों का मानना है कि सांची का संबंध जुलाहा परिवार से है, जो सूत कातने का काम करते हैं।

उनके पुत्र का नाम बसंत तथा पति का नाम साधु बताया गया है। माना जाता है कि अपने परिवार सहित सूत को लेकर सांझ के समय ही निकली थी। एक गीत भी लोग गाते हैं जैसे –

*सांझी चाली सांझ नै, गैल बसंत पूत
साधु अर भी चल पड़े, बांध कमर के सूत॥*

लेकिन प्रमाणों के अभाव में यह मत अपनी कसौटी पर खरा नहीं उतरता। श्रीमती रीना देवी के अनुसार सांझी माता अपने समय की एक आदर्श कन्या रही होगी। बड़े परिवार में अपने माता-पिता की अकेली लाडली लड़की होगी। सांझी माता पिता की लाडली होने के कारण उसके ससुराल जाने पर उसके माता-पिता ने अपनी लड़की की याद में उसकी तस्वीर बनाकर या कुंवारी कन्याओं का कोई त्यौहार आरंभ करके अपनी लड़की के प्रति अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया होगा, जिसे आगे चलकर एक अनुष्ठानिक महत्व प्राप्त कर लिया होगा और इसलिए सांझी माता बनाई जाती होगी।

लोगों का मत है की विजयदशमी के दिन शाम के समय सांझी को उतारने के बाद घर में देवी की कढ़ाई की जाती है और सांझी माता की पूजा करने व इसे हलवा खिलाने के बाद ही दीवार से उतारा जाता है। इसके साथ ही आसपास की सभी कन्याएं एक झुंड के रूप में इकट्ठा होती हैं तथा कुछ कन्याएं अपनी मटकी के ऊपर जलता हुआ चिराग भी रख लेती हैं। कन्याएं कहती हैं कि अगर जलता हुआ चिराग नदी या तालाब के दूसरे किनारे पर पहुंचता है तो अकाल पड़ेगा।

अंतिम दिन सांझी की पूजा करते समय कोई पुस्तक या बहीं, आभूषण व लोहे की कोई वस्तु साथ में रखी जाती है। दशहरे के दिन सुबह से ही सांझी माता की विदाई की तैयारी की जाती है। दो दिन पहले दीवार पर सांझी के दो भाई बनाए जाते हैं। ये दोनों भाई सांझी को लेने आए हैं। एक मटका या हांडी लेकर उसमें रेत भरकर कील से उसके चारों ओर बराबर फासलों पर उसमें सुराग किए जाते हैं। शाम ढलते ही सावधानी पूर्वक उस हांडी में सांझी माता को रखा जाता है और आसपास की महिलाएं व कन्याएं पारंपरिक परिधानों से सज धज कर गीत गाते हुए गांव के तालाब या नदी पर जाती थी। इस समय गाया जाने वाला गीत है –

*सांची चाली बाप के, नौ सौ रथ जुड़ा हो राम,
म्हारे..... पातलां म्हारी सांझी, बहिए हो राम॥*

इस गीत में खाली स्थान में विभिन्न लड़कों के नाम डालकर गीत को लंबा किया जाता है। फिर एक वरिष्ठ महिला हांडी को धीरे-धीरे तालाब में रखकर विसर्जित करते हुए धकेल देती है। हांडी तैरती हुई आगे बढ़ती है और सभी श्रद्धा भाव से हांडी को विदा होते देखते हैं। तालाब पर चारों तरफ सैकड़ों सांझियों को बहाने का कार्यक्रम संपन्न होता है और तब फिर हंडिया फोड़ने का सिलसिला शुरू होता है।

नौजवानों में उन्हें फोड़ने की होड़ लग जाती है। वे तालाब में जाकर लाठी से हाड़ियों को फोड़ते हैं, जिसकी भी हांडी सबसे अंत में फूटती थी वह अपने आप को धन्य समझती है।

सांझी बदलते परिवेश में आज आधुनिकता की चादर ओढ़े जैसे घिसट रही है। अच्छी मिट्टी की कमी के कारण कुछ महिलाएं रूई से व बाजार से रेडीमैन्ट कागज की सांझी से भी काम चलाती हैं। सांझी के विषय में अब हमारे सामने प्रश्न उभर कर आता है कि सांझी को कुंवारी कन्याओं का अनुष्ठान एक व्रत क्यों माना जाता है? एकमत के अनुसार पार्वती माता ने कुंवारेपन में शिव जी को प्राप्त करने के लिए तपस्या (व्रत) किए थे। इसी कारण यह कन्याओं की मनोकामनार्थ हेतु अनुष्ठानिक व्रत हो गया है।

दूसरा प्रश्न यह सामने आता है कि सांझी की पूजा सांझ को ही क्यों होती है? इसको जल में सांझ के समय ही विसर्जित क्यों किया जाता है, तथा लड़के इसको फोड़ना शुभ क्यों मानते हैं ?

सांझी के संरक्षण व संवर्धन में महिलाओं की भूमिका

सांझी हरियाणा की लोक कला है। सांझी कला में महिलाओं विशेष कर लड़कियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें वे गोबर और मिट्टी से दीवारों पर रंग बिरंगी सांझी बनाकर अपनी कला का प्रदर्शन करती हैं और यह हरियाणवी संस्कृति को बनाए रखने में मदद करती हैं।

➤ सांझी कला का प्रदर्शन :-

महिलाएं और कुंवारी लड़कियां सांझी कला में गोबर और मिट्टी का उपयोग करके दीवारों पर रंग बिरंगी सुंदर सांझी बनाती हैं, जो हरियाणा की लोक कला का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

➤ हरियाणवी संस्कृति का संरक्षण :-

सांझी कला हरियाणवी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है और महिलाएं इसे बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और हम अपनी संस्कृति से जुड़े रहते हैं।

➤ नवरात्रि में सांझी :-

सांझी को विशेष रूप से नवरात्रि के दौरान बनाया जाता है और महिलाएं पूरी श्रद्धा भाव से सांझी बनाती हैं और महिलाएं माता के नौ रूपों की पूजा करती हैं।

➤ सांझी के विभिन्न नाम :-

सांझी माता को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग – अलग नामों से जाना जाता है। जैसे संझा, संझाया, हंझया आदि।

➤ महिलाओं द्वारा सांझी की पूजा :-

कुछ लोग सांझी को देवी मानते हैं और इसकी पूजा करते हैं और अपने भविष्य की मंगल कामना करते हैं। विशेषकर महिलाएं ही यह सब करती हैं।

➤ सांझी कला की जटिलता :-

महिलाओं द्वारा अब सांझी कला में जटिल डिजाइनों और पैटर्न को बनाने की कला शामिल है जिसमें प्राकृतिक पाउडर रंगों का उपयोग किया जाता है। महिलाएं अपनी कला के द्वारा सांझी को बनाती हैं।

➤ सांझी कला का महत्व :-

सांझी कला न केवल एक कला है बल्कि यह महिलाओं की रचनात्मकता और सांस्कृतिक पहचान का भी प्रतीक है।

➤ सांझी कला का संरक्षण :-

सांझी कला को जीवित रखने के लिए महिलाओं का बहुत महत्वपूर्ण सहयोग है। इसलिए महिलाओं को और प्रोत्साहित करना और उन्हें इस कला को सीखाना महत्वपूर्ण है। महिलाएं हमारी संस्कृति को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विशेषकर ग्रामीण अंचलों की महिलाएं सांझी की रचना करने में अपने-अपने हुनर का प्रदर्शन करती हैं और सबसे अच्छी सांझी बनाने वाली महिला की दूर-दूर तक चर्चा होती है।

अपने-अपने घरों में दीवारों पर सांझी की रचना करने के बाद महिलाएं एक दूसरे के घर सांझी की साज-सज्जा देखने भी जाती हैं। नवरात्रों के समापन के साथ ही सांझी पर्व का भी समापन हो जाता है। दशहरे के दिन पहले घर में औरतें कढ़ाई करती हैं और सांझी माता को भोग लगाती हैं। उसके बाद सांझी को दीवार से उतार कर आस पड़ोस की महिलाएं इकट्ठी होकर गीत गाते हुए उसे गांव के तालाब अथवा जोहड़ में विसर्जित कर आती हैं। इन सभी में भी महिलाओं की ही अहम भूमिका है।

लोक कला – सांझी

➤ लुप्त होती लोक कला सांझी को बचाने के लिए :-

सांझी लोक कला हमारी धरोहर है। इस कला को जीवित रखने में महिलाओं की अहम भूमिका रही है। लोक संस्कृति और लोक कला के संरक्षण और संवर्धन को लेकर कार्यक्रम के संयोजन डॉक्टर महासिंह पूनिया ने विरासत हेरीटेज विलेज जी.टी. रोड मसाना में विरासत सांझी प्रतियोगिता का कार्यक्रम आयोजित किया था।

लुप्त होती लोक कला सांझी को बचाने के लिए चौथा 'विरासत सांझी उत्सव' 2 अक्टूबर से शुरू विरासत हेरीटेज विलेज जीटी रोड मसाना, में पिछले वर्षों की भांति वर्ष 2024 में 2 अक्टूबर से 11 अक्टूबर 2024 तक विरासत सांझी उत्सव का आयोजन किया गया था। इस उत्सव में उत्तर भारत के सभी राज्यों की महिलाएं सांझी लगाने के लिए आमंत्रित की गई थी।

यह जानकारी कार्यक्रम के संयोजक डॉक्टर महासिंह पूनिया ने दी। उन्होंने बताया की विरासत की ओर से 2021 से सांझी उत्सव की शुरुआत हुई। उसके पश्चात 2022 एवं 2023 में भी विरासत सांझी उत्सव आयोजित किया गया और वर्ष 2024 में यह चौथा सांझी उत्सव होगा जिसमें ग्रामीण महिलाएं अपनी लोक कला सांझी को दीवारों पर उकेरेंगी।

उन्होंने कहा की विरासत सांझी उत्सव के माध्यम से हरियाणा ही नहीं अपितु उत्तर भारत की लुप्त होती लोक कला सांझी को बचाने का प्रयास किया जा रहा है। उन्होंने बताया की विरासत की ओर से तीन राज्य स्तरीय सांझी उत्सव आयोजित किए जा चुके हैं। इन सांझी उत्सवों में सैंकड़ों महिलाओं ने भाग लेकर लोक कला सांझी को फिर से पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। डॉ० पूनिया सिंह ने बताया की विरासत का उद्देश्य लुप्त हो रही लोक संस्कृति को पुनर्जीवित कर युवाओं से जोड़ना है। इस कड़ी में सांझी उत्सव लोक कलात्मक संस्कृति के संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण उत्सव है। उन्होंने कहा कि लोक कला सांझी हरियाणा की लोक पारंपरिक कला का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

वर्तमान में यह कला गांव से लुप्त होती जा रही है। सांझी लगाने की शुरुआत अमावस्या के दिन की जाती है। हरियाणा में अश्विन मास के शुक्ला प्रथमा से दशमी तक सांझी की पूजा होती है। इसकी स्थापना घर की किसी दीवार पर की जाती है। स्थापना के पूर्व ही सांझी के सभी अंग प्रत्यंग बना लिए जाते हैं और फिर इन्हें गोबर की सहायता से दीवार पर स्थापित कर दिया जाता है। 10 दिन नवैद्य आदि से बालिकाएं इसकी पूजा करती हैं।

विजयदशमी के दिन इसका समापन उत्सव मनाया जाता है और सांझी को उतार कर निकट स्थित किसी तालाब या नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। हरियाणवी लोक में सांझी के आकृतिक,

अनुष्ठानिक एवं ऐतिहासिक पक्ष का विशेष महत्व है। हरियाणा में सांझी की स्थापना से कुछ दिन पूर्व कुंवारी कन्याएं मिट्टी के चांद, सितारे तथा श्रृंगार के उपकरण कंधी, कंठी, टीका, आंगी, तगड़ी, घाघरी, डूंगे, कंगन, हथफूल, आदि का निर्माण कर उन्हें सुखा लेती हैं। इसके पश्चात सफेदी एवं गेरू रंग से सांझी के अंगों को रंगा जाता है और फिर गोबर की सहायता से दीवार पर लगाया जाता है। यह परंपरा सदियों से चली आ रही है। वर्तमान दौर में इसका प्रचलन कम हो चुका है। इसलिए विरासत लोक कला सांझी को बचाने के लिए सांझी उत्सव का आयोजन कर रहा है।

विरासत सांझी उत्सव में 25 फीट ऊंची तथा 20 फुट चौड़ी विश्व की सबसे बड़ी सांझी विशेष आकर्षण का केंद्र बनी हुई है। यह सांझी जींद के कलाकार गौतम ने बनाई है जो 500 स्क्वायर फीट की है। इतनी बड़ी सांझी अभी तक विश्व में कहीं भी नहीं बनी है। विरासत सांझी उत्सव में दीवार पर स्थापित सांझी देवी की आकृति को देखने के लिए इस बार मेरठ शहर के एक संभ्रात घराने से अनीता चौधरी भी कुरुक्षेत्र पधारी। वे खुद सांझी की स्थापना करती हैं और प्रयासरत है कि मेरठ में किसी भी उपयुक्त स्थल पर वे सांझी स्थापना के लिए ठीक उसी तरीके से एक प्रतियोगिता का आयोजन करे जैसा विरासत हेरीटेज विलेज में किया जाता रहा है।

उन्होंने बताया कि हरियाणा की लुप्त होती लोक कला सांझी को विरासत बढ़ाने का हर संभव प्रयास कर रहा है। इसी कड़ी में चौथा विरासत सांझी उत्सव आयोजित किया गया है। इस सांझी उत्सव में हरियाणा, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश सहित तीन राज्यों के प्रतिभागियों ने भाग लिया। उन्होंने बताया कि विरासत सांझी उत्सव 2024 में प्रथम पुरस्कार 51000, दूसरा 31000, तीसरा 21000, चौथा 11000, पांचवा 5100, छठा 3100, सातवां 2100 के पांच पुरस्कार, जबकि आठवां 1100 रुपए के 10 पुरस्कार रखे गए हैं।

विरासत में सांझी उत्सव के संयोजक डॉक्टर महासिंह पूनिया जी ने बताया कि लोकगीतों में सांझी रची एवं बसी हुई है। बालिकाएं सांझी को सुबह जागते हुए यह गीत गाती हैं – जाग सांझी जाग, तेरे मातृ लैग्या भाग.....

बालिकाएं जब सांझी माई को खाना खिलाती हैं तब ये गीत गाती हैं – जिम ले जिम ले सांझी माई जिम ले। सांझी माई इस सवाल के जवाब में उत्तर देती हैं – लड्डू जीमूगी, पैडा जीमूगी, अमृत की चलू भराऊ। जीम ले हे जिम ले, सांझी माई जीम ले।

डॉक्टर पूनिया ने बताया कि सांझी को जिमाने के बाद बालिकाएं एवं महिलाएं मिलकर सांझी का आरता एवं आरती गाती हैं – आरता हे आरता, सांझी माई आरता।

सांझी के विषय में कहा जाता है कि यह नवरात्रों में अपने ससुराल जाती हैं। इसके ससुराल जाने के पश्चात गांव के बाग सूख जाते हैं और इसका भाई इसको लेने के लिए जाता है। वास्तव में सांझी भाई बहन के प्रेम का भी घोटक है।

उन्होंने बताया कि चौथे विरासत सांझी उत्सव के समापन अवसर 11 अक्टूबर को भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया जाएगा। इस अवसर पर सांझी के लोकगीत, हरियाणवी नृत्य, गीत संगीत पेश कर सभी सांस्कृतिक प्रेमियों व कला प्रेमियों का मनोरंजन किया जाएगा। समापन अवसर पर सभी सांझी विजेताओं को इस कला को सुरक्षित करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए मुख्य अतिथि द्वारा लगभग डेढ़ लाख रुपए के पुरस्कार दिए जाएंगे और इस प्रकार के कार्यक्रमों के द्वारा हरियाणा की सांस्कृतिक लोक कला सांझी को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है।

चित्रों का कलात्मक विवरण

1. सांझी का चित्र :-

चित्र संख्या 1 में सांझी के सुन्दर रूप को दर्शाया गया है। यह गांव लेदी में बनी सांझी है।

2. सांझी के लिए मिट्टी की तैयारी:-

चित्र संख्या 2 में गांव मानीपुर की महिला सांझी माता के लिए मिट्टी तैयार करते दिखाई गई है।

3. सांझी व अन्य आकृतियां :-

चित्र संख्या 3 में अर्जुन माजरा गांव में सांझी और अन्य आकृतियों को बनाते हुए दिखाया है।

4. सांझी के अंग-प्रत्यंग :-

चित्र संख्या 4 में लेदी गांव की महिला द्वारा कच्ची मिट्टी से बनाये गए सांझी के अंग – प्रत्यंग है, जो प्रेम के साथ बनाये गए है।

5. रंगना :-

चित्र संख्या 5 में मानीपुर गांव की सीमा द्वारा सांझी के अंग प्रत्यंगों को चुने में डुबाते हुए दिखाया है।

6. रंगाई :-

चित्र संख्या 6 में मानकपुर गांव की महिलाओं द्वारा सांझी के अंगों को सुन्दर रंगों से रंगते हुए दिखाया गया है।

7. धूप में सुखना :-

चित्र संख्या 7 में सांझी की आकृतियों को धूप में सुखाते हुए महिला का चित्र है।

8. रंगें हुए अंग-प्रत्यंग :-

चित्र संख्या 8 में ललहाडी, गांव में महिलाओं द्वारा सुंदर रंगों से रंगे गए सांझी के अंग प्रत्यंगों का चित्र है।

9. गोबर से बनी सांझी :-

चित्र संख्या 9 में मानीपुर गांव की आशा देवी द्वारा दीवार पर सांझी को गोबर से बनाते हुए दिखाया है।

10. दिवार पर सांझी लगाना :-

चित्र संख्या 10 में महिला सांझी की आकृतियों को दिवार पर लगाते हुए दिखाई गई है और सांझी को सुन्दर रंग रूप दिया गया है।

11. सांझी की आरती :-

चित्र संख्या 11 में लेदी गांव में शाम के समय सांझी की आरती करती हुई कन्याएं जो पूरी श्रद्धा से आरती कर रही है।

12. सांझी को भोग लगाना :-

चित्र संख्या 12 में मानकपुर, गांव का है जिसमें 'महिलाएं सांझी को भोग लगाते हुए गीत गा रही है।

13. घूंघट में सांझी :-

चित्र संख्या 13 में विरासत हैरीटेज मसाना प्रतियोगिता में बना सांझी का चित्र है, जिसमें सांझी को घूंघट में दर्शाया गया है।

14. बाजार से प्राप्त सांझी :-

चित्र संख्या 14 में लेदी गांव की रानी के द्वारा बाजार से प्राप्त किये गए सांझी के अंग प्रत्यंगों से बनी सांझी जो कि एक लकड़ी के पट्टे पर लगाई गई है।

15. विरासत सांझी प्रतियोगिता में गोबर से बनी सांझी :-

चित्र संख्या 15 में विरासत सांझी प्रतियोगिता में गोबर से दीवार पर सांझी बनाते हुए कन्या का है।

16. जैविक सांझी :-

चित्र संख्या 16 में गांव अर्जुन माजरा में बनी सांझी का चित्र है, जिसमें गोबर द्वारा जैविक सांझी बनाई गई है। जो सुन्दर लग रही है।

17. विरासत में बनी सांझी :-

चित्र संख्या 17 में मसाना गांव में बनी 'विरासत में बनी सुन्दर सांझी माता है।

18. सांझी व उसका भाई दुलीचन्द :-

चित्र संख्या 18 में सांझी माता और उसके भाई दुलीचन्द को बनाया गया है जो भाई-बहन के प्रेम को दर्शाता है। और यह बहुत सुन्दर सांझी बनी है।

19. आभूषणों युक्त सांझी :-

चित्र संख्या 19 में सांझी माता को आभूषणों से युक्त बनाया गया है। जिसमें सभी प्रकार के आभूषण बने हैं। जिससे यह बहुत ही आकर्षक लग रही है।

20. सांझी का दुर्गा रूप :-

चित्र संख्या 20 में बनी सांझी को मानीपुर गांव की महिला रानी के द्वारा बनाया गया है। जिसमें सांझी को दुर्गा के रूप में बनाया गया है।

21. शेर पर सवार सांझी :-

चित्र संख्या 21 में लेदी गांव में बनी सांझी का है जिसमें रीना ने सांझी देवी को शेर पर सवार या बैठे हुए दिखाया है। जिसमें कागज के लाल रंग के कपड़े पहने हुए दिखाया गया है।

22. सांझी का दुल्हन रूप :-

चित्र संख्या 22 में सांझी को सुन्दर लाल रंग कि चुनरी पहनाई हुई है ओर श्रृंगार के सभी सामान द्वारा सांझी को सजाया है। जैसे दुल्हन को सजाया जाता हो।

23. सांझी को भोग लगाती कन्या :-

चित्र संख्या 23 में गांव ललहाड़ी से बनी सांझी का है जिसमें एक कन्या द्वारा सांझी को हल्वा – पूरी का भोग लगाते हुए दिखाया है।

24. सबसे बड़ी सांझी :-

चित्र संख्या 24 में यह चित्र 'विरासत' सांझी उत्सव में बनी 25 फुट चौड़ी व 20 फुट ऊँची सांझी का चित्र है। यह जींद के कलाकार गोतम ने बनाई है तथा इतनी बड़ी सांझी आज तक विश्व में कहीं नहीं बनी है।

25. सांझी का दीवार से उतारना :-

चित्र संख्या 25 में यह चित्र गांव मानीपुर कि महिला द्वारा सांझी माता को दीवार से उतारते हुए दिखाया गया है जो बड़ी सावधानी से सांझी को उतार रही है।

26. सांझी को विसर्जित करते हुए :-

चित्र संख्या 26 में यह चित्र गांव लेदी की सीमा देवी 'सांझी को बड़े भावुक मन से तालाब में विसर्जित कर रही है। और सांझी माता के अगले साल वापिस आने की कामनाएं करते हुए दिखाया गया है।

उपसंहार

आम इंसान के द्वारा बिना किसी ताम – झाम व प्रदर्शन से जब स्वाभाविक कलाकारी को चित्र, संगीत, नृत्य आदि के रूप में पेश किया जाता है तो वह लोक कला कहलाती है। लोक कला का मानव के जीवन से बहुत गहरा संबंध होता है। पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही पारंपरिक कलाओं को लोक कला कहते हैं।

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत मैंने सांझी व इसके अनेक रूपों का कलात्मक अध्ययन किया है। गांव में रहने वाली भोली-भाली कन्याओं के हृदय में वास करती यह लोक कला वास्तव में सच्ची कला है। शब्दशः देखा जाए तो लोक कला का अर्थ होता है – लोक यानी मानव जाति की कला। इस विचार से आदिम काल से लेकर आधुनिक काल तक की सभी कलाओं को लोक कला माना जाता है। लोक कला कलांतर्गत विभिन्न कृतियों के केवल दृश्य रूपों का परिशीलन किया जाए तो उसमें ऐसी कृतियां आती हैं जो सर्वथा आदिम कला जैसी प्रतीत होती हैं और कुछ ऐसे भी कृतियां दिखायी देती हैं जिनका रूप श्रेणीय परंपरागत कला के समान अजन्ता के भित्ति चित्र भी काफी हद तक सांझी के भित्ति चित्रों से मिलते-जुलते हैं।

जिस तरह से अजन्ता के भित्ति चित्रों में सपाट रंग भरे जाते थे, ठीक उसी तरह भित्ति चित्र में भी सपाट रंग भरे जाते हैं। इन अप्रशिक्षित कलाकारों की कला जिसमें लोक कला के समान सादगी वह स्वाभाविक सर्जन है – को ही आधुनिक कला माना जाए, क्योंकि यही कला एक ऐसी कला है जिसमें लोगों की आस्था और विश्वास सबसे अधिक है। लोग सांझी माता को देवी का रूप मानते हैं व सांझी माता के लिए व्रत रखते हैं।

भारतीय संस्कृति में त्योहारों का अपना ही एक महत्व है। त्यौहार जनजीवन में जोश व उल्लास तो भरते ही हैं, साथ ही साथ इन व्यवस्थाओं से भरे जीवन में मनोरंजन के साधन भी हैं। आश्विन माह में श्राद्ध (कनागत) खत्म होते ही अमावस्या के बाद देश भर में नवरात्रों की शुरुआत के साथ-साथ दशहरे की तैयारी का जोश दिखाई देता है। आश्विन माह में हरियाणा के ग्रामीण व शहरी अंचल में सांझी की पूजा अर्चना रीति रिवाज के अनुसार शुरू हो जाती है। महिलाएं और कन्याएं इसकी तैयारी 20 – 22 दिन पहले शुरू कर देती हैं। तालाबों से मिट्टी लाकर छोटी-छोटी टिकड़ियां बनाती हैं। इसमें हाथ, पांव, तारे, चांद, मुख, चेहरा, बनाकर उनका श्रृंगार में प्रयुक्त शीशे आदि के गहने प्रयुक्त बहुत सुंदर बनाए जाते हैं। जैसे किसी कारीगर ने घड़ाई की है।

इन टिकड़ियों को सफेदी व गेरू आदि से पोतकर सुखाते हैं और विभिन्न रंगों का प्रयोग करके महिलाएं इन्हें पुनः रंग देती हैं। दीवारों को गोबर से लीपकर उस पर सांझी की सभी टिकड़ियों या

आकृतियों को लगाकर उसे सुंदर रूप प्रदान किया जाता है। सांझी माता तैयार होने पर लगता है मानो कोई देवी दीवार पर आकर खड़ी हो गई हो।

यह आकृति घर की बाहरी दीवार पर या रसोई की दीवार पर बनाना शुभ माना जाता है। कुछ लोग रेडीमेंड सांझी भी लगाते हैं। पूरी तैयारी के बाद सांझी की पूजा अर्चना शुरू कर दी जाती है, जो 9 दिनों तक सुबह-शाम होती है और दशहरे से एक दिन पहले सांझी को दीवार से उतार कर गांव के तालाब या जोहड़ में विसर्जित कर विदा किया जाता है। सांझी की परंपरा को बचाने व बनाए रखने के लिए हरियाणा सरकार द्वारा सांझी प्रतियोगिता आयोजन की जाती है जिसमें सबसे सुंदर सांझी बनाने वाले प्रतिभागी को नगद पुरस्कार दिया जाता है।

गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा के साथ सभी स्थानों पर सांझी का पर्व मनाया जाता है। मैंने अपने लघु शोध में सांझी विषय के लिए गांव में जाकर जानकारी प्राप्त की है। मैं आशा करती हूँ कि हमारी आने वाली पीढ़ी भी लोक कला सांझी को याद रखें और इसे पूरी श्रद्धा और विश्वास से प्रेम पूर्वक मनाएं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Visit on Studyglob.com
2. कला दर्शन : नूपूर शर्मा / प्रकाश विरेस्वर
3. सौन्दर्य शास्त्र
4. भारतीय लोककला एवं हस्तशिल्प वैभव (वन्दना शर्मा), संस्करण – 2008, पृ०. सं०. 5, 6, 7, 84
5. डॉ. रीता प्रताप – भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला संस्थान हिन्दी ग्रन्थ आकदमी जयपुर, संस्करण – 2019, पृ०. सं०. 3, 5
6. डॉ. आरती श्योकंद, हरियाणा संस्कृति में लोकगीत, संस्करण – 2012, पृ०. सं०. 15, 17
7. भारतीय लोक कला एवं हस्तशिल्प वैभव (वन्दना शर्मा), संस्करण – 2008, पृ० सं०. 35, 41
8. visit on.Knowledgekahub.com
9. <https://www.researchgate.net>
10. visit on.wikipedia.com
11. visit on.mediawala.in
12. visit on.www.bhaskar.com
13. पंजाब केसरी.in कुरुक्षेत्र केसरी Newspaper – 8 October
14. फास्ट मीडिया कुरुक्षेत्र – Newspaper 9 October
15. भास्कर न्यूज कुरुक्षेत्र – 3 अक्टूबर
16. visit on.media4citizen.com

चित्र संग्रह सूची

क्र०. सं०.	नाम
1	सांझी माता का सुंदर रूप
2	सांझी के लिए मिट्टी तैयार करते हुए
3	सांझी बनाते हुए महिला
4	कच्ची मिट्टी से बने सांझी के अंग – प्रत्यंग
5	अंग – प्रत्यंगों को सफेद चूने में डुबोते हुए
6	सांझी को रंगती महिलाएं
7	सांझी की आकृतियों को सुखाते हुए
8	सांझी के रंगों से रंगे हुए अंग – प्रत्यंग
9	दीवार पर गोबर से सांझी बनाती महिला
10	सांझी आकृतियों को दीवार पर लगाती महिला
11	सांझी माता की आरती करते हुए कन्याएं
12	सांझी को भोग लगाती महिलाएं
13	घूँघट में सांझी माता
14	बाजार से प्राप्त अंग – प्रत्यंग से बनी सांझी
15	विरासत में गोबर से सांझी बनाती कन्या
16	गोबर से बनी जैविक सांझी
17	विरासत में बनी सांझी माता
18	सांझी और सांझी का भाई दुलीचन्द
19	आभूषणों से युक्त सांझी
20	सांझी माँ दुर्गा का अवतार
21	शेर पर सवार सांझी माता

- 22 सांझी माता दुल्हन के रूप में
- 23 सांझी को पूड़ी प्रसाद का भोग लगाती कन्या
- 24 विरासत सांझी उत्सव में लगी 25 फीट ऊंची 20 फुट चौड़ी सांझी
- 25 दीवार से सांझी को उतारते हुए महिला
- 26 सांझी को विसर्जित करते हुए महिला
- 27 सांझी में बनी अन्य आकृतियां या वस्तुएं
- 28 सांझी में बने तोते व सखी
- 29 सांझी में उल्टा लटका चोर का चित्र

चित्र सूची



सांझी माता का सुंदर रूप



सांझी के लिए मिट्टी तैयार करते हुए



सांझी बनाते हुए महिला



कच्ची मिट्टी से बनी सांझी के अंग – प्रत्यंग



अंग – प्रत्यंगों को सफेद चूने में डुबोते हुए



सांझी को रंगती महिलाएं



सांझी की आकृतियों को सुखाते हुए



सांझी के रंगों से रंगे हुए अंग – प्रत्यंग



दीवार पर गोबर से सांझी बनाती महिला



सांझी आकृतियों को दीवार पर लगाती महिला



सांझी माता की आरती करते हुए कन्याएं



सांझी को भोग लगाती महिलाएं



घुंघट में सांझी माता



बाजार से प्राप्त अंग – प्रत्यंग से बनी सांझी



विरासत में गोबर से सांझी बनाती कन्या



गोबर से बनी जैविक साँझी



विरासत में बनी सांझी माता



सांझी और साझी का भाई दुलीचन्द



आभूषणों से युक्त सांझी



सांझी माँ दुर्गा का अवतार



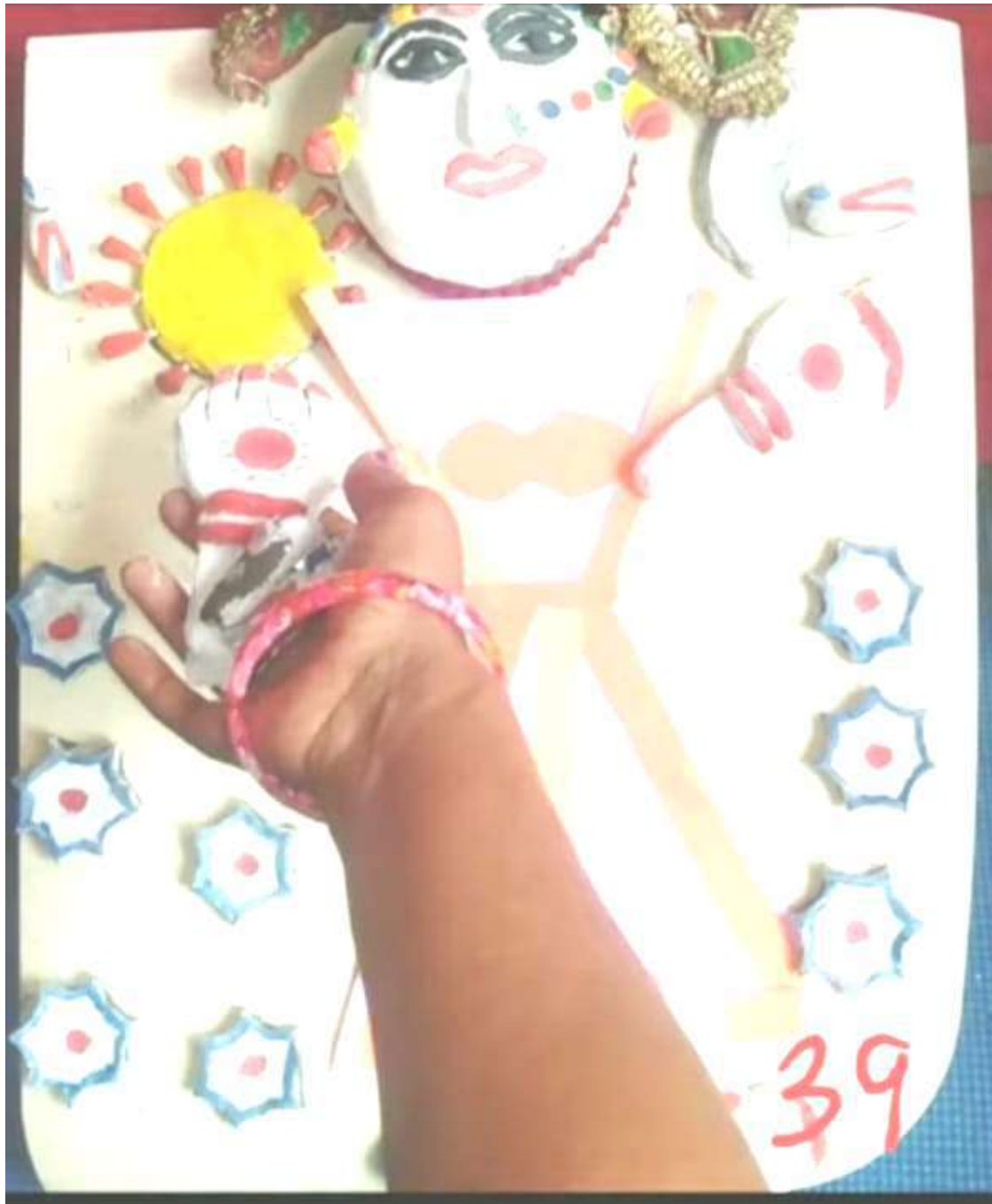
शेर पर सवार सांझी माता



सांझी माता दुल्हन के रूप में



सांझी को पूरी प्रसाद का भोग लगाती कन्या



दीवार से सांझी को उतारते हुए महिला



सांझी को विसर्जित करते हुए महिला



सांझी में बनी अन्य आकृतियां या वस्तुएं



सांझी में बने तोते व सखी



सांझी में उल्टा लटका चोर का चित्र



सांझी को विसर्जित करते हुए महिलाएं

“समकालीन कलाकार डा०. रवीन्द्र सिंह
का कथात्मक कृतित्व”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
की
ललित कला स्नातकोत्तर
उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा
श्रीमती संतोष
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा०)

शोधकर्त्री
शुभनीत कौर
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **शुभनीत कौर**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “**समकालीन कलाकार डा0. रवीन्द्र सिंह का कथात्मक कृतित्व**” शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं शुभनीत कौर, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध “ समकालीन कलाकार डा० रवीन्द्र सिंह का कथात्मक कृतिव ” विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लगन से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है। उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिक

शोधकर्त्री
शुभनीत कौर

आर्य कन्या महाविद्यालय,

शाहाबाद (मा0)

कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **शुभनीत कौर**, अनुक्रमांक न0. **130249903**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **समकालीन कलाकार डा0. रवीन्द्र सिंह का कथात्मक कृतित्व** " शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लगन से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक:

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

कला का स्वरूप स्वतंत्र है। वह मानव को अपार आनंद से भर देती है। और कला का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है व चित्रकार मानव को एक ऐसी शान्ति से अवगत कराती है जो उनके लिए सुखमय होती है। उसमें ही अमूर्तन कला जो आत्मलिनता को दर्शाती है, उसी प्रकार अमूर्तन में उच्च उपाधि पाने वाले चित्रकार डॉ०. रवीन्द्र सिंह जी हैं जो अपनी कला के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हैं।

अतः मैंने अपने इस लघु शोध में, श्री डॉ०. रवीन्द्र सिंह जी से मुझे संवाद करने का मौका मिला। इसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ। मैंने अत्यधिक परिश्रम से इस विषय पर अध्ययन किया। इस लघु शोध को मैंने पांच अध्यायों में विभाजित किया है। जो इस प्रकार है :—

- प्रथम अध्याय — इस अध्याय में कला, समकालीन कला का इतिहास का संक्षिप्त वर्णन करने का प्रयास किया गया है।
- द्वितीय अध्याय — इस अध्याय में डॉ०. रवीन्द्र सिंह का जीवन परिचय और कला शिक्षा पर प्रकाश डाला है।
- तृतीय अध्याय — इस अध्याय में श्री डॉ०. रवीन्द्र सिंह की कला यात्रा, कृतियों का विचार और विषय तथा कलाकृतियों का विवरण, के बारे में बताया गया है।
- चतुर्थ अध्याय — इस अध्याय श्री डॉ०. रवीन्द्र सिंह के पुरस्कार, छात्रवृत्ति, सदस्यता, राष्ट्रीय भागीदारी, एकल कला प्रदर्शनी, प्रकाशन, शोध पत्र तथा विशिष्ट शैक्षणिक और प्रशासनिक अनुभव का वर्णन किया है।
- पंचम अध्याय — इस अध्याय में श्री डॉ०. रवीन्द्र सिंह के साथ साक्षात्कार लिखा है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया गया है। इसमें लघु शोध प्रबंध के माध्यम से स्थापित की गई मौलिक मान्यताओं को प्रतिपादित किया गया है। प्रस्तुत शोध

पत्र को सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि विद्वान समीक्षक उन्हें अलक्ष्य करने की कृपा करें।

इस शोध पत्र में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उसके लिए केवल मैं दोषी हूँ। अंत में इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

शुभनीत कौर

शोधकर्त्री

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उलेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा, की प्राचार्य महोदया आदरणीय श्रीमती आरती त्रेहन जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पूरे शोध कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया व ललित कला विषय में स्नात्तोत्तर कक्षाएं प्रारंभ कर हमारे चिरलंघित स्वप्न को साकार करने का मौका प्रदान किया।

मैं ललित कला विभाग, की अध्यक्ष आदरणीय श्रीमति संतोष जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर लघुशोध कार्य करने में सहयोग और प्रेरणा दी।

इसके साथ-साथ मैं अपने परिवार जनों का भी हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई।

मैं अपने गुरु आदरणीय ऐसि प्रौ० श्री महेश धीमान जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

शुभनीत कौर

शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आभार	
प्रथम अध्याय:	01 – 18
– कला	
– समकालीन कला इतिहास	
द्वितीय अध्याय :	19 – 23
– रवीन्द्र सिंह का जीवन परिचय	
– कला शिक्षा	
तृतीय अध्याय:	24 – 30
– रवीन्द्र सिंह की कला यात्रा	
– कृतियों का विचार और विषय	
– कलाकृतियों का विवरण	
चतुर्थ अध्याय:	31 – 52
– पुरस्कार प्राप्त	
– छात्रवृत्ति और सदस्यता	
– राष्ट्रीय भागीदारी तथा एकल कला प्रदर्शनी	
– प्रकाशन और बोर्ड के सदस्य	
– शोध पत्र तथा अन्य प्रकाशन	
– विशिष्ट शैक्षणिक और प्रशासनिक अनुभव	
पंचम अध्याय :	53 – 60
– श्री रवीन्द्र सिंह जी के साथ साक्षात्कार	
– उपसंहार	61 – 62
– संदर्भ ग्रंथ सूची	63 – 63
– चित्र संग्रह सूची	64 – 64
– चित्र सूची	65 – 89

प्रथम अध्याय

- कला
- समकालीन कला का इतिहास

कला

कला का अर्थ :—

कला (आर्ट) शब्द इतना व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएं केवल एक पक्ष को छोड़कर रह जाती हैं। कला का अर्थ अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। यद्यपि इसकी हजारों परिभाषाएं की गई हैं। भारतीय परंपरा के अनुसार कला उन सारी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। यूरोपीय शक्तियों ने भी कला में कौशल को महत्वपूर्ण माना है। कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है, जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है।

कला ही है जिसमें मानव मन में संवेदनाएं उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरुचि को शिक्षा देने की अद्भुत क्षमता है। मनोरंजन, सौंदर्य, प्रवाह, उल्लास न जाने कितने तत्वों से यह भरपूर है। जिसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है। वह अपना जादू तत्काल दिखाती है और व्यक्ति को बदलने में लोहा पिघलाकर पानी बना देने वाली भट्टी की तरह मनोवृत्तियों में भारी रूपांतरण प्रस्तुत करती हैं। एक कलाकार अपनी आवाज नहीं उठाता, संदेश प्रसारित करने के लिए उसकी कला की अभिव्यक्ति काफी है।

कला मनुष्य के अन्तरभावों की सहज अभिव्यक्ति है। जब यह अभिव्यक्ति रेखा, रूप, रंग द्वारा साकार रूप से अभिव्यक्त होती है, तब एक चित्र का निर्माण होता है, जिसे हम चित्रकला कहते हैं। कलाओं में चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतः भारत में कला को योग साधना माना जाता है। कला शब्द मानव जीवन में इतना घुला-मिला हुआ है कि कला के बिना मानव जीवन की संभावना शून्य हैं। स्वयं मनुष्य अपने आप में एक कलात्मक कृति है।

किसी भी दक्षता का प्रयोग जब सुंदरता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है तो उसे कला कहते हैं। नागरिक के उचित निर्माण में कलाएं सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती हैं। अतः कला का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य यही है, एवं यह केवल शिक्षा द्वारा ही संभव हो सकता है। कला में मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। चित्रकला एक श्रेष्ठ कला है। रंगों भरी तुलिका से चित्रकार अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है।

कला मनुष्य को भगवान की ओर से मिला एक ऐसा तोहफा है जो सभी प्राणी, पशु और जीव के पास भी है। कला से मनुष्य अपने जीवन में अनेक सफलता प्राप्त कर अपने जीवन को एक नए मुकाम पर ले जा सकता है। सिर्फ जरूरत है मनुष्य को अपने अंदर की छिपी कला को पहचान कर उसे निखार कर समाज के सामने प्रस्तुत करने की।

❖ भारत की कलाएँ :-

अगर अपने भारत को कला की दृष्टि से देखा जाए तो भारत कला का खजाना है। यह हर क्षेत्र, कस्बे, गाँव, हर राज्य की एक नई कला और पहचान है।

भारत में अनेक कलाएं मौजूद हैं जैसे— हस्तकला, चित्रकला, नृत्य, संगीत, ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, अभिनय अनेक विश्व विख्यात कलाएं हैं, जो भारत में देखी जा सकती हैं। बिहार की मधुबनी चित्रकारी, गुजरात का डांडिया, उड़ीसा के पटचित्र चित्रकारी, आंध्र प्रदेश की निर्मल चित्रकारी, पंजाब का भांगड़ा, असम का बिहू, भरतनाट्यम्, कथकली नृत्य, अजंता एलोरा की भित्तिचित्र, इसके उपरांत अनेक राग, विराग, अभिनय शैली जैसे— महाभारत, रामायण, संगम साहित्य इसके भी अलग-अलग रूप हैं। ये सब भारत का मान-सम्मान और गौरव का अनुभव देता है, और भारत को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक गौरवशाली विरासत का अनुभव करवाता है।

कला जीवन में प्राण डाल देती है कला जीवन को एक नई ऊंचाइयों पर ले जाती है। नए आदर्शों की स्थापना कर उसका प्रचार करती है और जीवन को प्रकाशमय बना देती है।

वास्तव में हमने देखा है कि एक सिक्के के दो पहलू होते हैं— सकारात्मक और नकारात्मक। एक सच्चा कलाकार हमेशा अपने जीवन का उद्देश्य कला को अच्छे से प्रदर्शित करने में समझता है। कला जीवन का दायित्व है। कला के बिना जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। कला में सुखद, उन्नत, भविष्य और समाज की स्थापना होती है। कला समाज के लिए एक उच्च माध्यम है, जो नवयुवक के जीवन को नई दिशा देकर उनके जीवन को उत्साह और उमंग से भरने का काम करती है। इसलिए हमेशा कला के महत्व को समझ कर अपने अंदर की कला का सम्मान कर उसे निकालने का प्रयास करना चाहिए।

❖ परिभाषाएं :-

- राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कला के लिए अपना मत कुछ इस तरह दिया है— कि “अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति कला है”।
इटली के महान विद्वान तो कला को अभिव्यक्ति का साधन मानते हुए कहा हैं— कि ‘कला का संबंध केवल स्वानुभूति से प्रेरित प्रक्रिया से है।
- कला शब्द का प्रयोग ललित कला हेतु किया जाता है। श्री रविंद्र नाथ टैगोर के अनुसार—
“कला में मनुष्य अपने मन की अभिव्यक्ति करता है, न की ब्राह्म्य रूप की।

- मार्कंडेय मुनि द्वारा रचित विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कलाओं में चित्रकला को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।

कला शब्द का प्रयोग 'ऋग्वेद' में हुआ। कला शब्द का यथार्थवादी प्रयोग 'भरतमुनि' ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में प्रथम शताब्दी में किया। ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसमें कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, जो कला न हो।

- 1 जयशंकर प्रसाद के अनुसार :— “ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का संकुचित रूप जो हमको भाव—बोध के लिये मिलता है— कला है।
- 2 हीगेल के अनुसार :— “कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है”।
- 3 रस्किन के अनुसार :— “कला में मनुष्य अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है”।
- 4 क्रोचे के अनुसार :— “हर एक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव — अहलाद की अभिव्यक्ति है।
- 5 फ्रायड के अनुसार :— “कला दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप है”।
- 6 अरस्तु के अनुसार :— “कला प्रकृति का अनुकरण है”।
- 7 प्लेटो के अनुसार :— कला सत्य की अनुकृति है”।
- 8 पिकासो के अनुसार :— कला एक ऐसा सत्य है जिसमें हमें सत्य का बोध होता है”।

❖ कला के प्रकार :—

कला के कई प्रकार होते हैं और इन प्रकारों का परिगणन भिन्न—भिन्न रीतियों से होता है।

1 मोटे तौर पर जिस वस्तु, रूप अथवा तत्व का निर्माण किया जाता है, उसी के नाम पर इस कला का प्रकार कहलाता है। जैसे—

- वास्तुकला या स्थापत्य कला :— अर्थात् भवन निर्माण कला जैसे— दुर्ग, प्रसाद, मंदिर, स्तूप, चैत्य, मकबरे आदि।
- मूर्तिकला :— पत्थर या धातु की छोटी बड़ी मूर्तियां।
- चित्रकला :— भवन की भित्तियों, छतों या स्तंभों पर अभाव वस्त्र, भोजपत्र या कागज पर अंकित चित्र।
- मृदभांड कला :— मिट्टी के बर्तन।
- मुद्राकला :— सिक्के या मुहरे।

2 कभी-कभी जिस पदार्थ से कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है, उसे पदार्थ के नाम पर उस कला का प्रकार माना जाता है। जैसे —

- प्रस्तर कला :— पत्थर से गढ़ी हुई आकृतियां।
- धातुकला :— कांसे तांबे अथवा पीतल से बनाई गई मूर्तियाँ।
- दंतकला :— हाथियों के दांत से निर्मित कलाकृतियां।
- मृत्तिका कला :— मिट्टी से निर्मित कलाकृतियां या खिलौने।

✓ कला को मुख्य दो भागों में बांटा गया है।

1. उपयोगी कला

2. ललित कला

1. उपयोगी कला मानव समाज के घरेलू उपयोग में आती है जैसे— आभूषण कला, काष्ठ कला।
2. ललित कला सौंदर्य प्रधान होती है। मानव के मस्तिष्क को आनंद प्रदान करने वाली होती है।

✓ भरतमुनी ने कला को ललित कला के रूप में माना है तथा 8 रसों को बताया है। भरत मुनि ने कला के दो प्रकार बताए हैं :—

- 1 मुख्य कला
- 2 गौड़ कला

✓ हीगल ने भी कला को दो भागों में बांटा है :-

- 1 दृश्य कला (चित्र, वास्तुकला, मूर्तिकला)।
- 2 श्राव्य कला (संगीत सुनने वाली, काव्य)।

✓ हीगल के अनुसार उच्च पद पर काव्य को रखा है तथा निम्न पद पर वास्तु कला को रखा है।
परंतु हीगल ने कलाओं को तीन न मानकर पांच माना है।

- 1 चित्रकला :- इस अत्यंत, उत्कृष्ट एवं सूक्ष्मकला के रूप, रंग, आकार तथा लंबाई एवं चौड़ाई होती है। यह मनोभावों को अत्यधिक स्पष्ट करने में समर्थ होती है।
- 2 मूर्तिकला :- इस कला के अंतर्गत किसी वस्तु का रूप, रंग, आकार आदि निर्मित किया जाता है। यह कला उत्कृष्ट मनभावों को व्यक्त करने में सक्षम होती है।
- 3 संगीत कला :- 'नाद' तथा 'स्वर' पर आधारित इस कला के द्वारा व्यक्त भाव अत्याधिक सूक्ष्म, स्पष्ट तथा हृदय ग्राही होते हैं।
- 4 काव्य कला :- शब्द एवं अर्थ पर आधारित इस उत्कृष्ट कला में 'स्वर' एवं 'व्यंजन' दोनों प्रयुक्त होते हैं। इसका प्रभाव भी चिरस्थायी होता है।
- 5 स्थापत्य कला या वास्तुकला:- इस कला के अंतर्गत भवन, मंदिर, मस्जिद, चर्च, पुल तथा बांध आदि का निर्माण कार्य होता है।

✓ अरस्तु के दार्शनिक ने भी कला को दो भागों में बांटा है :-

- 1 ललित कला
- 2 उदार कला

कला में समकालीनता अथवा आधुनिकता

➤ पद की परिभाषा :-

कला में प्रचलित विभिन्न शैलियों तथा प्रवृत्तियों के संदर्भ में समकालीनता और आधुनिकता समानार्थी पद हैं। समकालीन अथवा आधुनिकता की अवधारणा न तो भौगोलिक है, न इसका अर्थ मशीनीकरण है, न या फैशन है, यह भौतिकतावाद भी नहीं है और न ही यह सामाजिक पुनः निर्माण का सिद्धांत है।

समकालीन कला एक शब्द है जिसका उपयोग आज की कला का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जो आमतौर पर 1970 के दशक के बाद से निर्मित कल को संदर्भित करता है। समकालीन कला वैश्विक रूप से प्रभावित सांस्कृतिक रूप से विविध और तकनीकी रूप से आगे बढ़ाने वाली दुनिया में काम करते हैं। उनकी कला सामग्री, विधियों, अवधारणाओं और विषयों का एक गतिशील संयोजन है जो 20वीं सदी में पहले से ही चल रही सीमाओं को चुनौती देना जारी रखती है। विविधता पूर्ण और उदार समकालीन कला एक पूरे के रूप में एक समान, संगठित सिद्धांत, विचारधारा या “वाद” की कमी से प्रतिष्ठित है। समकालीन कला एक सांस्कृतिक संवाद का हिस्सा है जो व्यक्तिगत और सांस्कृतिक पहचान, परिवार, समुदाय और राष्ट्रीयता जैसे बड़े संदर्भगत ढांचों से संबंधित है।

अंग्रेजी में, आधुनिक और समकालीन समानार्थी शब्द हैं, जिसके परिणाम स्वरूप गैर-विशेषज्ञों द्वारा आधुनिक कला शब्दों के बीच कुछ भ्रम और उलझन पैदा होती है।

➤ दायरा :-

समकालीन कला का वर्गीकरण एक सामान्य विशेषण वाक्यांश के बजाय एक विशेष प्रकार की कला के रूप में, अंग्रेजी बोलने वाले दुनिया में आधुनिकता की शुरुआत में वापस जाता है। लंदन में समकालीन कला सोसाइटी की स्थापना 1910 में आलोचक रोजर फ्राई और अन्य लोगों द्वारा सार्वजनिक संग्रहालय में रखने के लिए कला के कार्यों को खरीदने के लिए एक निजी सोसाइटी के रूप में की गई थी। इस शब्द का उपयोग करने वाले कई अन्य संस्थान 1930 के दशक में स्थापित किए गए थे। जैसे 1938 में एडिलेड, ऑस्ट्रेलिया की समकालीन कला सोसाइटी, और 1945 के बाद बढ़ती संख्या में कई, जैसे कि समकालीन कला संस्थान, बोस्टन ने इन अवधि में “आधुनिक कला” का उपयोग करने वालों से अपने नाम बदल दिए, क्योंकि आधुनिकता को एक ऐतिहासिक कला आंदोलन के रूप में परिभाषित किया गया समकालीन कला क्या है, इसकी परिभाषा स्वाभाविक रूप से हमेशा

गतिशील रहती है, जो वर्तमान में स्थित रहती है और आरंभ तिथि आगे बढ़ती रहती है और 1910 में समकालीन कला सोसाईटी द्वारा खरीदे गए कार्यों को अब समकालीन नहीं कहा जा सकता।

➤ वर्तमान शताब्दी की समकालीन कला :-

समकालीन और आधुनिक कला वस्तुतः 20वीं शताब्दी की कलाओं की हलचल व उत्तेजना भरी गतिविधियों की घोटक है। कुछ लोगों ने इस कला को वर्तमान शताब्दी की असंगति की प्रवक्ता कहा है। उनका कहना है कि इस हलचल भारी गतिविधि के पीछे कोई अनुभूति या आस्था नहीं है।

समकालीन कलाकारों द्वारा अपनाए गए रूपकारों के प्रति भी विरोध जताया गया है। इसकी आलोचना यह कहकर की गई — लगता है कि आधुनिक कलाकार की सोच यह है कि चिरफाड से पहले मरना जरूरी है। यह अनुभव किया जा रहा है कि समकालीन कला में वैज्ञानिक हठधर्मिता की खातिर मानवता की बलि चढ़ा दी गई है।

कुछ आलोचकों का मानना है कि 20वीं शताब्दी के चित्रकारों ने कला को ऐसे दृष्टिकोण से देखा है जो पूर्णतया तकनीकी है। रूपाकार संबंधी समस्याओं पर इतना अधिक ध्यान दिया गया है कि कलाकृतियां प्रयोगशाला के अनुभवों की तरह लगने लगती हैं। समकालीन कला में बौद्धिक पक्ष इतना अधिक हावी हो जाता है कि आम दर्शक इन अनुभवों को बरक्स कोई सक्रिय भागीदारी नहीं कर पाता और यह एक निंदनीय बात है। अतियथार्थवादी भी, जिन्हें अपने चित्रों में मनोवैज्ञानिक, सहासिकता को लेकर बहुत खुशी मिलती है, कलाप्रिया दर्शकों की प्रशंसा पाने में असमर्थ रहे हैं। चित्रों में मानव आत्मा के गहन अनुभवों के अंकन के लिए कोई अनुकूल प्रतिक्रिया कहीं दिखाई नहीं देती। इसी तरह फंतासी — जन्म व अलौकिक दुनिया की चाक्षुष अभिव्यक्ति भी समकालीन कलाकारों की कृतियों में स्पष्टता से व प्रकट होती दिखाई नहीं देती।

कला ने समकालीन मोड़ ले लिया है। समकालीन, जो लौकिक अस्तित्व को दर्शाता है, आधुनिक और उत्तर आधुनिक की जगह वर्तमान में प्रचलित कला को नामित करने के लिए एक वैचारिक और शैलीगत श्रेणी बन गया है। एक अवधारणा के रूप में, समकालीन का महत्व नहीं है और एक शैली के रूप में और भी कम, क्योंकि समकालीन के भीतर इतने सारे विविध कला अभ्यास और माध्यमिक के संयोजन हैं। यह परिभाषित करना लगभग असंभव हो गया है कि समकालीन कला क्या है। नतीजतन, जब तक कोई भी चीज किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाती है जिसे कलाकार माना जाता है, या किसी कला संस्थान द्वारा प्रतिष्ठित किया जाता है, तब तक वह कला के रूप में सामने आती है।

हालांकि, मुहावरेदार रूप से समकालीन कला अभी भी आधुनिक है, लेकिन 100 साल पहले कलाकारों को सूचित करने वाली दार्शनिक और ऐतिहासिक विशिष्टता के बिना।

आधुनिक कलाकार आधुनिकता के दार्शनिक सिद्धांतों में से एक को अपनाने और उसे पर जोर देने वाले पहले व्यक्ति थे। स्वयं की स्वायत्तता। स्वायत्तता की धारणा अब विनियोग तक विस्तारित हो गई है, यानी, एक कलाकार कहीं से भी कुछ भी अपना सकता है और सांस्कृतिक विशिष्टता के बिना इसे अपने काम में शामिल कर सकता है, इसलिए समकालीन कला सामान्य रूप से समान दिखाई देती है और समान विचारों से जूझती है, चाहे वह शंघाई, न्यूयॉर्क या लीमा के कलाकारों द्वारा बनाई गई है। निस्संदेह, समकालीन कला भौगोलिक क्षेत्रों में एक समान अनुभव प्रदान करने और मतभेदों की समतल करने के नव उदारवादी आवेग को दर्शाती है।

समकालीन कला, जिसमें परिभाषा का अभाव है और जो अपने समय की अनूठी समकालीन होने का दावा करती है, कि बड़े पैमाने पर समूह प्रदर्शनियों की बड़ी घटना के भीतर देखा जाना चाहिए, जिसे आमतौर पर द्विवार्षिक के रूप में जाना जाता है। द्विवार्षिक फाउंडेशन के अनुसार दुनिया में ये 278 हैं। ये प्रदर्शितियां सबसे महत्वपूर्ण आयोजनों के रूप में उभरी हैं, जिनके माध्यम से समकालीन कला को प्रस्तुत, मध्यस्थता और मूल्यांकन किया जाता है।

➤ विश्वव्यापी प्रभाव :-

यद्यपि समकालीन कला एक ऐसे मानसिक परिवेश की उपज है, जो पूर्णतया यूरोपीय है और इस कला आंदोलन का आरंभिक केंद्र पेरिस रहा है, परंतु इसका प्रभाव विश्व के हर भाग पर पड़ा। प्राच्य व पाश्चात्य दोनों धुरों तक। इस प्रभाव के संदर्भ में भारत के आरंभिक इतिहास में घटित महान संस्कृति प्रवचन की याद आना स्वाभाविक ही है, जब भारतीय सभ्यता मध्य एशिया, चीन, जापान और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों तक फैल गई थी। इस तरह समकालीन कला का प्रभाव भी समुद्री तथा महाद्वीपों को लांघ कर हर जगह की क्षेत्रीय कला के सामने खम ठोककर आ खड़ा हुआ था। इसके अभ्यंजक रूपाकारों तथा निहितार्थ ऊर्जा ने वर्तमान कला के विकास और पूरे विश्व की कला को दिशा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है — भारत भी इसका अपवाद नहीं रहा।

समकालीन, कला को लेकर केवल भारत ही एक ऐसा देश नहीं है, जहां संदेह की स्थिति बनी हुई है। हर जगह, बल्कि यूरोप में समकालीन कला ने लोगों के मन में खीज तथा परेशानी पैदा की है।

समकालीन कला को सामान्य रूप से स्वीकार करने में शायद समझदार दर्शकों की कमी भी एक बाधा रही है। इसलिए कला के सौंदर्यनुभव में अधिकांश लोगों की भागीदारी नहीं रही है। इसके

बावजूद इस बात को इनकार नहीं किया जा सकता कि समकालीन कला ने हमारे युग को, व्यवहार को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, हम आधुनिक वास्तुकला में प्रयुक्त आकारों को आज सहज ही स्वीकार करने लगे हैं और इन्हें महान ज्यामिकी रूपाकार नहीं मानते, जबकि हम जानते हैं कि इन आकारों को सबसे पहले आधुनिक चित्रकारों ने ही अपनी कृतियों में प्रस्तुत किया था।

बिना कैपिटल लैटर्स (बड़े अक्षरों) के, मुद्राकला का प्रयोग, इटालियन फ्यूचरिस्ट्स द्वारा 1912 में प्रचलित सुरुचि के प्रति विरोध प्रकट करने का एक तरीका था। धनवाद ने विद्यापनों से लेकर विश्व मेलों व प्रदर्शनियों में प्रस्तुत डिस्प्ले तक में अपनी जगह बनाकर हमारे जीवन पैटर्न को प्रभावित किया है। पत्रिकाओं के मुखपृष्ठों पर अब हम ऐसे (पेस्ट अप) देख सकते हैं, जैसे कि कभी ब्रॉक और पिकासो ने बनाए थे।

जैसेकि हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं, समकालीन कला आंदोलन के अंतरराष्ट्रीय प्रभाव की विश्व के विभिन्न भागों में, वहां की स्थानीय शैलियों से, मुठभेड़ हुई थी। पर इसके परिणाम का आंकलन कर पाना असाध्य काम है। हां, इतना विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि समकालीन कला ने अमेरिका तथा उन सभी देशों में जिनकी जड़े यूरोपीय सभ्यता में रही हैं, क्षेत्रीय कलाकारों को बहुत गहरे तौर पर तथा पूर्णतया प्रभावित किया है। अतः इन देशों में उनके अपने घनवादी, भविष्यवादी, अतियथार्थवादी, ऑप और पॉप कलाकार पैदा हुए हैं।

➤ भारतीय प्रभाव :—

भारत में समकालीन अथवा आधुनिक कला के विकास का यूरोप के समकालीन कला आंदोलनों के विकास से गहरा संबंध रहा है, हालांकि भारत में इसका क्रमविकास यूरोप से सर्वथा भिन्न रहा। 20वीं शताब्दी से पहले यहां की चाक्षुष कलाएं अन्य बातों के अलावा धार्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक या फिर 'नेरेटिव' संदेश देने का एक माध्यम भर थी और कहने की बात नहीं कि यह सब विषयेतर था। इसके विपरीत वर्तमान शताब्दी में कलाओं ने अपनी पहचान, स्वायत्त प्रकृति व विशिष्ट सुंदर्यात्मक परियोजनाओं से निर्धारित की है।

इन विशिष्टताओं से संपन्न आधुनिक कला का युग अत्यंत महत्वपूर्ण चित्रमय क्रांति का युग रहा है — प्रयोग तथा साहित्यिकता का प्रभाव देर से ही प्रवेश कर पाया था।

17वीं शताब्दी में पश्चिम का सुस्पष्ट प्रभाव यथार्थवादी शैली और दृष्टिक्रम व छाया प्रकाश योजना की तकनीकों अपनाने के रूप में प्रवेश पाने लगा था। सन 1600 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की भारत में स्थापना के बाद ब्रिटेन की बढ़ती शक्ति के साथ-साथ यह प्रभाव भी बढ़ता शुरू हुआ।

विशेष रूप से यह प्रभाव तब और बढ़ा, जब पश्चिमी तकनीकों का व्यवस्थित प्रशिक्षण देने के लिए यहां के महानगरों मद्रास, कोलकाता व मुंबई में कला विद्यालयों की स्थापना की गई। भारत में तथाकथित 'आधुनिक' कला की यह शुरुआत थी।

इसके बाद, यूरोप और अमेरिका से संपर्क बढ़ाने के साथ-साथ यूरोप – अमेरिकी कला आंदोलन एवं शैलियों, खासतौर पर पेरिस स्कूल, का प्रभाव को फैलने लगा। कलाकार तब प्रचलित रुझानों के अनुरूप तथा आधुनिक दुनिया के 'वादों' के उत्थान-पतन के अनुसार अपनी कला को ढालने लगे। उन्होंने पेंटिंग तथा मूर्तिशिल्प से जुड़ी रूपाकार संबंधी समस्याओं और आत्माभिव्यक्ति की पद्धति पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया। कुल मिलाकर भारत के कलाकार हर तरह से इस मनोवृत्ति की जकड़ में थे।

इस विकास को समझने के लिए 19वीं सदी के मध्य और 20वीं सदी के आरंभ में विद्यमान सामाजिक और आर्थिक जीवन में हो रहे परिवर्तनों के पैटर्न को समझना जरूरी होगा। मशीनी युग के प्रारंभ हो जाने और फिर आधुनिक विज्ञान द्वारा निर्मित नई दृष्टि के कारण सारी दुनिया में एक साथ महान परिवर्तन हो रहे थे। यही वह समय था, जब भारत में कला विद्यालय खोले गए थे। अतएव, हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इन क्रांतिकारी परिवर्तनों का भारत पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा। तब भारत एक केंद्रीय सत्ता, दुर्भाग्य से विदेशी सत्ता के अंतर्गत एक नए संगठित राष्ट्र के रूप में उभर रहा था।

सन 1857 के विद्रोह को छोड़कर बाकी समय भारत के किसान और हस्तशिल्पी नई सत्ता में शांति व स्थिरता के साथ रह रहे थे। पिछली अनेक शताब्दियों में वह इस सुख से वंचित रहा था। ब्रिटेन के शासको ने पूरी गंभीरता से भारत के लोगों तथा उनकी जीवन पद्धति का व्यवस्थित अध्ययन शुरू किया। कुछ भारतीय, जो ब्रिटिश शासको के निकट संपर्क में आए, उन्होंने पहले ही अंग्रेजी भाषा पढ़नी शुरू कर दी थी। देशज ज्ञान के बदले यूरोप के चिकित्सा विज्ञान, इंजीनियरिंग और आधुनिक विज्ञानों के अध्ययन को वरियता दी जाने लगी थी। व्यापार और उद्योग में लगे अंग्रेजों के साथ जिन्होंने सहयोग किया, वे नए संपन्न सामाजिक वर्ग के अंग बने।

पुरानी सामाजिक व्यवस्था विशेष रूप से नए प्रशासनिक केंद्रों में बदली। ये परिवर्तन अंग्रेजों ने बड़े ही व्यवस्थित तरीके से तथा बड़े पैमाने पर किए थे। नए श्रमिक का आर्थिक व सामाजिक स्तर अब ज्यादा स्थिर हो गया था क्योंकि पारंपरिक ज्ञान व काम अब आर्थिक दृष्टि से उतने लाभदायक नहीं रह गए थे। पारंपरिक वर्गों के श्रमिकों को सहायता देने का सामाजिक दायित्व लगातार कमजोर पड़ता जा रहा था।

इस दौर में हो रहे परिवर्तन की जटिलता और विलुप्तता को अच्छी तरह समझना होगा क्योंकि इसी दौर में ड्राइंग, चित्रकला, मॉडलिंग, मूर्तिकला, वास्तु कला और हस्तशिल्पों की प्राचीन परंपराओं का ह्रास होना शुरू हुआ था। पुरानी परंपराओं का स्थान यूरोपीय शैलियां लेती जा रही थी ताकि बदलते समय की अभिरुचियों को संतुष्ट किया जा सके। भारत के लोगों की परंपराओं को समझने का प्रयास 19वीं शताब्दी के अंत में जाकर कहीं शुरू हुआ ताकि इसे विधिवता पुनर्जीवित किया जा सके, इस प्राचीन तथा महान देश के व्यक्तित्व और इसकी भाव संस्कृति की रक्षा तो होनी ही चाहिए। तब नए और पुराने में संश्लेषण खोजना उद्देश्य बना।

19वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में भारत के पश्चिमी तट पर, विशेषतया मुंबई में, नए कृष्ण का विकास होना शुरू हुआ। आरंभिक मशीनरीयों का विश्वास था कि भारत के लोग ईसाई धर्म को तब सहज ही स्वीकार कर लेंगे, जब वे यूरोप की बेहतर सभ्यता व संस्कृति को ठीक से समझने लेंगे। वस्तुतः अधिकांश ब्रिटिश अधिकारी यह विश्वास नहीं कर पाते थे कि भारत का सांस्कृतिक इतिहास यूरोप के दर्शन, साहित्य, व्याकरण, तर्क, इंजीनियरी, वास्तुकला और चिकित्सा क्षेत्र की तुलना में कहीं से भी कम नहीं है। जैसाकि अपेक्षित था, सामाजिक बिखराव तथा राजनीतिक उथल-पुथल के चलते देश को, ब्रिटिश शासको द्वारा शुरू किए गए नए रूपों तथा संस्थाओं के आगे झुकना पड़ा। यह बात अलग है कि नए रूप इन शासको ने अपने सुविधा के लिए बनाए थे।

ब्रिटिश लोगों ने स्थानीय संस्कृति के वैज्ञानिक अध्ययन का बीड़ा उठाया। इस बीच समाज के शिक्षित वर्ग ब्राह्मणों ने नई सरकार की नौकरियां हथिया ली थी। स्वदेशी सभ्यता तथा संस्कृति के पुनर्निर्माण के आरंभिक प्रयासों के बावजूद स्थानीय नेतृत्व इसका लाभ उठाने से वंचित रहा। उनकी शक्ति जातिगत से श्रेष्ठता, नई सभ्यता को अपनाने के औचित्य और पूर्व व पश्चिम के बीच अपनी वफादारी तय करने के विवादों में लगाकर ही खर्च हो गई। ब्रिटिश सत्ता के आरंभिक दौर में भारतीय परंपरा में विश्वास रखने वालों तथा उसके विरोधी दोनों का ही मानना था की प्रगति के लिए अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार बहुत जरूरी है।

अंग्रेजों को सिविल प्रशासन के लिए मजबूरन एक अलग विभाग खोलना पड़ा। नागरिक मामलों, स्थानीय स्रोतों आदि के बारे में जानकारी उन्हें क्षेत्रीय सैनिक बोर्डों से ही मिलती थी और बोर्ड स्थानीय लोगों की मदद से यह जानकारी एकत्र करते थे। भारतीय लोगों की गतिविधियों पर निगरानी रखी जाती थी। 1857 के तुरंत बाद से ईस्ट इंडिया कंपनी के सैनिक प्रशासन का स्थान धीरे-धीरे सिविल प्रशासन ने ले लिया।

❖ समकालीन कला का इतिहास :-

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है? जबकि कला विद्वान अभी भी सटीक तिथि पर बहस करते हैं। 1970 को अक्सर समकालीन कला इतिहास में प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। प्रतिभाशाली नारीवाद कलाकार उभरने लगे, जिन्होंने ज्यादातर पुरुष कला समुदाय की कुछ रूढ़ियों को चुनौती दी। 1970 से 1980 के दशक तक पिक्चर्स जेनरेशन के कलाकार अपने स्वयं के वैचारिक, न्यूनतम और पॉप आर्ट संस्करण लेकर आए। इन अक्षर विद्रोही कलाकारों में बारबरा ब्लूम, एरिक बोगोसियन, चार्ल्स क्ला, बारबरा क्रूगर, सिंडी शेरमेन और जेम्स वेलिंग शामिल हैं। हाल के दिनों में कंप्यूटर युग का आगमन के साथ, बीपल जैसे डिजिटल कलाकार कलाकारों ने नई कृतियां बनाने के लिए तकनीक का उपयोग करना शुरू कर दिया, जिसमें क्रिप्टो आर्ट और नॉन-फजिबल टोकन आर्ट शामिल हैं जो लाखों डॉलर में बिकते हैं।

➤ समकालीन कला शैलियाँ :-

चार सबसे प्रसिद्ध समकालीन कला शैलियों और समकालीन कला आंदोलन हैं।

1. अमूर्त कला
2. न्यूनतम कला
3. पॉप कला
4. अतिथार्थवादी कला।

अमूर्त कला हमेशा एक विशिष्ट विषय न रहकर पारंपरिक कला से अलग होने का प्रयास करती है। मानवीय भावनाओं को रंगों के माध्यम से दर्शाया जा सकता है। आकृतियों से विशिष्ट वस्तुओं को चित्रित किया जा सकता है। यह प्रत्येक कला संरक्षण को अमूर्त कला के प्रत्येक टुकड़े को अपने अनूठे दृष्टिकोण से देखने की अनुमति देता है। इसका प्रभाव नागरिकों को भौतिकतावाद के साथ-साथ पारंपरिक सोच पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करना है।

मिनिमलिस्ट कला अक्षर कला की अन्य विधाओं में पाई जाने वाली व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को कम करने का प्रयास करती है। इस प्रकार कला संरक्षण किसी बाहरी संदेश के बजाय जो वे देख रहे हैं उसे पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। इसका प्रभाव आवास और आंतरिक डिजाइन तक फैल गया है क्योंकि नागरिक अपने रहने की स्थिति को साफ सुथरा करना चाहते हैं।

➤ अमृता शेरगिल :-

अमृता शेरगिल हंगरी मां और सिख पिता की संतान थी। उन्होंने 5 साल की उम्र में से ही पेंटिंग और ड्राइंग बनाना शुरू कर दिया था और उनके विषय मुख्यतः हंगरी की परीकथाएं होते थे। 8 साल की उम्र से अमृता ने मेजर विटमार्श से कला की शिक्षा लेनी शुरू की। बाद में उन्होंने सभा सोसाइटियों में लोकप्रिय चित्रकार विभिन्न पेटमन की कक्षा में जाना शुरू किया। अल्प अवधि के लिए 1924 में, वह अपनी मां के साथ इटली चली गई और भारत लौटने से पहले उन्होंने फ्लौरेंस के अपर क्लास स्कूल में कुछ समय शिक्षा पाई।

विवान सुंदरम (उनका भांजा तथा सुप्रसिद्ध कलाकार) के अनुसार अमृता ने 11 से 14 साल की उम्र जो ड्राइंग तथा जलरंग चित्र बनाए थे, वे उनके अपने प्रति सजग होने के घोटक हैं। हालांकि 1927 के बाद से अमृता 6 वर्ष के लिए भारत में रही थी, लेकिन उनकी ड्राइंग तथा जलरंग चित्रों में आने वाले लोग तथा भू-दृश्य मुख्यता यूरोप के ही थे। विवान सुंदरम ने लिखा है कि आरंभिक कलाकृतियों में अमृता की रेखाएं पतली तथा हिचकिचाहत भरी थी और उनकी कृतियों में उदास स्त्रियां, निर्वसना व जंगल में खोई हुई स्त्रियां ही चित्रित हैं। उनके बाद के काम में चित्रित, व्यक्ति खास तौर पर स्त्रियों के चेहरे, दमित भावनाओं की वजह से बहुत तनावग्रस्त दिखाई देते हैं।

1927 में अमृता का मामा इर्विन बेकटे हंगरी से भारत आया था और उसने ड्राइंग तथा पेंटिंग के प्रति अमृता का लगाव देखकर उसे लाइफ मॉडल में चित्रांकन करने के लिए प्रोत्साहित किया। अमृता के लिए यह अनुभव नया तथा उपयोगी रहा और उसने बाद में इस सुझाव के लिए अपना आभार प्रकट करते हुए उनसे कहा था : “चित्रांकन में कौशल आपकी वजह से ही आ सकता है।”

16 साल की उम्र में यानी 1929 में अमृता कला में बाकायदा प्रशिक्षण लेने के लिए अपने माता-पिता के साथ पेरिस आ गई। यहां उन्होंने बड़ी मेहनत से चित्रांकन करना शुरू किया। पहले पिअर वालिए के निर्देशन में ग्रां शोमिएर में और फिर लूसियन सिमोन के निर्देशन में एल्कोल दे बोजार में। अगले तीन सालों तक उन्होंने निर्वसन पुरुषों तथा महिलाओं के चारकोल में अंकगनित रेखाचित्र तथा अध्ययन चित्र बनाए। इन अध्ययन चित्रों से उनकी असधारण कलात्मक संवेदना का पता चलता है और यह भी की युवा होने के बावजूद वह मानव रूपाकार की सुघट्यता को कितनी अच्छी तरह समझने लगी थी। उन्होंने आयतन का आभास देने के लिए परदान पर प्रबल दिया और आकृतियों के विशाल रूपकारों के लिए ऊर्जा से प्रवाहमयी रेखा का प्रयोग किया।

1930 के लगभग अमृता ने तैल रंगों में पहले-पहल काम करना शुरू किया। उन्होंने लगभग 60 पेंटिंग बनाई, प्रायः निर्वसन मॉडलों अध्ययन चित्र साथ ही स्थिर जीवन के अध्ययन – चित्र व आत्म चित्र भी। गौरतलब है कि अमृता ने आत्म चित्रों की पृष्ठभूमि में गहरे लाल रंग का प्रयोग किया है शायद वह अपने व्यक्तित्व को बड़े नाटकीय ढंग से उजागर करना चाहती थी। वह सेंजा, गोगां और मातीस से बहुत अधिक प्रभावित थी।

आधुनिक कला की वजह से ही मैं भारतीय चित्रकला तथा मूर्ति कला को समझ सकी हूं और इसकी प्रशंसक बनी हूं। यह बात विरोधाभासी लग सकती है, लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानती हूं कि हम यदि यूरोप नहीं आए होते तो मैं यह कभी महसूस नहीं कर पाती की अजंता का एक फ्रेस्का म्यूजे गुइमें में रखा एक छोटा सा मूर्तिशिल्प पूरे पुनर्जागण से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

भारत लौटने की लालसा के वशीभूत अमृता 1935 में वापस आ गई। अगले 6 वर्षों में, 28 वर्ष की उम्र में अचानक तथा दुखद मृत्यु से पहले, अमृता ने अनेक महत्वपूर्ण कलाकृतियां बनाई। वह भारतीय चित्रकला की शैलियों, जैसा कि अजंता और राजपूत व मुगल लघुचित्र कला से बहुत प्रभावित तथा प्रेरित हुई थी। पर उन्होंने अंततः अपनी निजी शैली विकसित कर ली थी जो पारंपरिक अर्थों में तो भारतीय नहीं कही जा सकती, पर उनकी आत्मा मूलतः भारतीय ही थी।

➤ अतुल डोडिया :-

अतुल ने मुंबई में सर जेजे स्कूल आर्ट से स्नातक होने के बाद 1980 के दशक की शुरुआत में अपने काम की प्रदर्शनी और बिक्री शुरू की, जहां उन्होंने ललित कला स्नातक की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने फ्रांस सरकार द्वारा प्रदान की गई छात्रवृत्ति के बाद 1991 से 1992 तक पेरिस में डेकोले डेस व्यूक्स – आर्ट्स में अपने अकादमिक प्रशिक्षण को आगे बढ़ाया।

अतुल ने भारत में कई एकल शो किए हैं और 'रिफ्लेक्शंस और ड्रेमेजस' वडेर आर्ट गैलरी, नई दिल्ली और मुंबई, 1993 में 'टेंडर्स एंड डमेजेस' CIMA, कोलकाता 1993 में प्रदर्शन किया। भारत के बाहर, उन्होंने 1993 में गैलरी एंड, एक्सटर्डम में प्रदर्शन किया। 1986-89 में 'दि रिचनेस ऑफ द स्पिरिट' कुवैत और रोम में भाग लिया। 'इंडिया कंटेंपरेरी आर्ट' वर्ल्ड ट्रेड सेंटर, एम्स्टर्डम 1989, 'एक्सपोजिसन कलेक्टिव' साइट इंटरनेशनल ड्रेस आर्ट, पेरिस 1921 अतुल इंडिया ने इंडिया पवेलियन, वेनिस बिएनले 2019 में कलाकारों में से एक के रूप में प्रतिदिन किया।

2002 में महात्मा गांधी के दर्शन से प्रेरित 'ब्रोकन ब्रांच' नामक एक इंस्टॉलेशन का प्रदर्शन किया। उन्होंने 1995 में नई दिल्ली में संस्कृति पुरस्कार दिया गया था। उनकी एक पेंटिंग, कैनवास पर

तेल और ऐक्रेलिक काम, जो टीम इंडिया के पूर्व कप्तान राहुल द्रविड़ को समर्पित है, जिसका नाम 'द वॉल' है, नीलामी में 57.6 लाख रुपए में बिकी। अतुल डोडिया का विवाह साथी चित्रकार अंजू डोडिया से हुआ और वे मुंबई में रहते हैं और वहीं काम करते हैं।

➤ अंजू डोडिया :-

अंजू डोडिया एक भारतीय समकालीन चित्रकार है। वे मुंबई में रहती हैं और काम करती हैं। उनकी पेंटिंग्स में आत्मकथात्मक और मानवीय रिश्ते होते हैं जिनमें आमतौर पर महिलाएं केंद्र में होती हैं।

उनकी कृतियां प्रारंभ: जल रंग और चारकोल के मिश्रण से बनी होती हैं। अंजू डोडिया ने 1986 में सर जेजे स्कूल ऑफ आर्ट से पेंटिंग में बी.ए.फ की डिग्री हासिल की है। वह अतुल डोडिया की पत्नी हैं, जो एक उल्लेखनीय समकालीन भारतीय चित्रकार भी हैं। उनकी बेटी बिराज भी एक कलाकार हैं।

शुरुआती दिनों में उनकी कला ज्यादातर अमूर्त शैली में थी। हालांकि, मानव मन और मानोविश्लेषण में निरंतर रुचि के साथ, मानवरूपी कल्पना के प्रति उनके झुकाव उनके कामों में दिखाई देता रहा है। डोडिया पुनर्जागरण चित्रकारों जैसे गियोटो, ड्रगमार बर्गमैन की फिल्मों, जापानी उकियो – ई सिंह और सिल्विया प्लाथ की कविता से प्रभावित हैं। वह मध्ययुगीन भक्ति, कविता, गुजराती लोक कथाओं और दुनिया भर के मिथकों से भी प्रेरित रही हैं। इन सभी प्रभावों का संयुक्त प्रभाव उनकी पेंटिंग की अनोखी शैली में परिलक्षित होता है।

समकालीन घटनाओं, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और संस्कृति पर सूक्ष्म टिप्पणी उनकी कलाकृतियों के प्रमुख विषय रहे हैं। अखबारों की सुर्खियां, फैशन मॉडल की तस्वीरें, फिल्मों उनकी पेंटिंग के लिए संदर्भ सामग्री हैं। उनकी पेंटिंग में विवरण स्तरित प्रतीकात्मकता के साथ वास्तविकता के बाहरी स्वरूप को दर्शाते हैं। उन्होंने अलग-अलग तरीकों से पेंटिंग के माध्यम के रूप में कपड़े का भी इस्तेमाल किया है।

➤ मंजीत बावा :-

मंजीत बावा एक प्रसिद्ध भारतीय समकालीन कलाकार थे जो अपनी विशिष्ट शैली, जीवंत रंगों और भारतीय पौराणिक कथाओं और लोक कथाओं की अनूठी पुनर्व्यवस्था के लिए जाने जाते हैं।

7. प्राण नाथ मागो, भारत की समकालीन कला, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया – पृ०. सं०. 174,

8. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Anju_Dodiya

1964 और 1971 के बीच, बावा ने ब्रिटेन में सिल्कस्क्रीन प्रिंटर के रूप में काम किया, जहां उन्होंने कला का अध्ययन भी किया। “वापस लौटने पर, मुझे एक संकट का सामना करना पड़ा। मैंने खुद से पूछा, “मैं क्या पेंट करूँ?” मैं पेंटिंग की यूरोपीय शैली का एक और व्युत्पन्न नहीं हो सकता।” इसके बजाय उन्होंने भारतीय पौराणिक कथाओं और सूफी कविता को पाया। “मैं महाभारत, रामायण और पुराणों का वारिस शाह की कविताओं और गुरु ग्रंथ साहिब के पाठों पर पला-बढ़ा हूँ, वे कहते हैं।

मंजीत बावा के कैनवास अपने रंगों से अलग पहचाने जाते हैं – सूरजमुखी का गेरु, धान के खेतों का हरा रंग, सूरज का लाल रंग, पहाड़ों के आसमान का नीला रंग। वे पहले चित्रकारों में से थे एक थे जिन्होंने प्रमुख ग्रे और भूरे रंग हटाकर गुलाबी, लाल और बैंगनी जैसे पारंपरिक भारतीय रंगों को चुना।

उन्होंने दुखद गाथा हीर रांझा के चरवाहे रांझा और भगवान कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए कुत्तों से घिरा हुआ दिखाया है। न की पौराणिक चित्रों की तरह गायों से। भारतीय देवता काली और शिव जिन्हे बावा ‘मेरे देश के प्रतीक’ मानते हैं, भी उनके चित्रों में प्रमुखता से दिखाई देते हैं।

बावा अपनी जीवंत पेंटिंग के लिए जाने जाते हैं, तो वे आध्यात्मिकता और खास तौर पर सूफी दर्शन के प्रति अपने प्रेम के लिए भी जाने जाते हैं। वे कहते हैं— मुझे धर्म ग्रंथों में ज्ञान का खजाना मिलता है। सूफी दर्शन ने मुझे सिखाया है कि मनुष्य और और जानवर एक साथ रह सकते हैं।

➤ एफ एन सूजा :-

फ्रांसिस नूटन सूजा एक प्रसिद्ध भारतीय समकालीन कलाकार थे। उन्होंने कॉलेज सर जेजे स्कूल आफ आर्ट मुंबई से की है, लेकिन कुछ कर्म के कारण उन्हें देश से निकाल दिया गया। उन्हें भारतीय आधुनिकतावादी आंदोलन में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति माना जाता है।

सूजा मुंबई प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के संस्थापक सदस्य थे, जिसका उद्देश्य भारतीय कला का एक नया रूप बनाना था, जिसमें पारंपरिक भारतीय कला रूपों से अलग हटकर आधुनिकतावादी तकनीक और विषयों को अपनाया गया है।

वह अपनी विद्रोही भावना और अपनी कला के माध्यम से सामाजिक मानदंडों और परंपराओं को चुनौती देने की इच्छा के लिए जाने जाते हैं। सूजा के काम का आधुनिक कला के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा और उन्हें भारत के सबसे प्रभावशाली आधुनिक चित्रकारों में से एक माना जाता है।

उनके काम में कहीं प्रकार के विषय शामिल थे जिनमें स्थिर जीवन, परिदृश्य, नग्न चित्र, ईसाई विषय और कामुक विषय शामिल थे।

सूजा को 1967 में गूगेनहाइम अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिला, जिससे एक समकालीन कलाकार के रूप में उनकी अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्रदर्शित हुई।

सूजा न केवल एक चित्रकार थे, बल्कि एक लेखक, एक कवि और दार्शनिक भी थे, जिससे कला में एक बहुमुखी और प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में उनकी स्थिति और मजबूत हुई।

द्वितीय अध्याय

- रवीन्द्र सिंह का जीवन परिचय
- कला शिक्षा

रवीन्द्र सिंह का जीवन परिचय

परिचय :-

भारतीय चित्रकला में रवीन्द्र सिंह एक ऐसे चित्रकार हैं जिनका जीवन पूर्णतः कला के लिए समर्पित है। रवीन्द्र सिंह कल्पनाशील होते हुए भी काफी गंभीर स्वभाव के कलाकार हैं। इन्होंने अपने कार्य में पूर्णता प्राप्त की है। वे जीवन के अस्तित्व का वर्णन तथा जीवन के स्नेहपूर्ण व्यवहार को अपनी कला में दिखाते हैं। जो हम सभी के जीवन के एक खास हिस्से को दर्शाती है।

ये एक उत्कृष्ट चित्रकार हैं जो अपनी प्रतिभा और गुणवत्ता के आधार पर प्रसिद्ध होते जा रहे हैं। व्यापक रूप से ये समाज में आदर्श कलाकार के रूप में प्रसिद्ध होते जा रहे हैं। रवीन्द्र सिंह एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने कला जगत में अपनी पहचान बनाने के लिए दिन-रात बहुत परिश्रम किया है। वे निःस्वार्थ भाव से ही चित्रण करते हैं।

रवीन्द्र सिंह का जन्म 11 अक्टूबर 1975 को चंडीगढ़ में हुआ। इनके पिताजी पंजाब मार्कफेर्ड चंडीगढ़ में नौकरी करते थे व माताजी ग्रहणी थी। इनके पिताजी पहले बठिंडा – पंजाब में रहते थे, लेकिन नौकरी चंडीगढ़ होने के कारण वे चंडीगढ़ में ही रहने लगे। लेकिन रवीन्द्र सिंह की पैतृक पृष्ठभूमि वह चंडीगढ़ है।

यह पांच भाई बहन है। ये दो भाई और उनकी तीन बहनें हैं और ये सभी चंडीगढ़ में ही रहते हैं। इनकी बहनें चंडीगढ़ में ही नौकरी करती हैं और उनके छोटे भाई भी चंडीगढ़ में निजी नौकरी करते हैं। रवीन्द्र सिंह के परिवार में उनकी पत्नी और दो बेटियां और एक बेटा है।

रवीन्द्र सिंह का बचपन उनकी नानी के घर उत्तराखंड में बिताया क्योंकि उनकी माता जी का कुछ परिवारिक विवाद के कारण यह कुछ समय गांव में ही रहे, जो कहीं न कहीं हमें इनकी कलाकृतियों में भी देखने को मिलती है। इनकी रुचि क्रिकेट में भी है।

रवीन्द्र सिंह ने माध्यमिक व द्वितीयक शिक्षा चंडीगढ़ में ही प्राप्त की तथा कॉलेज की शिक्षा गवर्नमेंट कॉलेज आफ आर्ट चंडीगढ़ (Govt College of Art in Chanigarh) 1951 में प्राप्त की। यह कॉलेज 150 साल पुराना है।

इसकी उत्पत्ति भारत और पाकिस्तान के विभाजन से जुड़ी हुई है। क्योंकि इसकी स्थापना 1875 में लाहौर में मेयो स्कूल ऑफ आर्ट के रूप में की गई थी और बाद में इसे शिमला में पुनर्गठित किया गया और अंततः चंडीगढ़ में स्थानांतरित कर दिया गया।

रवीन्द्र सिंह को पेंटिंग करना पसंद था। जब वह माध्यमिक स्कूल में थे तब वह अपने अध्यापकों से प्रभावित थे और जब वह प्रदर्शनी किया करते थे तो तब इनके मन में भी पेंटिंग करने की

जिज्ञासा होती थी, परंतु उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में नॉन मेडिकल लिया परंतु जब वह कॉलेज में उन्होंने बी.एफ.ए. में दाखिला लिया ।

कला शिक्षा

रवीन्द्र सिंह की प्रारंभिक शिक्षा शारदा सर्वहितकारी मॉडल सीनियर सेकेंडरी स्कूल से हुई। इस विद्यालय से उन्होंने माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात उन्होंने गवर्नमेंट मॉडल सीनियर सेकेंडरी स्कूल धनास, चंडीगढ़ से द्वितीयक शिक्षा ग्रहण की। उस समय उन्होंने 10+2 में नॉन मेडिकल लिया परंतु बाद में उन्होंने गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ आर्ट चंडीगढ़ में दाखिला लिया तब उन्होंने चित्रकला की पढ़ाई दोबारा प्रारंभ की। इस कॉलेज से उन्होंने बैचलर ऑफ फाइन आर्ट्स (बी.एफ.ए) और मास्टर ऑफ फाइन आर्ट (एम.एफ.ए) की शिक्षा प्राप्त की।

जब वह बी.एफ.ए की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तब वह अपना ज्यादातर समय ड्राइंग के अभ्यास में लगाया करते थे क्योंकि उन्हें कॉलेज में लाइव स्केचिंग सिखाई जाती थी। तब वह कॉलेज में पूरा समय लगने के बाद बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन, बाजार तथा आसपास के गांवों में जाकर गाय, भैंस, खेतों में काम कर रहे मजदूरों आदि की लाइव स्केचिंग किया करते थे। तब वह एक दिन में A4 साइज के 200–300 स्केचिंग का अभ्यास किया करते थे, जिससे उनकी चित्रकला में पकड़ अच्छी बनी।

रवीन्द्र सिंह जब एम.एफ.ए. (MFA) की पढ़ाई कर रहे थे तब उन्हें उनके अध्यापक इनको खुद की पेंटिंग के ऊपर ही लिखने को कहते थे, जहां से उन्होंने खुद की कला को परखना शुरू किया। जहां से उन्हें पता चला कि उनकी कला बहुत से प्रसिद्ध कथात्मक कलाकारों से मिलती है। उन्होंने “पी.एच.डी” के लिए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। जब उन्हें किसी विषय पर किताब लिखनी थी तब उन्हें ज्यादा सोचना नहीं पड़ा, क्योंकि उन्होंने एफ.एम.ए. (MFA) में ही सोच लिया था कि उन्होंने कथा-कलाकारों का विषय लेकर ही काम करना है।

कथात्मक कला वह कला है जिसे कहानी कहा जाता है, या तो किसी चल रही कहानी में एक पल के रूप में या समय के साथ सामने आने वाली घटनाओं के क्रम में मानव कला के कुछ प्रमुख प्रतीक हैं कि लोग चित्रों के माध्यम से कहानियाँ सुनते थे। हालांकि सभी कथा कलाओं में कुछ सामान्य विशेषताएं मौजूद हैं, लेकिन विभिन्न कलाकृतियों में कथात्मक क्रियाओं को समझने के लिए तरीके विकसित किए गए हैं।

• विभिन्न कलाकारों का प्रभाव :-

रवीन्द्र सिंह को ज्यादातर तो बहुत से कलाकारों का ज्ञान नहीं था, लेकिन जब उन्होंने कॉलेज में दाखिला लिया तब वह समकालीन कलाकार शोभा सिंह, जो उसे समय के प्रसिद्ध कलाकारों में से

एक थे। वे शोभा सिंह से भी प्रभावित थे तथा उनके कॉलेज के प्राचार्य डॉक्टर प्रेम सिंह तथा भ्रम सिंह और बी.आर.चोपड़ा से भी बहुत प्रभावित थे।

रवीन्द्र सिंह केवल इन कलाकारों के कार्य को देखकर ही प्रभावित हुए थे।

तृतीय अध्याय

- रवीन्द्र सिंह की कला यात्रा
- कृतियों का विचार और विषय
- कलाकृतियों का विवरण

रवीन्द्र सिंह की कला यात्रा

कला—यात्रा :—

रवीन्द्र सिंह की कला यात्रा का सफर उनके कॉलेज के समय से ही शुरू हो गया था। गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ आर्ट चंडीगढ़ में दाखिला मिलते ही उनके सपनों को उड़ान मिल गई। उन्होंने 6 वर्षों तक गहन अध्ययन किया। शुरुआती वर्षों में उन्हें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, परन्तु समय के साथ — साथ उन्होंने कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। कठिन हालातों में भी उन्होंने धैर्य का साथ नहीं छोड़ा।

कला के विषय में पूर्ण अध्ययन के साथ-साथ वे अभ्यास पर भी जोर देते थे। एक विद्यार्थी के रूप में भी उन्होंने सफलता प्राप्त की और उसके पश्चात् भी उनके कार्य को पहचाने व प्रसिद्धी मिलने लगी। रवीन्द्र सिंह कोई भी चित्र बनाने से पहले विचार करते थे। जब उनके सामने कैनवस लगी होती है तो उस समय उनके मन के जो भाव रहते हैं, वह भावों को कैनवस पर उतार देते हैं। वे अपने कार्य को ही अपना भगवान मानते हैं।

जब भी किसी कार्यशाला में चित्र बनाते देखा जाए तो उन्हें देखकर यह अहसास होता है कि वे पूरे हृदय से अपने कलाकृति को पूरा करते हैं, साथ ही अन्य कलाकारों की भांति फूहड़ प्रयोगों से बचते हैं। उन्हें प्रत्येक कार्य सफाई से करना पसन्द है। वे रंगों के अपव्यय से भी बचते हैं। अपने जीवन की गाथा से वे अपने छात्रों को प्रेरित करते रहते हैं तथा वे विश्वास करते हैं कि जीवन में स्वप्न देखना ही काफी नहीं है, उन्हें पूरा करने के लिए भरसक प्रयास भी आवश्यक है।

उनकी वाणी में नम्रता है, जिससे छात्र भी उनसे निःसंकोच होकर अपने प्रश्न पूछते हैं। उन्होंने आत्म सृजनशीलता, नर्मता, प्रयासों में दृढ़ निश्चय से अपना एक अलग मुकाम बनाया है। जो भी व्यक्ति उनके संपर्क में आता है, उनका प्रशंसक बन जाता है।

इन्हें ललित कला अकादमी, नई दिल्ली से चित्रकला के लिए छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई।

इन्हें मार्च 2008, में गोवा में राष्ट्रीय ललित कला नई दिल्ली द्वारा आयोजित 51 वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में भाग लिया। मार्च 2000 में जयपुर और नई दिल्ली में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा आयोजित 42वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में भाग लिया और इन्होंने बहुत सी एकल प्रदर्शनीयां भी की हैं, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित की जाती हैं।

रवीन्द्र सिंह जी ने प्रकाशन शोध पत्र भी लिखे तथा यह बोर्ड के सदस्य भी रहे हैं।

कृतियों का विचार और विषय

रवीन्द्र सिंह एक आम आदमी की मानवीय चिंताओं और दैनिक संघर्ष को चित्रित करता हूँ जो अपनी योग्य आजीविका प्राप्त करने के लिए अंत्यत विनम्रता से लगा हुआ है। रवीन्द्र सिंह अन्य चिंताएँ और उनके निकटतम मानव जाति की राजनीतिक और सामाजिक चिंताएँ हैं। वह कई बार एक व्यक्ति पर सामाजिक – आर्थिक चिंताओं के प्रभाव पर टिप्पणी करते हैं।

वह कृतियों की रेखाओं, रंगों और रूपों द्वारा व्यक्त व्यक्तिगत कथन है। उनकी कृतियाँ प्रकृति के साथ मेरे गहरे संपर्क और मेरे आस – पास के वातावरण के मेरे अवलोकन को आत्मसात करती हैं। उनकी कृतियाँ कभी-कभी पत्रिकाओं, पुस्तकों, समाचार पत्रों और महान भारतीय पौराणिक कथाओं में साहित्यिक आउटपुट के रूप में सामने आती हैं। कहानी सुनाना भारत के पारंपरिक चरित्र का एक महत्वपूर्ण तत्त्व है और कथात्मक आवेग समकालीन कलाकारों के लिए एक प्रेरक प्रेरणा बनी हुई है और उनके लिए भी इसका विशेष महत्व है।

वह समाज में मौजूद कई कहानियों को चित्रित करता हूँ, चाहे वे व्यक्तिगत हो या सामान्य। उनकी अन्य प्रमुख चिंताएँ समृद्ध सांस्कृतिक मूल्य और भारतीय समाज में उनका महत्व है। लोग जहाँ कहीं भी जाते हैं, उन्हें अपनी सांस्कृतिक जड़ों से अलग नहीं किया जा सकता है और उनके द्वारा समय-समय पर प्रदर्शनी में उनके कार्यों में बहुत मौजूद रहा है।

उन्होंने चंडीगढ़ में भारत के विभिन्न पिछड़े इलाकों से आए दिहाड़ी मजदूरों और रिक्शा चालकों की जिंदगी को करीब से देखा है। रोजमर्रा की जिंदगी के लिए उनके संघर्ष और परिवारों से अलगाव ने उन्हें प्रभावित किया है। लेकिन, उनका सरल, रंगीन आकांक्षाओं से भरा और साथ ही मुश्किल भी है। उनके जीवन के ये सभी पहलू उनके ड्राइंग और पेंटिंग का हिस्सा बन गए। कई बार उनकी पूरी कहानी को चित्रित करने के बजाय समय के साथ खास पलों को चित्रित करने में दिलचस्पी थी। उनके द्वारा अन्य पेंटिंग्स दिहाड़ी मजदूरों, मजदूरों और उनके निकटतम परिवार के सदस्यों से संबंधित रही हैं।

यह समझा जाता है कि “हमारे समाज में खतरे और असुरक्षा की भावना बढ़ रही है।” जीवन अब सुरक्षित नहीं रहा और, यह रवीन्द्र सिंह की पेंटिंग्स में दिखाई देता है। पिछले कुछ सालों से वे मानसिक विकृतियों, भ्रम और दोहरे व्यक्तित्व के पंथों आदि पर वह काम कर रहे हैं, और सभी दर्द, यादों, समाज में विभाजन, जातीय अशांति, आतंकवाद, उग्रवाद और आधुनिक समाज में प्रचलित कई हिंसा से पैदा होते हैं। घटनाओं के बजाए धारणाएँ और मन की स्थिति काम का हिस्सा बन गई हैं। उनकी आंतरिक भावनाएँ, आकांक्षाएँ, और उथल-पुथल अब उनके कामों में चित्रित की जाती हैं।

तकनीक उनके काम का हिस्सा बन रही है, इसलिए, वह डिजिटल मीडिया का भी इस्तेमाल कर रहे हैं। स्थानीय से वैश्विक हो गई है और उन्हें बताने के लिए नवीनतम तकनीक का उपयोग नए मीडिया में फैल गया है।

टी.एस. एलियट ने कहीं कहा है कि दुनिया के लिए भारत का संदेश यह है कि आध्यात्मिक ज्ञान के बिना मनुष्य एक अधूरा प्राणी है।

कलाकृतियों का विवरण

कलाकार लय और आनंद का एक जीवंत उत्सव है, जो संगीत और नृत्य के सार को उसके शुद्धतम रूप में दर्शाता है। पारंपरिक पोशाक में नृत्य और ढोलक बजाते हुए दो पुरुष एक सक्रामक उर्जा का उत्सर्जन करते हैं जो आपको तुरंत उनके उत्सव की दुनिया में खींच लेती है। उनके चारों ओर समाहित सजावट केवल सजावटी नहीं है, बल्कि उनके प्रदर्शन के सामंजस्य और संतुलन को प्रतिध्वनित करती है, जो दृश्य अपील को बढ़ाती है।

बोल्ड रंगों और जटिल पैटर्न का कलाकार का चित्रण एक उल्लासपूर्ण माहौल बनाता है जो जीवंत और संपादित लगाता है। यह पेंटिंग केवल कलाकारों को ही नहीं दर्शाती है, यह दर्शकों को उत्सव में भागीदार में बदल देती है, जिससे यह वास्तव में एक शानदार कृति बन जाती है।

- डा. रवीन्द्र सिंह जी के द्वारा पेंटिंग “विलिज चंडीगढ़” जो तेल के रंगों से सन् 2007 में बनाई गई थी। इस पेंटिंग में उन्होंने गाँव को दर्शाया व दिखाया है। जिसमें लोग घर की छत पर बैठे हुए अनेक प्रकार की गतिविधियां करते हुए दिखाए गए हैं। तथा इस पेंटिंग का आकार 60”x 72” इंच है।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा पेंटिंग “रिक्षा पुलर्स - I ” पेंटिंग जो पेस्टल रंगों द्वारा पेपर पर बनाई गई है। जो सन् 1997 में “301 x 40” इंच के साईज की है। इसमें उन्होंने गहरे रंगों का इस्तेमाल किया है। उन्होंने इस पेंटिंग में तीन आदमियों को दिखाया है जो रिक्शे के नीचे बैठे हैं।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा पेंटिंग “जगदीश” जो तेल के रंगों से सन् 1997 में 18” x 24” इंच के कैनवास पर बनाई गई है। इस पेंटिंग में उन्होंने एक आदमी में खड़े हुए दिखाया है। इस पेंटिंग में उन्होंने गहरे रंगों का प्रयोग किया है।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा पेंटिंग “रिक्षा पुलर्स – VIII ” पेंटिंग जो पेस्टल रंगों द्वारा पेपर पर बनाई गई है। जो सन 1998 में “32 x 42” इंच के साईज की बनी है। इसमें उन्होंने गहरे रंगों का इस्तेमाल किया व जिसमें एक औरत मेज पर बैठी है और एक जवान बच्चा नीचे बैठा है।

- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा “द ग्रेट इंडियन मार्केट” पेंटिंग जो तेल के रंगों से कैनवास पर बनाई गई है जो सन् 2005 में 30” x 40” इंच के आकार की है। इस पेंटिंग में रवीन्द्र सिंह जी ने मार्केट का दृश्य दिखाया है। जिसमें बहुत सी दुकानें देखने को मिलती हैं। जैसे कपड़े की दुकान, पकवान की दुकान आदि। इसमें गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा “रिक्शा पुलर्स – II” पेंटिंग जो तेल के रंगों से कैनवास पर बनाई गई है। जो सन् 2006 में 30” x 40” इंच के आकार की बनाई गई थी। इसमें गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है। इस पेंटिंग में दो आदमी आग सेकते हुए दिखाए हैं। और उनके साथ गाय तथा उसका बच्चा दिखाया है। इस चित्र में पीछे की तरफ दुकानें दिखाई गई हैं।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा “रिक्शा पुलर्स – VII ” पेंटिंग जो एक्रेलिक रंगों से कैनवास पर बनाया गया है। जो सन् 2006 में 32” x 42” इंच के आकार पर बनाई गई है। इस चित्र में दो व्यक्तियों को दिखाया गया है और पीछे की तरफ एक रिक्शा दिखाया है। इसमें गहरे रंगों का इस्तेमाल किया गया है।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा “रिक्शा पुलर्स – IV” पेंटिंग बनाई गई है। यह पेंटिंग तेल के रंगों से कैनवास पर बनाई गई है। जो सन् 2008 में 30” x 48” इंच के आकार से बनाई गई है। इस चित्र में उन्होंने दो व्यक्तियों को दिखाया है जो आग सेक रहे हैं, पीछे की तरफ एक पेड़ है और साथ में उनके एक रिक्शा खड़ा हुआ है।
- डा. रवीन्द्र के द्वारा बनाया गया चित्र “रिक्शा पुलर्स III” जो तेल के रंगों से कैनवास पर बनाया गया है। यह कैनवास सन् 2006 में 70” x 72” इंच के आकार से तैयार किया गया है। इस चित्र में उन्होंने गहरे रंगों का प्रयोग किया है। इस चित्र में उन्होंने रिक्शा के ऊपर नशे की अवस्था से एक व्यक्ति को दिखाया है तथा उस रिक्शा के साथ में एक लड़की तथा लड़को को दिखाया है जो पेड़ के साथ खड़े हुए हैं और इस पेंटिंग में पीछे की तरफ एक होटल का दृश्य दिखाया गया है।

- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा बनाई गई पेंटिंग "बर्ड्स पैराडाइज" जो एक्रेलिक रंगों से कैनवास पर बनाई गई है। यह चित्र से 2008 में 120 x 120 इंच के आकार है। इस चित्र में गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है। इसमें उन्होंने बॉर का दृश्य दिखाया है। इसमें उन्होंने शराब पीते हुए व्यक्तियों को दिखाया है, और एक लड़की को खाना देते हुए दिखाया है।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा बनाई गई पेंटिंग "ट्रांसफिगरेशन" जो तेल के रंगों से कैनवास पर बनाई गई है। इस चित्र को उन्होंने सन 2016 में 44" x 58" इंच के आकार से बनाया है। इस चित्र में नृत्य करती हुई महिलाएं दिखाई हैं और आदमी उन्हें कुर्सी पर बैठकर देख रहे हैं। कुछ और एक महिला उन्हें शराब पकड़ा रही है। पेंटिंग के नीचे की तरफ एक नग्न अवस्था में आदमी खड़ा दिखाया है। और कुछ व्यक्तियों को बस में बैठा हुआ दिखाया है। इस चित्र में गहरे रंगों का प्रयोग हुआ है।
- डा. रवीन्द्र के द्वारा "म्यूजिशियन एंड हिंज म्यूज" पेंटिंग तेल के रंगों से कैनवास पर बनाई गई है। जो सन् 2014 में 38" x 54" इंच के आकार से बनाई गई है। इस चित्र में गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है। इस पेंटिंग में उन्होंने ब्राह्मण दिखाए हुए हैं और गायों तथा संगीत के यंत्र दिखाए गए हैं। इस चित्र में एक संगीत यंत्र बजा रहा है और उसके पास गायों का झुंड बैठा है। तथा एक इस चित्र में पीछे के तरफ नाई दिखाया है जो बाल काट रहा है।
- डा. रवीन्द्र के द्वारा "मंकी फेस्टिवल" तेल के रंगों से बनाई है। जो सन् 2022 में 60" x 72" इंच के आकार से बनाई गई है। इस चित्र में गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है। उन्होंने इस चित्र में मंकी फेस्टिवल को धूमधाम से मनाते हुए दिखाया है जिसमें कुछ लोगो ने बदरों की वेशभूषा पहने दिखाया है। कुछ लोग संगीत बजा रहे हैं तथा नाच रहे हैं। आगे की तरफ एक व्यक्ति बैठा हुआ है जिसके पास मुखौटे पड़े हुए हैं।
- डा. रवीन्द्र सिंह के द्वारा "फलाइंग टू ग्लोरी" पेंटिंग एक्रेलिक रंगों से कैनवास पर बनाई गई है। इस पेंटिंग को सन 2022 में 24" x 24" इंच के आकार से बनाया गया था। इस पेंटिंग में गहरे रंगों का प्रयोग किया है जिसमें उन्होंने तीन मनुष्य को शरीर को उड़ते हुए दिखाया है। जिसमें उन्हें पीछे पंख लगे हुए हैं तथा नीचे की तरफ फूल दिखाए हुए हैं।

चतुर्थ अध्याय

- पुरस्कार प्राप्त
- छात्रवृत्ति और सदस्यता
- राष्ट्रीय भागीदारी तथा एकल कला प्रदर्शनी
- प्रकाशन और बोर्ड के सदस्य
- शोध पत्र तथा अन्य प्रकाशन
- विशिष्ट शैक्षणिक और प्रशासनिक अनुभव

प्रदर्शनीयाँ व पुरस्कार

➤ विभिन्न कलात्मक प्रदर्शनीयों में प्राप्त पुरस्कार: –

- 02 मई 2024 को युवा एवं सांस्कृतिक मामले विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा द्वारा सम्मान पुरस्कार।
- 30 मार्च 2024 को के.टी. कला संग्रहालय द्वारा कौसा ट्रस्ट कला पुरस्कार
- 15 जनवरी 2024 को पनाश (गैर-लाभकारी, गैर-सरकारी संगठन, नई दिल्ली) द्वारा समकालीन कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में अपार योगदान के लिए सम्मान पुरस्कार।
- 04 दिसंबर, 2023 को चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब द्वारा सर्वश्रेष्ठ पेपर प्रस्तुति पुरस्कार सी.यू.डी. सी. 2023
- 17 दिसंबर, 2023 को चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब द्वारा अनुसंधान उत्कृष्टता पुरस्कार दिसंबर 2023
- 12 दिसंबर 2023 को आयोजित 96वीं वार्षिक अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी में "बार्ड्स पैराडाइज-2" नामक पेंटिंग के लिए पद्म भूषण राम वी. सुतार, पद्मश्री बिमन बी. दास और प्रोफेसर वी. नागदास से ए.आई.एफ.ए.सी.एस. पुरस्कार। अखिल भारतीय ललित कला एवं शिल्प सोसायटी, नई दिल्ली द्वारा।
- समन्वयक के रूप में उत्कृष्ट योगदान के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार एवं सम्मान, सम्मान पुरस्कार (आईआईसी- गतिविधियां 15 दिसंबर, 2023 को चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब द्वारा दी जाती हैं।
- 16 दिसंबर 2022 को अमृतसर में कला एवं वास्तुकला सम्मेलन (नवरंग फ्लो आर्ट फेस्ट) के दौरान कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए पंजाब सरकार के संसदीय कार्य मंत्री डॉ. इंदरबीर सिंह निज्जर, पद्मभूषण जतिन दास और पद्मश्री रघु राय द्वारा सम्मानित।
- आर्ट बीट्स फाउंडेशन द्वारा आयोजित चित्रकला श्रेणी के लिए कला महर्षि बाबूराव पेंटर अंतर्राष्ट्रीय वर्चुअल कला प्रतियोगिता एवं कला प्रदर्शनी- मार्च 2021 (उनकी 131वीं जयंती पर) में "उत्कृष्ट योग्यता के रूप में बाबूराव पेंटर पुरस्कार" प्राप्त किया (3 जून, 2021 को प्राप्त)।
- बिंदास आर्टिस्ट ग्रुप (ठ।ळ) द्वारा दिनांक 1-31 जनवरी 2021 को आयोजित "अंतर्राष्ट्रीय ऑनलाइन 100 प्रख्यात कलाकारों की एकल कला प्रदर्शनी" में अपना काम प्रस्तुत करने और कला के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान के लिए दुनिया भर के 100 कलाकारों के बीच चुने जाने पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मान।

- निरंतर आर्ट ग्रुप द्वारा दिनांक 25 जून से 25 जुलाई 2020 को ऑनलाइन आयोजित कोविड-19 थीम के अंतर्गत "अंतर्राष्ट्रीय ऑनलाइन कला प्रदर्शनी" में अपना पेंटिंग काम प्रस्तुत करने के लिए दुनिया भर के 500 कलाकारों के बीच चुने जाने पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मान।
- हिमप्रस्थ कला सोसायटी, देहरादून द्वारा 18 अक्टूबर से 18 दिसंबर, 2020 के बीच आयोजित पेंटिंग श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ प्रविष्टि के लिए प्रोफेसर भगवती काम्बोज अंतर्राष्ट्रीय कला रतन पुरस्कार।
- विश्व कलाकार दिवस के अवसर पर 08-11 दिसंबर 2017 तक उड़ीसा मॉडर्न आर्ट गैलरी की वार्षिक कला प्रदर्शनी में पेंटिंग के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार। (शिल्पी) दिवस।
- 12 फरवरी 2017 को धौली कॉलेज ऑफ आर्ट एंड क्राफ्ट्स, भुवनेश्वर द्वारा आयोजित धौली राष्ट्रीय कला महोत्सव-2017 की पूर्व संध्या पर कला क्षेत्र में उनके योगदान के लिए पद्मश्री रघुनाथ महापात्रा द्वारा "प्रसिद्ध कलाकार" के रूप में सम्मानित किया गया।
- 14 मार्च 2016 को प्रफुल्ला दहानुकर आर्ट फाउंडेशन द्वारा आयोजित "कलानंद कला प्रतियोगिता-ऑन-लाइन राष्ट्रीय कला प्रतियोगिता-2016" में पेंटिंग 'ट्रांसफिगरेशन' के लिए चंडीगढ़ राज्य पुरस्कार प्राप्त किया।
- सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब द्वारा आयोजित 2005 (25-10-2005), 2000 (23 अक्टूबर 2000) और 1997 (22 दिसंबर 1997) में पेंटिंग के लिए अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी उत्तर क्षेत्रों में पुरस्कार।
- 31 मार्च 2000 को पंजाब ललित कला अकादमी में मिलेनियम ड्राइंग प्रदर्शनी-अप्रैल-2000 में पंजाब राज्य पुरस्कार।
- कॉलेज और स्कूल स्तर के पुरस्कार।

➤ छात्रवृत्ति:-

राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली से चित्रकला के लिए गढ़ी अनुदान छात्रवृत्ति-2007-2008।

➤ सदस्यता:-

- 2007 से राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली के स्थायी/आजीवन मतदान सदस्य।
- संस्कार भारती सोसायटी, चंडीगढ़ के सदस्य (पंजीकृत संख्या: 080 वर्ष 2020-2021)
- क्रिएटर्स ग्रुप, चंडीगढ़ के सदस्य।
- सदस्य, ओबामा फाउंडेशन, न्यूयॉर्क, 2018
- सदस्य, फिरदौसी तबस्सुम आर्ट एंड एनवायरनमेंट फाउंडेशन, भुवनेश्वर, 2016.

- सदस्य, उत्साह फाउंडेशन फॉर कंटेम्पररी आर्ट, भुवनेश्वर
- सदस्य, द हिमालयन क्लब, 2018
- सदस्य, आर्ट फ्रीक्स ग्लोबल पीपुल्स चॉइस आर्ट कॉन्टेस्ट: एक ऑनलाइन कंटेम्पररी आर्टिस्ट ग्रुप
- सदस्य, बिंदास आर्टिस्ट ग्रुप (BAG), 2020
- सदस्य, भुवनेश्वर इंटरनेशनल कंटेम्पररी आर्ट फेयर, 2020
- सदस्य, न्यूयॉर्क आर्ट कॉम्पिटिशन, 2020: एक ऑनलाइन कंटेम्पररी आर्टिस्ट ग्रुप
- सदस्य, आई एम एन आर्टिस्ट: एक ऑनलाइन कंटेम्पररी आर्टिस्ट ग्रुप
- सदस्य गेट्स नोट्स इनसाइडर

➤ राष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों में भागीदारी -

- गोवा में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा आयोजित 51वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, मार्च, 2008 में भाग लिया।
- मार्च 2000 में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा जयपुर और नई दिल्ली में आयोजित 42वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में भाग लिया।

➤ एकल कला प्रदर्शनी

- 26 जनवरी से 26 फरवरी 2024 तक दुनिया भर के 100 प्रख्यात कलाकारों की एक अंतराष्ट्रीय ऑनलाइन कला प्रदर्शनी में भाग लिया।

आमंत्रित प्रख्यात कलाकारों की सूची देखने के लिए, लिंक का उपयोग करें-

<https://www.bindaasart.com/copy-of-eminents-artists-1>

प्रदर्शनी देखने के लिए, कृपया लिंक का उपयोग करें-

<https://online.pubhtml5.com/qjram/xutx/>

वेबसाइट पर डिजिटल कैटलॉग और प्रदर्शनी डाउनलोड करने के लिए, कृपया लिंक का उपयोग करें-

<https://www.bindaasart.com/copy-of-eminents-artists>

- 15 दिसंबर से 15 जनवरी 2023 तक बिंदास आर्टिस्ट ग्रुप (BAG) द्वारा आयोजित अंतराष्ट्रीय एकल कला प्रदर्शनी में भाग लिया, कलाकार पंजीकृत। नंबर SAE0001, वेबसाइट: www.bindaasart.com, <https://www.bindaasart.com/clients>

- 22-26 जून, 2020 तक बिंदास आर्टिस्ट ग्रुप (BAG) द्वारा आयोजित अंतराष्ट्रीय एकल कला प्रदर्शनी में भाग लिया, कलाकार रजिस्टर। नं. SAE0001, वेबसाइट: www.bindaasart.com, <https://www.bindaasart.com/clients>

- दुनिया भर के 100 प्रख्यात कलाकार, 1 जनवरी से 31 जनवरी 2023 तक।
- प्रदर्शनी देखने और डिजिटल कैटलॉग डाउनलोड करने के लिए, कृपया दिए गए लिंक का उपयोग करें-
- <https://www.bindaasart.com/copy-of-eminents-artists>
- श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा 21-26 अगस्त, 2017 को एकल कला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने पूज्य गुरुदेव एच. एच. रविशंकर जी के साथ किया।
- श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक ओडिशा के दृश्य एवं प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित एकल कला प्रदर्शनी का उद्घाटन 24-30 जनवरी 2020 को आशा भोंसले (महान बॉलीवुड गायिका) और श्री श्री रविशंकर जी (आर्ट ऑफ लिविंग के संस्थापक) द्वारा किया गया।
- चंडीगढ़ के विवेक हाई स्कूल में 2008 में ड्राइंग और पेंटिंग्स का एकल शो।
- हिमाचल प्रदेश के सोलन के पाइनग्रोव स्कूल द्वारा अपने परिसर में आयोजित एकल कला प्रदर्शनी का उद्घाटन 20-30 अक्टूबर 2003 को निदेशक कैप्टन एजे सिंह द्वारा किया गया।

➤ प्रकाशन और बोर्ड के सदस्य

- राष्ट्रीय ललित कला अकादमी और लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित एक पुस्तक में अध्याय- विवरण की प्रतीक्षा है।
- प्रोफेसर रंजन कुमार मलिक, डीन, सीडीएस, चितकारा विश्वविद्यालय द्वारा संपादित पुस्तक “भारत से लोक और लघु कलाएँ” में अध्याय “रघुराजपुर का सतत पट्टचित्र और पुरी की समृद्ध जगन्नाथ संस्कृति” , अक्टूबर 2022। <https://www.amazon.in/FOLK-MINOR-ART-TRADITION-INDIA/dp/B0BB6MFYBY>
- इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यूज़ (IJRAR), में “मध्य युग के माध्यम से भारत की कथात्मक कला: एक विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि” शीर्षक से एक पूर्ण पेपर प्रकाशित किया।
- एक पूर्ण पेपर प्रकाशित (सह-लेखक डॉ. राम विरंजन, अध्यक्ष, ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा के साथ) जिसका शीर्षक है "80 के दशक में स्वतंत्रता के बाद कलाकारों की दूसरी पीढ़ी में समकालीन कथात्मक प्रवृत्तियाँ: एक नया परिप्रेक्ष्य" एक 'अंतर्राष्ट्रीय जर्नल-भूगोल स्वदेश चर्चा' (बहुविषयक और बहुभाषी) एक डबल ब्लाइंड सहकर्मों की समीक्षा और रेफरी द्वारा जांचा गया अंतर्राष्ट्रीय जर्नल वॉल्यूम 16, विशेष अंक 2, मार्च 2020

- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय शोध पत्रिका (कला और मानविकी) में प्रकाशित सहकर्मी समीक्षित और रेफरीड जर्नल में “कथा कला में चित्रण की समस्याएं” शीर्षक से पूर्ण शोध पत्र प्रकाशित, 2018 में जारी।
- वार्षिक शोध पत्रिका 'द क्रिएटिव पाथ डीएससीडब्ल्यू' के सलाहकार बोर्ड के सदस्य; में “भूपेन खाखर की कलाकृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन” शीर्षक से पूर्ण शोध पत्र प्रकाशित।
- वार्षिक शोध पत्रिका 'द क्रिएटिव पाथ डीएससीडब्ल्यू' के सलाहकार बोर्ड के सदस्य, में "भारतीय कथा चित्रकला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि" शीर्षक से एक पूर्ण पेपर प्रकाशित किया।
- 'स्थिरता और सशक्तीकरण के लिए शिक्षा में मूल्य और नैतिकता' पुस्तक में "एक कला अनुशासन की सौंदर्यवादी स्थापना के प्रतिमान" शीर्षक से पूर्ण शोध पत्र प्रकाशित किया। पहला संस्करण 2015 में ट्वेंटीएथ सेंचुरी पब्लिकेशन्स, पटियाला द्वारा डॉ. करमजीत सिंह और डॉ. हरनीत बिलिंग द्वारा संपादित।

➤ शोध पत्र के अलावा अन्य प्रकाशन-

- एक लेख "रूपांतरण एक संपादित सूची/पुस्तक (कौमुदी प्रजापति द्वारा, अंजलि अग्रवाल द्वारा क्यूरेट और डिज़ाइन) में "शीर्षकहीन: एक कला प्रदर्शनी" (अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी 23-28 नवंबर 2014)) वंदिता प्रकाशन, महमूरगंज, वाराणसी द्वारा 23 नवंबर 2014 को प्रकाशित।
- राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी 2000 (विवरण उपलब्ध नहीं हैं)

➤ विशिष्ट शैक्षणिक और प्रशासनिक अनुभव

मैं वर्तमान में चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब में कार्यक्रम समन्वयक और अनुसंधान समन्वयक के रूप में काम कर रहा हूँ। मैं स्नातक और परास्नातक स्तर पर नए पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम तैयार करने पर काम कर रहा हूँ। 04 वर्षों तक विभागाध्यक्ष, छात्रावास वार्डन के रूप में काम किया और श्री श्री विश्वविद्यालय में व्यापक पाठ्यक्रम-डिज़ाइनिंग अभ्यास किया। मैंने नवीनतम यूजीसी दिशानिर्देशों के अनुसार बीएफए और एमएफए के लिए सीबीसीएस (चॉइस बेस्ड क्रेडिट सिस्टम) और एलओसीएफ (लर्निंग आउटकम-बेस्ड करिकुलम फ्रेमवर्क) पाठ्यक्रम और पैटर्न तैयार किए, समिति के अध्यक्ष के रूप में दो अध्ययन बोर्ड आयोजित किए और उक्त पाठ्यक्रम को भी अनुमोदित करवाया और श्री श्री विश्वविद्यालय में इसे लागू किया। इस प्रयास के तहत, मैंने 88 नए पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम (प्रत्येक 2-6 क्रेडिट) डिज़ाइन किए, 17 नवीन शिक्षण पद्धति (प्रत्येक 2 क्रेडिट) विकसित की, 11 सिद्धांत विषयों के लिए एक पूर्ण पाठ्यक्रम / ईबुक (2 या अधिक क्रेडिट) के लिए 4 चतुर्भुजों में ई-सामग्री विकसित की (लिंक: <https://srisriuniversity.edu.in/wp-content/uploads/2020/02/LOCF-Painting.pdf>)।

मैंने दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग में अत्याधुनिक बुनियादी ढांचे और स्टूडियो का डिजाइन और निर्माण किया, श्री श्री विश्वविद्यालय के माननीय राष्ट्रपति, कुलपति और आदरणीय रजिस्ट्रार महोदय के साथ दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग के प्रमुख के रूप में कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर कई विचार-विमर्श सत्रों में भाग लिया, NAAC मान्यता के लिए अथक प्रयास किया, मेरे पर्यवेक्षण में, विभाग ने राष्ट्रीय ख्याति के कई प्रतिष्ठित संस्थानों (सुवादरा आर्ट गैलरी और प्रकाशन एजेंसी, प्रख्यात कलाकार श्री जगन्नाथ पांडा द्वारा स्थापित समकालीन कला के लिए उत्साह फाउंडेशन, भुवनेश्वर, आदि) के साथ सहयोग किया। SSU में अपने कार्यकाल के दौरान कई प्रतिष्ठित समितियों (NAAC, NIRF, अनुशासन, प्रदर्शनियाँ, आदि) के सदस्य के रूप में कार्य किया। नीति दस्तावेजों का निर्माण

- एमएफए- पेंटिंग के लिए संरचना और पाठ्यक्रम बनाया: मैंने जुलाई 2022 में पंजाब के चितकारा विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित एक नीति दस्तावेज बनाया और चितकारा विश्वविद्यालय में ललित कला विभाग में उच्च अध्ययन कार्यक्रम शुरू करने से जुड़े नियम-विनियम, अध्यादेश, पाठ्यक्रम और अन्य सभी चीजों को संरचित किया।

- एमएफए- पेंटिंग के लिए संरचना और पाठ्यक्रम बनाया: मैंने दिसंबर 2021 में चंडीगढ़ विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित एक नीति दस्तावेज बनाया और चंडीगढ़ विश्वविद्यालय में ललित कला विभाग में उच्च अध्ययन कार्यक्रम शुरू करने से जुड़े नियम-विनियम, अध्यादेश, पाठ्यक्रम और अन्य सभी चीजों को संरचित किया।

- एमएफए- एप्लाइड आर्ट्स के लिए संरचना और पाठ्यक्रम बनाया: मैंने दिसंबर 2021 में चंडीगढ़ विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित एक नीति दस्तावेज बनाया और चंडीगढ़ विश्वविद्यालय में ललित कला विभाग में उच्च अध्ययन कार्यक्रम शुरू करने से जुड़े नियम-विनियम, अध्यादेश, पाठ्यक्रम और अन्य सभी चीजों को संरचित किया।

- दृश्य कला अध्यादेश, संरचना और पाठ्यक्रम: मैंने अकेले ही 2016 में श्री श्री विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित एक नीति दस्तावेज बनाया। मैंने श्री श्री विश्वविद्यालय में दृश्य कला के एक नए विभाग को शुरू करने से जुड़े नियम-विनियम, अध्यादेश, पाठ्यक्रम और अन्य सभी चीजों को संरचित किया।

- एसएसयू ललित कला क्लब: श्री श्री विश्वविद्यालय के ललित कला क्लब के लिए अध्यादेश, संरचना और पाठ्यक्रम तैयार किया

- तीन महीने का सर्टिफिकेट कोर्स: श्री श्री विश्वविद्यालय में 03 महीने के सर्टिफिकेट कोर्स के लिए अध्यादेश, संरचना और पाठ्यक्रम तैयार किया

04 सप्ताह का फैकल्टी इंडक्शन/ओरिएंटेशन प्रोग्राम

- मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तहत 10 नवंबर से 09 दिसंबर, 2020 के बीच टीचिंग लर्निंग सेंटर, रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय से 04 सप्ताह का फैकल्टी इंडक्शन/ओरिएंटेशन प्रोग्राम सफलतापूर्वक ए ग्रेड के साथ पूरा किया।

03 सप्ताह की ललित कला ई-कार्यशाला

- संस्कार भारती, कोपागंज, मऊ, उत्तर प्रदेश, भारत द्वारा सप्तऋषि ज्ञानगंगा ट्रस्ट, कोपागंज के सहयोग से आयोजित 03 सप्ताह की ललित कला ई-कार्यशाला (5-25 जून, 2020) सफलतापूर्वक पूरी हुई।

02 सप्ताह का संकाय विकास कार्यक्रम

- एमएचआरडी, भारत सरकार की पंडित मदन मोहन मालवीय राष्ट्रीय शिक्षक एवं शिक्षण मिशन योजना (पीएमएमएमएनएमटीटी) के तहत अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान विभाग और टीचिंग लर्निंग सेंटर, रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित "शिक्षण और अभ्यास के लिए मनोवैज्ञानिक कौशल को बढ़ाने" (15 - 29 सितंबर 2020) पर दो सप्ताह का ऑनलाइन संकाय विकास कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा हुआ। आईडी: <https://forms.gle/6bkF3SYsbe6V21VB9> पर रजिस्टर करें

01 सप्ताह (07 दिन) एफडीपी (गुरु-दक्षता) संकाय विकास कार्यक्रम

- 20-26 जुलाई 2021 को यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट ऑफ टीचर्स ट्रेनिंग एंड रिसर्च (यूआईटीटीआर) द्वारा डीन एकेडमिक अफेयर ऑफिस, चंडीगढ़ यूनिवर्सिटी के सहयोग से आयोजित 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का कार्यान्वयन: उच्च शिक्षा संस्थानों में संकाय की भूमिका' पर 05 दिवसीय एफआईपी-संकाय प्रेरण कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा किया गया।

01 सप्ताह (07 दिन) संकाय विकास कार्यक्रम

- विभाग द्वारा आयोजित "कला के क्षेत्र में नई संभावनाओं और चुनौतियों" (03 - 09 मार्च 2021) पर एक सप्ताह का ऑनलाइन संकाय विकास कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा किया गया।

➤ परामर्श/कार्य आरंभ किए गए प्रोजेक्ट

- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित प्रदर्शन कला की अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (दो महीने की अवधि), 2016।

- श्री श्री विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित चित्रकला की पहली अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (दो महीने की अवधि), 2017-18।
- श्री श्री विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित चित्रकला की दूसरी अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (दो महीने की अवधि), 2019।
- श्री श्री विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित चित्रकला की तीसरी अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (दो महीने की अवधि), 2020।

- राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों और वेबिनारों में पत्रों का आमंत्रण/प्रस्तुति/भागीदारी
1. राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली के सहयोग से लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, पंजाब के ललित कला विभाग द्वारा आयोजित तकनीकी सत्र एक में 'भारत की प्रसिद्ध और पारंपरिक कलाएँ' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में "कथात्मक चित्रकला के लिए पारंपरिक भारतीय मानस" शीर्षक से एक पेपर प्रस्तुत किया। दिल्ली, भारत सरकार और 25 जून 2022 को आयोजित किया गया।
 2. 25 मई 2022 को चितकारा कॉलेज ऑफ एजुकेशन, चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब द्वारा विश्वविद्यालय परिसर में आयोजित "कला और सौंदर्यशास्त्र और एनईपी- 2020 के अनुपालन में कला और डिजाइन की भूमिका" पर एक दिवसीय कार्यशाला और व्याख्यान प्रस्तुति में एक संसाधन व्यक्ति के रूप में आमंत्रित किया गया।
 3. 07 अगस्त, 2021 को सीटी यूनिवर्सिटी, लुधियाना द्वारा आयोजित राष्ट्रीय ऑनलाइन वेबिनार में "बंगाल स्कूल और कालीघाट पेंटिंग्स की कथा" पर एक मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया और एक व्याख्यान दिया।
 4. 18 मई 2021 को यूआईटीटीआर, चंडीगढ़ विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'एनईपी 2020 - उच्च शिक्षा में सुधार और शिक्षकों के व्यावसायिक विकास' पर ऑनलाइन राष्ट्रीय वेबिनार में भाग लिया।
 5. 18-19 दिसंबर, 2020 को देव समाज कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर सिटी, पंजाब के ललित कला विभाग द्वारा आयोजित "ललित कला के पहलू" पर 02 दिवसीय ऑनलाइन राष्ट्रीय वेबिनार में संसाधन व्यक्ति के रूप में आमंत्रित किया गया।
 6. 10 दिवसीय 'तृतीय अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला संगोष्ठी- 2020: रंगों से परे' में संसाधन व्यक्ति और "स्वयं को प्रस्तुत करना: कलाकार रविंदर सिंह द्वारा कला के क्षेत्र में उनकी यात्रा के माध्यम से निहित कार्य, दर्शन और तकनीक" पर एक ऑडियो-वीडियो अध्ययन प्रस्तुत किया।
 - 14-23 जनवरी, 2020 तक विश्वविद्यालय परिसर में श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक के दृश्य कला विभाग में।
 7. 19-21 जुलाई 2019 तक ओडिशा डायरी फाउंडेशन और ओडिशा मीडिया इन्फो सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा आयोजित कन्वेंशन सेंटर, केआईआईटी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर में कलिंग कला महोत्सव

(कलिंग साहित्य महोत्सव का हिस्सा)-2019 के दौरान “भारत में कला महाविद्यालयों में उच्च शिक्षा की स्थिति” पर चर्चा और विचार-विमर्श के लिए एक विशेषज्ञ पैनलिस्ट के रूप में आमंत्रित किया गया।

8. 23 फरवरी 2017 को ओडिशा मॉडर्न आर्ट गैलरी के सहयोग से और OXFAM, भारत के समर्थन से सामाजिक विकास संस्थान, जयदेव/सूचना भवन द्वारा आयोजित “कला और संस्कृति के माध्यम से युवा विकास: सामाजिक मानदंडों में बदलाव” पर ओडिशा राज्य स्तरीय चित्रकला प्रतियोगिता में जज और वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया, जिसके बाद पुरस्कार समारोह हुआ।

9. 12 फरवरी 2018 को गवर्नमेंट पीजी कॉलेज, अंबाला कैंट के ललित कला विभाग द्वारा आयोजित और उच्च शिक्षा निदेशालय, हरियाणा द्वारा प्रायोजित 'भारत की विरासत' पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में एक सत्र की अध्यक्षता की और "लिंगराज: भगवान शिव को समर्पित एक हिंदू मंदिर" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।

10. कुमाऊं विश्वविद्यालय, एसएसजे परिसर, अल्मोड़ा, उत्तराखंड के दृश्य कला संकाय, ड्राइंग और पेंटिंग विभाग द्वारा आयोजित "ऐतिहासिक ललित कला और एशियाई संस्कृति" पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 2017 में आमंत्रित वक्ता और आईसीएसएसआर, नई दिल्ली के सहयोग से 19-20 नवंबर 2017 को "रघुराजपुर और ओडिशा के कारीगर: पारंपरिक ओडिशा के पटचित्र कलाकार बिजया महापात्रा का एक केस स्टडी" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।

11. देव समाज द्वारा आयोजित 'पेंटिंग में समकालीन दृष्टिकोण' पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में संसाधन व्यक्ति और "कथा कला" पर एक पेपर प्रस्तुत किया। (पीजी) कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर सिटी, पंजाब में 09 मार्च 2015 को आयोजित किया गया।

12. 06-06- 2020 को आयोजित पी.ओ. चिदंबरम कॉलेज, तमिलनाडु के जूलॉजी के पीजी और रिसर्च विभाग द्वारा आयोजित "ड्रीम बिग" पर एक दिवसीय ऑनलाइन राष्ट्रीय वेबिनार में भाग लिया।

13. "कोविड-19 एक वैश्विक संकट के रूप में: भारतीय परिप्रेक्ष्य से इसके प्रभावों का विश्लेषण" पर अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार, पोस्ट ग्रेजुएट इतिहास विभाग, देव समाज कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर सिटी, पंजाब द्वारा 13-14 जून, 2020 को आयोजित किया गया।

14. "कोविड-19 एक वैश्विक संकट के रूप में: भारतीय परिप्रेक्ष्य से इसके प्रभावों का विश्लेषण" पर 02 दिवसीय ऑनलाइन अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार में भाग लिया, जो पोस्ट ग्रेजुएट इतिहास विभाग, देव समाज कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर सिटी, पंजाब द्वारा 13-14 जून, 2020 को आयोजित किया गया 27 मई, 2020 को महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, डॉ. विभूति नारायण सिंह परिसर, गंगापुर के ललित कला विभाग द्वारा आयोजित “दृश्य कला: कौशल, संचार और प्रबंधन” विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

16. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र और राष्ट्रीय काशी विद्यापीठ के दर्शनशास्त्र विभाग द्वारा आयोजित 'अंतरधार्मिक संवाद' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी में "भारतीय समकालीन चित्रकला में भावना, संवेदनशीलता और आस्था का चित्रण" शीर्षक से शोध-पत्र प्रस्तुत किया।
17. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली के तत्वावधान में 14-15 मार्च 2016 को एम. के. पी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून द्वारा आयोजित 'कला में रामायण की अभिव्यक्ति: हिमालयी परिप्रेक्ष्य' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी में "रामायण: रचनात्मकता का एक शाश्वत स्रोत" शीर्षक से एक पेपर प्रस्तुत किया। महात्मा ज्योतिबा फुले चेयर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के तत्वावधान में इतिहास विभाग द्वारा 27-28 नवंबर 2015 को आयोजित 'भारत में सामाजिक सुधार: फुले-अंबेडकर परंपरा' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी में "गीता की शिक्षाएं और भारतीय सौंदर्यशास्त्र की परंपरा" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।
19. ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा द्वारा 19 नवंबर, 2015 को आयोजित 'भारतीय कला में गीता की प्रासंगिकता' विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में "गीता की शिक्षाएं और भारतीय सौंदर्यशास्त्र की परंपरा" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।
20. कला एवं संस्कृति मंत्रालय द्वारा प्रायोजित कृति कला संस्थान, आगरा, उत्तर प्रदेश द्वारा 15 और 16 नवंबर 2015 को आयोजित "ललित कला शिक्षा में परिवर्तन: अतीत, वर्तमान और भविष्य" विषय पर 9वें अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में "स्वतंत्रता के बाद भारत में कला शिक्षा में अग्रणी" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया। संस्कृति, दिल्ली।
21. 4 से 6 अक्टूबर 2015 तक कुमाऊं विश्वविद्यालय (नैनीताल), उत्तराखंड के ड्राइंग और पेंटिंग विभाग द्वारा आयोजित भारतीय दृश्य/कला कांग्रेस और 'आदिवासी कला' पर राष्ट्रीय सम्मेलन में "आधुनिकता पर आदिवासी कला का प्रभाव" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।
22. 3 अप्रैल, 2015 को इंडो ग्लोबल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अभिपुर (मोहाली), पंजाब द्वारा आयोजित 'स्थायित्व और सशक्तिकरण के लिए शिक्षा में मूल्य और नैतिकता' पर राष्ट्रीय सम्मेलन में "एक कला अनुशासन की सौंदर्यवादी स्थापना के प्रतिमान" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।
23. इतिहास विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा द्वारा आयोजित '1947: पुनर्विचार' (13-14 मार्च, 2015) पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में "1947: भारतीय कला में आधुनिकता की दहलीज" शीर्षक से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।
24. एम.के.पी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखंड के ड्राइंग एवं पेंटिंग विभाग द्वारा 12-13 फरवरी 2015 को 'ललित कला: आधुनिकता एवं परंपरा' विषय पर आयोजित 02 दिवसीय अखिल भारतीय सेमिनार में "पारंपरिक तत्व एवं समकालीन भारतीय चित्रकला: एक नया परिप्रेक्ष्य" शीर्षक से शोध पत्र

प्रस्तुत किया। 25. 27-28 अप्रैल, 2014 को बरेली कॉलेज, बरेली, उत्तर प्रदेश के ड्राइंग और पेंटिंग विभाग द्वारा आयोजित 'समकालीन कला पर व्यावसायीकरण का प्रभाव' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में "कला और बाजार" शीर्षक से शोध पत्र प्रस्तुत किया।

26. 29-30 मार्च, 2014 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा के जनसंचार एवं मीडिया प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा आयोजित 'मीडिया साक्षरता: मुद्दे और चुनौतियां' विषय पर दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में "फिल्मों के माध्यम से विज्ञापन भारतीय फिल्म उद्योग में एक समकालीन प्रवृत्ति" शीर्षक से शोध पत्र प्रस्तुत किया।

27. 08-09 फरवरी, 2014 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा के ललित कला विभाग द्वारा आयोजित 'आधुनिक और समकालीन भारतीय कला का विकास' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में "80 के दशक में गुलाम मोहम्मद शेख की कला और उसका प्रभाव" शीर्षक से शोध पत्र प्रस्तुत किया।

28. "कोविड 19 महामारी" में भाग लिया। 26 जून, 2020 को देव समाज महिला कॉलेज, फिरोजपुर सिटी, पंजाब के जूलॉजी के पोस्ट ग्रेजुएट विभाग द्वारा आयोजित डीबीटी स्टार कॉलेज योजना के तहत "महामारी ऑनलाइन क्रिज" में 68% अंकों के साथ भाग लिया।

29. 21 जून, 2020 को वाग्वर विद्या भारती समिति, सागवाड़ा के सहयोग से कलामंच अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी द्वारा आयोजित "कलामंच ऑनलाइन कला क्रिज" में 80% अंकों के साथ भाग लिया।

➤ कार्यशालाओं में भाग लिया:-

- 16-20 जनवरी 2024 को जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित चित्रकला के 05 दिवसीय राष्ट्रीय शिविर में भाग लिया।

- 28-31 अक्टूबर 2023 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा द्वारा आयोजित चित्रकला की 04 दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला में भाग लिया।

- 10-12 मार्च 2023 तक इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सहयोग से जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित "डुग्गर दर्पण- एक बहु कला महोत्सव" में जम्मू कला महाविद्यालय के युवा छात्रों के लिए एक प्रख्यात कलाकार और संरक्षक के रूप में भाग लिया।

- 16 दिसंबर 2022 को होटल फेस्टिन पैलेस, बटाला, अमृतसर में पंजाब सरकार के सहयोग से फिक्की प्लो अमृतसर द्वारा एक विशेष कार्यक्रम नवरंग कला प्रदर्शनी (एक दिवसीय) में भाग लिया।

- सीएलकेए, राज्य संग्रहालय मथुरा द्वारा आयोजित एक विशेष कार्यक्रम "सूरदास के कृष्ण" राष्ट्रीय चित्रकला कार्यशाला में भाग लिया। 16-18 अगस्त 2022 को सांस्कृतिक विभाग उत्तर प्रदेश के सहयोग से।
- कला कुंभ- चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब के सहयोग से एनजीएमए, नई दिल्ली द्वारा एक राष्ट्रीय कार्यशाला- 25 दिसंबर 2021 से 02 जनवरी 2022 तक।
- ब्रह्म सरोवर, कुरुक्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय गीता महोत्सव- 2021 कार्यशाला- 2021।
- 25-26 दिसंबर 2020 से हरियाणा विद्युत विभाग द्वारा ब्रह्म सरोवर, कुरुक्षेत्र में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय गीता जयंती महोत्सव- 2020 के दौरान 02 दिवसीय राष्ट्रीय चित्रकला कार्यशाला में भाग लिया।
- 16 अक्टूबर, 2020 को प्रकृति संरक्षण थीम पर हरियाणा वन विभाग द्वारा एस.डी. कॉलेज, पानीपत में आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय चित्रकला कार्यशाला में भाग लिया और इसका उद्घाटन हरियाणा के मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्पर ने किया।
- 14-23 जनवरी 2020 तक विश्वविद्यालय परिसर में दृश्य कला विभाग, कटक द्वारा आयोजित 10 दिवसीय तीसरे अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला संगोष्ठी- 2020: द कलर्स बियॉन्ड में भाग लिया।
- 23-24 मार्च 2019 तक कलाबिम्बा-गंजम एकेडमी ऑफ फाइन आर्ट्स (GAFA) द्वारा कटक में आयोजित एक प्रदर्शन कला कार्यशाला में भाग लिया।
- 12-22 जनवरी 2019 तक दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग, कटक द्वारा आयोजित 10 दिवसीय दूसरे अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला संगोष्ठी- "कल्चरल एन्सेम्बल ऑफ़ ह्यूज़" - 2019 में भाग लिया। फ्रांस, श्रीलंका, वियतनाम, नेपाल, बांग्लादेश और भारत जैसे देशों ने भाग लिया।
- गंजम, ओडिशा के भूधाखोला में 21-24 फरवरी 2018 तक गंजम ललित कला अकादमी (GAFA) द्वारा आयोजित "कलाबिम्बा-2, 04 दिवसीय राष्ट्रीय कला शिविर" में भाग लिया।
- 25 जनवरी से 03 फरवरी 2018 तक कटक के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित 10 दिवसीय "प्रथम अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला संगोष्ठी-कला प्रवास- 2018" में भाग लिया। फ्रांस, श्रीलंका, उत्तरी आयरलैंड, ट्यूनीशिया, वियतनाम, मोरक्को, मकाऊ, नेपाल, ऑस्ट्रेलिया और भारत जैसे देशों ने भाग लिया।
- 4 जून 2017 को रोटरी हाउस, चंडीगढ़ द्वारा विश्व पर्यावरण दिवस मनाने और रोटरी फाउंडेशन के 100 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में 100 कलाकारों की एक दिवसीय पेंटिंग कार्यशाला "विद ऑल माई हार्ट" में भाग लिया। हिल आर्ट कलेक्टिव, मोरनी हिल्स, पंचकूला, हरियाणा, भारत 3-20 फरवरी 2016 तक।
- 2015 में करनाल में "गीता की शिक्षा" पर 3 दिवसीय चित्रकला कार्यशाला में भाग लिया।

- 27 दिसंबर 2014 को सक्षम स्पर्श आर्ट फाउंडेशन के सहयोग से FADSQUARE द्वारा आयोजित राष्ट्रीय कला कार्यशाला में भाग लिया।
- 11-12 अगस्त 2012 से KT: कला, अमृतसर में 02 दिवसीय अखिल भारतीय (उत्तर क्षेत्र) “कलाकार सम्मेलन” में भाग लिया।
- 14-15 जुलाई 2012 से अमृता शेरगिल सदन, विरसा विहार, अमृतसर में आयोजित 02 दिवसीय प्रथम अखिल भारतीय कला कार्यशाला में भाग लिया।
- प्रख्यात कलाकार श्री के तहत 04 दिवसीय चित्रकला कार्यशाला के निमंत्रण में भाग लिया। परमजीत सिंह चंडीगढ़ में 29 मार्च से 1 अप्रैल, 2009 तक आयोजित चंडीगढ़ कला और विरासत महोत्सव के हिस्से के रूप में।
- 2005 में मुकुंद लाल नेशनल कॉलेज, यमुना नगर, हरियाणा द्वारा लैंडस्केप मेकिंग पर 03 दिवसीय कार्यशाला आयोजित की।
- 2002 में हिमाचल हेरिटेज सोसाइटी द्वारा सुंदरनगर में आयोजित 03 दिवसीय चित्रकला कार्यशाला में भाग लिया।
- 14-17 मार्च, 2001 के बीच अखिल भारतीय ललित कला और शिल्प सोसाइटी (AIFACS), नई दिल्ली द्वारा अपनी दीर्घाओं में आयोजित “मिलेनियम ऑल इंडिया यंग आर्टिस्ट्स कैम्प- नेशनल पेंटिंग वर्कशॉप ” में 03 दिनों में भाग लिया।
- 08-12 जनवरी, 2001 से अंतर-क्षेत्रीय युवा महोत्सव में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा द्वारा हांसी में कोलाज मेकिंग पर 05 दिनों की कार्यशाला आयोजित की। सरकार में भूपेन खक्कर। कॉलेज ऑफ आर्ट, चंडीगढ़- 1997।

➤ अन्य महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भागीदारी

- 15-18 जनवरी 2024 तक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा के सहयोग से पनाश एनजीओ द्वारा आयोजित कला-आत्मा-मन प्रदर्शनी में आमंत्रित कलाकारों के रूप में भाग लिया
- क्रिएटर की प्रदर्शनी 2023 में भाग लिया।
- चंडीगढ़ और शिमला में सीएलकेए वार्षिक कला प्रदर्शनी 2023 में भाग लिया।
- चंडीगढ़ में सीएलकेए वार्षिक कला प्रदर्शनी, 2022 में भाग लिया।
- एपीजे कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स, जालंधर, पंजाब द्वारा 30 अप्रैल 2022 से आयोजित 5वें राजेश्वरी कला महोत्सव 2022 में भाग लिया।

- चंडीगढ़ ललित कला अकादमी (सीएलकेए) द्वारा 26 अप्रैल से 04 मई, 2022 तक पंजाब कला परिषद, चंडीगढ़ की दीर्घाओं में आयोजित वार्षिक कला प्रदर्शनी में भाग लिया।
- 01-31 जनवरी, 2021 में बिंदास आर्टिस्ट ग्रुप द्वारा आयोजित 100 अंतर्राष्ट्रीय प्रख्यात कलाकारों की ऑनलाइन प्रदर्शनी में भाग लिया।
- 10-30 नवंबर, 2020 के बीच बिल्समार्ट और कैप फाउंडेशन द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला प्रतियोगिता और ऑनलाइन प्रदर्शनी "कला और संघर्ष" में भाग लिया।
- बंगिया कला केंद्र द्वारा आयोजित ऑनलाइन कला प्रदर्शनी- 2020 में भाग लिया।
- 31 अक्टूबर से 07 नवंबर, 2020 के बीच वॉयस ऑफ स्पेशली एबल्ड पीपल द्वारा आयोजित VOSAP आर्ट फ्रॉम हार्ट कॉन्टेस्ट 2020 में भाग लिया।
- 06 अक्टूबर से 06 नवंबर, 2020 के बीच आयोजित ऑनलाइन कला प्रदर्शनी ओपन हैंड आर्ट प्रदर्शनी: डेडिकेटिंग आर्ट टू द मास्टर्स में भाग लिया।
- गुरुवार, 17 सितंबर, 2020 को हमारे माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के 70वें जन्मदिन के अवसर पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कलाकारों के पहले "जन नायक नमो- वर्चुअल प्रतिनिधित्व" में भाग लिया, जिसका आयोजन 'आर्ट फॉर नेशन' द्वारा किया गया था, जिसकी संकल्पना और समन्वय प्रख्यात कलाकारों प्रो. हर्षवर्धन शर्मा, डीन, ललित कला संकाय, केंद्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश और श्री अद्वैत गडनायक, निदेशक, मॉडर्न आर्ट गैलरी, नई दिल्ली द्वारा किया गया था।

उपस्थित लोगों के लिए इवेंट का पता:

<https://bjpdelhi.webex.com/bjpdelhi/onstage/g.php?MTID=e64dfec465f66ec5552a41260b3867565>

इवेंट नंबर: 156 197 9264, इवेंट पासवर्ड: 23456

- 5 सितंबर, 2020 से 30 सितंबर, 2020 तक निम्नलिखित प्लेटफॉर्म पर दूसरी अंतर्राष्ट्रीय ऑनलाइन कला प्रदर्शनी- निरंतर 2020 में भाग लिया:

<https://instagram.com/nirantar1996>

<https://nirantarart.blogspot.com>

www.nirantarart.com

<https://www.facebook.com/nirantar.art>

<https://youtu.be/3SHvrlt6IQM>

प्रदर्शनी के ई-कैटलॉग का लिंक

<https://drive.google.com/folderview?id=1XmnFzZztvf1bbKCibS1NshsRxO TOgvND>

- एपीजे कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स, जालंधर, पंजाब द्वारा दिनांक 30 जुलाई 2020 से 20 अगस्त 2020 तक आयोजित चौथे राजेश्वरी कला महोत्सव 20 में भाग लिया।

- 15-25 जुलाई 2020 तक कला मित्रा फाउंडेशन, हैदराबाद के सहयोग से धौली कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स, भुवनेश्वर द्वारा आयोजित "आर्टिस्ट्स फॉर आर्टिस्ट्स इंटरनेशनल ऑनलाइन आर्ट एग्जीबिशन- 2020" में भाग लिया। लिंक इस प्रकार है:

<https://facebook.com/events/s/international-online-art-exhib/271175997485018/>

- चितकारा स्कूल के ललित कला विभाग द्वारा आयोजित 'कोविड-19' थीम पर "अंतर्राष्ट्रीय रचनात्मक कला प्रतियोगिता 2020" में भाग लिया। जून 2020 में कला और डिजाइन विभाग, चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब, भारत।

- 25 जून, 2020 से 25 जुलाई, 2020 तक भारत के समकालीन कलाकारों के एक समूह निरंतर द्वारा आयोजित "निरंतर: ऑनलाइन अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी" में भाग लिया। ई-कैटलॉग लिंक:

<https://drive.google.com/file/d/1261HLGHduyooiOHMKwhXAeWKqoscMphI/view?usp=sharing>

यह निम्नलिखित प्लेटफार्मों पर ऑनलाइन प्रदर्शनी आयोजित की गई थी:

<https://instagram.com/nirantar1996>,

<https://nirantarart.blogspot.com>,

www.nirantarart.com <https://www.facebook.com/nirantar.art>,

<https://m.youtube.com/watch?v=zp-Sh0b0mzM&feature=share>

- द्वारा आयोजित "कोविड-19" -2020 पर ऑनलाइन राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में भाग लिया जून 2020 में ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा।

- 09 मई, 2020 से 09 जून, 2020 तक बिंदास आर्टिस्ट ग्रुप के सहयोग से NTHILLO स्टूडियो आर्ट गैलरी और स्कूल, निक्सन मालामुलो, मलावी, अफ्रीका द्वारा आयोजित सिल्वर श्रेणी के तहत "कोविड-19 के प्रसार को रोकें-2020" पर ऑनलाइन अंतर्राष्ट्रीय कला प्रतियोगिता में भाग लिया।

- मई-जुलाई 2020 में प्रबल प्रमाणिक एकेडमी ऑफ आर्ट्स, भामलादा, पंजाब द्वारा आयोजित और कलाकार प्रभिंदर लाल द्वारा क्यूरेट की गई ऑनलाइन अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी-2020 में भाग लिया।

लिंक

नीचे

दिया

गया

है:

<http://academyartprabal.com/RAVINDER%20SINGH%20GUSAIN.html>

- 22-25 जनवरी 2020 तक विश्वविद्यालय परिसर में दृश्य कला विभाग, कटक द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी-2020 में भाग लिया। • 19-21 जुलाई 2019 को ओडिशा डायरी फाउंडेशन और ओडिशा मीडिया इन्फो सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा आयोजित कन्वेंशन सेंटर, केआईआईटी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर में कलिंग कला महोत्सव (कलिंग साहित्य महोत्सव का हिस्सा) - 2019 में भाग लिया। • 19-25 जनवरी 2019 को कटक के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा

आयोजित अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी - 2019 में भाग लिया। इसमें फ्रांस, श्रीलंका, वियतनाम, नेपाल, बांग्लादेश और भारत जैसे देशों ने भाग लिया। • अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी - 2019 में भाग लिया

• 19-21 जुलाई 2019 को ओडिशा डायरी फाउंडेशन और ओडिशा मीडिया इंफो सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा आयोजित कन्वेंशन सेंटर, केआईआईटी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर में कलिंग कला महोत्सव (कलिंग साहित्य महोत्सव का हिस्सा) -2019 में भाग लिया।

• 19-25 जनवरी 2019 को कटक के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी - 2019 में भाग लिया। फ्रांस, श्रीलंका, वियतनाम, नेपाल, बांग्लादेश और भारत जैसे देशों ने भाग लिया।

• 2-5 फरवरी 2018 को कटक के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी - 2018 में भाग लिया। फ्रांस, श्रीलंका, उत्तरी आयरलैंड, ट्यूनीशिया, वियतनाम, मोरक्को, मकाऊ, नेपाल, ऑस्ट्रेलिया और भारत जैसे देशों ने भाग लिया।

• धौली कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स, भुवनेश्वर द्वारा अपने परिसर में 10-12 मार्च 2018 तक आयोजित “अंतर्राष्ट्रीय धौली कला महोत्सव- 2018” में भाग लिया।

• विश्व कलाकार दिवस (शिल्पी दिवस) के अवसर पर 8-11 दिसंबर 2017 तक उड़ीसा मॉडर्न आर्ट गैलरी की वार्षिक कला प्रदर्शनी में चित्रकला के लिए राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी पुरस्कार में भाग लिया।

• धौली कॉलेज ऑफ आर्ट एंड क्राफ्ट्स, भुवनेश्वर द्वारा अपने परिसर में 11-18 मार्च 2017 तक आयोजित “निर्वाण: एक राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी” और “प्रसिद्ध कलाकार” पर पद्म श्री रघुनाथ महापात्रा के व्याख्यान में भाग लिया।

• प्रफुल्ल धनुकर फाउंडेशन, चंडीगढ़ द्वारा 13-14 मार्च 2016 को आयोजित अखिल भारतीय (उत्तर क्षेत्र) कला प्रदर्शनियों में भाग लिया।

• अंतर्राष्ट्रीय कला महोत्सव में भाग लिया। 11 से 13 मार्च 2016 तक संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से इंटरनेशनल आर्ट ऑफ लिविंग फाउंडेशन, बैंगलोर द्वारा आयोजित विश्व सांस्कृतिक महोत्सव में प्रदर्शनी- 2016।

• अखिल भारतीय ललित कला एवं शिल्प सोसायटी, अमृतसर द्वारा अखिल भारतीय कला प्रतियोगिता, 2014 में भाग लिया।

➤ समूह शो:-

• ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा द्वारा 03-12 फरवरी 2021 के बीच अपनी गैलरी में आयोजित “सिल्वर जुबली मास्टर कलेक्शन” शो में भाग लिया।

- पूर्वोत्तर के समकालीन कलाकार समूह द्वारा 25-31 दिसंबर 2017 से राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, भुवनेश्वर के परिसर में समकालीन कला की 7वीं राष्ट्रीय प्रदर्शनी डूडल में भाग लिया।
- राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, भुवनेश्वर के क्षेत्रीय केंद्र में सुवादरा आर्ट गैलरी द्वारा आयोजित भुवनेश्वर अंतर्राष्ट्रीय कला मेला- 2018 (एक प्री-लॉन्चिंग इवेंट और इंटरल्यूड), 26-30 नवंबर 2017 में एक “आमंत्रित कलाकार” के रूप में भाग लिया।
- राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, भुवनेश्वर के क्षेत्रीय केंद्र में 2-5 जुलाई 2016 तक कलाकार “ओडिशा एसोसिएशन” द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी-2017 में “आमंत्रित कलाकार” के रूप में भाग लिया। • 21-26 अगस्त 2017 को श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा के दृश्य एवं प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित “इंप्रेशन- 2K17- अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी” में भाग लिया।
- 2015 में श्रीनगर में जम्मू और कश्मीर कला परिषद द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय समकालीन कला प्रदर्शनी में भाग लिया।
- 19_ 30 नवंबर 2015 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा के ललित कला विभाग द्वारा अपनी गैलरी में आयोजित “मास्टर कलेक्शन” शो में भाग लिया।
- सरकारी कॉलेज में एक समूह शो “ए ट्रिब्यूट टू एस. शिव सिंह” : ब्लैक रॉब्स में एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसित कलाकार संग्रहालय एवं कला दीर्घा, चंडीगढ़, 2015।
- संग्रहालय एवं कला दीर्घा, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में आयोजित “17 मास्टर्स” नामक कला प्रदर्शनी में भाग लिया, 2014।
- धरोहर संग्रहालय एवं कला दीर्घा, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में “16 मास्टर्स” नामक कला प्रदर्शनी आयोजित की गई (2014)।
- पीएलकेए गैलरी, चंडीगढ़, 2014 में एक समूह शो “शीर्षकहीन: समकालीन भारतीय कलाकारों की एक कला प्रदर्शनी” में भाग लिया।
- 2014 में देव समाज कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर, पंजाब में पंजाब के युवा कलाकारों द्वारा एक शो “प्रयास एक कोशिश” में विशेष आमंत्रित के रूप में भाग लिया।
- 2013 में विरसा विहार, जालंधर, पंजाब में “कैकोसा: चंडीगढ़ आर्ट कॉलेज ओल्ड स्टूडेंट्स एसोसिएशन” के दूसरे ग्रुप शो में भाग लिया।
- सीएलकेए वार्षिक कला प्रदर्शनी, 2013 में भाग लिया।
- पीएलकेए वार्षिक कला प्रदर्शनी, 2013 में भाग लिया।
- “क्रिएटर्स” द्वारा आयोजित समकालीन भारतीय कलाकारों का एक समूह शो सरकारी संग्रहालय आर्ट गैलरी चंडीगढ़ में आयोजित, संग्रहालय, चंडीगढ़, 2012.

- जालंधर के विरसा विहार में "कैकोसा" नामक कला प्रदर्शनी आयोजित की गई, 2012.
- अखिल भारतीय ललित कला और शिल्प सोसायटी अमृतसर द्वारा अखिल भारतीय कला प्रतियोगिता में भाग लिया, 2010.
- अक्टूबर 2005 में चंडीगढ़ में वार्षिक बीओपी कला प्रदर्शनी.
- वार्षिक कला प्रदर्शनी, जनवरी 2005, सीएलकेए, चंडीगढ़.
- कला प्रदर्शनी जनवरी 2004, एआईएफएसीएस, चंडीगढ़.
- कला प्रदर्शनी मार्च 2002, एआईएफएसीएस, पंचकूला.
- अखिल भारतीय ड्राइंग प्रदर्शनी अक्टूबर 2001 पीएलकेए, चंडीगढ़.
- चंडीगढ़ के 13 समकालीन कलाकारों के चित्रों और पेंटिंग्स का एक समूह शो, इंडसइंड बैंक आर्ट गैलरी, चंडीगढ़, 2001।
- मिलेनियम आर्ट प्रदर्शनी अक्टूबर 2000, AIFACS, पंचकूला।
- पेंटिंग प्रदर्शनी, जिसका शीर्षक है मिलेनियम में यथार्थवाद - नवंबर 2000, ईज़ल आर्ट गैलरी, चेन्नई।
- अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी, मई 2000, ललित कला अकादमी, अमृतसर।
- वार्षिक कला प्रदर्शनी, दिसंबर 1999 पीएलकेए, चंडीगढ़।
- बैंक ऑफ पंजाब, आर्ट गैलरी में बैंक द्वारा प्रायोजित 10 कलाकारों की प्रदर्शनी, 1999।
- 100 कलाकारों का शो (सॉलिड्स) फरवरी 1998 में, पीएलकेए, चंडीगढ़ में।
- वार्षिक कला प्रदर्शनी - 1998 धूमिमल आर्ट गैलरी, नई दिल्ली।
- एस. सोभा सिंह की यादों में पेंटिंग प्रदर्शनी, दिसंबर 1998, पीएलकेए.
- आर्ट कॉलेज की वार्षिक कला प्रदर्शनी - 1996-97-98-99-2006- 2007.

➤ प्रशासनिक और रचनात्मक अनुभव:-

- 2022 से अब तक चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब में कार्यक्रम समन्वयक और अनुसंधान समन्वयक के रूप में कार्य किया।
- 2021-22 में चंडीगढ़ विश्वविद्यालय, मोहाली, पंजाब में विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।
- 2016-20 में श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा में विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।
- दिसंबर 2019-23 में चंडीगढ़ के सरकारी कॉलेज ऑफ आर्ट में व्यावहारिक परीक्षा आयोजित की।
- 2016-20 में श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा में व्यावहारिक और सैद्धांतिक परीक्षा आयोजित की।
- अप्रैल 2015 में आईआईएमटी विश्वविद्यालय, मेरठ में प्रायोगिक परीक्षा आयोजित की।

- दिसंबर 2014 में सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ में प्रायोगिक परीक्षा आयोजित की।
- 24-30 जनवरी 2020 को श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा के दृश्य एवं प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित “दृश्य कला विभाग की वार्षिक कला प्रदर्शनी-2020” के आयोजन सचिव, जिसका उद्घाटन भारतीय पार्श्व गायिका पद्म विभूषण आशा भोंसले और पूज्य गुरुदेव एच. एच. रविशंकर जी ने किया।
- 14-23 जनवरी 2020 तक श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक के दृश्य कला विभाग द्वारा आयोजित “द कलर्स बियॉन्ड- तीसरी अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला संगोष्ठी” के आयोजन सचिव।
- गांधी 150 श्री श्री विश्वविद्यालय का आयोजन
- 12-22 जनवरी 2019 तक श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित “कल्चरल एन्सेम्बल ऑफ़ ह्यूज़- दूसरी अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला संगोष्ठी” के आयोजन सचिव।
- 25 जनवरी से 03 फरवरी 2018 तक श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित “आर्ट सोर्जन- पहली अंतर्राष्ट्रीय चित्रकला संगोष्ठी 2017-18” के आयोजन सचिव।
- 25 जनवरी से 03 फरवरी 2018 तक श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक के दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग द्वारा आयोजित “इंप्रेशन- 2K18- अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी” के आयोजन सचिव। ओडिशा, 27 सितंबर से 3 अक्टूबर 2018 तक जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेव एच. एच. रविशंकर जी ने किया।
- दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग, श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा द्वारा 21-26 अगस्त, 2017 को आयोजित “इंप्रेशन- 2K17- अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी” के आयोजन सचिव, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेव एच. एच. रविशंकर जी के साथ केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने किया।
- दृश्य और प्रदर्शन कला विभाग, श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा द्वारा 20-26 सितंबर, 2016 को आयोजित “दृश्य कला विभाग की वार्षिक कला प्रदर्शनी- 2016” के आयोजन सचिव, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेव एच. एच. रविशंकर जी ने किया।
- 5-6 फरवरी, 2016 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के ललित कला विभाग द्वारा आयोजित “प्रदर्शन कला पर अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला और संगोष्ठी” के आयोजन सचिव, जिसमें 13 देशों के प्रदर्शन कलाकारों ने भाग लिया।
- 11-13 मार्च 2016 को नई दिल्ली, भारत में आर्ट ऑफ़ लिविंग द्वारा आयोजित विश्व संस्कृति महोत्सव में मंच सज्जा समिति के सदस्य, जिसे भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा समर्थन प्राप्त है।
- 2010 में देव समाज कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर, पंजाब में आयोजित इंटर जोनल यूथ फेस्टिवल, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में समन्वयक।

- 2009-2010 में देव समाज कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर सिटी (पंजाब) में कार्यवाहक विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।
- चंडीगढ़ के विवेक हाई स्कूल में कार्यवाहक विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।
- मोहाली के टून इंटरनेशनल स्कूल में कार्यवाहक विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।
- पाइनग्रोव स्कूल, सोलन, हिमाचल प्रदेश में 201-2003 तक विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।
- पाइनग्रोव स्कूल, जिला सोलन, (हि.प्र.) में 2001, 2002, 2003, 2007 में आयोजित वार्षिक कला प्रदर्शनी के आयोजन समिति के प्रमुख।
- पाइनग्रोव स्कूल (हि.प्र.) में विभिन्न अंतर विद्यालय एथलेटिक्स और क्रिकेट मैचों में अंपायरिंग की।
- विभिन्न संस्थानों के लिए कई “दीवार आकार भित्ति चित्र” बनाए।

➤ दुनिया भर में कलाकृतियों का संग्रह:-

- चितकारा विश्वविद्यालय, पंजाब
- चंडीगढ़ विश्वविद्यालय, मोहाली, पंजाब
- हरियाणा विद्युत विभाग
- आर्ट ऑफ लिविंग इंटरनेशनल आश्रम, बेंगलोर, भारत
- श्री श्री विश्वविद्यालय, कटक, ओडिशा
- सुवादरा आर्ट गैलरी, भुवनेश्वर, ओडिशा
- ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
- विरसा विहार और केटी कला, अमृतसर
- रिचर्ड एम. क्राउज़, वाशिंगटन डी.सी., यू.एस.ए.
- सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब, चंडीगढ़
- पाइन ग्रोव स्कूल, धरमपुर और सुबाथू परिसर, जिला। सोलन (हि.प्र.)

➤ आर्ट ऑफ़ लिविंग (एओएल) कोर्स सफलतापूर्वक पूरा किया:

- सहज समाधि: 2019 में नरेंद्र लांबाजी (वरिष्ठ एओएल शिक्षक) द्वारा संचालित।
- एडवांस एओएल कोर्स में भाग लिया: 2018 में श्री श्री विश्वविद्यालय की माननीय अध्यक्ष रजिता कुलकर्णी बग्गा द्वारा संचालित।
- 24-28 मई 2016 से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित एओएल शिक्षिका सुश्री ऋचा चोपड़ा द्वारा संचालित 05 दिवसीय प्री-टीचर ट्रेनिंग प्रोग्राम में भाग लिया।

- 2012 में आर्ट ऑफ़ लिविंग का बेसिक कोर्स/हैप्पीनेस प्रोग्राम और एडवांस मेडिटेशन कोर्स पूरा किया।

पंचम् अध्याय

➤ रवीन्द्र सिंह जी के साथ साक्षात्कार



रवीन्द्र सिंह जी के साथ साक्षात्कार

रवीन्द्र सिंह जी के साथ साक्षात्कार

प्र01. आपका जन्म कहां पर हुआ ?

उत्तर :- मेरा जन्म चंडीगढ़ में हुआ। मेरा पालन पोषण, मेरा बचपन और मेरी पढ़ाई चंडीगढ़ में ही हुई।

प्र02. आपने शिक्षा कहां से प्राप्त की ?

उत्तर :- मैंने प्री नर्सरी से मास्टर्स तक की पढ़ाई चंडीगढ़ से ही प्राप्त की है। उसके बाद मैं स्कूल की पढ़ाई C.B.S.E. बोर्ड से की तथा P.H.D की पढ़ाई कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से की।

फिर कॉलेज की पढ़ाई गवर्नमेंट कॉलेज आफ आर्ट चंडीगढ़ से प्राप्त की। यह कॉलेज 150 साल पुराना है। इसकी उत्पत्ति भारत और पाकिस्तान के विभाजन से जुड़ी हुई है।

प्र03. आप अपने पिताजी के बारे में बताएं ?

उत्तर :- मेरे पिताजी पंजाब गवर्नमेंट मार्कफेड में नौकरी करते थे और मेरे पिताजी की नौकरी चंडीगढ़ में ही थी। मेरे पिताजी बठिंडा से चंडीगढ़ आ गए और मेरी जन्म भूमि चंडीगढ़ ही है। मेरे पिताजी पहले बठिंडा में रहते थे और वहीं पर नौकरी किया करते थे और पृष्ठभूमि बठिंडा ही है, लेकिन नौकरी के कारण चंडीगढ़ में आ गए।

प्र04. आपके परिवार में कौन-कौन हैं ?

उत्तर :- हम पांच भाई – बहन हैं। हम दो भाई और मेरी तीन बहनें हैं, और हम सभी चंडीगढ़ में ही रहते हैं और यहीं पर ही सब नौकरी करते हैं। उन सभी का अपना-अपना परिवार है और मैं और मेरा भाई इकट्ठे रहते हैं। पिताजी की मृत्यु हो चुकी है और माता जी हमारे साथ रहती हैं। मेरे परिवार में मेरी पत्नी, मेरी दो बेटियां और एक बेटा है।

प्र05. आप अपने परिवार से यहां पर फिर किसी कलाकार से प्रभावित हुए ?

उत्तर :- मेरे पूरे परिवार में, पूरे गांव में या आसपास के जगह में कोई भी कला में नहीं था। मैं ही एक अलग रेखा में आया। यह कला मुझे भगवान की तरफ से मिली। हम यह भी कह सकते हैं कि कला कोई न कोई कारण से होती है। यह किसी महौल से होती है। हम यह नहीं कह सकते कि कला

अंदरूनी नहीं होती, एक माहौल बन जाता है जिससे आपको प्रेरणा मिलती है। लेकिन मुझे प्रेरणा मेरे परिवार की तरफ से नहीं मिली।

प्र06. आप किस भारतीय कलाकार की कला से प्रभावित हुए थे ?

उत्तर :- मुझे कलाकारों के बारे में बहुत ज्यादा जानकारी नहीं थी। पंजाब के प्रसिद्ध कलाकार शोभा सिंह के बारे में ही कुछ जानकारी थी, तो उनकी कलाकृतियों में देखा करता था। तो उनकी कलाकृतियों को मैं देखकर बहुत प्रभावित हुआ था। मैं शोभा सिंह की कला को देखकर, मुझे भी यह महसूस होता था कि मैं भी ऐसे ही कलाएँ को बनाऊ।

प्र07. अपने सबसे पहले किस विषय पर पेंटिंग बनाई थी ?

उत्तर :- सबसे पहले चित्रकार की बात की जाए तो प्राथमिक स्कूल में हमें फूल, पत्तियाँ, पक्षी, फल आदि कलाकृतियाँ बनाई जाती थी। इसके रंग तथा आकर मुझे अपनी तरफ आकर्षित करते थे। फिर हमें भूदृश्य बनाने को दिए जाते थे। वो प्राकृतिक दृश्य मुझे बहुत पसंद थे। तो यह विषय मेरी सबसे पहले पेंटिंग का हिस्सा बनी।

प्र08. अपने ज्यादातर किस विषय के ऊपर कार्य किया है ?

उत्तर :- मेरा विषय आस-पास के माहौल से ही प्रभावित है। जिस माहौल में रहता हूँ, जिस माहौल में घूमता हूँ, जिस माहौल को महसूस करता हूँ। अगर मैं कॉलेज की बात करूँ तो उसमें हमें स्केचिंग स्तर करनी सिखाई जाती थी तो हम अपने महाविद्यालय परिसर, बाजार, रेलवे स्टेशन की स्केचिंग करते थे। आसपास के गांव में जाकर खेत, गाय, भैंस, गांव के लोगों की स्केचिंग किया करते थे। मजदूरों का झुंड, काम करते हुए व्यक्तियों की स्केचिंग करते थे, तो वही हमारी प्रेरणा बनती थी।

प्र09. अपने किन-किन माध्यमों में कार्य किया और आपको किस माध्यम में कार्य करना पसंद था ?

उत्तर:- शुरुआत में तो मैंने पेंसिल रंग, पस्टेल रंग, जल तथा फिर तेल रंग। सबसे पहले पोस्टर रंग में स्कूल स्तर से। जब मैं प्राथमिक स्कूल में था, तो जल रंग का प्रयोग किया करता था और जब मैं माध्यमिक स्कूल आठवीं कक्षा से दसवीं तक पहुँचा तो पोस्टर रंगों का ज्ञान हुआ। हमारे कला अध्यापक पोस्टर रंगों को लेकर डेमो किया करते थे। तो मैं फिर पोस्टर रंगों में पकड़ बनाई और उसमें मेरा बहुत अच्छा हाथ रहा।

पोस्टर रंगों में ही मैंने स्कूल स्तर तक काम किया। और बहुत कम में तेल रंगों मैंने काम किया। बहुत सारा काम मैंने पोस्टर रंगों में किया और कला के लिए जब मैं कला महाविद्यालय मैं गया तो पेंसिल लकीर खींचने की क्रिया, पेस्टल, जल और फिर हमें चारसाल तेल रंगों का प्रशिक्षण मिला।

जब सन् 2000 के बाद एक्रेलिक रंग आने शुरू हुए। 2005 – 2006 की बात है जब मुझे कैमिलन कंपनी ने एक्रेलिक रंगों का प्रदर्शन कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में करने को कहा और उन्होंने मुझे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय भेजा। उन्होंने मुझे कहा कि वहां एक ललित कला विभाग है जहां पर बैचलर ऑफ फाइन आर्ट्स तथा मास्टर्स ऑफ फाइन आर्ट के कार्य प्रणाली (श्रृंखला) है।

लेकिन वह बच्चे एक्रेलिक रंगों का इस्तेमाल नहीं करते हैं। उन्होंने मुझे कहा कि एक्रेलिक रंगों के फायदे बताने के लिए प्रदर्शन करने के लिए भेजा। उस समय वहां के अध्यक्ष राम विरंजन थे। मैंने उन्हें बताया कि मुझे कैमिलन कंपनी ने एक्रेलिक रंगों का प्रदर्शन करने के लिए भेजा है। मुझे वहां पर एक बड़ा कमरा दिया गया, जो कला विभाग के शुरुआत में ही आता है।

वहां पर 250 बच्चे इकट्ठा हुए। मैंने उस समय दो कैनवास पर चित्र बना कर दिए और साथ-साथ मैंने उन्हें बताया कि एक्रिलिक रंग जल्दी सूख जाते हैं और हम किसी भी तरह के बदलाव इसमें इस समय कर सकते हैं, क्योंकि तेल रंगों में हमें कुछ समय तक रुकना होता है। तो इस प्रकार मैंने उन्हें एक्रेलिक रंगों के फायदे बताएं और मैंने अपने कार्य में भी लाने की कोशिश की तथा इस प्रकार एक्रिलिक रंग भी मेरा एक माध्यम बना। मैंने स्याही में भी कार्य किया। काली स्याही और कलम की स्याही में भी कार्य किया।

प्र10. आपके अध्यापकों का आपके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

उत्तर :- सबसे पहले मेरे प्राथमिक स्कूल के कला अध्यापक थे जो हमें कला प्रदर्शन दिया करते थे और जब मैं कॉलेज में गया, वहां पर हमारे प्राचार्य डॉक्टर प्रेम सिंह थे जो बहुत प्रसिद्ध कलाकार थे। तथा भ्रम सिंह और बी.आर.चोपड़ा यह भी प्रसिद्ध कलाकार थे। मैं इन सभी अध्यापकों से बहुत प्रभावित था।

प्र11. आपने पी.एचडी (P.H.D.) के लिए कौन-सा शोध किया था ?

उत्तर :- जब मैं P.H.D. करने के लिए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय गया तो वहां पर छह महीने का पाठ्यक्रम चलता है तथा उस दौरान ही हमें अपने पी.च.डी. का अंतिम विषय सोचना होता है। तथा मैं डिस्सर्टेशन जिस विषय पर लिखी थी वह विषय मेरा पसंदीदा विषय था।

जब मैं कला विश्वविद्यालय में था, मैंने मास्टर्स डिग्री के समय हमारे अध्यापक, हमें हमारे खुद के परियोजना पर ही हमें लिखने को कहते थे। फिर वहां से मुझे ज्ञान हुआ कि मेरा काम भारत के बहुत से कलाकारों से मिलता है और भारत में जो आंदोलन चल रहा है, वह नेगेटिव कला आंदोलन है। तथा इस आंदोलन के 10-15 कलाकारों को मैं बहुत अच्छे नजदीक से जानता हूं और मैं डिस्सर्टेशन भी नैरेटिव कला आंदोलन पर लिखी थी, क्योंकि मेरा कार्य इस आंदोलन से तथा उस आंदोलन के कलाकारों से भी मिलता था। इससे मेरा ज्ञान बहुत बढ़ गया।

यह आंदोलन भारत का सबसे शानदार आंदोलन था। ये सभी ज्ञान मेरे काम आया और इसी के आधार पर मैंने पी.एच.डी. के लिए नैरेटिव कला आंदोलन को चुना। क्योंकि जो कार्य नैरेटिव कला में जो अभी तक किसी को जानकारी नहीं है, वह मेरे ज्ञान को आगे लाया था तथा फिर मैंने **Contemporary Narrative Approches in Indian Paintings or Important Narrative Artists in India** यह मेरी शोध का विषय बना।

प्र12. आपको पहले पुरस्कार कब मिला और किस पेंटिंग के लिए मिला ?

उत्तर :- अगर पहले पुरस्कार की बात की जाए तो माध्यमिक स्कूल से पुरस्कार मिलने की शुरुआत हुई। माध्यमिक स्कूल में मुझे प्रतियोगिता में भेजा जाता था और हर साल मुझे दो या तीन पुरस्कार मिलते थे। शुरुआत में मुझे निराशा का सामना करना पड़ा क्योंकि कुछ प्रतियोगिताओं में मुझे कोई भी पुरस्कार नहीं मिलता मिला था, तो मैंने फिर बहुत मेहनत की और फिर हर प्रतियोगिता में मुझे पुरस्कार मिलने लगा। इस तरह मुझे पुरस्कार मिलने शुरू हुई और जब मैं दसवीं कक्षा में था तो मुझे चंडीगढ़ का 'राज्य पुरस्कार' 'रोज फेस्टिवल' में मिला। सन 1991 में मुझे गवर्नर के हाथों से रोज फेस्टिवल में ट्रॉफी मिली थी।

फिर कॉलेज में मुझे 'वार्षिक कला प्रदर्शनी' में बी.एफ.ए. के प्रथम में मुझे प्रथम पुरस्कार मिला। इस तरह पुरस्कार मिलने की यात्रा शुरू हुई।

सन 1999 में मुझे पंजाब के गवर्नर ने "पंजाब राज्य प्रदर्शनी" में 'ड्राइंग' के लिए 'राज्य पुरस्कार' दिया था। यह भी मेरी बड़ी उपलब्धि है, तथा मुझे अपनी आजीविका में 'ब्रेक्यू पुरस्कार' भी मिला।

प्र13. सबसे पहले नौकरी आपने कहां की और आपका कैसा अनुभव रहा ?

उत्तर :- जब मेरी BFA से की पढ़ाई खत्म हुई, तब चंडीगढ़ के स्कूलों में संविदा शिक्षक रखे जाते थे और इस संविदा शिक्षक की नौकरी से मैंने अपने करियर की शुरुआत की। उस समय मुझे 2000रु मिलते थे, तो इस तरह मेरी पहली नौकरी की शुरुआत सरकारी प्रशासन के सरकारी स्कूल से हुई।

प्र14. कला में आपका क्या योगदान रहा ? आपकी कला यात्रा कैसी रही ?

उत्तर :- मेरी पूरी कला यात्रा में मैंने जो भी हासिल किया, वही मेरा योगदान है।

प्र15. आप समकालीन कला को समाज में कहां पर देखते हैं कि कला किस ऊंचाइयों पर है ?

उत्तर :- अगर समाज में कला की बात की जाए तो इसको कई नजरों से देखा जा सकता है कि किस तरह हमारे उत्तर भारत को लेकर हमारे पंजाब व हरियाणा समुदाय में जो सांस्कृतिक समुदाय है, अगर हम इसमें कला की बात करें तो इसका स्थान ऊंचा नहीं है, क्योंकि कला को बहुत मुख्य स्थान नहीं दिया गया है।

हमारी प्रतिशील समुदाय अपने बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियरिंग के कोर्स करवाते हैं क्योंकि पेरेंट्स (अभिभावक) तथा वरिष्ठ नागरिक यह मानते हैं कि कला में किसी भी प्रकार का भविष्य नहीं है। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि कला नहीं है, क्योंकि गुरु नानक देव जी, मरदाना यह भी संगीत को एक कला मानते थे। तो संगीत भी एक परंपरा है तथा लघु कला भी सदियों से चली आ रही कला है।

लेकिन जब अंग्रेज यहां पर आए तो यह कला समाप्त हो गई और पंजाब समुदाय स्थापित नौकरियों को ज्यादा पसंद करने लगे। लेकिन कला का स्थान आज भी ऊंचा है। कला को लेकर किसी भी संस्कृति को ले तो यह सदियों से पुराना है, तो हम यह कह सकते हैं कि कला का स्थान आज भी ऊंचा है।

प्र16. आज अगर हम कला की बात करें तो चंडीगढ़ में कला कहां पर है ?

उत्तर :- कला की शुरुआत हरियाणा, पंजाब तथा हिमाचल में से सबसे पहले चंडीगढ़ में हुई। सबसे पहला कला विद्यालय चंडीगढ़ में 1961 में खुला। चंडीगढ़ कला का सबसे बड़ा स्थान है। यहां पर बहुत सी प्रदर्शनीयां लगती हैं। एकल प्रदर्शनी, तथा ग्रुप शो आदि भी होते हैं।

प्र17. क्या आपने कोई अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी की है ?

उत्तर :- मैंने अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी में दो या तीन बार ही भाग लिया है।

1. 2001 में ग्रुप शो लंदन में हुआ, मैंने उसमें हिस्सा लिया था।
2. रोमानिया में भी ग्रुप शो में हिस्सा लिया था।
3. तथा कुछ समय पहले जापान में भी एक ग्रुप शो का हिस्सा बना था।

लेकिन मैंने कोई भी एकल शो, मुझे विदेश में करने का मौका ही नहीं मिला।

प्र18. क्या आज भी आप प्रदर्शनी लगाते हैं ?

उत्तर :- मैं लगातार प्रदर्शनियों में हिस्सा लेता रहता हूं, चाहे वह 'ग्रुप शो' हो, 'राष्ट्रीय प्रदर्शनी' तथा 'अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी' हो। मैंने 100 से भी ऊपर प्रदर्शनियों में हिस्सा लिया है।

तथा अभी कुछ समय पहले ललित कला दिल्ली में भी प्रदर्शनी का हिस्सा बना था।

प्र19. आपने भारत में पहली प्रदर्शनी कब की थी ?

उत्तर :- मेरी पहली प्रदर्शनी 'राज्य प्रदर्शनी पंजाब' थी। लेकिन 1997 में 'राष्ट्रीय प्रदर्शनी' चंडीगढ़ में एक विद्यार्थी के रूप में मिला क्योंकि उस समय मैं आर्ट कॉलेज का एक विद्यार्थी था। इस तरह मेरी शुरुआत 1997 से हुई।

प्र20. आप अपनी कला में आलंकारिक कला ही क्यों दिखाते हैं ?

उत्तर :- मेरा मुख्य प्रशिक्षण आकृति ही है। मैंने आकृति को लेकर बहुत प्रशिक्षण किया है। मैंने स्केचिंग की है, क्योंकि मैं एक दिन में A4 सीट पर 250 से 300 स्केच बनाया करता था। मैं कॉलेज की छुट्टी के बाद के समय रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, सार्वजनिक स्थान, बाजार या आसपास के गांव में जाकर स्केचिंग किया करता था और जब सुबह कॉलेज के लिए बस स्टैंड जाया करता था तब उस 1 घंटे में भी स्केचिंग किया करता था। इस तरह मैंने स्केचिंग का बहुत प्रशिक्षण किया है तथा मैं मानव आकृति को मुख्य भी मानता हूँ।

इतिहास में मानव आकृति या अलंकारिक कला को ही मुख्य माना गया है। अगर हम किसी भी आंदोलन की बात करते हैं, तो अलंकारिक कलाकार को ही कलाकार माना जाता था तथा परिदृश्य कलाकार को तृतीय कलाकार माना जाता था, क्योंकि मुख्य कलाकार आकृति बनाता था तथा उसके नौकर पृष्ठभूमि बनाते थे।

आकृति पर पकड़ बनाना ही कलाकार का मुख्य कलाकार बनने में मदद करता है। स्टील लाइफ और पृष्ठभूमि की हमें एकल शो हमें देखने को भी नहीं मिलते तथा नीलामी में भी आकृति को ही मान्यता दी जाती है। मानव आकृति एक मुख्य कला का हिस्सा है।

प्र21. आप अपनी पेंटिंग में जो गांव के दृश्य या बाजार के दृश्य बनाते हैं, तो आप किस वस्तु से प्रभावित होकर बनाते हैं ?

उत्तर :- कला में प्रेरणा किसी महौल से मिल बनती है, जो गांव के महौल मेरी पेंटिंग में देखने को मिलता है, यह मेरे बचपन की अवस्था थी, जो उत्तराखंड की है। मेरी माता जी उत्तराखंड की हैं और पिताजी पंजाब के हैं, और मेरे बचपन के कुछ वर्ष उत्तराखंड में बिते। उत्तराखंड में मेरा पालन पोषण हुआ, लेकिन मेरी जन्म भूमि चंडीगढ़ ही है। उत्तराखंड की संस्कृति, प्रकृति और वहां पर जो शांति थी वहीं मेरे दिमाग में बस गई और यही वजह मेरी प्रेरणा बनी, क्योंकि आप जिस महौल में रहते हैं आपका रहन-सहन ही आपकी कला का माध्यम बनता है। इसी कारण से मेरी पेंटिंग में गांव के दृश्य देखने को मिलते हैं।

प्र22. आपने अपनी कला में कुछ पेंटिंग्स में संगीत के उपकरण देखने को मिलते हैं ? आप किसे प्रेरित थे ?

उत्तर :- संगीत को लेकर मेरे घर में कोई भी वातावरण नहीं था। लेकिन संगीत हमारी जिंदगी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। क्योंकि स्कूल में प्रार्थना होती है, वह भी संगीत का ही हिस्सा है और जब मैं कुरुक्षेत्र पी.एच.डी की पढ़ाई के लिए गया तो मेरा सफर बस या रेलगाड़ी में ही होता था और बस या रेलगाड़ी में भी बहुत व्यक्ति संगीत के उपकरण बजाते थे तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का चित्रकला विभाग के पिछे ब्रह्मा सरोवर है और वहां पर महात्मा, जोगी, बाबर संगीत बजाया करते हैं, तो वहीं से ही मुझे प्रेरणा मिली और मैंने अपनी पेंटिंग्स में संगीत के उपकरण दिखाए।

प्र23. आज के वातावरण युवा को देखकर भी आपने पेंटिंग्स बनाई है, तो आपने क्या सोचकर पेंटिंग बनाई?

उत्तर:- आजकल के समाज में जो चल रहा है, युवा पीढ़ी क्या सोचती है तथा वह समाज में खुद को किस तरह से रखते हैं और समाज में किस तरह से प्रदर्शन करते हैं और वही सोच विचार ही मेरी कला का हिस्सा बनी। एक व्यक्ति जो अपने जीवन में संघर्ष करता है, वह भी मेरी कला का विषय बनता है। मैंने शराब को लेकर भी एक पेंटिंग बनाई है, जिसके लिए मुझे IFEX पुरस्कार मिला और यह पुरस्कार राष्ट्रीय पुरस्कार के बाद का दूसरा पुरस्कार है। इस पेंटिंग में मुख्य चित्र शराब पी रहा है और वह क्या सोचकर शराब पीता है तथा किस परिस्थिति में पीता है। मैं यही सोचकर इस पेंटिंग को पर बनाया था। युवा पीढ़ी क्या कर रही है, क्या सोचती है, किस तरह से समाज के सामने पेश आती है, यही सोचकर मैं पेंटिंग बनाता हूँ।

उपसंहार

रवीन्द्र सिंह जैसे समर्पित कलाकार कभी-कभी इस दुनिया में जन्म लेते हैं, या कहूं तो की अवतार लेते हैं, तो कहना गलत न होगा। वह शीर्ष ख्याति के कलाकार होने पर भी बिल्कुल सादे हैं। कला जगत में उनकी भूमिका एक मील के पत्थर की तरह बनी रहेगी।

बेशक रवीन्द्र सिंह के समकालीन कला को समझने के लिए हम रवीन्द्र सिंह के व्यक्तित्व के अलग-अलग रूप मान सकते हैं, अन्यथा मुल्यतः तो वह एक समकालीन कला ही है। अगर हम उनको एक डिजाइनर कहें तो यह कहना बिल्कुल भी गलत न होगा। एक समकालीन कलाकार हैं और बात करते वक्त वह शब्दों के चित्र बना देते हैं।

रवीन्द्र सिंह ने इस बात पर भी जोर दिया है कि एक कलाकार के लिए संवेदनशील होना बहुत आवश्यक है, जो दूसरों के दुख को देखकर दुखी हो और सुख में मुस्कुराए, वही एक संपूर्ण कलाकार है। उनका मानना है कि कैनवास पर जो भी कुछ हम बनाते हैं, वह हमारे भावों की अभिव्यक्ति होती है। इन्होंने कभी भी बंधनों में बंद कर कार्य नहीं किया। ये हमेशा स्वतंत्र और चुनौती पूर्ण रूप से कार्य करते हैं और जैसा कि आजकल कलाकारों में पैसे की होड़ लगी है, रवीन्द्र सिंह ने कभी ऐसा कुछ नहीं किया।

वह हमेशा आनंद एवं संतुष्टि के लिए समकालीन कला के चित्र बनाते हैं। न की पैसे के लिए। वह हमेशा दूसरों के हित की बात सोचते हैं। इन्होंने लगभग सभी माध्यमों में कार्य किया है। उनकी अधिकतर समकालीन कला में गतिशील आकृतियां होती हैं, जो किसी न किसी खोज में रहती हैं। यह इनके चंचल मन को प्रदर्शित करते हैं और उनकी बचपन की घटनाओं से जुड़ी है।

रवीन्द्र सिंह के कला कार्य पर शोध करके अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूँ कि रवीन्द्र सिंह ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने कला जगत में अपनी अलग पहचान बनाई। उनके कार्य करने का तरीका बहुत अनोखा है। उनकी रचनाओं को देखने से पता चलता है कि वे स्वतंत्र होकर कार्य करना पसंद करते हैं।

कला के क्षेत्र तथा अध्यापन के क्षेत्र में उनके अनुभव के कारण कला तथा दर्शन के प्रति उनके विचार अत्यंत स्पष्ट हैं। चित्रकार होने के साथ-साथ एक अच्छे डिजाइनर भी हैं। रवीन्द्र सिंह निरंतर इस प्रयास में है कि इसमें आगे भी और नवीनता लाई जा सके।

उनकी अनेकों कला कार्यशालाओं, प्रदर्शनियों में सहभागिता रही है। अनेकों चित्रकला प्रतियोगिताओं में निर्णायक की भूमिका निभा चुके हैं। तथा वर्तमान में भी वह इस क्षेत्र में सक्रिय हैं।

कला जगत में रहते हुए रवीन्द्र सिंह ने इतने समकालीन कला के ऊपर चित्र बनाएं और अभी भी बना रहे हैं, की भावी कलाकारों के लिए वे निश्चय ही मार्गदर्शन बनेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्राण नाथ मागो, भारत की समकालीन कला, नेशनल बुल ट्रस्ट, इंडिया, पृ. सं. 7, 8, 11, 13, 15, 37, 174
2. डॉ०. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पूर्व आचार्य, चित्रकला विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, पृ०. सं. 360
3. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Contemporary_art
4. <https://study.com/learn/lesson/contemporary-art-definition-styles-examples.html>
5. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Atul_Dodiya
6. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Anju_Dodiya

चित्र संग्रह सूची

क्र०. न०.	नाम
1	विलिज चड़ीगढ़
2	रिक्शा पुलर्स – I
3	रिक्शा पुलर्स – II
4	रिक्शा पुलर्स – III
5	रिक्शा पुलर्स – IV
6	रिक्शा पुलर्स – VII
7	रिक्शा पुलर्स – VIII
8	जगदीश
9	द ग्रेट इंडियन मार्केट
10	बडेस पैराडाइज – II
11	ट्रांसफिगरेशन
12	म्यूजिशियन एंड हिज म्यूज
13	मंकी फेस्टिवल
14	फलाइंग टू ग्लोरी – II
15	ग्रैंड स्ट्रगल
16	पेरसिसटन्स ऑफ मेमोरी – I
17	पेरसिसटन्स ऑफ मेमोरी – II
18	एसएजीईएस
19	तुलसी दास
20	प्रफॉर्मर्स – III
21	गॉसिप् अंडर द ट्री
22	ईवेन्चुअलि बटरफलाई गॉट बोरे सिटिंग टू लॉन्ग ऑन फलावर्स
23	बईस पैराडाइज – II
24	सेलेस्टियल परफॉर्मर्स
25	इंडियन फार्मर रिवोल्यूशन – द ग्रैंड स्ट्रगल एट न्यू दिल्ली बॉर्डर

चित्र सूची



विलिज चड़ीगढ़



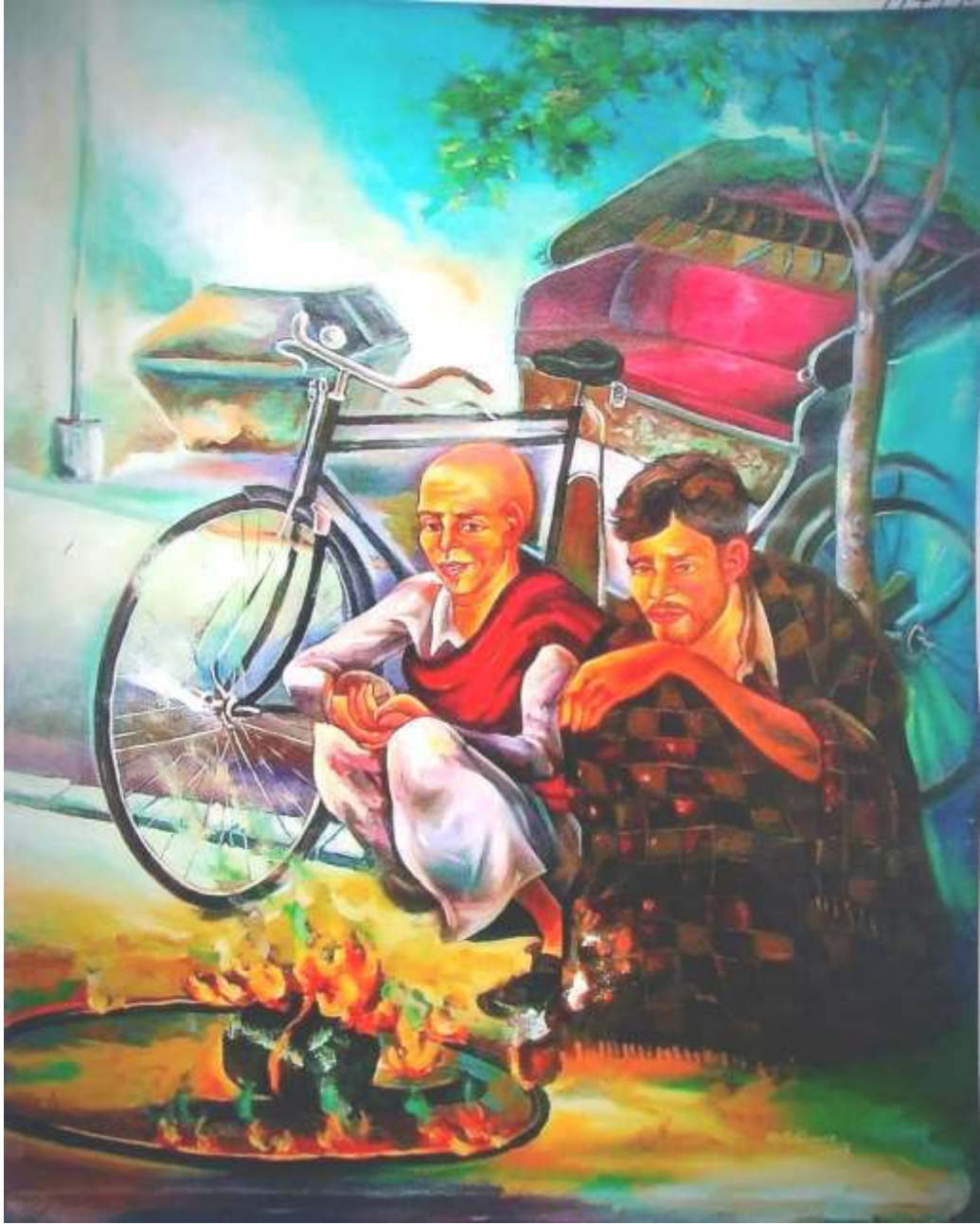
रिक्शा पुलर्स - I



रिक्षा पुलर्स - ॥



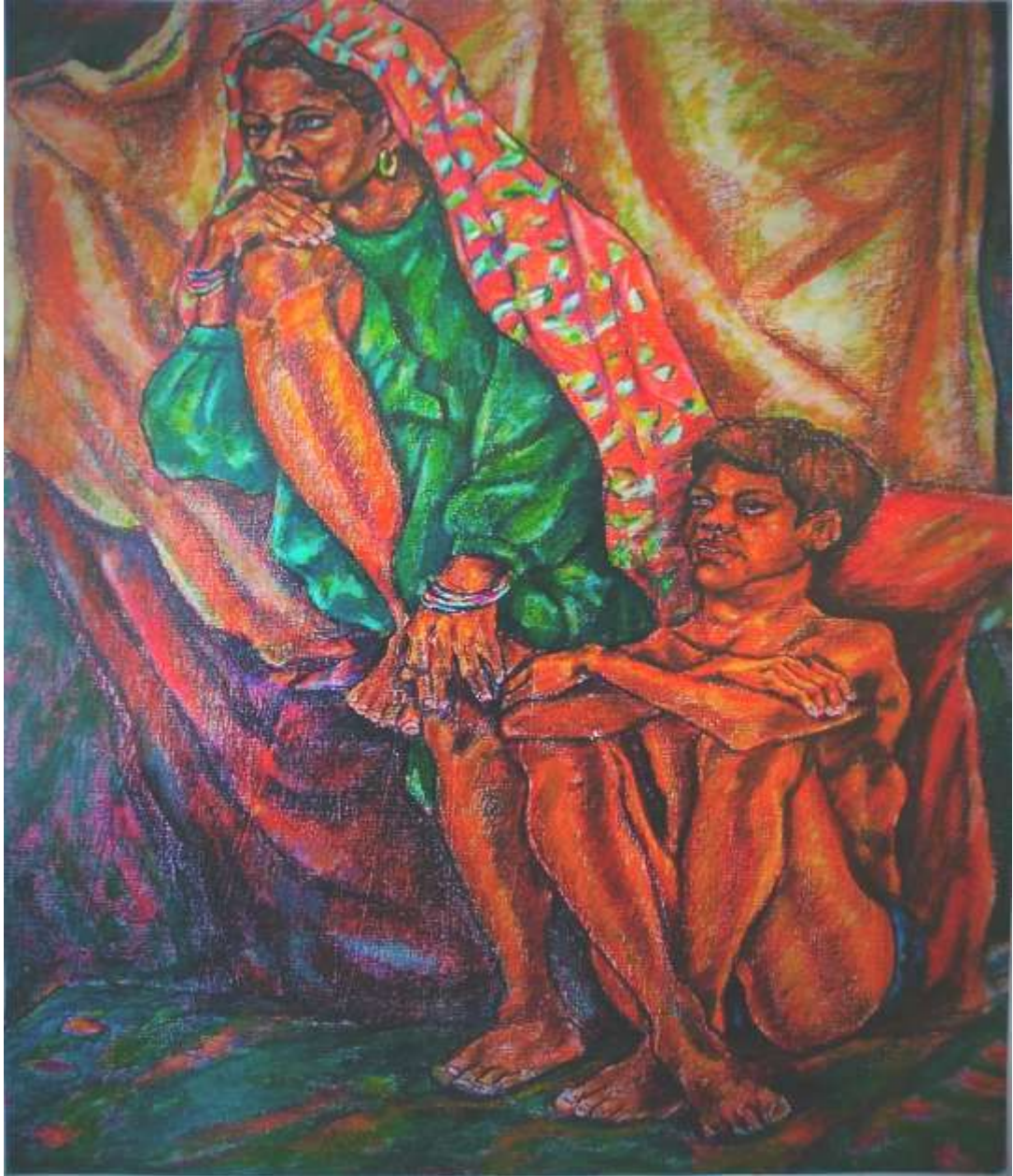
रिक्शा पुलर्स - III



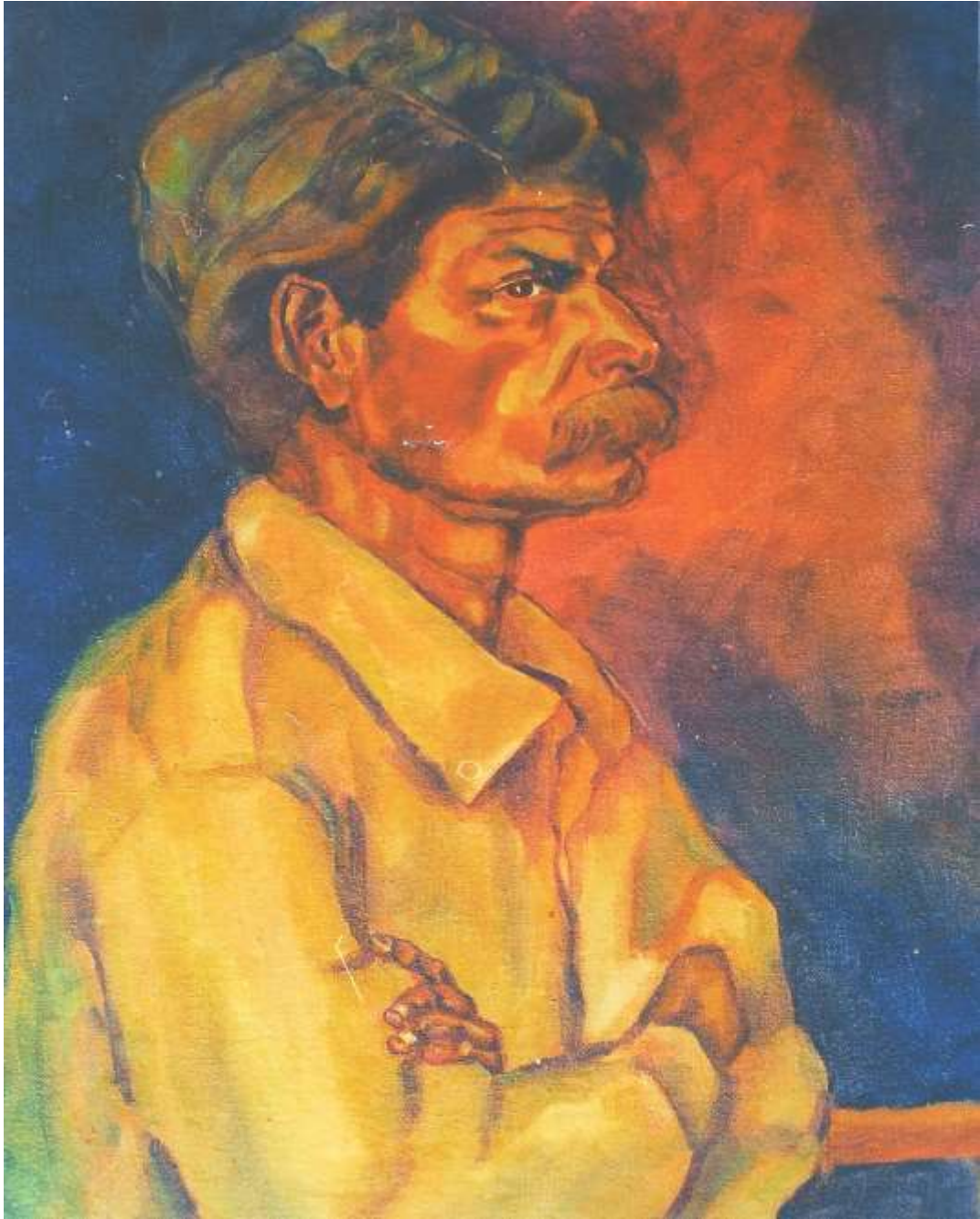
रिक्शा पुलर्स – IV



रिक्शा पुलर्स - VII



रिक्शा पुलर्स – VIII



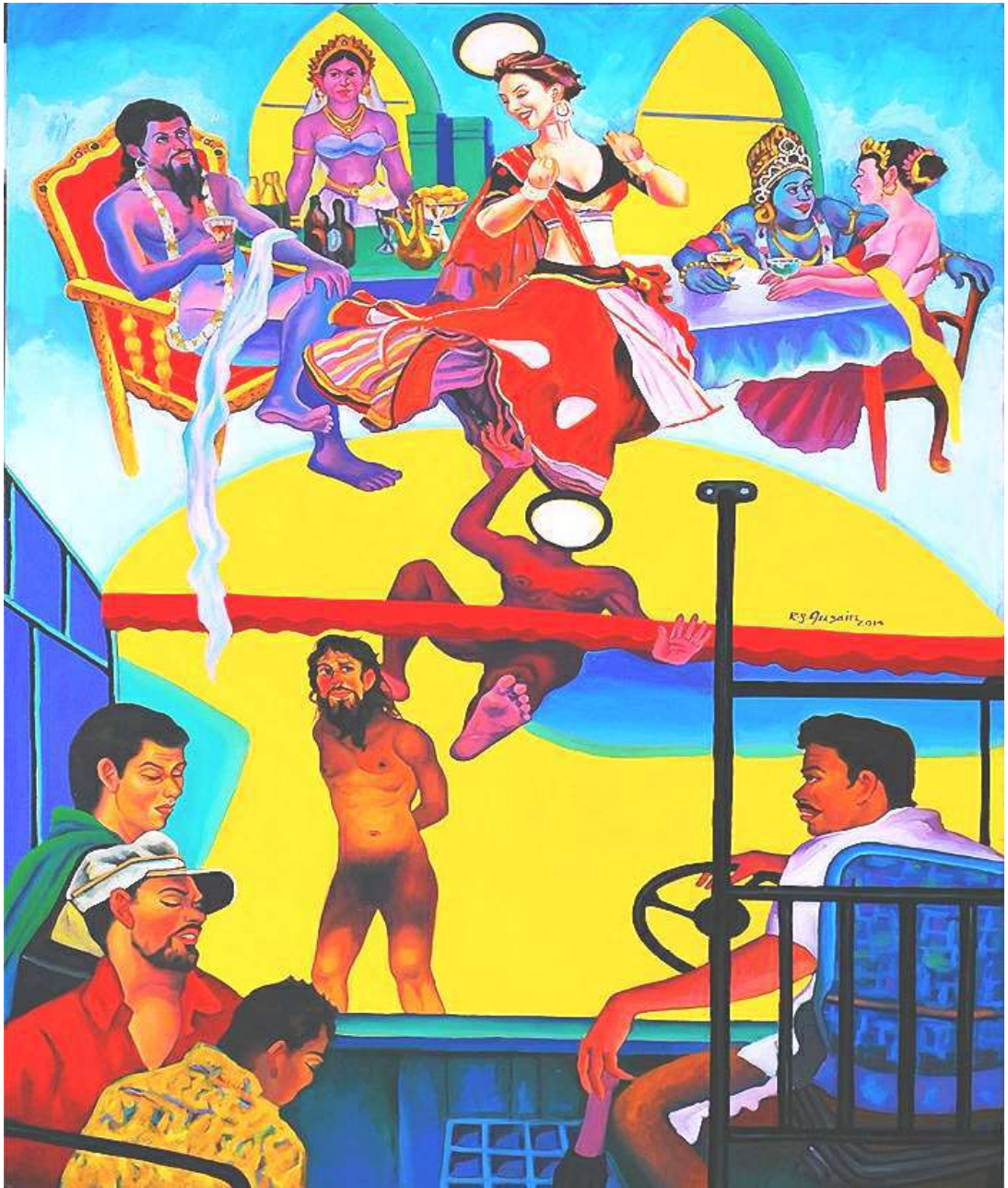
जगदीश



द ग्रेट इंडियन मार्केट



बड़ेस पैराडाइज - II



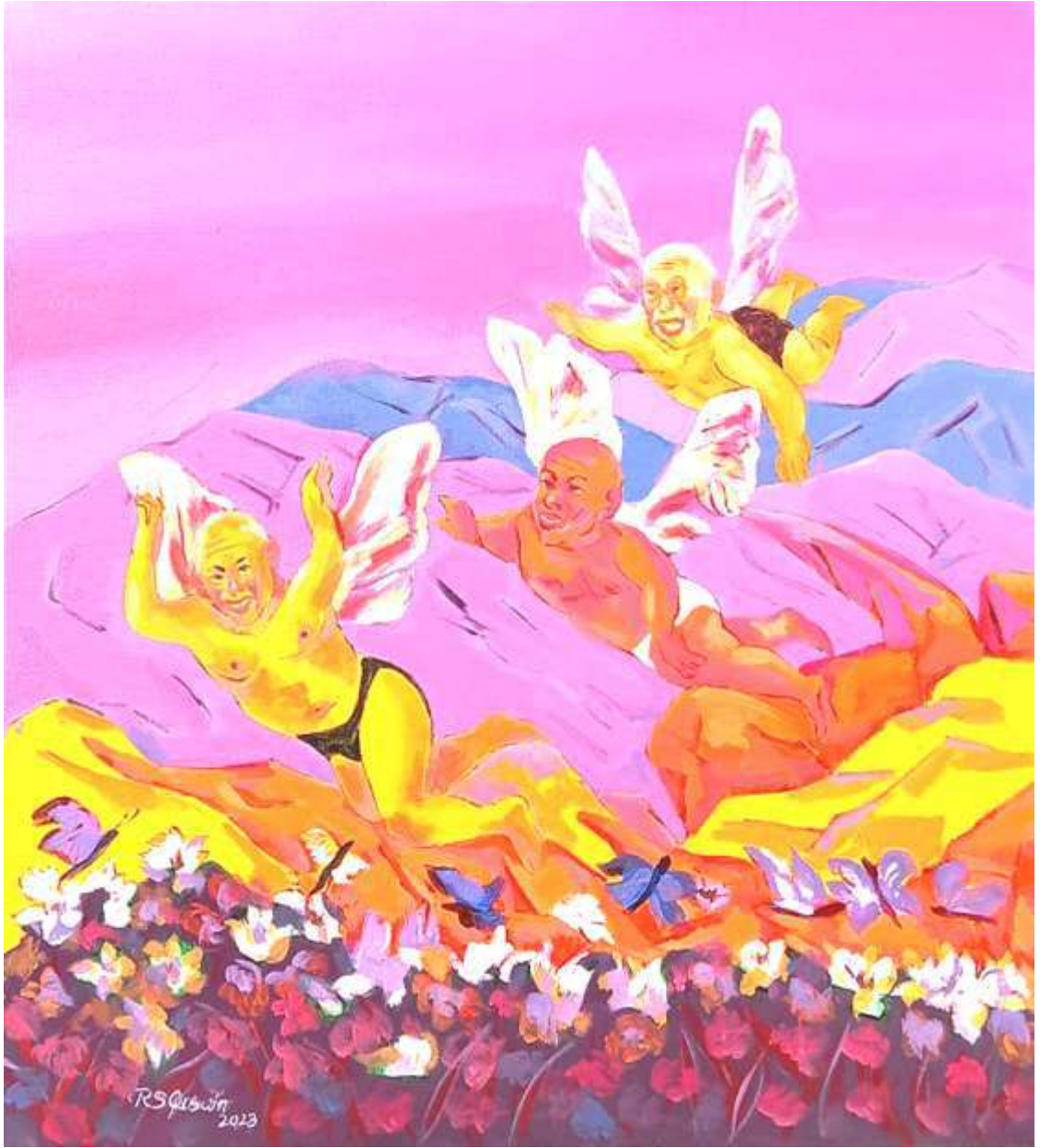
ट्रांसफिगरेशन



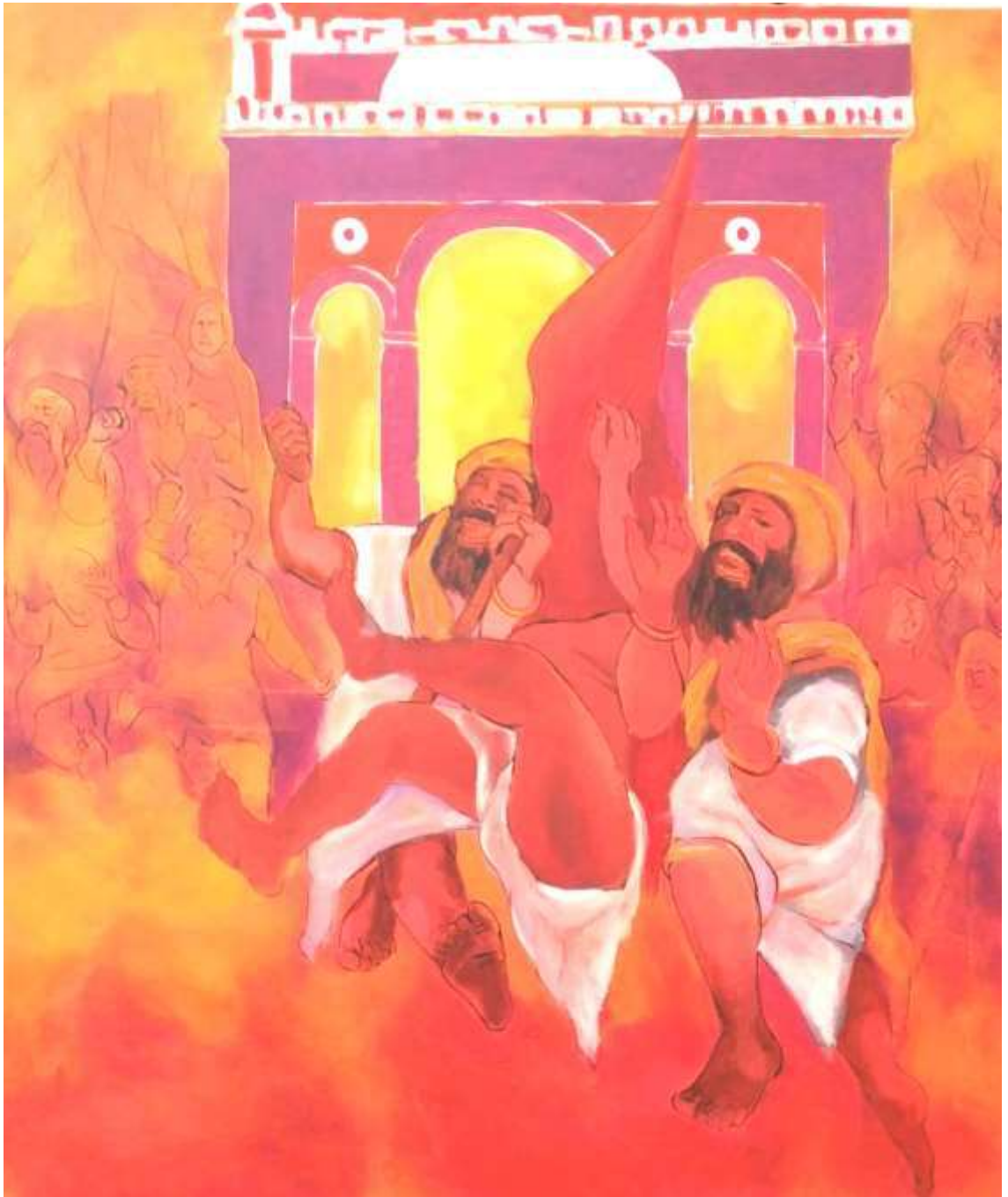
म्यूजिशियन एंड हिज म्यूज



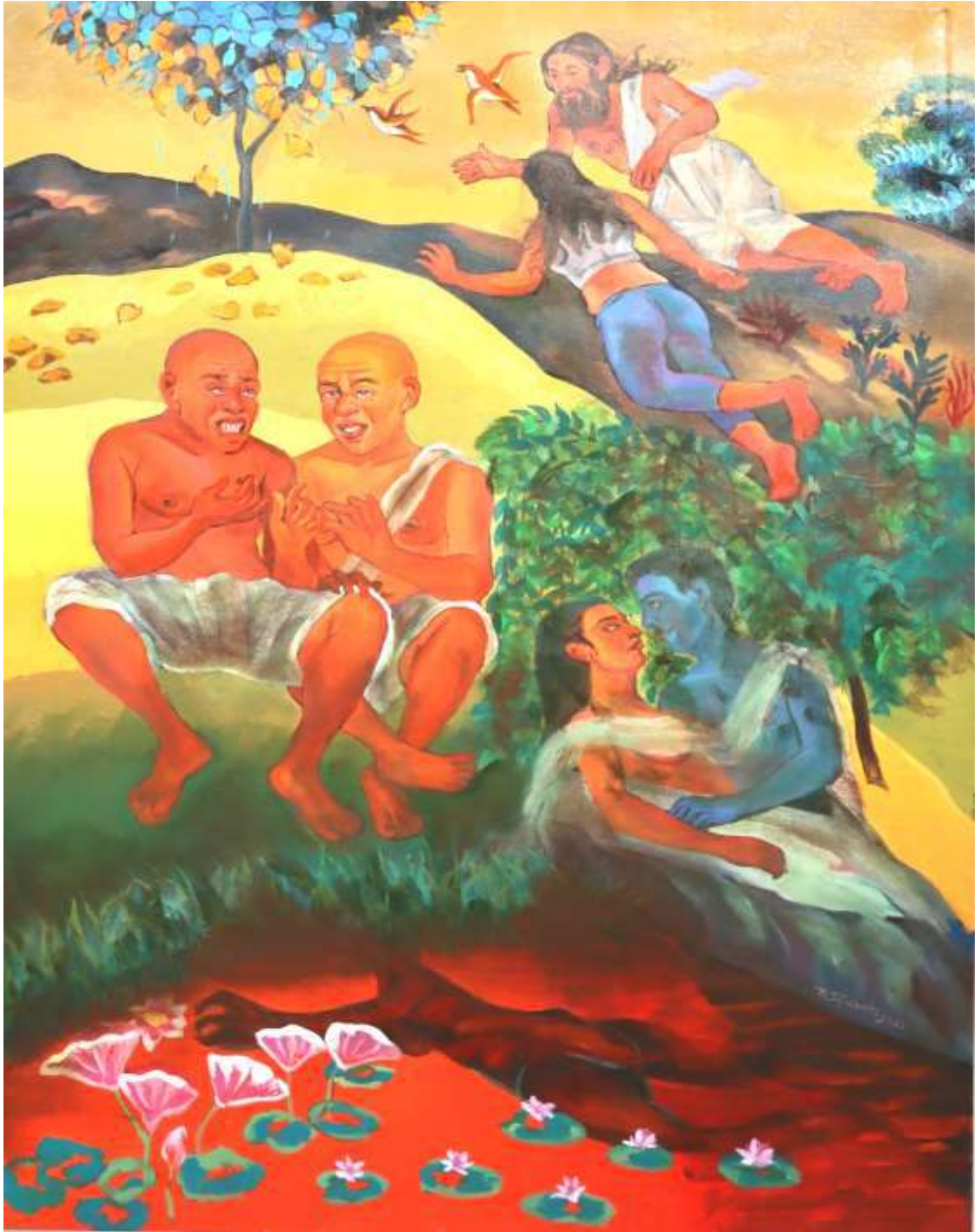
मंकी फेस्टिवल



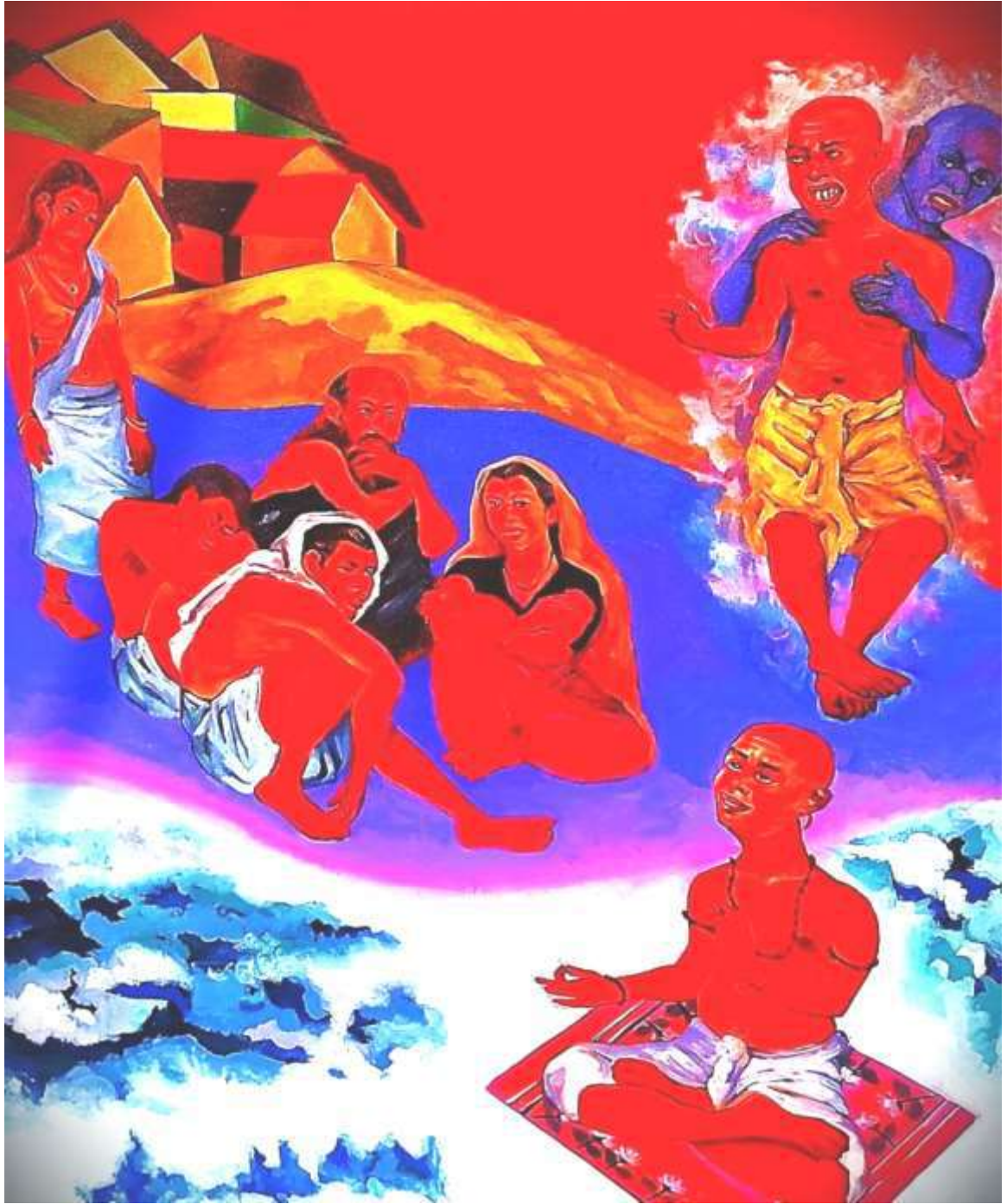
फलाईंग टू ग्लोरी – II



ग्रैंड स्ट्रगल



पेरसिसटन्स ऑफ मेमोरी – I



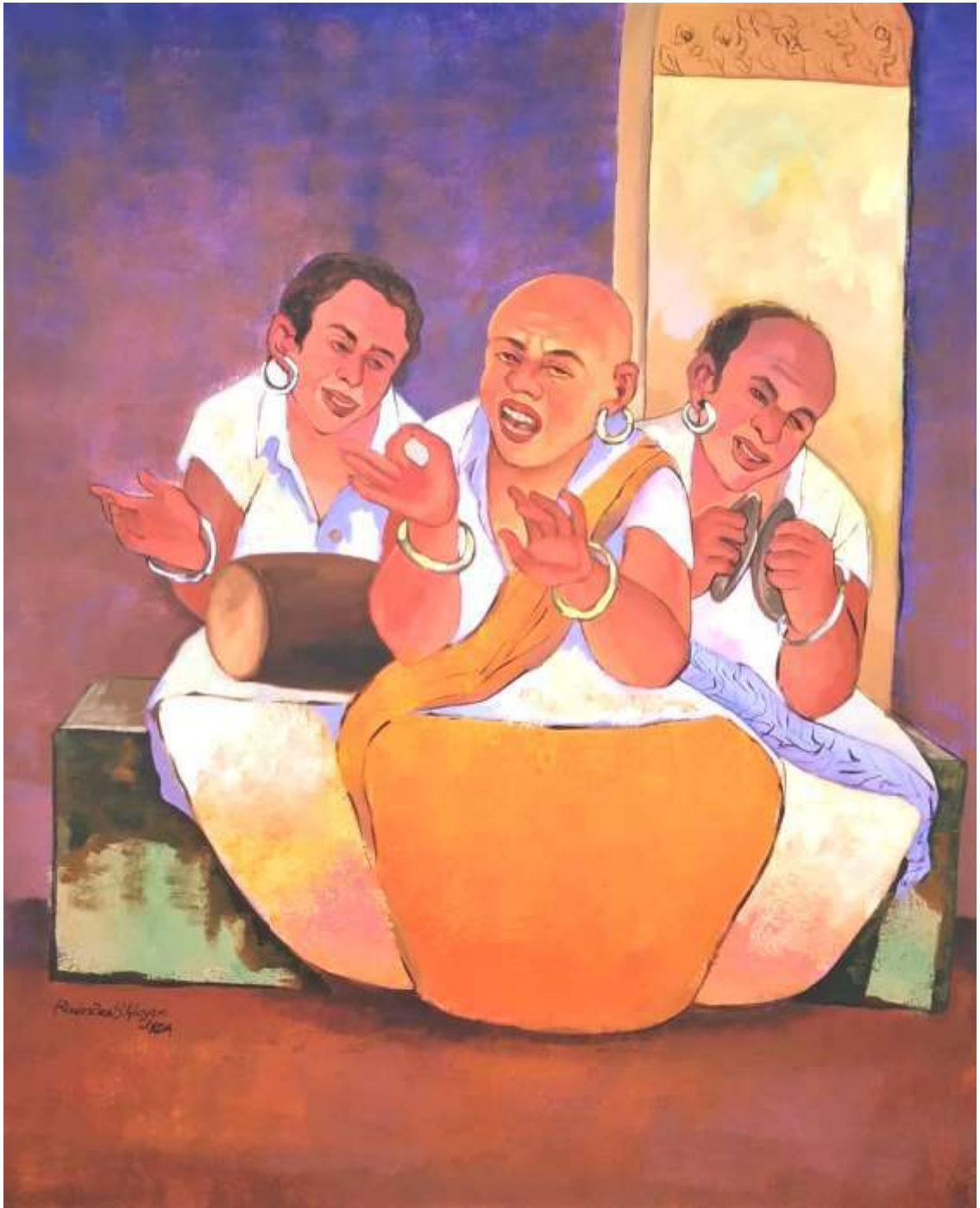
पेरसिसटन्स ऑफ मेमोरी – II



एसएजीईएस



तुलसी दास



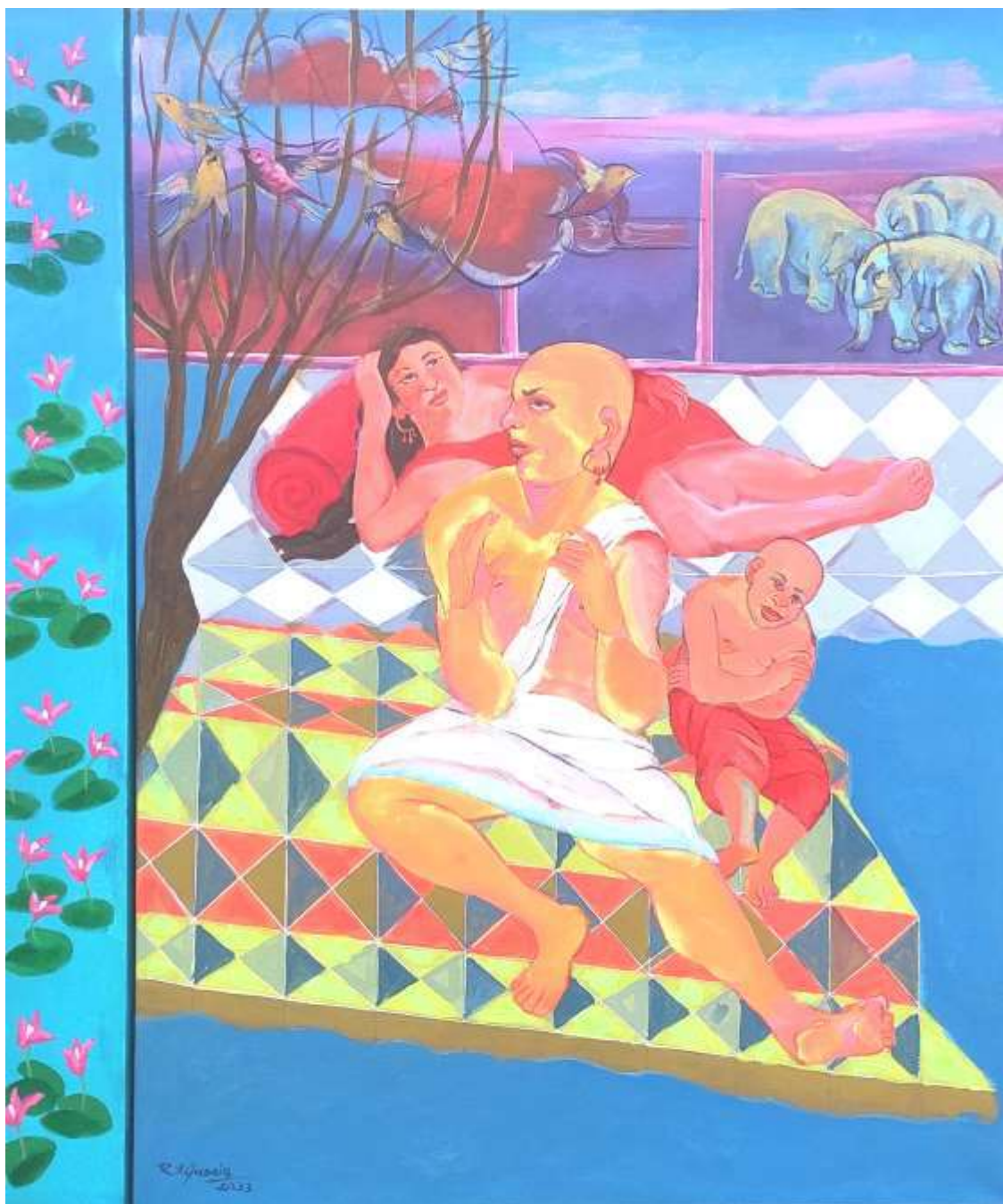
प्रफॉरमेर्स – III



गॉसिप् अंडर द ट्री



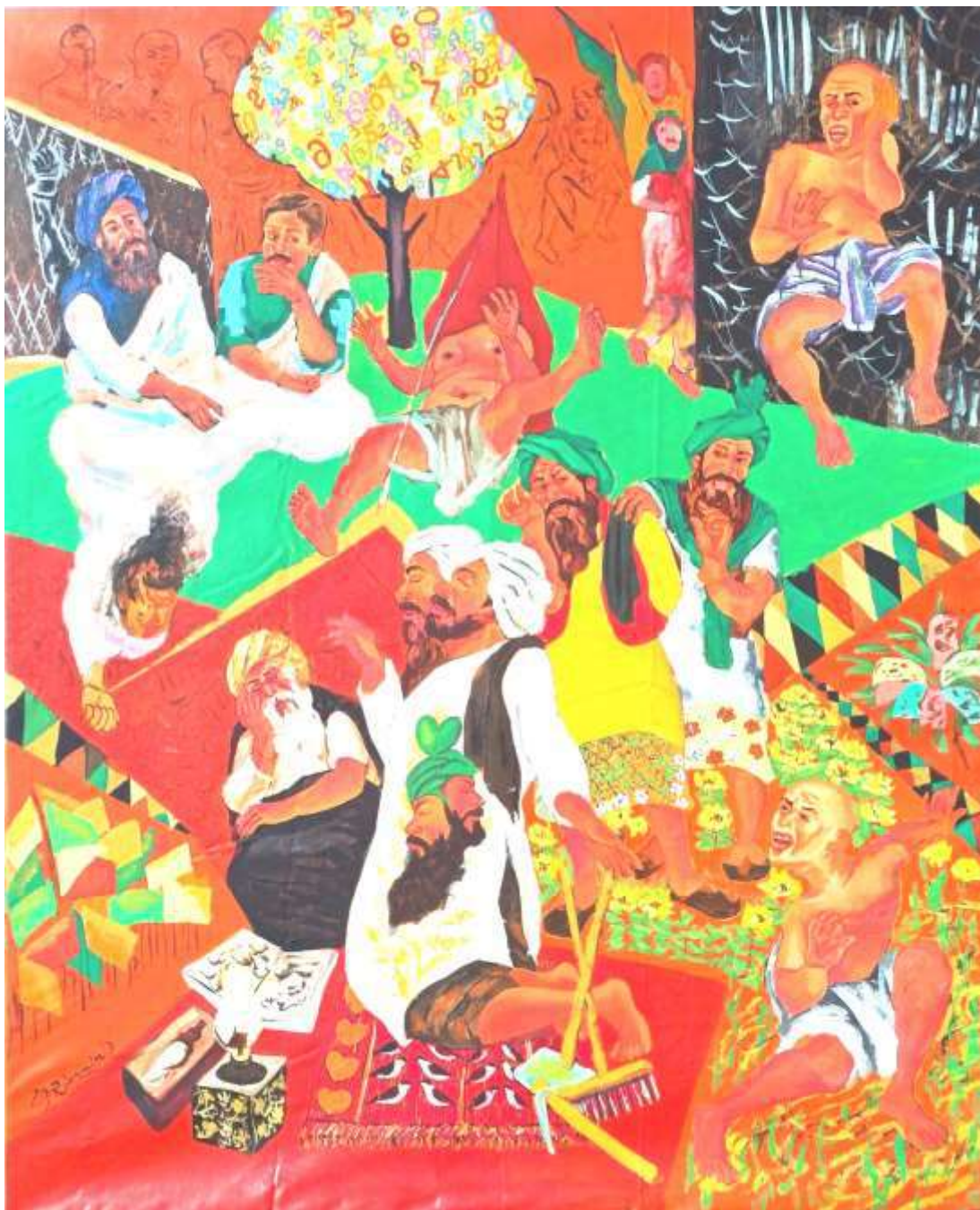
ईवेन्चुअलि बटरफलाई गॉट बोर सिटिंग टू लॉन्ग ऑन फलावर्स



बईस पैराडाइज - II



सेलेस्टियल परफॉर्मर्स



इंडियन फार्मर रिवोल्यूशन – द ग्रेंड स्ट्रगल एट न्यू दिल्ली बॉर्डर

“पंजाब की हस्त कला – फुलकारी”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा एवं निर्देशिका

श्रीमती संतोष

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय

शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री

कवलजीत कौर

स्नातकोत्तर

(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कवलजीत कौर**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “पंजाब की हस्त कला फुलकारी” शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं कवलजीत कौर, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध " पंजाब की हस्त कला फुलकारी " विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है, उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिका

श्रीमती संतोष

शोधकर्त्री

कवलजीत कौर

आर्य कन्या महाविद्यालय,

शाहाबाद (मा0)

कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कवलजीत कौर**, अनुक्रमांक न0. 130249904, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “ **पंजाब की हस्त कला फुलकारी** ” शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :.....

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

मानव जीवन का लोक कला में गहरा संबंध है। फुलकारी कला का एक बहुत ही सुंदर व अनोखा नमूना है। लोक कला गांव के युवा लोगों के अनुभव, आंतरिक इच्छाओं, भावनाओं में स्वाभाविक रूप हैं। यह कला सदियों से चली आ रही है। पीढ़ियों का अनुभव धीरे-धीरे इस कला को निरंतर और संवारता रहा है।

लोक कला देखने में सीधी-साधी परंतु इसमें कला का एक प्रबल अंश होता है, जो इसी छवि को मनमोहन और प्रभावशाली बनाता है। लोक कला से घरों में सुंदर श्रृंगार होता है। हर व्यक्ति में जन्म से सुंदरता की भूख होती है, जिसकी पूर्ति साधारण जीवन में लोक कला द्वारा करता है।

आर्य कन्या महाविद्यालय द्वारा ललित कला विषय में स्नातकोत्तर उपाधि हेतु पाठ्यक्रम में सम्मिलित लघु शोध हेतु 'पंजाब की हस्तकला फुलकारी कला' विषय चयनित करने की पृष्ठभूमि में यह एक तरफ ही लोक कला रही, वहीं दूसरी तरफ हमारे रीति-रिवाजों में भी इसकी विशेष भूमिका रही है, जो मैंने इस प्रकार से बताया है :-

- ➔ प्रथम अध्याय में — लोक कला का परिचय, कला का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषता, लोक कला का अर्थ और परिभाषा, पंजाब की लोक कलाओं का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।
- ➔ द्वितीय अध्याय में — फुलकारी का परिचय, फुलकारी का इतिहास, लोक कला के रूप में फुलकारी, पंजाब की फुलकारी पर प्रकाश डाला गया है।
- ➔ तृतीय अध्याय में — विभिन्न प्रकार की फुलकारी का महत्व, पंजाबी महिलाओं की परंपरागत फुलकारी कला, चरखे और फुलकारी का नाता के बारे में बताया गया है।
- ➔ चतुर्थ अध्याय में — पंजाब की कला से संबंधित कविता और बोली के बारे में लिखा है।
- ➔ पंचम अध्याय में — फुलकारी में उपयोग होने वाली सामग्री, पंजाब की फुलकारी, हस्त की कढ़ाई के बारे में लिखा है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र सूची को प्रस्तुत किया गया है। इसमें लघु शोध प्रबंध के माध्यम से स्थापित की गई मौलिक मान्यताओं को प्रतिपादित किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को सावधानी पूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है।

इस शोध पत्र में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उनके लिए मैं ही दोषी हूँ। अतः इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी भी हूँ।

कवलजीत कौर

शोधकर्त्री

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उलेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकण्डा, के ललित कला विभाग की अध्यक्ष आदरणीय श्रीमती संतोष के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

इसके साथ-साथ मैं अपने परिवार जनों का भी हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई।

मैं अपनी मैडम डॉ०. सिमरजीत कौर, पंजाबी विभाग की अध्यक्षा के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने विषय से संबंधित पुस्तकों के बारे में मेरा मार्गदर्शन किया।

मैं आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकण्डा की प्रौ०. डॉ०. रजिन्द्र कौर के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने विषय से संबंधित पुस्तकों के बारे में मार्गदर्शन किया।

मैं अपने आदरणीय एसि. प्रौ०. श्री महेश धीमान व आदरणीय श्रीमति सिमरन कौर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ०. श्रीमति आरती त्रेहन जी का भी आभार प्रकट करती हूँ कि उन्होंने ललित कला विषय में स्नात्तोत्तर कक्षाएं सुचारु रूप से प्रारंभ कर हमारे चिरलंघित स्वपन को साकार करने का प्रयास कर रही हैं।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

कवलजीत कौर

शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

पृष्ठ संख्या

आभार

प्रथम अध्याय:

01 – 23

- लोक कला का परिचय
- कला का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषता
- लोककला का अर्थ और परिभाषा
- पंजाब की लोक कलाएँ

द्वितीय अध्याय :

24 – 43

- फुलकारी का परिचय
- फलकारी का इतिहास
- लोककला के रूप में फुलकारी
- पंजाब की फुलकारी

तृतीय अध्याय:

44 – 59

- विभिन्न प्रकार की फुलकारी का महत्व
- पंजाबी महिलाओं की परम्परागत फुलकारी कला
- चरखे और फुलकारी का नाता

चतुर्थ अध्याय:

60 – 66

- पंजाब की कला से सम्बन्धित कविता और बोली

पंचम अध्याय :

67 – 73

- फुलकारी में उपयोग होने वाली सामग्री।
- पंजाब की फुलकारी हस्त की कढ़ाई

– उपसंहार

74 – 75

– संदर्भ ग्रंथ सूची

76 – 76

– चित्र संग्रह सूची

77 – 78

– चित्र सूची

79 – 108

प्रथम अध्याय

- लोकला का परिचय
- कला का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषता
- लोकला का अर्थ और परिभाषा
- पंजाब की लोक कलाएँ

लोककला का परिचय

लोक कला कलात्मक अभिव्यक्ति के पारंपरिक और स्वदेशी रूपों को संदर्भित करती है, जो किसी विशिष्ट समुदाय या क्षेत्र की संस्कृति, रीति-रिवाजों एवं विरासत में गहराई से निहित होती है। लोक कला में अक्सर दैनिक जीवन, पौराणिक कथाओं, आध्यात्मिकता एवं प्राकृतिक वातावरण के तत्व शामिल होते हैं। लोक कला की सामान्य परिभाषा आम इंसान के द्वारा बिना किसी ताम-झाम व प्रदर्शन से जब स्वाभाविक कलाकारी को चित्र, संगीत, नृत्य आदि के रूप में पेश किया जाता है तो वह लोक कला कहलाती है। भारत की अनेक जातियों व जनजातीय में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही पारंपरिक कलाओं को लोक कला कहते हैं। इनमें से कुछ आधुनिक काल में भी बहुत लोकप्रिय है जैसे – मधुबनी और कुछ लगभग मृतप्राय जैसे जादोपटिया।

लोक कला में लोक संस्कृति के संदर्भ में बनाई गई दृश्य कला के सभी रूप शामिल हैं। परिभाषाएं अलग-अलग हैं, लेकिन आमतौर पर वस्तुओं में किसी न किसी तरह की व्यवहारिक उपयोगिता होती है, न कि केवल सजावटी। लोक कला के निर्माता आमतौर पर संस्कृति की ललित कला परंपरा के बजाय एक लोकप्रिय परंपरा के भीतर प्रशिक्षित हैं। भोली कला के साथ अवसर, ओवरलैप या विवादित आधार होता है। 'लोक कला' का उपयोग पारंपरिक समाजों के संबंध में नहीं किया जाता है। जहां नृवंशविज्ञान कला का निर्माण जारी है।

कला का उद्भव व विकास की कहानी उन्नत है। कला का जन्म मानव सभ्यता के साथ-साथ हुआ है। जब हम कला के विकास की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमें पतित के उन सभी युगों के पीछे एक सबल व्यक्तित्व का बोध होता है, जिसे हम लोक कला कहते हैं। यही लोक कला भारतीय समाज में संस्कृति के रूप में व्यक्त हुई है। कलाकारों ने सदैव इन अभिप्रायों को आयाम, परिभाषाएं, उद्देश्य तथा स्थायित्व प्रदान किए हैं। वे इस बात को स्पष्ट करते हैं कि कला में एक सामाजिक सचेतना है जो कलाकार को अपनी ओर आकर्षित करती है।

लोक कला स्थानीय व ग्रामीण जनमानस की परंपरागत प्रबल धारा का यह रूप है कि जिसमें भारतीय संस्कृति की प्रबलता झलकती है। विभिन्न क्षेत्रों की लोक कला का स्वरूप भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक है। यही वह तत्व है जिसमें सौंदर्यात्मक अनुभूति के साथ-साथ कलात्मक अनुभूति के दर्शन होते हैं।

विभिन्न सांस्कृतिक अवसरों पर कलाकार उसे कलाकृति के द्वारा, संगीतज्ञ उसे लय तथा ताल द्वारा, कवि उसे शब्दों के द्वारा चरितार्थ करता है। इसलिए भारतीय लोक कला में एक सार्वभौमिक गुण है कि वह अपने में भूत, भविष्य और वर्तमान को संजो कर चलती है। प्रवृत्ति के माध्यम से भी अनेक

युगों तक अपनी ऐतिहासिकता को बनाए रखती हैं। इसी को हम संस्कृति कहते हैं। भारत में कला का जन्म आदि मानव सभ्यता के साथ हुआ है। विगत युगों की कलाकृतियां हमें यह स्पष्ट करती हैं कि कला एक पठम है, उसमें अनेकों धाराएं हैं, जो भारतीय संस्कृति को लोक कला के माध्यम से अपने अंदर समाहित किए हैं। इनकी छटा विभिन्न अवसरों पर लोक चित्रांकन से दिखाई देती है।

वैदिक युग में सौंदर्य अनुभूति के कई विभिन्न प्रतिमान थे। वर्तमान में प्रतिमान परिवर्तनशील हैं। उदाहरण के लिए यदि हम गुप्त काल के अवशेषों को देखकर महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित जातक कथाओं का अवलोकन करते हैं, तो दूसरी तरफ हमें लोकजीवन से हटकर विभिन्न अभिप्राय का ज्ञान होता है। शास्त्रीय कला में विकास व पतन होता है। उसमें कुछ सिद्धांत और नियमों का निर्वाह होता है। लोक कला मन की सहजावस्था में आनंद की धारा की भांति है।

लोक कलाएं संस्कृति का श्रृंगार करती हैं, वे मानव के जीवन को प्राणों के रस से ओत-प्रोत करती हैं। चुनौतियों से जूझते हुए समाज को ऊर्जा व चेतना प्रदान करती हैं। लोक कला का जन्म भावनाओं और परंपराओं पर आधारित है, क्योंकि यह जनसामान्य के अनुभूति की अभिव्यक्ति है। यहां लोक कलाओं को क्रमशः तीन भागों में विभक्त किया गया है :-

1. धार्मिक कला
2. अनुष्ठानिक कला
3. अलंकारिक कला

1 धार्मिक कला :-

धार्मिक कला वह कार्य है जिसका विषय उस धर्म के नैतिक संदेश का समर्थन करता है। जिसका वह चित्रण करना चाहता है। इस संदर्भ में धर्म का अर्थ है – मानवीय विश्वासों को कोई भी समूह जो उसे चीज से संबंधित है, जिसे वे पवित्र, आध्यात्मिक या देवी मानते हैं। चाहे उसमें देवता शामिल हो या नहीं।

2 अनुष्ठानिक कला :-

अनुष्ठानिक कला एक ऐसा कार्य करने का तरीका है जिसे अन्य आमतौर पर अधिक रोजमर्रा की गतिविधियों की तुलना में किये जा रहे काम को अलग करने और विशेषाधिकार देने के लिए डिजाइन और व्यस्थित किया जाता है।

3 अलंकारिक कला :-

अलंकारिक कला जिसे कभी-कभी फिगुरेटिविज़्म के रूप में लिखा जाता है। कलाकृति (विशेष रूप से पेंटिंग और मूर्तियों) का वर्णन करते हैं जो स्पष्ट रूप से वास्तविक वस्तु स्रोतों से ली गई हैं। और इसलिए परिभाषा के अनुसार प्रतिनिधित्वात्मक है। यह शब्द अक्सर अमूर्त कला के विपरीत होता है।

इन तीनों प्रकार की कलाओं में महिलाओं का यो गदान महत्वपूर्ण होता है, क्यों कि लोक कलाकार व अनुष्ठानकर्ता एक ही होता है।

सज्जा की भावना बहुत से शुभ अवसरों पर की जाती है जैसे कोई उत्सव, पर्व, सामाजिक अवसर या मांगलिक अवसर आदि हाथ के छापे, बंगाल की अल्पना, महाराष्ट्र की रंगोली, गुजरात का साथिया, राजस्थान का माडनो, उत्तर प्रदेश की चौक पूरना, बिहार का आहिपन, हरियाणा की सांझी, हिमाचल प्रदेश का शॉल तथा पंजाब की फुलकारी। इसी प्रकार की कला का रूप है, जिन्हें औरतें और लड़कियां मिलजुल कर एक जगह इकट्ठी होकर रंगों से सुंदर-सुंदर डिजाइनों से बनाती हैं, जिन्हें देखकर बहुत ही मन आश्चर्य व आनंदित होता है।

आनंद ज्ञान बांटने से बढ़ता है। यह सामान्य अनुभव है कि कोई नई वस्तु प्राप्त होने पर उसको दूसरों को दिखाने की हार्दिक इच्छा होती है। नई साड़ी खरीदने पर औरों के सामने उसका प्रदर्शन किए बिना महिलाएं संतुष्ट नहीं होती। वैज्ञानिक आविष्कार हो या साहित्यिक रचना जब तक उसको जानकारों या रसिकों के सामने नहीं रखा जाता था, तब तक आविष्कारक या साहित्यकार सफलता का अनुभव नहीं करता।

लोक कला में सामूहिकता को बढ़ावा दिया जाता है। इसमें सामूहिक श्रम का अधिक महत्व है, क्योंकि विभिन्न कलाएं जिनमें कई व्यक्ति अर्थात् व्यक्ति समुह मिलकर कार्य करते हैं। राजधानी, पहाड़ी, आकर मुगल कला, बौद्ध और जैन कला सामूहिकता को बढ़ावा देती है। लोककला में अलंकरण को भी महत्वपूर्ण माना गया है, लोककला में संस्कारों को भी दर्शन हम प्राप्त करते हैं व मुख्यता लोक कला का आधार संस्कार ही होते हैं।

विभिन्न तरह की जातियों वाला यह देश अपने में एकता संजोए है। जो अपने – अपने रीति-रिवाजों को हर्षोल्लास के साथ मनाते आ रहे हैं। उनमें हमें प्रत्यक्ष लोक कला के दर्शन होते हैं। यहां पारंपरिक रीतियों के अनुष्ठानों में संस्कारों का बड़ा महत्व है। लोककला के अभिप्राय सितारों की तरह झिलमिलाते हैं और रोशनी पक्ष हैं, जो मानव जीवन से कहीं भी अछूता नहीं है। वास्तविक रूप से अगर व्याख्या की जाए तो लोक कला का अपना अस्तित्व हजारों वर्षों से है, फिर भी उनके स्वरूप, विधिव माध्यम में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं आया। यही इस बात की सबसे बड़ी प्रामाणिकता है कि लोक कला का अस्तित्व आज भी कायम है।

लोक कला सामाजिक परंपरा का ही अंग है जो उसे विशेष स्थिर प्रदान करती है। किसी परंपरा को तोड़ना विशेष्यता जब उसमें कोई हानिकारक तत्व नहीं हैं। कितना कठिन है। यह अनुभवजन्य तथ्य है। हर कला की अपनी विशेषताएं होती हैं व उन विशेषताओं के साथ ही उसको विकसित होने देना चाहिए, जिससे विश्व सौंदर्य की बहुरंगी उत्साह वर्धक विविधता बनी रहेगी। विश्व में सर्जनशील चैतन्य को गति मार रखने के लिए प्रेरणास्पद विविधता का होना जरूरी है।

साधन के रूप में लोक कला से जो तादात्म्य का आनंद प्राप्त होता है। उसका प्रभाव जब तक शेष है, तब तक धर्म व संस्कृति नष्ट नहीं हो सकती। लोक कला ने ही धर्म, सौंदर्य प्रेम, संस्कृति व सदविचारों को ही समाज में जीवित रखकर उसकी एकता से बांधा है। अगर ऐसा कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोक कला के बाह्य रूप में बिना कोई विशेष परिवर्तन हुए पीढ़ियों तक चलती आती है। भजन, कीर्तन, महिलाओं के गीत, रामलीला, कृष्ण लीला, पुराणिक एवं ऐतिहासिक वीर गाथाओं का मंथन, खेल-खलिहानों या काम करते वक्त पाए जाने वाले गीत, दादी की कहानी, धार्मिक संस्कारों वाले चित्र, आकृतियां या भित्ति चित्र के डिजाइन सब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को जमीन जायदाद या अमूल्य संपत्ति के सामान जैसे के तैसे हस्तांतरित होती आयी है।

कला का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषता

➤ कला का अर्थ :—

कला का अर्थ है रचना करना अथवा वह कृत्रिम है। प्राकृतिक सृष्टि और कला दोनों भिन्न वस्तुएं हैं। कला उस कार्य में है जो मनुष्य करता है। कला और विज्ञान में भी अंतर माना जाता है। कला शब्द 'कल' धातु से बना है। कला का शाब्दिक अर्थ है, जो सुंदर यानी जो आनंद प्रदान करती हो अथवा इसके द्वारा सुंदरता आती है, वही कला है। कला से तात्पर्य रेखा, आकृति, रंग, ताल तथा शब्द, जैसे — रेखा चित्र, रंजनकला, मूर्तिकला, नृत्य, संगीत, कविता एवं साहित्य के रूप में मानव की प्रवृत्तियों का बाहरी अभिव्यक्ति है। कला न ज्ञान है, न शिल्प है, न विधा है, बल्कि इसके द्वारा हमारी आत्मा परमानंद का अनुभव करती है, वही कला है। कुछ लोग काल शब्द का अर्थ 'सुंदर', 'कोमल', 'मधुर' या 'सुख' लाने वाला मानते हैं। कुछ इस 'कल' धातु अथवा (शब्द करना, गाना बजाना, गिन्ना) से संबंधित मानते हैं। कुछ अन्य लोग इसे 'कड़' धातु (मदस्त करना, प्रसन्न करना) से जोड़ने के पक्ष में है।

इस प्रकार से देखें तो कला का अर्थ एक ऐसी कलात्मक शिल्प या कौशल की प्रक्रिया से युक्त अनुभूति से है, जो सृजनात्मक, सुंदर एवं सुख प्रदान करने वाली हो, वही कला है।

कला एक क्रिया है, कल एक कौशल है, कला एक तकनीक है, कला एक ज्ञान है, कला एक शिल्प है, कला अनुकृति है, कला कल्पना है, कला क्रीड़ा है, कला एक उड़ान है, कला एक सोच है। कितने प्रश्न उठते हैं मानव के जहन में इन्हीं के निवारण छिपा है।

कला में क्रिया तो अवश्य ही होती है परन्तु प्रत्येक क्रिया में सौंदर्य का भाव नहीं छिपा होता। कला को पाने के लिए एक रचना प्रक्रिया होती है। कलाकृति के निर्माण के पश्चात ही जाना जा सकता है कि कृति कितनी ही कलात्मक है। अतः कला एक क्रिया है। किसी भी लक्ष्य को पाने के लिए क्रिया का योगदान रहता है परन्तु प्रत्येक क्रिया कला का लक्ष्य नहीं है।

कला एक कुशल है। अंग्रेजी भाषा में कला को 'आर्ट' कहते हैं। इटली में 'ले —आर्ट' भाषा में आ शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ मानवीय कुशलता है। डाइक में मानवीय कुशलता तो होती है। परन्तु केवल मानवीय कुशलता ही कला नहीं होती। कुशल तो एक डॉक्टर और वैज्ञानिक भी होता है, परन्तु मन का संबंध ज्ञान से होता है। किसी भी चीज को जानना एक ज्ञान की बात हो जाती है। इस प्रकार नियमों के आधार पर किसी कारीगरी का प्रदर्शन मात्र कला नहीं है। जब हम कला के शिल्प होने की बात करते हैं तो मन एक विशेष प्रकार के कौशल का प्रदर्शन करता है। परन्तु कला के लिए तो अनेकों

प्रकार की कारीगरी का प्रयोग किया जाता है, तो मन एक विशेष प्रकार की कारीगरी अथवा कुशलता पूर्वक क्रिया पर अटक जाता है।

कलाकार एक विशेष प्रकार के कौशल का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार कला एक मानवीय प्रक्रिया है जिसका विशेष लक्षण ध्यान से देखना, गणना करना तथा स्पष्ट रूप से प्रकट करना है।

ललित कलाएँ मूल्यांकन की दृष्टि से अधिक जटिल होती हैं। ललित कलाओं तथा उपयोगी कलाओं का कार्यक्षेत्र समान रूप से समाज होता है। परंतु उपयोगी कलाएँ निम्न श्रेणी और ललित कलाएँ उच्च श्रेणी में रखी जाती हैं। यही वर्गीकरण आगे चलकर अपने रूप में विकसित हुआ। दस विभाजन के अनुसार व्यंजना की क्षमता से युक्त कलाओं का उपयोग तथा अलंकरण है। किसी मानवीय अनुभूति की व्याख्या अथवा कलात्मक व्यंजना नहीं बड़ी कलाओं द्वारा निर्मित कृतियाँ स्वयं में पूर्ण होती हैं, और अपना लक्ष्य भी स्वयं ही होती हैं।

ये सब सीखने के लिए कोई निश्चित स्थान तथा कोई निश्चित समय नहीं है। न कोई स्कूल या चित्रशाला में सीखने को मिलता है। लोककला करने वालों को यह सब विरासत में प्राप्त होते हैं। लोक कला तो घर-घर में त्योहारों और मांगलिक कार्यों में प्रदर्शित होती है।

अतः हम कह सकते हैं कि लोक कला मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। लोक कला मानव के समस्त कल्याण की कामना करता है। वह निरापद रूप से समस्त मानव दृष्टि के कल्याण की अभिलाषा करता है और यही मंगल कामना त्योहारों और अनुष्ठानों के समय या संस्कारों के आरंभ में सभी के मंगल की कामना की जाती है। मानवीय जीवन के सभी महत्वपूर्ण कार्य शुभ से आरंभ होकर 'सुरू' के लिए अंत होते हैं। लोक कला ही एकमात्र ऐसी कला है जो आडंबर मुक्त है। इसमें अश्लीलता का अभाव है।

➤ कला की परिभाषाएं :-

विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर कला की अनेक परिभाषाएं दी गई हैं। उनमें से कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं।

- एक साहित्यिक उचित के अनुसार :- प्राण तत्व 'रस' से परिपूर्ण रचना ही कला है।
- महात्मा गांधी के अनुसार :- कला आत्मा का ईश्वरीय संगीत है।
- रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार :- कला में मनुष्य स्वयं अपनी अभिव्यक्ति करता है।
- डॉ भोला शंकर तिवारी के अनुसार :- कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है।

- फ्रायड के अनुसार :- कला में मानव अपने दमित वासनाओं तथा कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति करता है।
- रस्किन के अनुसार :- कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आलाद की अभिव्यक्ति है।
- एरिस्टाटिल के अनुसार :- कला अनुकरणीय है।
- प्लेटो के अनुसार :- कला सत्य की अनुकृति है।
- बेनी दीती क्रोचे के अनुसार :- कला वही है जैसा हर एक उसे जानता है।
- शापेनहावर के अनुसार :- सृष्टि एक दिव्य रचना है और कला पवित्रता की अभिव्यक्ति है।
- जयशंकर प्रसाद के अनुसार :- ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का संकुचित रूप जो हमको भाव-बोध के लिए मिलता है- कला है।
- टॉलस्टॉय के अनुसार :- कला एक मानवीय क्रिया है जिसमें एक व्यक्ति जागरूक अवस्था में वाद्य प्रतिकों के माध्यम से अपनी उन भावनाओं को जिनमें व जी रहा होता है, दूसरों को संचारित करता है तथा दूसरे व्यक्ति भी उन भावनाओं से प्रभावित होते हैं, एवं उनका अनुभव करते हैं।

➤ कला की विशेषताएं :-

कला की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :-

1. कला एक क्रिया है :-

जिस प्रकार से प्राकृतिक प्रति क्षण विभिन्न क्रियाएं करती हैं जैसे- चंद्रमा का घटना-बढ़ना, फूलों का खिलना, सूर्य का निकलना, बादलों का बरसना, बिजली का चमकना, इंद्रधनुष का बनना आदि। इसी प्रकार से मानव भी अनेक क्रियाएं करता है जिनमें से कुछ विशेष कार्य जो कुशलता पूर्वक किए जाते हैं, दूसरों को आकर्षित करते हैं।

इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि कला एक व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग प्रकृति तथा मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में होता है, किंतु प्रकृति तो ईश्वरीय कला है जो मानवीय क्रियाओं से पृथक है, जबकि मानव द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तु या चित्र के निर्माण की एक रचना प्रक्रिया होती है जो उसकी कलात्मकता को निश्चित करती है। तो इस विशेषण से यह स्पष्ट होता है कि “कला वह मानवीय क्रिया है जिसका विशेष लक्षण, ध्यान से देखना, गणना अथवा संकलन, मनन, चिंतन एवं स्पष्ट रूप से प्रकट करना है”।

2. कला एक तकनीक है :—

कोई भी कलाकृति (चाहे वह चित्र हो, मूर्ति हो या कविता) के निर्माण के लिए उसके निर्माण में प्रयुक्त एवं उस सामग्री के प्रयोग की तकनीक को समझना अनिवार्य है। बिना उस तकनीक को समझे उस कलाकृति का निर्माण नहीं किया जा सकता। जितना हमें सामग्री के इस्तेमाल की तकनीक का ज्ञान होगा, उतनी ही कुशलता से हम उसका प्रयोग पर पाएंगे और उतनी ही उत्कृष्ट वह कलाकृति होगी। तो इस विशेष से यह स्पष्ट होता है कि “कला एक विशेष तकनीकी क्रिया” है जिसमें कलाकृति के निर्माण हेतु प्रयुक्त सामग्री की प्रयोग विधि को समझना अनिवार्य है।

3. कला एक प्रकार का शिल्प है :—

किसी सामग्री को काट-छांटकर जब कोई रूप दिया जाता है उसे शिल्प कहते हैं। इस प्रकार वह चाहे मूर्ति कला हो या वस्तु सिर्फ धातु शिल्प हो या वस्त्र शिल्प अथवा प्लास्टिक आर्ट सभी शिल्प की श्रेणी में ही आते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रकार की कला के लिए किसी न किसी सामग्री को काट-छांटकर या तराश कर ही उसे कलाकृति का रूप दिया जा सकता है। कलाकृति निर्माण हेतु उसके लिए उपयुक्त सामग्री को काटने-छांटने या तराशने की क्रिया एवं उसकी कुशलता अनिवार्य है।

4. कला एक प्रकार का कौशल है :—

यह सर्वविदित है कि कोई भी कृति तभी कलाकृति कही जा सकती है जब वह विशेष कौशल द्वारा तैयार की गई हो तथा उसमें छन्द लयात्मक व्यवस्था हो।

कलाकार का कौशल उसे कहा जाता है जिसमें कलाकार क्रिया, शिल्प एवं तकनीक के अतिरिक्त कृति को आकर्षित बनाने के लिए अपने मानसिक चिंतन प्रक्रिया के द्वारा नवीनता लाने के लिए अनेक युक्तियां खोजता है।

इस विशेषण से स्पष्ट है कि “कलाकृति को प्रभावशाली नवीन एवं आकर्षक बनाने हेतु मानसिक, चिंतन-मनन एवं अनिवार्य प्रक्रिया है।

5. कला एक अनुकृति है :—

अनुकृति का अर्थ है— सादृश्य। यह वास्तविकता है कि कला अनुकृति मूलक है। कलाकृति की श्रेष्ठता को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि “किसी कलाकृति की श्रेष्ठता इस प्रकार निर्भर

करती है कि मूलकृति चाहे वह ईश्वरीय हो या मानव रचित उससे कला का कितना साम्य है” सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने कहा है “कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है”।

6. कला एक कल्पना है :—

बुद्ध घोष के अनुसार “संसार भर की जितनी कलाकृतियां हैं, सब कल्पना की उपज हैं”। प्लेटो भी यही मानते हैं कि उनके अनुसार कलाकृति में दैवीय प्रेरणा की ही भूमिका होती है। कलाकार अनेक ऐसे काल्पनिक चित्रों या मूर्तियों का निर्माण करता है जिनका अस्तित्व ही संसार में नहीं होता। देवता, ईश्वरीय अवतार, राक्षस, स्वर्ग ये सब कल्पना ही तो है। यूरोपीय विद्वान भी यह मानते हैं कि कलाकार नवीन कलाकृतियों का सृजन करके अपनी कल्पना को संतुष्ट करता है।

लेकिन महान चित्रकार “लियोनार्दो दा विन्ची” (सबसे चर्चित कृति मोनालिसा) का विचार था कि कलाकार संसार के अनुभव के आधार पर ही कलाकृतियां बनाता है पर वह सृष्टि नहीं करता, केवल पुनः सृष्टि मात्र करता है। वह इसी संसार से सामग्री लेता है जो ईश्वर द्वारा निर्मात है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कल्पना का आधार भी सांसारिक वस्तुएं ही होती हैं। कलाकार कल्पना के द्वारा उन्हें पुनः संयोजित कर नवीन रूप देता है।

7. कला एक ज्ञान के रूप में है :—

ज्ञान एक विशिष्ट मानसिक प्रक्रिया की वास्तविक है। प्राचीन भारतीय भाषाओं में 64 कलाओं का वर्णन किया गया है। उच्चतम ज्ञान से भी भिन्न इन कलाओं के ज्ञान की प्रक्रिया को माना गया है। ज्ञान के अभाव में तकनीकी का प्रयोग भी असंभव है। मन और मस्तिष्क जब किसी भी तकनीकी, वस्तु, घटना, क्रिया आदि को पूर्ण विश्लेषित कर सत्य मान लेता है तभी इन क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

8. कला एक अभिव्यक्ति है :—

विद्वानों का मानना है कि कला एक प्रकार की भावपूर्ण भाषा है जो किसी विशेष मानसिक स्थिति को जगाने में सफल होती है। ‘लियोनार्दो दा विन्ची’ का कथन है कि कलाकार जिन आकृतियों की रचना करता है वे उसके आंतरिक भागों पर आधारित होती हैं। इसका स्पष्ट यह हुआ कि कला के रूपों में कलाकार के मन के भावों की अभिव्यक्ति होती है।

जिस प्रकार हम भाषा को माध्यम बनाकर अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाते हैं, उसी प्रकार कलाकृति के द्वारा भी कलाकार अपने मन के विचारों को सम्प्रेषित करता है।

कला एक प्रकार की भावपूर्ण भाषा है जो कलाकृतियों में अभिव्यक्त होती है। कला को कुछ विद्वानों ने सामाजिक स्वरूप कहा है।

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि “कला चाहे काल्पनिक हो या वास्तविक वस्तु को सादृश्य, उसके पीछे कलाकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति ही मूल भूमिका का निर्वाह करती है”।

9. कला एक प्रकार का खेल (क्रीड़ा) है :-

कई विद्वानों ने कला को क्रीड़ा की संज्ञा दी है। इस संदर्भ में हर्बर्ट रीड कहते हैं कि “जब हमारी अनेक इच्छाएँ, अनुभूतियाँ, विचार और संवेदनाएँ तत्काल अभिव्यक्त नहीं हो पाती तो तनाव उत्पन्न होता है। खेल ही इस तनाव से मुक्त होने का अवसर प्रदान करता है”।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कलाकार अपनी संवेदनाओं एवं तनावों को दूर करने के लिए भी कला को माध्यम बनाता है और कला ही उसे स्वस्थ, मानसिक जगत की तरफ ले जाती है।

लोक कला का अर्थ और परिभाषा

लोक कला दो शब्दों से मिलकर बना है :- लोक + कला।

लोक कला का अभिप्राय देश के संपूर्ण समाज में व्याप्त कला को ही लोक कला कहा जा सकता है।

लोक कला साधारण जीवन में पाई जाने वाली कला है। कई बार अनजाने में लोग ऐसी वस्तुओं का निर्माण कर देते हैं जो लोक कला के अंतर्गत आती हैं। हस्तकला भी लोक कला के अंतर्गत आती है। हस्तकला से हमारा अभिप्राय स्वाभाविक अपनत्व है। उसकी रचना के लिए हमें तरह-तरह की कला विधाओं की खोज नहीं करनी पड़ती।

ऐसी लोक कला शब्द का प्रयोग पूर्वग्रह या संदर्भ के अनुसार भिन्न अर्थों में किया जाता है, जिससे लोक कला का सच्चा एवं रूप क्या है, यह समझना मुश्किल पड़ता है। शब्दशः देखा जाए तो लोक कला का अर्थ होता है —लोक यानी मानव जाति की कला और इस विचार से आदिम कला से लेकर आधुनिक कला तक की सभी कलाओं को लोक कला माना जाना चाहिए। आदिम कला में कभी ऐसी कृतियां दिखाई देती हैं जो पूर्णतया आधुनिक कलाकृति जैसी होती है।

लोक कलातर्गत विभिन्न कृतियों के केवल दृश्य रूपों का परिशीलन किया जाए तो उसमें ऐसी कृतियां आती हैं जो सर्वथा आदिम कला जैसी प्रतीत होती हैं और कुछ ऐसी भी कृतियां दिखाई देती हैं जिनका रूप श्रेणियां परंपरागत कला के समान या आधुनिक कला या नैसर्गिकतावादी कला के समान होता है। इस स्थिति में लोक कला का पृथक वर्गीकरण करने की क्या आवश्यकता है, क्या आधार है। इसकी विवेचना करनी होगी। यदि लोग कला अन्य कलाओं से सामानता ढूंढने की दृष्टि से निरीक्षण करेंगे तो क्या दिखाई देता है। त्योहारों पर बनाई जाने वाली माँडने या होई जैसी आकृतियां आदिम कला में भी मिलती हैं लोक कला की मूर्तियां कभी आदिम कला के समान दिखाई देती हैं तो कभी भारतीय मध्ययुगीन मंदिरों के अनगढ़ मूर्तियों के समान आदिम कला एवं लोक कला दोनों में उत्कृष्ट नैसर्गिक रूप की मानव कृतियां मिलती हैं लोक कला में निर्मित मुख्याओं में नैसर्गिक आधुनिक आदिम एवं परंपरागत सब तरह के रूप देखने को मिलते हैं।

अब लोक कला की ऐसी कौन सी विशेषताएं हैं जिनके कारण उसकी अन्य कला प्रकारों से अपनी भिन्न रूप में पहचान होने लगी। यह भी देखना जरूरी है अधिक सभ्य व मुख्यताः कृषि जीवन पर आधारित सुस्थिर व समृद्ध समाज की धार्मिक कल्पनानुसार प्रयुक्त प्रतीकों से व समान आकारों को निरंतर दुहराते रहने से लोक कला में जो रूढ़िवादिता आती है उसे दरी कला से पृथक पहचान आसानी से की जा सकती है। यद्यपि क्षेत्र व धार्मिक मान्यता में अंतर के अनुसार इन प्रतीकों व अकारों

में भिन्नता पाई जाती है। लोक कला में जयामितियों आकृतियां ज्यादातर घरेलू धार्मिक चित्रण तक सीमित रही व पटचित्रों देवताओं के चित्रों व मूर्तियों पर नैसर्गिक रूप का प्रभाव बढ़ता गया। वैसे धार्मिक जयामितिय प्रतिकों का प्रयोग लोक कला में सब तरह की कलाकृतियों में किया जाता रहा है। इस तरह जहां आदिम कला आत्मकेंद्रित नहीं होते हुए उसमें आधुनिक कला के समान कलाकार के सृजनशील व्यक्तित्व को कुछ स्वतंत्रता रहती है। वहां लोक कला अनुशासित वह परंपरानिष्ठ होती है। धार्मिक व सामाजिक उद्देश्यों के प्रति समर्पित लोक कलाकार आधुनिक कलाकारों के समान व केवल आत्मसंतोष के लिए चित्रण नहीं करता। लोक कला आधुनिक कला के समान कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति मात्र न होकर जनमानस की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

कला का सबसे प्रमुख कार्य है मानव को आत्मिक शांति प्रदान करना। महात्मा गांधी ने यहां तक कहा है जो कला आत्मा को आत्मदर्शन करने की शिक्षा नहीं देती वह कला नहीं है। इस कार्य में कला तभी सफल हो सकती है जब उसके साथ दर्शक का सहयोग व भावनिक तादाम्य में हो सके। लोक कला का सबसे महान गुण यह है कि बौध्दगम्य व लोगों की भावनाओं के प्रति नितान्त जागरूक होने से कार्य की सफलता में उसे कोई कठिनाई नहीं होती।

हर कला की अपनी विशेषताएं होती हैं। व उन विशेषताओं के साथ ही उसको विकसित होना देना चाहिए जिससे विश्व सौंदर्य की बहुरंगी उत्साहवर्धक विविधता बनी रहेगी। विश्व की कला में सृजनशील चैतन्य को गतिमान रखने के लिए प्रेरणास्पद विविधता का होना जरूरी है।

लोक कला वह कला है जो स्व-प्रशिक्षित कलाकारों द्वारा बनाई गई है। यह कला आमतौर पर उपलब्ध सामग्रियों से बनाई जाती है और इसमें ऐसे विषय होते हैं जो क्षेत्रीय रूप से या कलाकार के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

लोक कला से तात्पर्य उन लोगों द्वारा बनाई गई वस्तुओं से है जो औपचारिक ललित कला परंपरा में प्रशिक्षित नहीं है। उन्होंने ने कला अकादमियों में अध्ययन नहीं किया या प्रशिक्षित कलाकारों से नहीं सीखा। लोक कला में पेंटिंग, मिट्टी के बर्तन, मूर्ति कला (विशेष रूप से लकड़ी जैसे— बत्तख के फंदे) रजाई जैसे — कपड़े, वेदर वैन जैसी धातु की कलाकृतियां और अन्य चीज शामिल हो सकती हैं।

पूरे इतिहास में लोग अक्सर ग्रामीण क्षेत्र से हाथ से वस्तुएं बनाते थे। खुद की कुछ करना सिखाते थे या अपने आसपास के लोगों को देखकर सीखते थे। कौशल पीढ़ियों से आगे बढ़ते रहे। बहुत सारी लोक कलाएं लकड़ी, धातु, मिट्टी या पाई जाने वाली सामग्री, कपड़े के टुकड़े या धातु के कबाड़ जैसी बेकार चीजों से बनी होती हैं, जो दोबारा इस्तेमाल के लिए उपलब्ध होती हैं।

लोक कला कपड़े से भी बनाई जा सकती है। इसका एक उदाहरण है 'बर्ड ऑफ पैराडाइस', जो रजाई का ऊपरी हिस्सा है। रजाई का विस्तृत सजावटी चेहरा। इसे एक साथ सिल दिया गया है लेकिन इसे बैटिंग (रजाई को गर्माहट देने वाला हिस्सा) में रजाई बनाने का इंतजार है।

यह विस्तृत डिजाइन 1858 और 1863 के बीच अल्बानी न्यूयॉर्क के पास बनाया गया था। यह कपास, ऊन और रेशम से बना है। स्याही और रेशम की कढ़ाई के साथ और घोड़ा, पक्षियों, बिल्लियों, कुत्तों और यहां तक की एक हाथी की एक रंगीन आकर्षक श्रेणी को दर्शाता है। महिलाओं के समूह कभी-कभी रजाई बनाते थे और उन्हें महत्वपूर्ण जीवन की घटनाओं को चिह्नित करने के लिए दोस्तों और परिवार को देते थे। वे एक उपहार, कला और गर्म जोशी सभी को एक साथ मिल सकते हैं।

लोक कला के ब्रह्म रूप में बिना कोई विशेष परिवर्तन हुए पीढ़ियों तक चलती आती है। भजन, कीर्तन, महिलाओं के गीत, रामलीला, कृष्ण लीला, पांडव कथा, खेत खलिहानों में एवं काम करते वक्त गाये जाने वाले गीत, पौराणिक एवं ऐतिहासिक वीर गाथाओं का मंचन, समूह नृत्य, लोक कथाएं, दादी की कहानीयां, धार्मिक संस्कारों पर बनाए जाने वाले चित्र, आकृतियां, देवताओं के चित्र, भित्तिचित्र, वस्त्रों के डिजाइन सब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को जमीन जायदाद या अमूल्य संपत्ति के सामान जैसे के तैसे हस्तांतरित होती आई हैं।

आधुनिक कला के समान जिसमें दिन रात रूप परिवर्तन की होड़ लगी रहती है। लोक कला में रूप परिवर्तन को ई महत्व नहीं रखता। इन उद्देश्यों को लेकर लोक कला का जन्म व विकास हुआ एवं उसको जो सफलता मिली उस पर विचार करेंगे तो लोक कला में रूप परिवर्तन की ओर विशेष ध्यान क्यों नहीं दिया जाता, यह आसानी से सक्षम में आएगा। लोक कला न केवल लोगों के धार्मिक कार्यों व उत्सवों में बल्कि दिन-दैन जीवन में भी घुलमिल कर उनकी धार्मिक एवं मांगलिक भावनाओं एवं सौंदर्यप्रियता की पूर्ति करती है। लोक कथाएं, पौराणिक कथाएं, व वीर कथाएं उनके सामने जीवनपयोगी ज्ञान का भंडार खेलती हैं व प्रेरणा स्रोत होती है।

अतः इस समाज योगी कार्य में जिससे व्यवधान उत्पन्न हो, ऐसे परिवर्तन को कैसे स्थान दिया जा सकता है। बाह्यरूप भी भावजीवन की आंतरिक तहों तक पहुंच कर उसे काफी प्रभावीत करते हैं और जब लोक कला का मूल उद्देश्य ही लोगों के भावजीवन के श्रेयस्कर दिशा में विकसित करना होता है, तब उसमें इस तरह के नवीन रूप का अंतर्भाव कैसे स्वीकार्य हो सकता है, जो उसके मूल उद्देश्य को ही आघात पहुंचाएं।

लोक कला का अभिप्राय देश के संपूर्ण समाज से हैं। लोक के समानार्थी अंग्रेजी शब्द "फाऊ" की उत्पत्ति एम्लो सैक्शन शब्द वितम से हुई। जर्मनी में यह अवसा के रूप में प्रचलित है। ऋग्वेद में लोक शब्द का प्रथम अर्थ 'स्थान' मिलता है।

संस्कृत में लोक शब्द का अर्थ है – देखने वाला। अतः समस्त जन समुदाय जो कार्य को करता लोक कहलाएगा।

➤ लोक कला की परिभाषा :-

➔ भरत मुनि :- इनके द्वारा रचित ग्रंथ 'नाट्य शास्त्र' भारतीय नाट्य और काव्यशास्त्र का आदि ग्रंथ है। इसमें सर्वप्रथम रस सिद्धांत की चर्चा की तथा इसने प्रसिद्ध सूत्र विभावानुभाव, संचारी भाव सहयोगद्रस निष्पत्ति की स्थापना की गई है। इसमें नाटक शास्त्र, संगीत शास्त्र, छंदशास्त्र, अलंकार, रस आदि सभी का सांगोपांग प्रतिपादन किया गया है। भरत मुनि के ग्रंथ "कामसूत्र" में 64 कलाओं का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार से जैन ग्रंथ में 72 कलाओं का उल्लेख किया गया है। दैनिक जीवन में किसी विशेष रीति अपनी विलक्षणता से की गई अनोखी क्रिया को कला कहा जाता है।

➔ कश्मीरी पंडित शेमेन्द्र :-

यह उपलब्ध ग्रन्थों में कविवर की अंतिम रचना है। इसकी रचना राजा अनंत के उत्तराधिकारी सम्राट कलश के राज्य काल 1066 ईस्वी में हुई। इस काव्य से शेमेन्द्र की उत्कट विष्णु भक्ति का परिचय प्राप्त होता है। भगवान बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार मानकर उनके चरितकथन का यही आदि काव्य है। कश्मीरी पंडित शेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ कला विलास में तीन सौ से अधिक कलाओं के नाम दिए हैं। इन सभी ग्रन्थों में एक विद्वान के मत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतवर्ष में उन सभी दैनिक क्रियाओं को कला माना गया है जिसमें चतुराई, कुशल, पता, चमत्कार, विविधता, हस्तलाभ आदि को देखा गया है।

अनेक कालों में अनेक विद्वानों ने कला की परिभाषाएं दी हैं, उनमें से जो प्रसिद्ध है वे इस प्रकार हैं :-

1. प्लेटो :-

प्लेटो प्राचीन ग्रीस के शास्त्रीय काल के दौरान एक अथीनियान दार्शनिक थे। उन्हें न केवल इस समय का बल्कि सभी समय का सबसे महान दार्शनिक बताया गया है। प्लेटो दर्शन है, दर्शन प्लेटो है। प्लेटो कला कई प्रमुख सिद्धांतों का स्रोत है। ये सिद्धांत उसके प्रसिद्ध संवाद और उसके कार्यों में बिखरे हुए हैं। गणतंत्र, संगोष्ठी, मेहो, कानून आदि। प्लेटो सुकरात के शिष्य थे। उनमें बहुआयामी

प्रतिभा थी। उन्होंने जीवन के लगभग सभी प्रमुख मुद्दों पर अपने विचार और राय व्यक्त की है। प्लेटो के अनुसार कला आपको परम सत्य से दूर ले जाती है। प्लेटो के अनुसार कला सत्य की अनुकृति हैं।

2. अरस्तु :—

अरस्तु प्राचीन यूनान के शास्त्रीय काल के एक यूनानी दार्शनिक और बहुश्रुत थे। 20 वर्षों तक प्लेटो की अकादमी में उनके शिष्य रहे। अरस्तु को प्लेटो का सबसे अच्छा छात्र माना जाता है। उन्होंने एक छात्र के रूप में शुुरुआत की एक शोधकर्ता और एक अध्यापिका बन गए। जब प्लेटो की मृत्यु हुई तो उन्होंने अकादमी छोड़ दी। अरस्तु की बौद्धिक क्षमता बहुत विस्तृत थी। उसमें विज्ञान और कला दोनों ही शामिल थे। अरस्तू ने अनुकरण शब्द को नये आयाम और नये महत्व दिए थे। प्लेटो के विपरीत अरस्तु अनुकरण को सकारात्मक महत्व के साथ बदल देता है। अरस्तु कहते हैं कि कविता एक कलात्मक अनुकरण है और कला रचनात्मक कल्पना है। अरस्तु के अनुसार कला अनुकरण है।

3. रवींद्रनाथ टैगोर :—

रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा कि कला मनुष्य की सृजनात्मक आत्मा की वास्तविकता की पुकार का जवाब है। कला वास्तविकता से गहराई से जुड़ी है, जो टैगोर के अनुसार मनुष्य, शाश्वत, निर्माता से मिलकर बनी है। वास्तविकता जो सभी कलाओं का केंद्र है, एक ऐसे मनुष्य की वास्तविकता है जो सार्वभौमिक और शाश्वत है। कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है।

4. रस्किन :—

कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव आह्लाद को अभिव्यक्त करता है। पार्क्स ने कहा : “कला अब यूरोपीय चित्रकला के सदियों के प्रभुत्व से मुक्त होकर एक सौंदर्य और धार्मिक खोज दोनों बन सकती है”। यह वह जादुई मिश्रण था जिससे रस्किन ने तैयार किया था और जिसे अमेरिकी कलाकारों ने पूरी तरह से नशीला पाया।

5. हीगल :—

कला अधिभौतिक सत्ता को अभिव्यक्त करने का माध्यम किया। हेगल के अनुसार कला आत्मा की स्वयं की समझ को भी अभिव्यक्त करती है। हालांकि यह दर्शन और धर्म से अलग है क्योंकि यह आत्मा की आत्म-समझ को शुद्ध अवधारणाओं या विश्वास की छवियों में नहीं बल्कि उन वस्तुओं के माध्यम से व्यक्त करती है जिन्हें मनुष्यों द्वारा इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से बनाया गया है।

4. प्रकाश वीरेश्वर, नूपुर शर्मा, कला दर्शन, कृष्णा हाउस 11, शिवाजी मार्ग, मेरठ — 250001, पृ०. सं०. 148, 183

5. डॉ०. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पूर्व आचार्य, चित्रकला विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, पृ०. सं०. 352 16

6. फ्रायड :- कला दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप है। कला सिद्धांत और मनोविशेषण दोनों ही छवियों का अध्ययन है – वास्तविक और काल्पनिक – एक गहरे अर्थ को उजागर करने के लिए। हालांकि फ्रायड के अचेतन मन के सिद्धांतों तक कला इतिहास का अध्ययन और छवियों की चर्चा लगभग पूरी तरह से छवि के तैयार उत्पाद के संदर्भ में थी।

7. वासु देवशरण अग्रवाल :-

कला किसी विचार या कल्पना को दृश्य रूप देता है। वासु देवशरण अग्रवाल भारत के इतिहास, संस्कृति, कला एवं साहित्य के विद्वान थे। वे साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हिंदी गद्यकार हैं। स्वतंत्रता के बाद दिल्ली में स्थापित राष्ट्रीय पुरातत्व संग्रहालय की स्थापना में इनका प्रमुख योगदान था।

8. फ्रोचे :-

कला बाह्य प्रभावों की अभिव्यक्ति है। फ्रोचे की मान्यता है कि कला अन्तर की भावना या सहज ज्ञान है और कलात्मक वस्तु का अस्तित्व उसके अभिव्यजित होने में है। किसी कविता या सुंदर प्राकृतिक दृश्य को हम उस समय सुंदर मानते हैं जब हमारी भावनाएं उसमें अभिव्यजित होती हैं तथा हम उन वस्तुओं में अपनी भावनाओं के अधिष्ठान करते हैं।

9. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी :-

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक संबंध में लिखा है कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या गांव नहीं है, बल्कि गांवों एवं नगरों में फैली यह समूची जनता है। जिनका व्यवहारिक ज्ञान का आधार नहीं है। ये लोग नगर से परिष्कृत रुचि संपन्न तथा संस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल एक अकृत्रिम जीवन से अभ्यस्त होते हैं। कला का अर्थ : कला शब्द का सबसे पहले और प्रामाणिक प्रयोग संभवतः भारत के नाट्य शास्त्र में मिलता है। जहां ज्ञान, शिल्प, विद्या तथा कला को पृथक् माना गया है। “न तज्ज्ञानं न ताच्छिच्छलय न सा विद्या न सा कला है”।

ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण करने में सूरज, चांद, तारे, पौधे, फूल, फल, पशु-पक्षी और मनुष्य बनाएं और सभी का सुंदर रूप प्रदान किया। मनुष्य ने अपने शारीरिक, मानसिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खाना, कपड़ा, मकान, संगीत और धर्म की उत्पत्ति की और यह प्रयास किया कि ये सभी वस्तुएं ईश्वर की बने वस्तुओं की भांति सुंदर हो। अब यह मनुष्य की प्राकृति बन गई है कि वह सतत इसी प्रयास में लगा रहता है कि प्राकृति की भांति सुंदर वस्तुओं का निर्माण करें।

मनुष्य के इसी प्रयास की क्रिया और कृति को ही कला कहते हैं। कला किसी भी माध्यम द्वारा भाव आकांक्षाओं एवं प्रेरणाओं के ऐसे व्यक्तिकरण को कहते हैं जो व्यक्ति को आनन्द प्राप्त करें।

लोक कला भी हस्तकला के अंतर्गत आती है, हस्तकला से हमारा अभिप्राय स्वाभाविक अपनत्व है। उसकी रचना के लिए हमें तरह-तरह की कला विधाओं की खोज नहीं करनी पड़ती।

मेरा जन्म ग्रामीण आंचल में हुआ। मैं बचपन से ही इसी वातावरण में पली बड़ी। इसी कारण मेरा लोक कलाओं की तरफ ज्यादा आकर्षण रहा। बल्कि यह हमारे दैनिक जीवन में होने वाले साधारण कामों में पाई जाती है। कला को सीमित नहीं किया जा सकता। यह हर जगह व्याप्त है। हम अपने द्वारा किसी भी वस्तु का निर्माण करें तो वह हस्तकला के अंतर्गत आएगा जैसे गांव में कुछ महिलाएं अपने खाली समय का सदुपयोग करने अपने शौक के लिए करती हैं। वह अनजाने में ही ऐसी कई वस्तुओं का निर्माण करती हैं जो की हस्तकला में ही आती हैं। जैसे – पखियाँ, मजियाँ, फुलकारी, दरियां, मिट्टी के बर्तन, चूल्हे आदि बनाना सभी के अंतर्गत हस्तकला है।

मुझे बचपन से ही यह सब देखना बहुत अच्छा लगता था कि लोग किस प्रकार यह सब करते हैं। ज्यादातर यह काम महिलाएं करती हैं। वे अपने घर का सारा काम करने के बाद इन कामों को करती हैं। जब मैं बचपन से ही गांव में जाती थी तो मैं सभी औरतों को अलग-अलग तरह की फुलकारी निकालना व दरियों को बनाते देखकर मेरा मन बहुत खुश होता था और मैंने सोचा नहीं था कि मैं इस विषय को लेकर एक लघु शोध भी लिखूंगी। मैं आज जो लघु शोध लिख रही हूँ वह केवल अपनी संतोष मैम की वजह से। अगर वो हमें उत्साहित न करती तो मैं कभी भी लिख न पाती। हस्तकला का विकास बिना किसी आयोजित प्रयास के अपने आप होता रहा है, किंतु आज का युग मशीनी हो गया है।

पहले लोग अधिकतर हाथ द्वारा कढ़ाई करते थे, बल्कि आज के समय में भी कई महिलाएं हाथ द्वारा कढ़ाई करती हैं। अब कढ़ाई भी मशीनों द्वारा भी होने लगी हैं। पर कहीं न कहीं आज भी हमारे पिंड में हस्त कला को अधिक महत्व दिया है। परंतु आज के समय में लोगों ने अधिक काम मशीनों द्वारा करना शुरू कर दिया है, जिससे समय भी बचता है और काम भी जल्दी होता है। पर इसका मतलब यह नहीं है कि लोगों ने अपने हाथों द्वारा काम करना बंद कर दिया हो। आज भी औरतें फुलकारी को अपने हाथों द्वारा बनाते हैं और वह भी बहुत जल्दी बना लेती हैं। ऐसा कोई भी काम नहीं है जो हाथों द्वारा नहीं दिया जाता हो। सभी कार्य हस्तकला के अंतर्गत आते हैं और यह कला न तो कम हुई है और न ही कम हो सकती है। जब तक हमारा जीवन रहेगा तब तक हस्तकला चलती रहेगी।

पंजाबी लोक कलाएँ

यदि आप लोक कलाओं को ध्यान से देखेंगे तो आपको समझ आएगा कि पंजाब के लोग कलाकार और यहां तक की आम लोग भी जब अपनी कलाकृतियां बनाते हैं चाहे वह लकड़ी का काम हो, सिलाई का हो, सुई, हुक और धागे से कढ़ाई हो, मिट्टी बनाना और सजावट करना हो, घर के बर्तन या चूल्हे किनारों और दीवारों पर हो सकते हैं। उनकी कला केवल युगों, रूढ़ियों और रीति-रिवाजों और व्यक्तिगत दृष्टि के बारे में नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक समूह की सामूहिक सोच इस कला में व्यक्त होती है। इस अभिव्यक्ति के लिए लोगों द्वारा जिन युगों का उपयोग किया जाता है। वे प्रतिकों के बिना आध्यात्मिक वस्तुओं और प्राणियों को एक कुशल कलाकार की तरह बनाने की कोशिश नहीं की गई थी, लेकिन उनकी संरचना की विशिष्टता उनकी सुंदरता और सृजन का गुण है। यदि इस कला को स्पष्ट रूप से देखा जाए तो समझ आएगा कि कपड़े की कढ़ाई, बर्तनों की सजावट के लिए बनाई गई इन छवियों के मोटिफ ग्राफ और खाने हमें पूरे ब्रह्मांड का दर्शन कराते हैं, यह लोगों का ब्रह्मांड है, वैज्ञानिकों का नहीं।

जिसे हमारे पूर्वजों ने देखा होगा, सोचा होगा और इस पेंटिंग में बनाया होगा, कौवे, तोते, गोरेया, मोर, कबूतर, कुत्ते आदि जानवर पंजाबी आदमी के साथ उनके रिश्ते की गवाही देते हैं। ये पशु-पक्षी और जीव-जंतु हमारे ही मिथको, कविदतियों, परियों की कहानियों से रूपांतरित होकर हमारे चित्रात्मक कला में लोक रूढ़ियों के रूप में प्रकट हुए हैं। लोग कला के बारे में अनरेस्ट फाइजर लिखते हैं — सभ्यता के शुरुआती दौर में कला का सौंदर्यशास्त्र से कोई लेना-देना नहीं था।

अतः यह कहा जा सकता है कि लोक कला का सौंदर्य उसके रूढ़ियों में है न की उसकी रचना में। लोक कला का जन्म जीवन की मूलभूत भौतिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। आदिम कला मनुष्य के उत्पादक या आर्थिक प्रदर्शन का एक अभिन्न अंग थी।

लोक कला प्राचीन काल से ही मानव व्यवहार, मानवीय सोच और प्राकृतिक घटनाओं का अनुकरण है। उन्होंने इन घटनाओं को देवी शक्ति के रूप में लिया और उसकी पूजा करना शुरू कर दिया। इस उपसना में उनकी पूजा और अनुकरण के रूप प्रारंभ हुए। जिसे उन्होंने ने अपने कला के माध्यम से सार्थक एवं प्रत्यक्ष रूप देने का प्रयास किया। लोक कला जीवन की आवश्यकताओं से उत्पन्न होने के कारण लोगों के जीवन और संस्कृति के अनुरूप हैं।

लोक कला गांव के लोगों की अंतर्निहित इच्छाओं, भावनाओं और अनुभवों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है और यह कलात्मक अभिरुचियाँ सदियों से फलती-फूलती रही हैं। पीढ़ियों का अनुभव इस कला को आकर दे रहा है। भले ही लोक कला सरल दिखती हो, लेकिन इसमें कला का एक सशक्त

कवि है जो इसकी छवि को आकर्षक और प्रभावशाली बनाता है। अतः लोक कला मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ कुछ मानसिक आवश्यकता भी हैं, जो सौंदर्यात्मक आनंद से तृप्त होती हैं। सौंदर्यबोध का पालन करने की इच्छा ने कला जन्म दिया। वह कला जिसे प्राचीन काल से अनेक कारीगरों ने अपने अनुभव से परिष्कृत, पकाया और परिमार्जित किया और जो परंपराओं की धारा का अंग बन गई, विगसी लोक कला कहलाती है। लोक कला किसी विशेष प्रशिक्षण से नहीं सीखी जाती बल्कि हम इसे परंपराओं से ग्रहण करते हैं। लोक कला का मूल्यांकन नहीं किया जाता और इसलिए इसमें कोई प्रदानुकम नहीं है। लोक कला परंपराओं से हटकर रूपांकन प्रस्तुत करती है।

❖ लोक कलाओं की विविधता :-

➔ मूर्ति :-

पंजाब की गांधार शैली मूर्ति कला में बहुत लोक प्रिय है। यह मूल्यतः लोक शैली बौद्ध काल में ग्रीक और ईरानी शैलियों के प्रभाव में विकसित हुई। गांधार शैली की प्रमुखता विशेषता यह थी कि मूर्तियों में आकृतियों और अंगों की परिश्रमपूर्वक तराशा और परिष्कृत किया गया था।

➔ चित्रकारी :-

आम जनता द्वारा लोक प्रतिरूपों में जाने वाली चित्रकारी अथवा कलाकारों द्वारा लोक प्रतिरूपों एवं सामग्रियों पर की जाने वाली चित्रकारी लोक चित्रकला कहलाती हैं। पंजाब में दो प्रकार की चित्रकला पाई जाती है :-

1. साधारण पेंटिंग :-

ये चित्र समान्य ग्रामीण महिलाओं द्वारा पांडुलिपि हुई दीवारों पर चूने, गेरू या काले रंग से बनाए जाते हैं। माँ, या चंडी माई के अलावा बिल्ली, खरगोश, मोर, हिरण, गोरेया, तोता, बाग, शेर, हाथी, मिरगा या मजाकिया लहजे में मूँछों वाला आदमी, दौड़ता हुआ कुत्ता, कबूतर आदि के पैटर्न हैं। इन चित्रों में रूपांकनानों को प्रतीकात्मक रूप से दर्शाया गया है।

2. परबीन :-

यह कलाकृति अनुभवों और कुशल कलाकारों द्वारा एक विशिष्ट छवि रंगों उपयोग करके बनाई जाती है। इसके माध्यम से लोक परंपराओं का चित्रण होता है। महाभारत और रामायण के दृश्यों को दर्शाया गया है।

3. सिख साम्राज्य के दौरान चित्रकारी :-

सिख शासन की अवधि के दौरान पंजाब की प्रवीण पेंटिंग बहुत लोकप्रिय हो गई। पहाड़ी कलाकारों ने अपने सिख संरक्षकों के सौंदर्यवादी संवाद को ध्यान में रखते हुए पेंटिंग बनाना शुरू कर दिया और उनमें से कुछ कला शैलियाँ जल्द ही लोकप्रिय हो गई। परबीन कला, पतनशील कला की ओर बढ़ने लगी। इसका कारण यह था की पहाड़ी चित्रकला अपने आध्यात्मिक परंपरा से पूरी तरह टुट चुकी है।

➔ जलीय कला :-

मिट्टी से बर्तन बनाने की कला को कुंभकारी कला कहा जाता है। मुसलमानों के आगमन के साथ कुंभकारी की कला खूब फली-फूली, क्योंकि मुसलमान धातु के बर्तनों की तुलना में मिट्टी के बर्तनों का अत्यधिक उपयोग करते थे। कुंभकारी की कला के विकास में मुस्लिम मान्यताओं ने प्रमुख भूमिका बनाई। पहले पंजाब के मिट्टी के बर्तन रोगनी नहीं करते थे। रोगनी और रंगीन मिट्टी के बर्तनों का चलन भी मुस्लिम काल से शुरू हुआ और यह कला मूल रूप से ईरानी है। हमारी कोई लोक कलाएं मिट्टी से जुड़ी कलाओं के समान हैं। पंजाबी सुआणियाँ मिट्टी को आधार बनाकर इन लोक कलाओं को व्यक्त करती हैं। इन कलाओं ने यहां उनके आंतरिक गुणों को उजागर किया वहीं उनके मानसिक और शारीरिक रूप से अधिक जागरूक भी बनाया। इस श्रेणी के अंतर्गत लोक कला का विवरण इस प्रकार है :-

1. मिट्टी की दीवार पर पौधे लगाना :-

यह हमारी विरासत की अत्यंत लोकप्रिय कला रही है। ये कलाकार अपने घरों की दीवारों पर विभिन्न प्रकार के पौधे लगाकर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। स्त्रियां घर की कच्ची दीवारों पर सफेद रंग से चित्रकार करती और उस पर विभिन्न प्रकार के कबूतर, तोता, मोर, गौरेया, गुड्डे-गुडियाँ, आदि चित्र बनाती। इस तरह जहां वे अपने घरों की दीवारों को अलग-अलग छवियों से सजाते थे, वहीं अपने अंदर छिपी कला के नमूने भी बिखरते होते नजर आते थे। लेकिन आज जब मिट्टी से बनी दीवारों नहीं रही, तो पौधे कहाँ हैं?

2. मिट्टी बनाना :-

पुराने दिनों में मिट्टी का उपयोग आटा, चावल, अनाज डालने के लिए किया जाता था। हमारे पूर्वजों ने इन मिट्टी को बनाने की कला से अच्छी तरह परिचित थे। इन्हें भी एक या दो चटाईयों से जोड़कर बनाया जाता था। चिकनी मिट्टी का उपयोग, मिट्टी बनाने के लिए किया जाता है। चिकनी मिट्टी गीली मानी जाती है। जब मिट्टी पूरी तरह से पानी से भर जाती है तो उसमें कुछ भुसा मिला दिया जाता है। बाद में इसे पूर्णता विकृत कर दिया जाता है। मिट्टी के मकान का निर्माण उस स्थान पर कर दिया जाता है, जहां वर्षा का भय न हो। सबसे पहले मिट्टी का फर्श बिछाया जाता है। तली के नीचे थोड़ा सा भूसा बिछाया दिया जाता है ताकि तली को जमीन से आसानी से उठाया जा सके। नीचे की ओर, ऊपर की ओर चौकोर आकार में मटिया का निर्माण किया गया है। तीन-चार फीट तक पहुंचते पहुंचते मिट्टी के मुंह बन जाते, इनका मुँह गोलाकार हैं। जिनका व्यास तीन-चार इंच होता है। चाटी, मटके या दुधने का ऊपरी भाग तोड़कर उनके मुंह पर रख दिया जाता है। फिर उस पर एक गेंद लपेटी जाती है। पूर्ण निर्माण के बाद उन्हें निरादीकृत किया जाता है और उसमें बेल के पौधे डालकर विभिन्न प्रकार की डिजाइनिंग की जाती है। लेकिन आज यह लोक कला हमारे जनमानस से विस्तृत होती जा रही है। घरेलू उपयोग के लिए मटिया बनाने की कला से वे पूरी तरह अनभिज्ञ होते जा रहे हैं।

3. दलाल बनाना :-

प्राचीन काल में श्रेणर का उपयोग अनाज भंडारण के लिए किया जाता था। उस समय आज की तरह विभिन्न धातुओं से बने ड्रम उपलब्ध नहीं होते थे। लोग अपनी कला के अनुसार अनाज भंडारण के लिए भरौला बनाते थे। भरौला बनाने के लिए मिट्टी की जाती है और गीली मिट्टी में भूसा अच्छी तरह मिलाया जाता है, फिर इसे तेज किया जाता है। भरौला बनाने के लिए उर्वरक मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। भरौला बनाने के लिए सबसे पहले इसका फर्श बिछाया जाता है। नीचे का क्षेत्र समतल रखा गया है। इस स्थान पर थोड़ा सा भूसा बिखेर दिया जाता है, ताकि भरौला जमीन पर चिपके नहीं। भरौला घेरे की चौड़ाई अनाज की क्षमता के अनुसार रखी जाती है। भरौला परत की मोटाई डेढ़ इंच रखी जाती है ताकि इसे आसानी से न मिल सके। इसे प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके बनाया जाता है और तेज धूप में सुखाया जाता है। इसमें शीर्ष पर ढाई इंच व्यास का एक छेद होता है और एक छेद डेढ़ इंच का होता है। नीचे से ऊपर ढाई इंच का व्यास का घेरा बनाकर उस पर विभिन्न प्रकार के पौधे लगाए जाते हैं। लेकिन आज हमारे घरों में इसका अभाव साफ दिखता है। भरौला हमारी

जरूरतों को पूरा करता था। इस लोक कला को हमारे पूरे पंजाबी जगत से भुला दिया गया है। आज इस ड्रम का स्थान विभिन्न प्रकार के धातु , ड्रमों ने ले लिया है।

➔ फुलकारी :-

फुलकारी पंजाबी कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। फुलकारी पैटर्न और डिजाइन को अन्य कढ़ाई के लिए भी अपनाया गया है। फुलकारी शब्द का प्रयोग सभी प्रकार की कसीदाकारी के लिए किया जाता है। इस शब्द का अर्थ है – फूल खिलना।

एक फूल वाला दरवाजे से फूल तोड़ रहा है।

कोई सुबह दोस्तों से गांव जाने की तैयारी करता है।

आगे, फुलकारी के कई प्रकार हैं जैसे – तिल पत्रन, चॉप, साब्वर, गार्डन फुलकारी, निकाल और छम्मस आदि। पंजाबी चरित्र और भावना इसके आकार, रंग और आकर्षक से सन्निहित है।

फुलकारी का अंत :-

19वीं सदी के मध्य में अंग्रेज पंजाब आए। 19वीं सदी के अंत तक पंजाब ने ब्रिटिश प्रभाव को स्वीकार करना शुरू कर दिया। पंजाब में रीति रिवाज बदलने लगे। इसी प्रकार बाहरी वस्त्रों में भी खादी का चलन कम हो गया। उद्योगों के आगमन के साथ बढ़िया महीन कपड़ा अस्तित्व में आया। देश के विभाजन में फुलकारी के केंद्रों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार संपूर्ण पंजाबी समुदाय उत्तार चढ़ाव के कारण दूसरे मशीनी युग की शुरुआत के कारण हाथ की कढ़ाई का चलन कम हो गया। फुलकारी आज शायद ही कोई करता हो, बल्कि फुलकारी आज के समय में भी कई महिलाएं फुलकारी को तैयार करती हैं।

द्वितीय अध्याय

- फुलकारी का परिचय
- फुलकारी का इतिहास
- लोक कला के रूप में फुलकारी
- पंजाबी की फुलकारी

फुलकारी का परिचय

फुलकारी की बहुत प्रभावात्मक कला है जिसकी रचना इस संसार की नारियों द्वारा की गई है। यह पंजाबी नारियों की सृजना है, कोई भी नारी चाहे किसी भी अमीर विरासत से संबंध रखती है वो भी पूरे रस्मों-रिवाजों से इसका उपयोग करती है। इसका विकास पांच नदियों वाली धरती पर हुआ है। जहां पर ऋग्वेद और महान कला और साहित्य की रचना हुई।

फुलकारी मूलतः घर की महिलाओं द्वारा किया जाने वाले घरेलू काम का उत्पाद थी। जिस कपड़े पर फुलकारी कढ़ाई की जाती थी वह हाथ से काता हुआ खदर (हथकरघा से बना हुआ सदा बुनाई वाला सूती कपड़ा) होता था। कपास पूरे पंजाब के मैदाने में उगाया जाता था और कई सरल प्रक्रियों के बाद इसे चरखे पर महिलाओं द्वारा सूत में काता जाता था।

फुलकारी पंजाबी की सुई का काम, अपने खूबसूरती में सबसे खास और बेजोड़ है और कढ़ाई तकनीक विशेष रूप से पंजाब राज्यों में इस्तेमाल की जाती है। इसका मतलब है फूल शिल्प, जैसा कि फूल और कार्य शब्द से लिया गया है। फुलकारी का मतलब है सरल और कम कढ़ाई वाले शॉल या दुपट्टे और पूरी तरह से कढ़ाई वाले दुपट्टे जिन्हें बाग कहा जाता है।

एक वंशानुगत कढ़ाई परंपरा फुलकारी ऐतिहासिक रूप से वर्तमान भारत और पाकिस्तान में पंजाब क्षेत्र की महिलाओं द्वारा प्रचलित थी। यह गिनती के धागे की कढ़ाई का एक रूप है जो ज्यामितीय और प्राकृतिक रूपांनों के अपने साफ-सुथरे नियमित पैटर्न से पहचाना जाता है, जिसका नाम हिंदी और पंजाबी में 'फूलों' का काम है। कढ़ाई को पारंपरिक रूप से इस क्षेत्र की महिलाओं के लिए एक अभिन्न कौशल माना जाता था और फुलकारी वस्त्र उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं विशेष रूप से विवाह से निकटता से जुड़े हुए थे। मध्ययुगीन और औपनिवेशिक काल में लड़कियां शुरू में अपने लिए ओढ़निया, स्कार्फ जैसे छोटे कपड़ों की कढ़ाई करना सिखती थीं और जैसे-जैसे वह बड़ी होती जाती थी अपने परिवार की महिलाओं की युवा पीढ़ी को सौंपने के लिए चादर या शॉल बनाती थी। फुलकारी शॉल अक्सर शादी के दिन दुल्हनों को उपहार में दी जाती हैं। खासकर माँ के रिश्तेदारों द्वारा फुलकारी दुनिया में महिलाओं द्वारा बनाई गई सबसे रचनात्मक चीजों में से एक है। यह पंजाब की नारियों द्वारा बनाई गई हैं। ये वो नारी है जो सदियों से चली आ रही है। सांस्कृतिक विरासत से संबंध रखती हैं और पंजाब की उपजाऊ पांच नदियों वाली धरती जहां पर कला साहित्य और ऋग्वेद का जन्म हुआ अगर हम बारीकी से सभ्यता को देखते हैं तो लोगों के जीने के तरीके में उनका कलात्मक नजरिया झलकता है।

फुलकारी के डिजाइनों में फूलों के आदमी, औरतें, जानवरों और पंजाबी लड़की की तस्वीरों को खास रंग में बनाया जाता है, जिससे पंजाबी साहित्य की झलक मिलती है। इसके बारे में हमने कोई पारंपरिक विशेषण का तरीका नहीं अपनाया। ये सब हमारी यह सभ्यता पर आधारित है। ये धागे की कढ़ाई पर आधारित है। संकेतिकता में दो बड़े बौद्धिक विचार हैं। उत्तर अमेरिका के महाद्वीपीय प्रभाव पर “सी.एस.पीयर्स” के द्वारा लिखा गया, पटियाला में के नेतृत्व में आधारभूत ढांचा और तकनीक बहुत ही संचार ढंग से महाद्वीपीय आवेग में विकसित हुई, जोकि कुछ बड़े शोधकर्ता जैसे कि क्लाउड लाइ स्ट्रॉस में रॉलैंड बंधु साहित्यक में आलोचना में जैक्स और लैकन साइको विशेषण की रचना पर आधारित थी। इस शोध में हम क्लाउड लाइ स्ट्रॉस के मौलिक कला क्षेत्र में रॉलैंड के वस्त्र विश्लेषण चिन्हित विधि के क्षेत्र में किए गए शोध कार्य से बहुत प्रभावित हुए। हमारे लिए एच.एस.गिल. का बेजोड़ नमूना फुलकारी बठिंडा वाली एक ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा हम फुलकारी के बारे में सारी दुनिया से संवाद कर सकते हैं। फुलकारी को भाषा भी समझा जा सकता है।

एच.एस.गिल. के लिए प्रीतों की फुलकारी सिर्फ एक ओढ़नी नहीं है। जिसे शुभ मौके पर लिया जाता है। उसके ऊपर बहुत ही निपुणता से कढ़ाई इस तरीके से की जाती है जिससे इसके सांस्कृतिक भाग्य की भाषा पता चलती है। इस छोटी सी दुनिया में संस्कृति और कुदरत में ज्यादा दूरी नहीं है। इसकी अत्यधिक साधारणता में इसकी जागृति झलकती है। पटियाला में एच.एस.गिल के नेतृत्व में प्रतीकात्मक भाषा को पढ़ने का विकास बड़ी तेजी से हुआ और इसे लगातार होने भौतिक गतिविधियों को ध्यान में रखकर लिखते हुए कुछ महत्वपूर्ण लेखक जैसे क्लाउड लाइ स्ट्रॉस ने संग्रह का ऐ.जें जर्मनी ने भाषात्मक मिशेल फूको ने दर्शन शास्त्र में और रोलैंड बंधु साहित्य भेदभाव और जैक्स लैकन ने बौद्धिक विश्लेषण में कार्य किया। इसे पढ़कर हमारे ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। एच.एस.गिल ने बठिंडा की फुलकारी की खोज की जिसका की समाज में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

एच.एस.गिल के लिए प्रीतों की फुलकारी केवल सिर पर रखने वाला कपड़ा नहीं है जो कि केवल पवित्र और साधारण धार्मिक अवसरों पर लिया जाता है। इस धागे के साथ साधारण कढ़ाई को हमारी सभ्यता के साथ दर्शाया गया है। ये एक छोटा सा संसार है जिसमें प्रकृति हमारी सभ्यता से दूर नहीं है। इसकी साधारणता ही इसकी सुंदरता में शामिल हैं। रंगों की आकर्षकता और समानता को बहुत सुंदर ढंग से दर्शाया गया है। यदि कोई इसकी सुंदरता का अनुमान न लगा पाए तो वह इसकी सुंदरता से वंचित रह जाएगा। यह कठिनाइयों से विचित्रताओं और अमूर्त के चिन्हों से भरा हुआ है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है जिससे बहुत ही सुंदर ढंग से बनाया गया है और इसे बहुत सूझ-बूझ वाले इंसान के व्यक्तित्व से लिया गया है। इस महत्वपूर्णता की खोज करने के लिए हम मिलावट की महत्वपूर्ण का अध्ययन हम तीन भागों में करेंगे –

प्रतीकात्मक, लक्षणिकता और ध्यान।

इसमें हमारी बनावट का विरोधामान करते हुए कहते हैं कि खास तौर पर लोक कला जिसमें कि लोग अपनी सूझ-बूझ को भूलाकर अपने आप में खो जाते हैं। कहने का भाव है — फुलकारी एक ऐसी कला है जिससे कि हम ध्यान से देखें तो हम उसमें खो जाएंगे, चाहे वह इंसान कितना ही समझदार हो। अगर हम इसकी बारिकियों को ध्यान से देखें तो हमें इसकी सुंदरता का अहसास हो गया। यह फुलकारी आज से नहीं सदियों से चली आ रही है जिसे मैंने फुलकारी के इतिहास के माध्यम से दर्शाया है।

शिल्प की उत्पत्ति पर बहस होती है। कुछ विद्वानों का सुझाव है कि इस मध्यकालीन काल के अंत में जाट समुदाय द्वारा मध्य एशिया से भारत में लाया गया था। जबकि अन्य कहते हैं कि शिल्प फारसी गुलकारी कढ़ाई डिजाइनों से प्रभावित होकर पैदा हुआ था। फुलकारी कढ़ाई और इसके आसपास की परंपराओं का उल्लेख सिखों के पवित्र ग्रंथ “गुरु ग्रंथ साहिब” और 18वीं शताब्दी के पंजाबी महाकाव्य “हीर रांझा” में किया गया है।

फुलकारी कढ़ाई ऐतिहासिक रूप से कश्मीर और बंगाल से आयातित चमकीले रंग के बिना मुड़े रेशमी धागे के साथ एक चलती सिलाई का उपयोग करके की जाती है। इसमें मोटे हाथ से बुने हुए कपड़े का आधार इस्तेमाल किया जाता है जिससे खदर (या खादी) कहा जाता है। जिसमें आमतौर पर लगभग आधा मीटर चौड़ी या उससे कम पट्टियाँ एक साथ सिल दी जाती हैं। ज्यादातर मामलों में खदर को पारंपरिक रूप से पलाश (ब्यूटिया मोनोस्पर्मा) के फूलों, मजीठ की जड़ (जीनस रुबिया) या बबूल (जीनस अकेशिया) के पेड़ों की छाल से प्राप्त पौधे आधारित रंगों का उपयोग करके लाल रंग में रंगा जाता है। कढ़ाई के धागे अक्सर पीले, नारंगी या गुलाबी होते हैं। काले, भूरे और हरे जैसी गहरे रंगों का इस्तेमाल कम ही किया जाता है और नीले रंग का इस्तेमाल बहुत कम किया जाता है।

अपने नाम के बावजूद फुलकारी कढ़ाई में फूलों के अलावा जानवरों और ज्यामितीय आकृतियों का चित्रण भी शामिल है। फुलकारी में इस्तेमाल की जाने वाली पुष्प छवियों में गेंदा, चमेली, कमल और जीवन के वृक्ष की आकृतियां शामिल हैं। रेलगाड़ियां, ट्रक और कार जैसे आधुनिक रूपांकनों ने भी फुलकारी पैटर्न में अपना रास्ता खोज लिया है। गिनती धागा विधि भी फुलकारी डिजाइन को एक पुष्प समरूपता प्रदान करती है। कुछ मामलों में कढ़ाई करने वाला जानबूझकर एक छोटे से क्षेत्र में ज्यामितीय पैटर्न को तोड़ देता है, जिससे नीचे का आधार कपड़ा उजागर हो जाता है, इन्हें नजर बुटी रूपांकनों के रूप में जाना जाता है और इन्हें पहनने वाले के लिए दुर्भाग्य को दूर करने के लिए बनाया जाता है।

इस शिल्प से पारंपरिक रूप से बने शॉल और लपेटों को फुलकारी भी कहा जाता है, क्योंकि कढ़ाई उनकी मुख्य विशेषता है। फुलकारी के विभिन्न प्रकार होते हैं जो उनके आकार, शैली और औपचारिक मूल्य के आधार पर प्रतिष्ठित होते हैं। चोप जो एक उल्टी दोहरी डारिंग सिलाई के साथ बनाया जाता है, पंजाबी संस्कृति में सबसे बड़ा और सबसे अधिक अनुष्ठानिक महत्व का होता है क्योंकि यह दुल्हन की दादी द्वारा कढ़ाई की जाती है जो इस विवाह समारोह के दौरान दुल्हन द्वारा पहने जाने के लिए शादी के उपहार के रूप में प्रस्तुत करती है। अन्य में बठिंडा और फरीदकोट जिले की सैची फुलकारी शामिल है। लाल और पीले रंग में कढ़ाई की गई नीले आधार पर बनी थिरमा फुलकारी, कांच के टुकड़ों से सजी शिशेदार फुलकारी, तिल के बीज के रूपांताओं के पैटर्न के साथ बनाई गई तिलपत्र फुलकारी बाग कढ़ाई, जिसमें एक समग्र डिजाइन का उपयोग किया जाता है, जिसमें आधार पूरी तरह से छिपा होता है, को भी कभी-कभी फुलकारी का एक प्रकार माना जाता है, लेकिन यह और इसके उपप्रकार अलग-अलग वस्त्र हैं।

दक्षिण एशिया में ब्रिटिश शासन से पहले फुलकारी का उत्पादन व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए नहीं किया जाता था। बल्कि वर्तमान पाकिस्तानी पंजाब में मुख्य रूप से पेशावर, सियालकोट, हजारा, रावलपिंडी और झेलम जिलों में विरासत के रूप में विस्तृत किया जाता था। 19वीं शताब्दी के बाद से ब्रिटिश अधिकारियों को सद्भावना के प्रतीक के रूप में कढ़ाई वाले शॉल दिए जाने लगे। इस अवधि में अन्य परिधानों पर शिल्प के व्यावसायिक अनुप्रयोग की शुरुआत भी देखी गई जैसे कि शहरों में रहने वाली महिला खरीदारों के लिए कोट। विभाजन और उसके बाद पंजाबी महिलाओं द्वारा झेली गई हिंसा के बाद, 1950 के दशक में भारत और पाकिस्तान में फुलकारी कढ़ाई में गिरावट आई। इसके अलावा स्वतंत्रता के बाद के युग में दोनों देशों द्वारा तैयार किए गए विकासात्मक एजेंडे माल और सेवा क्षेत्र के बड़े पैमाने पर मशीनीकरण पर निर्भर थे जिसने स्थानीय शिल्प परंपराओं को और अधिक गुमनामी में धकेल दिया।

हालांकि 1980 और 1990 के दशक में भारत की कला और शिल्प परंपराओं के पुनरुद्धार की शुरुआत हुई। पश्चिमी के खिलाफ मजबूत अर्थव्यवस्था और प्रतिसंस्कृति आंदोलन से प्रोत्साहित होकर भारत सरकार और गैर सरकारी संगठनों ने फुलकारी को पुनर्जीवित करने और इसे व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य बनाने के लिए ठोस प्रयास किया। महिला कारीगरों को बैंकों और राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD), खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KIVC), कपड़ा मंत्रालय और भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) जैसी अन्य सरकारी संगठनों से कौशल आधारित प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता दी गई। इसके अलावा इस अवधि के दौरान स्वयं सहायता समूहों के गठन में महिलाओं को फैशन डिजाइनरों और नाभा फाउंडेशन जैसे गैर सरकारी संगठनों के लिए घर पर समूह बनाने और

कढ़ाई करने के लिए प्रोत्साहित किया जिसने बदले में फुलकारी कढ़ाई और डिजाइन की बाजार में उपस्थित का विस्तार करके स्थानीय कारीगरों का समर्थन करने में भी प्रमुख भूमिका निभाई।

आजकल फुलकारी का उत्पादन मुख्य रूप से भारत के गुरदासपुर और पटियाला में किया जाता है और इसका उपयोग कई प्रकार के भारतीय परिधानों विशेषकर दुपटो, कुर्ती, ब्लाउज और साड़ियों में किया जाता है, जिसमें विभिन्न सूती कपड़ों को आधार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

फुलकारी का इतिहास

फुलकारी एक तरह की कढ़ाई होती है जो चुनरी/दुपट्टों पर हाथों से की जाती है। फुलकारी शब्द 'फूल' और 'कारी' से बना है। इसका मतलब फूलों की कलाकारी।

इंडियन कल्चर में पंजाब का योगदान शानदार संगीत, लाजवाब खाने और खूबसूरत रंगों से कहीं ज्यादा है। पटियाला सलवार, सूट और फुलकारी एब्रायडरी के बिना इंडियन फैशन बेहद नीरस होता। इस कढ़ाई का जन्म प्राचीन भारत (अब पाकिस्तान) में हुआ था। जिसमें बेहद कुशल कारीगरी की जरूरत होती है। पारंपरिक कारीगरों ने खूबसूरत फूलों के मोटिफ्स से इस कला को परफेक्ट बना लिया। शुरुआती दौर में फुलकारी हर तरह के कपड़ों पर की जाती थी लेकिन बाद में यह सिर्फ स्कावर्स और शॉल तक ही सीमित हो गई और कभी-कभी शूज़, बेल्ट्स और बैग्स जैसी एक्सेसरीज पर भी।

फुलकारी शब्द दो शब्दों का मेल है। फूल + कारी। जिसका अर्थ है फूलों का कार्य करना। असल में फुलकारी एक जिसे सुने खदर पर बिखेर कर सुंदर बाग बनाया गया है, यह पंजाबी औरतों के दिमाग तथा उंगलियों का ही कमाल है कि उन्होंने ने कपड़े पर ही एक अलौकिक दुनिया रच दी है। पंजाब की औरतों द्वारा इसे तीन शाखों में बांटा है – पहला फुलकारी जिसे कपड़े के बीच में किया जाता है, दूसरा जिसे बाग और बगीचा जहां पर इस गहनों के साथ बनाया जाता है। तीसरा चोप जहां बीच में कुछ काम किया और बगल में खाली रखा जाता है। फुलकारी का एक और रूप कढ़ाई का है जिसे चदूरों और औरतों के कपड़ों पर किया जाता है। “पंजाब की औरतों द्वारा इसे तीन शाखों में बांटा जाता है”।

फुलकारी में चोप का विवरण बहुत अच्छे ढंग से मैंने इस शोध में बताने की कोशिश की है। चोप एक तरह की एक सी कढ़ाई है जिसो ओढ़नी पर भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षण और टांकों का इस्तेमाल होता है। जिसे एक साधारण तरीके से उपयोग किया जाता है। जिसके पीछे वाले हिस्से में रफू की तरह लगता है, जहां कोई भी रिक्त स्थान नहीं होता। परंतु फुलकारी पंजाबी का ही एक मुख्य भाग है यह उसे समय से चल रही है जब से गुरु नानक काल चल रहा है। यह सबसे पहले पंजाबी वारिश शाह “1725–1790” प्रसिद्ध लेखक जिन्होंने हीर रांझा लिखा। उस समय से चलती आ रही है जिसका विवरण हमें हीर के दुपट्टे से कपड़ों से मिलता है जोकि हमने किताबों में भी देखा है। जिसमें हीर फुलकारी ओढ़े बैठी है। हीर के कपड़ों में फुलकारी के डिजाइन मिलते हैं।

भारतीय कला की जो धाती आज हमें उपलब्ध है वह दो रूपों में आगे बढ़ी। उसका एक रूप तो शास्त्रीय रहा। इसके निर्माता या तो राज्यक्षित पेशेवर कलाकार रहे थे। स्वतंत्र रूप से कला की

साधना में रहते हुए आगे बढ़े। इस शास्त्रीय कला के दोनों रूप पहुंचे। जो अजंता, बाघ आदि के भित्ति चित्रों में रूपमित हुए और बाद में उनका पूर्ण विकास मुगल राजपूत तथा पहाड़ी आदि आगे के चित्र शैलियों के रूप में हुआ।

कला का दूसरा रूप अपने इतिहास और अपनी ख्याति की अपेक्षा फिर बिना हमारे आंगनों के निराले एवं स्वच्छंद वातावरण में फल कर आगे बढ़ा। भारत कोटि-कोटि जनता के जीवन में एक प्राण होकर यह लोक कला न जाने की अतीत की किस स्वर्णिम बेला से मारे उल्लास के संबंधों से जुड़कर हमसे बंधी हुई हमारे साथ चली आ रही है। फुलकारी भी लोक कला के अंतर्गत आती है।

ईसा की कुछ शताब्दियों पहले के भारत में नाना प्रकार की कल्पवल्लियों का उल्लेख पाया जाता है। घरों की स्वच्छ धवल भित्तियों पर सूक्ष्म रेखा विशारदा कलाकार नाना भाव रंगों से युक्त इन कल्पवल्लियां का अंकन किया करते थे। ये कल्पवल्लियां प्राचीन लोक कला के जीवित प्रमाण हैं। जिस प्रकार हमने देखा की फुलकारी का उपयोग भी हीर रांझा के समय से चला आ रहा है। जो कि गुरु नानक की इन पंक्तियों से पता चलता है —

“कडड कसीदा फुलकारियाँ चोली तां तू जचदी नारी”।

आज के समय में फुलकारी का उपयोग तोहफे के रूप में होने लगा है। यह कथन वारिश शाह ने सिद्ध कर दिया है। अधिकतर लोग इसे विवाह, शादियों में तोहफे के रूप में देते हैं। बाणभट्ट में हरिश चरित्र ने 17वीं शताब्दी में ऐ.डी. के साथ बातचीत में फुलकारी की कढ़ाई के बारे में बताया है। गुरु नानक काल “1469— 1538” से चल रहा है। गुरु नानक जो कि सिख धर्म के सबसे बड़े रचयिता हैं, उन्होंने अपने ग्रंथ में इन लाइनों को लिखा है। “कडड कसीदा फुलकारियाँ चोली तां तू जचदी नारी”। इनका अर्थ है जो कि एक नारी को कहा गया है कि यदि वह अपनी चोली पर फुलकारी निकलती है तो वह नारी के रूप में जचती है। फुलकारी को एक औरत तब से करने लग जाती है जब वह 9 वर्ष की होती है। वह खादर के कपड़े पर फुलकारी निकलती है। उसके बाद वह शॉल पर भी कढ़ाई करती है। यह सब लोक कला का अंग है।

लोक कला की प्राचीनता के दूसरे प्रमाण धूलचित्रों में भी देखने को मिलते हैं जिनका निर्माण मौर्य युग में व्यापक रूप से है।

फुलकारी एक वंशानुगत कढ़ाई परंपरा है। फुलकारी ऐतिहासिक रूप से वर्तमान भारत और पाकिस्तान में पंजाब क्षेत्र की महिलाओं द्वारा प्रचलित थी। यह गिनती के धागे की कढ़ाई का एक रूप है जो ज्यामितीय और प्राकृतिक रूपांकनों के अपने साफ-सुथरे नियमित पैटर्न से पहनाया जाता है, जिसका नाम हिंदी और पंजाबी में ‘फूलों का काम’ होता है।

पुराने समय में बचपन में ही लड़कियां इस कला को सीख लेती थी और अपनी शादी के लिए दहेज बनाने लगती थी। यह लड़की की श्रद्धा की कला का प्रतीक मानी जाती थी। फुलकारी की पारंपरिक किस्में कपड़े की बड़ी वस्तुएं हैं और इसमें चोप, तिलपत्र, निलक और बाग पत्र शामिल हैं। कभी-कभी बाग को अलग श्रेणी में रखा जाता है, क्योंकि फुलकारी की अन्य किस्मों पर कपड़े के कुछ हिस्सों देते हैं, जबकि बाग में कढ़ाई पूरे परिधान को कवर करती है। इसके अलावा समकालीन आधुनिक डिजाइनों में सरल और कम काशीदाकारी दुपट्टे, ओढ़नी और शॉल फुलकारी के रूप में संदर्भित किए जाते हैं। जबकि कपड़े जो पूरे शरीर को ढकते हैं और शादियों जैसे समारोहों में उपयोग होते हैं, बाग कहलाते हैं। फुलकारी आज भी पंजाबी शादियों का एक अभिन्न हिस्सा है।

अतीत में जैसे ही किसी लड़की का जन्म हो, माताओं और दादी बागों और फुलकारियों की कढ़ाई करना शुरू कर देती थी, जिन्हें शादी के समय दिया जाता था। परिवार की स्थिति के आधार पर माता-पिता से 11 से 101 बागों और फुलकारियों को दहेज में देते थे। ऐतिहासिक रूप से बागों के लिए उत्तम कढ़ाई पंजाब क्षेत्र के हजारा, पेशावर, सियालकोट, झेलम, रावलपिंडी, मूल्तान, अमृतसर, जालंधर, अंबाला, लुधियाना, नाभा, जींद, फरीदकोट, कपूरथला और चकवाल जिलों में बनाई जाती थी।

फुलकारी मूल रूप से घर की महिलाओं द्वारा किए गए घरेलू काम का ही एक उत्पाद था। जिस कपड़े पर फुलकारी की कढ़ाई की जाती थी, वह हाथों से बना खद्दार (सादा सूती कपड़ा) होता था। कपास पूरे पंजाब के मैदानों में उगाया जाता था और सरल प्रक्रियाओं की एक श्रृंखला के बाद इसे चरखा पर महिलाओं द्वारा धागे में पिरोया जाता था। यार्न बनने के बाद इसे लालारी द्वारा रंगा जाता और जुलाहा द्वारा बुना जाता।

इनका उपयोग शादी और त्योहार में किया जाता है। शादी में शगुनों के समय में भी प्रयोग किया जाता है। गुरु घर लांवा फेरे लेने के समय में उपयोग किया जाता है। लोक दाज में लड़कियों को फुलकारी के बाग देते थे। इनका उपयोग पंजाबी लड़कियां शादी और उत्सव के अवसरों पर करती हैं। शादी — ब्याह के मौके पर लड़की सर पर फुलकारी पहनती है जिसे दुल्हन के लुक में चार-चांद लग जाते हैं। विवाह की रस्मों में जैसे चूड़ा चढ़ाते समय, नानी अपने दूल्हे को चोप पहनाती थी। चोप जो फुलकारी से थोड़ा बड़ा था। लोग शगुन के अवसर पर ही फूलों का प्रयोग करते थे। लोग अपनी बेटियों को दहेज के रूप में फुलकारी के बगीचे भी देते थे। ये फुलकारियां दादी-नानी के पहले से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही हैं।

फुलकारी की सटीक उत्पत्ति ज्ञात नहीं है। एक सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि चूंकि यह ज्यादातर जाट महिलाओं द्वारा पहना जाता था, यह मध्य एशिया से जाट जनजातियों के साथ आया

था। जो प्रवासी के रूप में भारत आए थे। एक अन्य सिद्धांत का मानना है कि यह ईरान से भारत आया, जहां इसे गुलकारी के नाम से जाना जाता है।

प्रत्येक आकृति को एक धागे से जोड़कर एक ज्यामितीय ग्रिड में बनाया जाता है, जो एक वक्ररेखीय अंतिम परिणाम प्राप्त करने के लिए विशिष्ट पैटर्न होता है।

लंबे और छोटे टांकों का उपयोग क्षैतिज, ऊर्ध्वाधर और विकर्ण धागे के काम को बनाने के लिए किया जाता है, जो कलाकारों के दिनचर्या, प्रकृति, फूलों आदि से प्रेरित होते हैं।

पहले पंजाबी महिलाएं अपने घरेलू कामकाज निपटाकर गपशप और बनाई के लिए एकत्रित होती थीं। लेकिन अब यही आनंददायी गतिविधि एक व्यवसाय बन गई है, जिससे महिलाओं को रोजगार मिला है, हालांकि इसे कभी भी व्यवसायीकरण के लिए नहीं बनाया गया था। पंजाबी लोगों के लिए यह सिर्फ कढ़ाई से ज्यादा एक पारंपरिक संस्कृति की तरह है।

फुलकारी को प्राचीन काल में मध्य एशिया के प्रवासी जाट लोगों द्वारा भारतीय उपमहाद्वीप में लाया गया था। कढ़ाई के काम की तकनीक और पैटर्न के बारे में किसी भी दस्तावेज में विस्तार से नहीं बताया गया है, बल्कि इसे केवल मौखिक रूप से ही प्रसारित किया गया है।

यह परंपरा सिख विरासत से जुड़ी थी लेकिन इसे हिंदुओं और मुसलमानों के बीच-बीच भी सांझा किया जाता था। कढ़ाई एक महिला के जीवन का एकमात्र प्रतिबिंब थी और हर महिला का इसे दर्शाने का अपना अनूठा तरीका था।

पहले इस कला में रचनात्मकता की पूरी आजादी थी। इसमें इस्तेमाल किए गए रूपांकन पंजाब के प्रिय और विविध मूल्य का एक बेहतरीन प्रतिनिधित्व थे।

चूंकि यह मुल्यतः एक सामुदायिक गतिविधि थी इसलिए रंग और शेड्स कुछ हद तक सामान्य थे, तथापि तथ्य यह है कि अधिकांश महिलाएं फुलकारी में विशेषज्ञ थीं, जिससे साधारण चीजें भी उत्कृष्ट लग सकती थीं।

लोक कला के रूप में फुलकारी

फुलकारी भारत के पंजाब प्रदेश की हाथ से, सुई धागों से की गई एम्ब्रॉयडरी है। 'फुलकारी' यानी 'फूल' और 'कारी' यानी कारीगरी। पंजाब में दुपट्टों और महिलाओं के सूटों पर यह कारीगरी की जाती है। फुलकारी का यह एक डिजाइन देखिए तभी पंजाब प्रांत से बाहर के व्यक्तियों को इसका कुछ अंदाजा लगेगा।

फुलकारी लोक कला मूल रूप से पंजाब में प्रचलित है, जो अब भारत और पाकिस्तान में फैला हुआ है। यह एक वंशानुगत कढ़ाई परंपरा है। फुलकारी : शाब्दिक अर्थ है — फूलों का काम। यह पंजाब की पारंपरिक कढ़ाई है और पूरा कपड़ा कढ़ाई और फूलों से भरा होता है। यह गिनती के धागे की कढ़ाई का एक रूप है। इसमें रंगीन, रेशमी धागे के साथ मोटे सूती कपड़े के गलत साइड पर खुरदुरा सिलाई का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें ज्यामितीय और प्राकृतिक रूपांकन के अपने साफ-सुथरे नियमित पैटर्न होते हैं। यह पंजाबी शादियों का एक अभिन्न अंग है। ऐतिहासिक रूप से बागों के लिए उत्तम कढ़ाई पंजाब क्षेत्र के हजारा, पेशावर, सियालकोट, झेलम, रावलपिंडी, मुल्तान, अमृतसर, जालंधर, अंबाला, लुधियाना, नाभा, जींद, फरीदकोट, कपूरथला और चकवाले जिलों में बनाई जाती थी।

फुलकारी कढ़ाई पंजाब क्षेत्र की एक कला और परंपरा है। यह पंजाब और हरियाणा के आसपास के इलाकों में भी पाई जाती है। शुरुआती दौर में लोग लड़की के जन्म के समय ये कढ़ाई करते थे। यह नारीत्व का उत्सव था। इसके अलावा शादी के समय माता-पिता या अभिभावक दुल्हन को आशीर्वाद के रूप में यह फुलकारी कढ़ाई वाला दुपट्टा देते थे। इसमें न केवल डिजाइन होते हैं बल्कि यह किसी विशेष क्षेत्र की संस्कृति को भी उजागर करता है। हम यहां फुलकारी कढ़ाई की खूबसूरत शैलियों के बारे में कुछ प्रकार और प्रारूपण पर चर्चा कर रहे हैं। इस कढ़ाई के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हुई है।

किसी भी क्षेत्र की संस्कृति को अच्छी तरह समझने के लिए उस क्षेत्र की लोक कला को जानना जरूरी होता है। लोक जीवन की सच्ची झांकी उस क्षेत्र की लोक कलाओं में देखने को मिलती है। प्रत्येक जगह के लोगों का रहन-सहन, धर्म, संस्कार एक दूसरे से भिन्न होते हैं। यह भिन्नता उनके दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में व्यक्त होती है। यह लोक कला का ऐसा पक्ष है जिससे क्षेत्रीयता की पहचान बनती है। इनमें मुख्य रूप से फुलकारी, दरिया, मांडला, रंगोली, सांझी आदि ऐसी लोक परंपराएं हैं जिनमें एक निश्चित क्षेत्र की लोक कला का बोध होता है। लेकिन लोक कला में कुछ ऐसी परंपराएं हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाती हैं जैसे फुलकारी को बनाने की परंपरा सदियों से चली

आ रही है। इसका संबंध आज से ही नहीं बल्कि प्राचीन काल से चला आ रहा है। यह मुख्य रूप से पंजाब की परंपरा से जुड़ी हुई है। यह पंजाबी सभ्यता होते हुए भी भारत के हर कोने में बसी हुई है। चाहे वह घर के किसी सामान को लेकर हो या लोगों को लेकर हो। यह सुंदर कढ़ाई हर तरफ सजावट के रूप में उपयोग की जाती हैं जैसी कि मैसूर तथा महाराष्ट्र में कसूती का अपना कोई जवाब नहीं है। हिमाचल में चंबा रुमाल या राजस्थान में कढ़ाई कला पारखुओं का मन मोहती है। हरियाणा में सांझी कला का कार्य शिखर पर है, परंतु जो प्रसिद्धि पंजाब के बाग फुलकारी को मिली है वह दुनिया भर में किसी भी इलाके की लोक कला को नहीं मिली, क्योंकि वह अपने राज्य तक ही सीमित होकर रह गई। परंतु फुलकारी एक विश्व विख्यात लोक कला रही है। फुलकारी की पवित्रता ने ही पंजाब का नाम फर्क से ऊंचा किया है।

लोक कला के कुछ हद तक पदार्थों की क्षेत्रीय की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इन लोक कला को जीवित रखने और उसमें नित नए जीवन्त तत्वों का समावेश करने का श्रेय हमारे नारी समाज को है। व्रत, त्योहार और उत्सवों पर आंगनों, दीवारों तथा कपाटा और दारों पर भांति भांति की आकृतियां, अंकित करके मंगल में पक्ष का भारतीय, साहित्यकारों विशेषता कला पंडितों ने आज से कई सौ वर्ष पूर्व अपने ग्रन्थों में इस सभ्य का एकाधिक बार उल्लेख किया है कि हर घर में सुख शांति और समृद्धि आदि की प्रतिष्ठा के घरों के बाहर-भीतर चित्रों से सज्जित होना चाहिए।

लोक कला की यह पुरातन धारा भारत के विभिन्न जनपदों एवं जातियों में विभिन्न रूपों में संयोजित एवं सम्मानित होकर आज भी हमारे लोक जीवन का अंग बनी हुई है। गुजरात और महाराष्ट्र में रंगोली से आंगन को सुज्जित करने में विशेष प्रदर्शित किया जाता है। चित्र-विचित्र, फूल-पत्तियां, बेल-बूटों, की भावात्मक आकृतियाँ अंकित करके उनके द्वारा सुख-समृद्धि का आवाहन किया जाता है। यह प्रथा वहां के लोक जीवन में प्राचीन काल से चली आ रही है, जिसका प्रमाण हमें वहां के पुरातन राजप्रसादों, घरों और मंदिरों के मूर्ति-शिल्प में दिखाई देते हैं। बंगाल में लोक कला का प्रचार-प्रसार आज राष्ट्रीय ही नहीं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर है। बंगाल की लोक कला के प्रचार साधन पटचित्र रहे हैं। ये पटचित्र यद्यपि व्यापारिक दृष्टि से बनाए जाते हैं। तथापि उन्हीं के माध्यम से बंगाल की लोककला उड़ीसा, असम और उत्तर भारत के विभिन्न प्रदेशों से प्रचलित हुई। इसी प्रकार राजस्थान में मेहंदी भांडने की प्रथा अधिक प्रचलित है। प्रत्येक त्यौहार, उत्सव तथा मौसम में यहां मेहंदी भांडने की प्रथाएं अलग-अलग हैं। उत्तर भारत में सांझी का त्यौहार बड़े उल्लास के साथ कई दिनों तक मनाया जाता है।

प्रत्येक क्षेत्र की सामान्य क्रिया-कलापों में जो लोक कला बनाई जाती है उसकी जानकारी उस क्षेत्र में रहकर ही प्राप्त हो सकती है। लोक कलाओं के अनेक रूपों को बनाने का एक निश्चित समय

होता है और वह उसी समय बनाई जाती है तथा निश्चित समय बाद उन्हें नष्ट कर दिया जाता है। जैसे— सांझी, गोवर्धन पूजा, दशहरा पूजा आदि प्रत्येक क्षेत्र की अपनी कुछ विशेषता होती है जो वहां के लोक की व्याख्या करने पर सामने आती है। इस लोक की व्याख्या से उस समाज के रहन—सहन, सभ्यता तथा संस्कृति की व्याख्या होती है, जिसमें वह जीता है। लोक कला व हस्तशिल्प दोनों का जन्म मानव की भावनाओं की अभिव्यक्ति के द्वारा हुआ है, लेकिन हस्तशिल्प कला का संबंध जहां मानव के व्यवसाय व उन्नति के साथ है, वहीं लोक कला विशेषकर स्त्रियों से जुड़ी है। व अपनी धर्म, संस्कृति, के परंपरा के रूप में निहित है। इसलिए इसका स्थान केवल त्यौहार व धार्मिक भावनाओं के साथ है। लोक कला जहां घर के आंतरिक स्थल पर जगह पाती हैं, वहीं हस्तकला सार्व जनिक स्थानों 'मेलों' पर देखी जा सकती है। लोक कला का छोर जहां गृह लक्ष्मी के हाथों में है, वहीं हस्तकला घर के पुरुषों द्वारा चलाई जा रही है। इसलिए दोनों की भावनाओं में अंतर होने के कारण ये कलाएं एक दूसरे से भिन्न—भिन्न हैं। दोनों की कला अपनी—अपनी परंपरा का निर्वाह कर रही हैं। फिर भी दोनों के रूप व अर्थों में पर्याप्त अंतर है। दोनों ही कला मानव के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। लेकिन एक कला मानव के आर्थिक पक्ष को दृढ़ता प्रदान करती हैं, वहीं दूसरी कला उसके धार्मिक व सांस्कृतिक पक्ष को स्थायित्व देती है।

इसी प्रकार से फुलकारी भी धार्मिक व संस्कृति की ओर ले जाती है। यह ऐसी कला है जो आम इंसान में पाई जाती हैं। इसका इतिहास सदियों से चला आ रहा है। यह एक सुंदर कला है जिसे देखते ही मन प्रसन्न हो उठता है। यह गुरु नानक काल से चली आ रही है। यह मुख्य रूप में पंजाब में प्रसिद्ध है। इस पर खास तौर पर पत्तियों और फूलों से कढ़ाई की जाती है। इसे कई लोग कपड़े की उल्टी तरह पर भी कढ़ाई करते हैं। हम कह सकते हैं ये कढ़ाई समय के दौरान भी वैसे की वैसे ही है जैसे लोग प्राचीन समय में इसका उपयोग करते थे। अब भी पंजाबी औरतों का श्रृंगार है — फुलकारी। फुलकारी बिना तो यह नारी अधूरी लगती है। इसलिए फुलकारी हमारे रीति रिवाज से जुड़ी हुई है। इस फुलकारी पर सुंदर—सुंदर पुष्पों की कढ़ाई की जाती थी। यह 'ईरान' की गुलनारी से मेल खाती है। यह केवल पंजाब में ही नहीं चाइना, अमृतसर, रशिया, तुर्की, कश्मीर, जम्मू तक फैली हुई है। यह पंजाब के हर इलाके में है जिसमें मुख्य रूप से सफेद और पीले रंग की सिल्क पर भी किया जाता है। जिसे पानी में कार्बोनेट सौड़े को पानी में मिलाया जाता है। इसे गुरुद्वारे में भी गुरु जी के रुमाल पर किया जाता है।

यहां कढ़ाई 15वीं शताब्दी से है जो कि गुरु नानक जी की बहन "बीबी नानकी" के समय से है। पंजाब के इलाके गुरदासपुर में "चंबा" स्टाइल मुख्य है। "शामला" कढ़ाई दोनों तरह पर होती है अंदर और बाहर भी गुरु अर्जन देव जी के विवाह पर यह शामला कढ़ाई उपयोग में की गई थी जो कि

रेशमी धागों से की गई थी। श्यामला एक तरह की फूलों की कढ़ाई होती है जो की फुलकारी पर की जाती है। इसमें लाल तथा हरे धागों का प्रयोग किया जाता है। कहा जाता है फुलकारी की कढ़ाई जम्मू कश्मीर से शुरू हुई है और इस कढ़ाई का जन्म कश्मीरी कढ़ाई से हुआ है। जम्मू कश्मीर की साइड फुलकारी को गुलकारी का नाम दिया गया है।

पंजाब की फुलकारी

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि “फुलकारी” दो शब्दों से मिलने से बना है— (फूल + कारी)। फूल का अर्थ है फूल तथा कारी का अर्थ है काम अथवा फुलकारी, “फूलों का काम”। यह पंजाबियों की एक महत्वपूर्ण परंपरागत कढ़ाई है। पंजाब की फुलकारी देश-विदेशी में प्रसिद्ध है रोहतक, गुड़गांव, करनाल, हिसार और दिल्ली फुलकारी के काम के लिए काफी प्रसिद्ध है। पश्चिमी पंजाब में फुलकारी को ‘बाग’ कहा जाता है। बाग फुलकारी का ही एक विस्तृत रूप है। इसमें पूरे वस्त्र पर फुलकारी की जाती है। जिसमें संपूर्ण वस्त्र एक बाग की तरह प्रतीत होने लगता है।

फुलकारी कला पर अगर हम दृष्टिपात करें तो यह पता चलता है कि इसका उद्गम फारसी कला से हुआ है। फारसी में इसे ‘गुलकारी’ कहा जाता है। गुलकारी का भी शाब्दिक अर्थ है— ‘फूलों का काम’ ही होता है। क्यों कि फारसी में ‘गुल’ को ‘फूल’ कहा जाता है। अतः पंजाब की फुलकारी गुलकारी से मिलती-जुलती है। ऐसा माना जाता है कि सेंट्रल एशिया के लोग जब पूर्वी पंजाब में आए तो उन्होंने ने इस कला का प्रचार प्रसार किया।

फुलकारी का काम पंजाबी लड़कियों एवं स्त्रियों द्वारा बड़े ही उल्लास एवं उत्साह से किया जाता है। यह उनका उद्यमी एवं पश्चिमी एवं कठिन मेहनती होने का संकेत देता है। फुलकारी को सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य एवं सुहाग का प्रतीक माना जाता है। इसलिए फुलकारी से कढ़े परिधानों को वहां की विवाहित स्त्रियां बड़े ही उल्लास एवं उत्साह के साथ शादी, विवाह एवं तीज-त्योहारों के अवसर पर पहनती हैं।

फुलकारी का काम साधारण खदर के वस्त्र पर किया जाता है। सिल्क के धागों से इस पर ज्यामितीय नमूने बनाए जाते हैं। इसमें सीधी, तिरछी, आड़ी, चौकोर एवं त्रिकोण रेखाओं का उपयोग किया जाता है। रंग संयोजन में लाल, पीला, नारंगी एवं सफेद रंग प्रमुखता से काम में लाया जाता है। फुलकारी अत्यंत सौन्दर्यमय एवं आकर्षक लगता है। इसे माँ अपने पुत्री को शादी के शुभ अवसर पर उपहार स्वरूप देती है। इस प्राचीन कथा के अनुसार पंजाबी परिवार में जैसे ही एक कन्या का जन्म होता है, माँ, दादी एवं नानी उसके विवाह के अवसर पर उपहार स्वरूप देने के लिए फुलकारी का निर्माण करने लगती हैं। इसमें माँ का कन्या के प्रति संपूर्ण लाड़, प्यार, स्नेह, गौरव एवं निष्ठा झलकती है। वह अपनी समस्त भावनाओं, कल्पनाओं, आशाओं एवं आकांक्षाओं को फुलकारी से बने शॉलों में मूर्तिमान कर देती है। जिससे पूरा शॉल ही आकर्षक ऐश्वर्य शाली, वैभवशाली एवं अलौकिक दिखने लगता है।

पंजाब की फूलों वाली कढ़ाई को फुलकारी के नाम से पुकारा जाता है। पंजाब के पटियाला, अमृतसर, नाभा, जालंधर, फरीदकोट, कपूरथला और लुधियाना आदि इस कढ़ाई के लिए जाने जाते हैं। हरियाणा के रोहतक, करनाल और हिसार आदि शहर भी इसके लिए काफी प्रसिद्ध हैं। जाट लोगों में यह कढ़ाई अधिक प्रचलित है। फुलकारी जो मूल रूप से पंजाब में बनाई जाती है।

कहा जा सकता है कि पंजाब कला के क्षेत्र में बहुत पीछे है, इसने अन्य राज्यों की तरह भारतीय कला में उतना योगदान नहीं दिया, लेकिन फुलकारी की कला के बारे में जानने के बाद ऐसी गलतफहमियां दूर हो सकती हैं। इसके अलावा इस कला पर कोई नियमित काम नहीं है। थोड़े से परिचय के बाद यह दावा करना मुश्किल नहीं है कि फुलकारी हमारी लोक कला का नमूना है, जिसे भारतीय कला की जान कहा जा सकता है।

हमारी राय में, फुलकारी का प्रतिरोध शिल्प कहीं और नहीं मिलता है। फुलकारी कौशल का असली आवश्यक यह है कि इसमें कपड़े के पीछे की तरफ कढ़ाई की जाती है। कढ़ाई के लिए पंजाबी नदियों में ऐसा कोई पैटर्न नहीं होता जिसे वह देखकर कॉपी कर सकें। वे गांव के लोहार द्वारा बनाई गई साधारण मोटी सूई से ही बहुत सुंदर और सुंदर कढ़ाई करते हैं। क्या इसका उदाहरण दुनिया में कहीं और मिल सकता है?

फुलकारी का ख्याल आते ही लताओं से सजी कोई चीज दिमाग में आ जाती है। इसकी याद से पंजाबियों के दिलों में अनोखी खुशी और सुखद यादें जाग उठती हैं और पंजाबी जीवन की जीवंत आंखें घूमने लगती हैं। हमें ऐसा महसूस होता है मानो बूढ़ी दादी चूल्हे के सामने बैठी सिर पर फुलकारी तैयार कर रही हो या कहीं बुढ़ि औरतें सिर पर लस्सी की चटाई लेकर ऊपर रोटी का टुकड़ा रखकर काम करने वाले जाटों के लिए भता ले रही हों। खेतों उसकी काली किनारे वाली पीली जैकेट और शाही काली शर्ट से अधिक उसके सिर पर फुलकारी उसके बालों में जान डाल देती है। हम यह भी सोचते हैं कि दोपहर के समय आंगन में अम्बी के पेड़ के नीचे युवक्तियों का एक समूह का कसीदा बना रहा है और रंगीन चरखे की घरघराहट उनकी पतली उंगलियों को एक लय दे रही है।

फुलकारी का अर्थ है – फूल तोड़ना और यह शब्द अमृतसर से दिल्ली तक तोड़े गए कपड़े के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐसे कपड़े को बैग भी कहा जाता है। फुलकारी पर बनी बेल-बूटे और फूलों के चित्र सचमुच किसी बगीचे की तरह लगते हैं। ये इतनी सुरंगे हैं कि इनका नाम बाग है। बाग और फुलकारी विभिन्न कढ़ाई वाले परिधानों के नाम हैं। कुछ समय पहले महिलाएं सियाल में फुलकारी पहनती थी क्योंकि वे सजावटी और गर्म दोनों होती हैं। प्रायः इनकी लंबाई ढाई गज और ऊंचाई डेढ़ गज होती हैं। लेकिन यह लंबाई हमेशा तय नहीं होती।

फुलकारी की पंखुड़ियों पर कई तरह के मनमोहक पौधे उगे होते हैं।

फुलकारी स्कर्ट पर की गई कढ़ाई का उत्कृष्ट कृति है। यह परिधान की मुख्य कढ़ाई से भी अधिक सुंदर है। वल्कसी पर अधिकतर खरपतवार ही निकल जाती है। कलियों के और भी चित्र खींचे जाते हैं।

पश्चिमी पंजाब के पाकिस्तान, सियालकोट, झेलम, रावलपिंडी और हजारे जिले में इस प्रकार के कपड़े के लिए 'बाघ' शब्दों का उपयोग किया जाता है। बगीचे की पूरी लंबाई में खेती की जाती है और एक रस्ती जितना चौड़ा क्षेत्र भी बिना खेती के नहीं रहने दिया जाता है। कढ़ाई आमतौर पर रंगों में की जाती है। रंग चयन और रंग संयोजन बहुत सुंदर और सुंदर हैं। विभिन्न प्रकार के पौधों के बगीचों पर कोणीय या गोलाकार पैटर्न होते हैं। इन्हें देखने पर यह गोल्डन और क्रिमसन वेलवेट जैसा दिखता है। फुलकारी की तरह कई बगीचों में अलग-अलग पत्तियां नहीं होती, लेकिन बगीचे की मुख्य भूमि के पौधे और आकर एक अलग क्रम में होते हैं। लैपल्स पर कई सुंदर और सुरुचिपूर्ण ज्यामितिय आकृतियां की कढ़ाई की गई है।

जिन बगीचों में पल्ला बिल्कुल भी ऊंचा नहीं होता, उनके सिरों पर बारीक तोपों में फीता भर दिया जाता है। फुलकारी और बाग कढ़ाई जांघ से की जाती है। बाद में इसे अफगानिस्तान और कश्मीर से आयात किया गया और अमृतसर और जम्मू में रंगा गया। जाँघ मोटी और मोटी होती है। यह जाँघों से चिपक जाता है। इसलिए आजकल की महिलाओं को जाँघों से छुटकारा पाना बहुत मुश्किल लगता है। इससे कढ़ाई करने के लिए काफी अभ्यास और अनुभव की आवश्यकता होती है। कसीदा आमतौर पर घर में काते गए, घर में बने हुए और घर में रंगे हुए खादर कपड़े पर तैयार किया जाता है।

हालवान, एक प्रकार का बढ़िया खादर है, जिसका उपयोग साफ-सुथरा काम करने के लिए किया जाता है। फूलों के बगीचों और बगीचों की एक विशेषता यह है कि उन पर कीड़ों का प्रभाव नहीं पड़ता है, लेकिन आम लोग इसे अपने घरों में गेहूं के साथ रखते थे, इसलिए कभी-कभी चूहे इसे कुतर देते थे। कासाइड के लिए लाल, नीला और सफेद खादर और पट्टे कढ़ाई के लिए गहरे लाल, सफेद, सुनहरे पीले, हरे और नारंगी पट्टे का उपयोग किया जाता था। फुलकारी कब और कैसे अस्तित्व में आई इसकी हमें पूरी जानकारी नहीं है। कुछ लोगों का मानना है कि कश्मीर में बसने वाले ईरानी मुसलमान इस कौशल को अपने साथ भारत लाए थे। ईरान में इसे गुलकारी कहा जाता था। गुलकारी एक फारसी शब्द है और इसका अर्थ है – फूल तोड़ना।

कुछ समय पहले मैंने ईरान में एक चित्र को पत्र लिखकर सयमी के सबसे बुजुर्ग से गुलकारी के बारे में पूछने को कहा था। मैंने उनसे फुलकारी का एक डिजाइन नमूना लाने के लिए भी कहा ताकि मैं इसकी कढ़ाई की तुलना फुलकारी कढ़ाई से कर सकूँ, लेकिन मेरा दोस्त अपने प्रयास में

असफल रहा। आज के कश्मीरी कढ़ाई का चीनी और ईरानी कढ़ाई से गहरा संबंध है, लेकिन बाग और फुलकारी कढ़ाई अपनी शैली और तकनीक में चीनी और ईरानी कढ़ाई से बिल्कुल अलग है। कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि मध्य एशिया से है।

भारत में प्रवेश करने वाले जाट और गुर्जर अपने साथ फुलकारी की कला लेकर आए।

यह हमें आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि ईरानी और मध्य एशिया खानाबदोश शॉल, दुशाले और अन्य कपड़े बुनने में विशेषज्ञ थे। उनकी रंग-बोध अद्भुत थी और अनेक प्रकार के रंगीन चित्र बनाने में वे किसी से पीछे नहीं थे।

इसलिए रंग की भावना हमारे देश में जाटों और गुर्जरों के साथ आई होगी। एक खादर कढ़ाई के लिए इस्ते माल किया जाने वाला कपड़ा अपनी पूरी संरचना में भारतीय है। वानिकी से निकाल गए बेल के पौधे न केवल उत्तरी और पश्चिमी भारत के कासिदाकारी में पाए जाते हैं। वे पश्चिम में चेकोस्लावाकिया और हंगरी के बुने हुए काल और उत्तर पूर्व में इंडो-चीनी में भी पाए जाते हैं।

फुलकारी का जन्म प्राचीन काल की बात है। फुलकारी का उल्लेख वेदों, महाभारत, गुरु ग्रंथ और पंजाब के लोक गीतों में मिलता है। महानता इतनी नहीं है कि यह पश्चिम से आई या पूर्व से महानता यह है कि पांच नदियों की भूमि में प्रवेश करने के बाद फुलकारी का स्वरूप पूरी तरह से बदल गया और फुलकारी ने एक प्रिय सुरंग से अपना अलग व्यक्तित्व ले लिया और रूप में प्रकट हुआ।

पंजाब और हरियाणा जैसे समृद्ध कृषि राज्य फुलकारी (फूलों के काम) शॉल के लिए प्रसिद्ध है, जिन्हें टाइट-फिटिंग चोली और गागबरा के साथ पहना जाता था, जो इस क्षेत्र की ग्रामीण महिलाओं की पारंपरिक पोशाक थी। यह शानदार और बेहद व्यावहारिक पोशाक दोनों थी। फुलकारियां रोजाना पहनने के लिए बनाई जाती थी। आमतौर पर शॉल के किनारे और मैदान पर इतनी घनी कढ़ाई नहीं की जाती थी, जिसमें जमीन का ज्यादातर कपड़ा दिखाई देता था। हालांकि औपचारिक अवसरों के लिए एक विशेष प्रकार की फुलकारी जिसे बाग (बगीचा) के रूप में जाना जाता है, बनाई जाती थी। जिसमें पूरी जमीन कढ़ाई से ढकी होती थी ताकि आधा कपड़ा बिल्कुल भी दिखाई नहीं दे। बच्चे के जन्म पर, दादी प्रार्थना की रस्म और बच्चे की मौसी को मिठाई बांटने के बाद, बाग की कढ़ाई शुरू करती थी। इसो पूरा होने में कई साल लगते थे और इसे बाद में पोते की शादी में इस्तेमाल करने के लिए विशेष देखभाल के साथ कढ़ाई की जाती थी, जिसके बाद इसे परिवार को धरोहर के रूप में रखा जाता था।

फुलकारी का काम प्रेम से किया जाने वाला काम और सामाजिक अवसर दोनों था। परिवार की महिला सदस्य दोपहर के खाली समय में चरखा चलाने और कढ़ाई करने के लिए एकत्रित होती थी। हालांकि सिलाई की एकरूपता बनाए रखने के लिए फुलकारी का काम एक महिला द्वारा अकेले ही

किया जाना आम बात थी। फुलकारियां परिवार के इस्तेमाल के लिए या उपहार के रूप में बनाई जाती थी। बहुत कम ही उन्हें बेचने के लिए बनाया जाता था। छोटी लड़कियां अपनी मां और दादी से सिलाई और डिजाइन सिखाती थीं और फिर फुलकारी सिखना शुरू करती थी, जिसे वह बाद में खुद पहनती थी। फूलों, पक्षियों और मानव आकृतियों के रूपांकनों को नरम बिना मुड़े हुए फॅलास सिल्क (पंजाबी में पट कहा जाता है) में सोने, पीले, सफेद, नारंगी, लाल रंग के संयोजन में कढ़ाई की जाती थी, जो आमतौर पर ईट-लाल रंग का होता था। लेकिन कभी-कभी काला या सफेद भी हो सकता था। डिजाइन को गिनती के धागों पर डारिंग स्टिच का उपयोग करके रिवर्स साइड से कढ़ाई की गई थी। प्रत्येक सुई के साथ केवल एक धागा लिया जाता था। पैटर्न बनाने के लिए नीचे एक लंबी सिलाई छोड़ दी जाती थी। विविधता देने के लिए सिलाई क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर दोनों दिशाओं में बनावट चलती थी।

कढ़ाई की सतह की चिकनी चमक पर पड़ने वाले प्रकाश के प्रभाव की कल्पना करना आसान है जो विपरीत सिलाई के इन जुड़े हुए खंडों पर होगा। डारिंग स्टिच के अलावा पक्षियों, जानवरों और मनुष्यों की आकृतियों की रूपरेखा बनाने के लिए डबल रनिंग स्टिच या चैन स्टिच का उपयोग किया जाता है, जिसे फिर डारिंग या सैटिन स्टिच से भरा जाता है। फुलकारी बॉर्डर पर सैटिन या स्टेम स्टिच का उपयोग किया जाता है और किनारों को खत्म करने के लिए ब्लैकेट स्टिच या बटनहोल स्टिच उपयोग किया जाता है।

हालांकि फुलकारी पर डिजाइन अक्सर आलंकारिक होते थे, बागों पर लगभग हमेशा ज्यामितीय पैटर्न होते थे। पश्चिमी पंजाब में पैटर्न समानांतर रेखाओं या वर्गों के रूप में आमतौर पर बाग की कढ़ाई से पहले हर धागे से रेखांकित किया जाता था। यह काम उच्च गुणवत्ता का था और इसके ज्यामितीय रूप आसपास के मुख्यतः रूप से मुस्लिम वातावरण को दर्शाते थे। दैनिक जीवन के घर, मंदिर, फूल, जानवर, विवाह, अनुष्ठान और जुलूस सभी पूर्वी पंजाब के काम में दर्शाए गए हैं। एक रंगीन और जीवंत प्रदर्शन जो इसे डिजाइन में तकनीकी परिष्कार की कमी के लिए पूरे पंजाब और हरियाणा में इस्तेमाल किए गए रूपांकन प्रकृति से लिए गए थे। फुलकारी और बागों पर सब्जियों और फूल, गेहूं और जौ, सूरज, चांद, पेड़, पौधे और नदियां, मुगल उद्यान, पतंगे और यहां तक की ताश के पत्ते भी सिल दिए गए थे।

कढ़ाई का काम कश्मीर, अफगानिस्तान या बंगाल से लाए गए रेशम के धागों से किया जाता था। हालांकि सबसे अच्छी गुणवत्ता वाला रेशम चीन और डेरा गाजी खान (अब पाकिस्तान में) अमृतसर या जम्मू में रंगे जाने के बाद धागे को मोटे हाथ से बने हुए कपड़े पर बनाया जाता था। जिससे खादर के नाम से जाना जाता था। जिससे गांव में जुलाहा (गांव के बुनकर) द्वारा लगभग 17 से 23 इंच की

पतली चौड़ाई में बनाया जाता था। इनमें से दो या तीन टुकड़ों को एक साथ जोड़ कर फुलकारी बनाई जाती थी। खादर स्थानीय रूप से उपलब्ध था, सस्ता था, टिकाऊ था और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसे मिल में बने कपड़े से बेहतर माना जाता था, क्यों कि इसकी मोटी बुनाई से फुलकारी के काम के लिए आवश्यक धागों की गिनती करना आसान हो जाता था। इसे बिना फ्रेम के भी कढ़ाई की जा सकती थी, क्यों कि यह सिकुड़ता या खींचता नहीं था।

शॉल के दो अन्य प्रकारों का उल्लेख किया जाना चाहिए। एक है चोपजिस नई दुल्हन को उसकी नानी द्वारा भेंट किया जाता है। इसे सीधी दो तरफा लाइन सिलाई में कढ़ाई की जाती है। ताकि कपड़े के दोनों तरफ पैटनिंग एक जैसी हो। दूसरा एक प्रकार का बाग है, जिसे पूर्वी पंजाब में कढ़ाई की जाती है, जिसे दर्शन द्वारा कहा जाता है, जिसे किसी इच्छा के पूर्ण होने पर मंदिरों में भेंट किया जाता था। दर्शन द्वार के दो बाहरी पैनल पर बड़े ऊंचे दरवाजों की एक पंक्ति कढ़ाई की गई है, जिनमें से प्रत्येक में एक त्रिकोणीय शीर्ष (त्रिभुज) है। केंद्रीय पट्टी में मानव आकृतियां, पशु-पक्षी और फूल होते हैं। रेल गाड़ियां, मोर, तोते, शादी के गहने और गांव के जीवन के सचित्र दृश्य भी पसंदीदा रूपांकनों के रूप में शामिल हो सकते हैं।

1947 में विभाजन के समय मची उत्तल-पुथल और बड़े पैमाने पर उत्तर-पुथल के बाद, लगभग 40 साल पहले बाग और फुलकारी की कढ़ाई लगभग बंद हो गई थी। हिंदुओं और सिखों को पश्चिम से पूर्वी पंजाब में पलायन करने के लिए मजबूर होना पड़ा और मुसलमान (जिनमें खादी बुनकरों का बहुमत शामिल था) को पूर्व से पश्चिम की ओर भागना पड़ा, इस प्रकार खादी का कपड़ा दुर्लभ हो गया।

स्वतंत्रता के बाद के औद्योगीकरण के साथ-साथ इस जबरन पलायन का मतलब था कि कई ग्रामीण लोग शहरों में चले गए। गांव में भी कृषि के कुछ पहलुओं को मशीनीकृत किया गया और ग्रामीण जीवन आमतौर पर व्यस्त हो गया। महिलाएं अब शिक्षित थी और आधुनिक मीडिया के प्रभाव के अधीन थी, जिसका मतलब था कि वे अब अपने खाली समय को कढ़ाई में बिताने के लिए इच्छुक नहीं थी। इन सभी कारकों ने अपनी भूमिका निभाई है।

एक बेहतरीन ग्रामीण कला की मौत में भूमिका पूर्वी पंजाब के पटियाला और चंडीगढ़ में फुलकारी कला को पुनर्जीवित करने के प्रयास ग्रामीण परिवेश में अपवर्तनीय परिवर्तनों के कारण विफल हो गए। पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब में भी इसी तरह के प्रयासों को बहुत कम सफलता मिली है।

तृतीया अध्याय

- विभिन्न प्रकार की फुलकारी का महत्व
- पंजाबी महिलाओं की परंपरागत फुलकारी कला
- चरखे और फुलकारी का नाता

विभिन्न प्रकार की फुलकारी का महत्व

विभिन्न प्रकार की फुलकारी का पंजाब में महत्व है। भारत के हर कोने में बसने वाली नारी को सजावट का बहुत शौक है, चाहे वह घर के किसी सामान को लेकर हो या फिर अपने से संबंधित लोगों को लेकर हो, उन्हें न केवल अपने बल्कि घर के बच्चों तथा बड़ों के कपड़ों पर सुंदर-सुंदर कढ़ाई की सजावट का भी शौक (चाव) है। यह शौक सदियों से चला आ रहा है। सौराष्ट्र तथा कच्छ के इलाकों में तो घर की दीवारों को सजाने का प्रचलन है। कश्मीर में कसीदा अथवा कश्मीरी कढ़ाई का बारीक काम आसमान के शिखर को छूता है। मैसूर तथा महाराष्ट्र में कसूती का अपना कोई जवाब नहीं है। हिमाचल में चंबा रुमाल तथा राजस्थान में कढ़ाई कला पारखुओं का मन मोहती है। हरियाणा में सांझी कला का कार्य शिखर पर है। परंतु जो प्रसिद्धि पंजाब की बाग फुलकारी को मिली है वह दुनिया भर में किसी भी इलाके की किसी भी लोक कला को नहीं मिली। क्यों कि वह अपने ही राज्य तक सीमित होकर रह गई। परंतु फुलकारी एक विश्व विख्यात लोक कला रही है। फुलकारी की पवित्रता ने ही पंजाब का नाम फर्क से ऊंचा किया है।

फुलकारी कढ़ाई का महत्व कई तरह से है। फुलकारी कढ़ाई पंजाब की एक लोक कला और परंपरा है। यह पंजाब और हरियाणा के आसपास के इलाकों में भी पाई जाती है। फुलकारी की कढ़ाई महिलाओं के लिए एक सामुदायिक गतिविधि है। यह उनकी भावनाओं, आशाओं और सपनों की अभिव्यक्ति भी है। फुलकारी की कढ़ाई नारीत्व का उत्सव है। लड़की के जन्म पर मां और दादी उसके लिए फुलकारी दुपट्टा कढ़ाई करती थी। शादी के समय माता-पिता या अभिभावक दुल्हन को आशीर्वाद के रूप में फुलकारी कढ़ाई वाला दुपट्टा देते थे। फुलकारी कढ़ाई भारत और पाकिस्तान के कई संग्रहालयों में सांझा संस्कृति की कहानी बताने के लिए इस्तेमाल की जाती है। फुलकारी की कढ़ाई फैशन डिजाइनिंग में एक आशा जनक कैरियर क्षेत्र बन गई है। फुलकारी कढ़ाई अंदरूनी सजावट में भी इस्तेमाल की जाती है। इसका इस्तेमाल बिस्तर को ढकने, दीवार की सजावट के लिए, दहेज के लिए संदूक के कवर के रूप में और गुरुद्वारों में चढ़ावे के रूप में किया जाता है।

आज फैशन के दौर में फुलकारी का उपयोग केवल दुपट्टों के रूप में न होकर साड़ी, सोफा, कवर, चदरों तथा जूतियों के साथ घर में दीवारों से सजाने के लिए रूप में होता है। फुलकारी न केवल पंजाब में बल्कि पूरे देश में प्रसिद्ध है। फर्क बस इतना है कि कहीं इसे बाग का नाम दिया जाता है तो कहीं इसे फुलकारी कहा जाता है और यह यही तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जम्मू कश्मीर की तरफ से इसे फुलकारी (गुलकारी) का नाम भी दिया गया है।

एक कलाकार ने इसे न जाने क्या सोचकर बनाया परंतु आज फुलकारी का महत्व इतना बढ़ गया है कि इतने बड़े-बड़े म्यूजियम तथा अजूबों की शोभा बढ़ाई है। आज फुलकारी दिन प्रतिदिन नए मोड़ के लिए बढ़ रही है। अब फुलकारी का उपयोग आम हो गया है। आज शायद ही पंजाब में कोई ऐसा शहर होगा जहां फुलकारी का उपयोग न होता हो।

देश भर में हाथ की कढ़ाई के अलग-अलग डिजाइन पाए जा सकते हैं। अलग-अलग भारतीय राज्यों में कढ़ाई की अलग-अलग शैलियाँ हैं और उनमें से हर एक अपने तरीके से अनूठी है। इनके रंग तथा आकार का भेद करने के लिए अलग-अलग डिजाइन होते हैं जो की तिरछे समतल और सीधे लंबे आकार के होते हैं। अलग-अलग मौकों पर अलग-अलग डिजाइन की फुलकारी का उपयोग होता है। फुलकारी कई प्रकार की होती है। कुछ अत्यंत लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण फुलकारी का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है।

1. बाग फुलकारी :-

बाग फुलकारी एक विशेष तरह की फुलकारी होती है। बाग फुलकारी का वस्त्र विवाह के समय बहु-बेटियों को ओढ़ाया जाता है। बाग फुलकारी में एक मुख्य रंग होता है तथा अन्य विपरीत रंग होता है। पंजाब की फुलकारी की तरह ही वहां का “बाग” भी काफी लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध है। यह फुलकारी की तरह ही है, परंतु फुलकारी एवं बाग में खास अंतर है कि इसमें कढ़ाई संपूर्ण वस्त्र पर की जाती है। बाग समान्यता दो रंग के शेड्स के धागों से बनाई जाती है जैसे – सुनहरा पीला और सफेद, नारंगी और पीला, हरा और क्रिमसन, लाल और इत्यादि। बाग कढ़ाई से युक्त वस्त्र इतना सुंदर एवं आकर्षक लगता है और इस बाग के फुलकारी में कोई भी जगह खाली नहीं छोड़ी जाती है। फुलकारी कला का सबसे सुंदर उदाहरण बगीचों में देखने को मिलता है।

2. चोप फुलकारी :-

इसमें वस्त्र का मध्य हिस्सा कढ़ाई के बिना होता है और तीन-चार चौड़े बॉर्डर पर कढ़ाई की जाती है। यह वस्त्र विवाह के समय दुल्हन को दिया जाता है। चोप लाल रंग के चदर पर बना लेता है जिसे नानी अपने नातिन की शादी के शुभ अवसर पर उपहार स्वरूप देती है। यह सुनहरे पीले रंग के रेशमी धागों से दोहरी टंकाई के टाँके से बनाए जाते हैं। कढ़ाई वस्त्र के दोनों ओर से दिखती है। इसमें कलाकार की संपूर्ण व्यक्तित्व, कुशलता एवं प्रवीणता स्पष्ट रूप से झलकती है। कढ़ाई इतनी सफाई से की होती है कि इसका सीधा एवं उल्टा पक्ष पहचान मुश्किल हो जाता है। चोप अत्यंत सुंदर एवं आकर्षक होता है। इसे कहीं नजर न लग जाए, इस भय से चदर के चारों कोनों पर छोटे-छोटे

11. <https://theamrisarstore.com>, 2 January, 2025, 10:45 a.m.

बूटे बनाए जाते हैं। यह बूटी काले रंग के रेशमी धागों से बनाई जाती है। संपूर्ण नमूना ज्यामितिय रेखाओं से बना होता है। सुभर की तरह चोप नामक फुलकारी का संबंध अधिकतर विवाह के शगुन सो होता है। यह कढ़ाई अधिकतर कोनों पर की जाती है और बीच में खाली होती है। यह फुलकारी दादी, नानी शादी के समय दहेज के रूप में देती है।

3. सुभर फुलकारी :-

यह शॉल भी चोप की तरह लाल रंग के शॉल पर बना होता है। इसे मां अपनी पुत्री की शादी के शुभ अवसर पर उपहार स्वरूप देती है। इस फेरे के समय पहना जाता है। इसमें भी चोप की तरह ही नमूने बने होते हैं, परंतु सुभर की विशेषता यह है कि शॉल के बीच में पांच नमूने एक साथ ही बने होते हैं। शॉल के चारों ओर कोनों पर किया जाता है। यह शगुन के फूलों का बगीचा है। यह फुलकारी एक लाल रंग का कपड़ा है जिसके चारों कोनों और बीच में कमल के फूल की कढ़ाई होती है। इस फुलकारी को विवाह के समय लपेटकर गुरु ग्रंथ साहिब के सामने रखा जाता है।

4. घूंघट बाग फुलकारी :-

इसमें वस्त्रों के उसी भाग पर त्रिकोणी फुलकारी की जाती है जो सिर को ढकता है। इससे दो बड़े त्रिकोण नमूने होते हैं तथा सजावटी किनारे होते हैं और यह तीन कोनों वाला लाल रंग का शॉल होता है, जिसमें सुनहरे पीले एवं चटक रंगों से सुंदर-सुंदर नमूने बने होते हैं। इसे विवाह के समय घुंघट के शुभ अवसर पर दुल्हन के सिर पर इस तरह से उड़ाया जाता है कि यह उसके सिर के अंग भाग को ढक ले। इसमें नमूने भी त्रिकोणाकार बने होते हैं। इसे ही घूंघट बाग कहते हैं। भारतीय पारंपरिक प्रथा है कि यहां शादी के उपरांत विवाहित भारतीय स्त्रियां अपने ससुराल में श्वसुर जेठ, जेठानी, सास एवं अन्य बड़े बुजुर्गों के 'सम्मान' में घुंघट निकालती हैं। इस बाग की कढ़ाई सिर के ऊपरी हिस्से में त्रिकोणीय आकार में हो ती है। इसका कपड़ा और रेशम का चयन अन्य बगीचों के समान है। इसका पैटर्न अन्य बगीचों से काफी अलग है।

5. नीलक फुलकारी :-

यह कढ़ाई काफी चटकीली होती है। इसमें गहरे नीले रंग के खदर पर गुलाबी अथवा पीले पट के धागे भी फुलकारी का नमूना बनाया जाता है। इस फुलकारी से आकर्षक शॉल बनाए जाते हैं। इस फुलकारी का अधिकतर प्रयोग कृषक स्त्रियों के द्वारा किया जाता है। जब नीले रंग के खदर के वस्त्रों पर पीले अथवा क्रिमसन रंग के रेशमी धागे से कढ़ाई की जाती थी तो इसे "नीलक" कहा जाता था।

कभी-कभी काले रंग के खदर पर भी फुलकारी की जाती थी। नमूने के रूप में घरेलू उपयोग के सामग्री को चित्रित किया जाता था। जैसे कंधी, पंखा, छाता आदि इसके लिए फूल-पत्तियों के नमूने को भी अंकित किया जाता था। यह फुलकारी गहरे नीले रंग के खदर पर काले रेशमी धागे से कढ़ाई की गई है।

6. तिलपत्र फुलकारी :-

यह कढ़ाई कम कीमत के खदर पर बनाए जाती हैं और कढ़ाई घनी नहीं होती और अधिकतर घर में कार्य करने वाली नौकरानियों के विवाह के समय तोहफे के तौर पर दी जाती है। ये सस्ते एवं झिरझिरे खदर के वस्त्रों पर बनाए जाते हैं। इसमें छोटे-छोटे फूलों के नमूने बने होते हैं। इसे ग्रह स्वामी अपनी दासियों को शादी के शुभ अवसर पर उपहार स्वरूप देती हैं। ये फुलकारी दुर्लभ और सामान्य जड़ी बूटियां को खराब मिट्टी में डालकर निकाली जाती हैं। बेटे के जन्म पर या शादी ब्याह वाले घर में अन्य शुभ अवसरों पर लगन, नैना, महरी, दइया या घर में गोबर इकट्ठा करने वाली महिलाओं को दी जाने वाली फुलकारियों को तिल पत्र नाम दिया गया है।

7. शीशेदार फुलकारी :-

इसमें छोटे आकार के माइके के टुकड़े अथवा शीशे के टुकड़े काँज टाँके से लगाए जाते हैं। इसमें ब्राउन अथवा लाल रंग के वस्त्र पर नीले अथवा पीले रंग के धागे से कढ़ाई की जाती है। इसको अधिकतर हिसार, गुडगांव तथा रोहतक की तरफ बनाया जाता है। इस तरह फुलकारी के लिए विभिन्न तरह के नमूने बनाए जाते हैं। गांव की अनपढ़ स्त्रियां नमूने और रंगों का ऐसे चुनाव करती हैं कि यह देखने में आकर्षक और सुंदर लगते हैं। बीच में इस कला का प्रयोग कम हो गया था, परंतु अब फिर इसका प्रचलन बढ़ गया है। परंतु इसके द्वारा जो भी भावना प्रदर्शित होती है उसमें अंतर आ गया है। इस फुलकारी में नमूनों के बीच में शीशे या अभ्रक के टुकड़ों को कांच वाले टाँके से लगाया जाता है। इसमें वस्त्र की पृष्ठभूमि गहरे रंग की रखी जाती है।

8. रेशमी शीशा बाग फुलकारी :-

इसमें पूरे वस्त्र पर सफेद धागे से कढ़ाई का नमूना बनाया जाता है जो शीशे की तरह चमकता है। पहले जैसे ही पंजाब में परिवार में लड़की का जन्म होता था तो उस समय माँ अथवा दादी अपनी बेटी के लिए फुलकारी की कढ़ाई का वस्त्र बनाना शुरू कर देती थी ताकि उसकी शादी के समय उसे यह प्यार रूपी तोहफा दिया जा सके। कई बार फुलकारी शॉल को बनाते हुए 10 साल भी लग जाते

थे। प्राचीन काल में फुलकारी से पूरा कपड़ा भर जाता है, परंतु आजकल ऐसा नहीं किया जाता। फुलकारी करने में विशेष सत्ता प्राप्त करने के लिए कई साल लग जाते हैं। अब यह कला व्यावसायिक हो गई है। इस फुलकारी में आधार रंगों के रूप में नेवी ब्लू का उपयोग किया गया है।

9. वरी दा बाग फुलकारी :-

यह दूल्हे की माता के द्वारा दुल्हन को दिया जाता है। यह भी लाल रंग शॉल पर बना होता है। इसे विवाह के समय वर्ग पक्ष की ओर से दुल्हन को उपहार स्वरूप भेंट किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इसे दूल्हे की दादी बनती है। इसी बनाने में अधिक श्रम एवं समय लगता है। इसे पूरा करने में लगभग 4 साल का समय लगता है। नमूने पीले रंग के रेशमी धागों से बनाए जाते हैं। इसमें छोटे-छोटे नमूने कढ़े होते हैं। यह शॉल अत्यंत सुंदर, मनभावन एवं आकर्षक लगता है। इसे विशेष बैग पर दादी द्वारा कढ़ाई की जाती है और शादी के समय पोते की दुल्हन को उपहार में दिया जाता है। यह लाल आधार पर सुनहरे पीले धागे से बनाया जाता है, क्योंकि यह खुशी और उर्वता का प्रतीक है। मैदान को छोटे-छोटे लोजेजो से ढक दिया गया है। जिनमें सो प्रत्येक के पास एक और लोजेंज है।

10. कच्छ की फुलकारी :-

कच्छ की फुलकारी काफी लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध है। कच्छ प्रदेश में किए जाने के कारण इसका नाम भी कच्छ फुलकारी पड़ा है। इसमें वस्त्र के चारों ओर उत्कृष्ट नमूने से बॉर्डर बनाए जाते थे। बीच के रिक्त स्थानों में पशु, पक्षी, फल, फूल, पत्तियां आदि के नमूने चित्रित किए जाते थे। नमूने प्रायः चैन एवं हेरिंगबोन टाँके से बनाए जाते थे। हाथी, मोर, तोता, हंस, कबूतर आदि के नमूने को बड़ी प्रवीणता एवं कुशलता के साथ चित्रित किया जाता था। इस फुलकारी के पौधे में कांच के छोटे-छोटे टुकड़े मिलाये जाते हैं। ऐसी फुलकारियों को दर्पण वाली फुलकारी कहा जाता है, लेकिन रम्पा पाल ने इन्हें छमा नाम दिया है।

11. भवन बाग फुलकारी :-

इसमें 52 ज्यामितीय आकार में नमूने बनाए जाते हैं। नमूने छोटे – छोटे चौकोर में काढ़े जाते हैं। प्रत्येक चौकोर के मध्य में रंग-बिरंगे चमकीले धागे से सुंदर एवं स्पष्ट नमूने बनाए जाते हैं। यह काफी बड़ा काम होता है जिसे काढ़ने में काफी समय एवं श्रम लगता है। इसे बनाने के लिए कलाकार में अत्यधिक मेहनत अटूट धैर्य एवं असीमित उत्साह की क्षमता होनी चाहिए। आजकल यह कढ़ाई

लगभग लुप्तप्राय सी हो गई है। यह एक अनोखे प्रकार का बाग है जिसमें मैदान 52 वर्गों में विभाजित है। प्रत्येक वर्ग की अलग-अलग ज्यामितीय आकृति होती है।

12. सतरंगा बाग फुलकारी :-

सतरंगा में सात रंगों का प्रयोग किया जाता है। जब बाग सात रंगों के धागों से बना होता है तो इसे सतरंगा बाग कहते हैं। यह फुलकारी पांच से सात रंगों में ज्यामितीय डिजाइनों का उपयोग करके कढ़ाई की जाती है।

13. धूप छाँव बाग फुलकारी :-

इस प्रकार की बाग कढ़ाई में धूप छाँव का प्रभाव डाला जाता है। इसमें सफेद और पीले रंग के मिश्रित धागों का प्रयोग किया जाता है।

14. चाँद रानी बाग फुलकारी :-

इसमें सफेद पट के धागों से गोल नमूना गहरे नीले धरातल पर बनाया जाता है। जब गहरे नीले रंग की पृष्ठभूमि पर सफेद धागों से कढ़ाई की जाती है, तो वह "चाँद रानी बाग" कहलाता है। यह नीले आकाश की तरह प्रतीत होने लगता है और ऐसा लगता है मानो आकाश ही चंद्रमा एवं तारेगण के साथ वस्त्र पर उतर आया हो।

15. बेलन बाग फुलकारी :-

बेलन बाग का नाम भी चकला-बेलन से पड़ा है। इसमें वस्त्रों पर चकला-बेलन के नमूनों का काढ़ा जाता है।

16. सूरजमुखी बागफुलकारी :-

सूरजमुखी बाग फुलकारी में सूरजमुखी के फूलों का चित्रण किया जाता है। नमूने भूमितिय होते हैं। यह विषम कौण, चतुर्भुज एवं समकोण चतुर्भुज के आकार में बने होते हैं। प्रत्येक लोजेन्जेज इस प्रकार से व्यवस्थित होता है कि वह देखने में अत्यंत सुंदर एवं आकर्षक लगता है। पूर्वी पंजाब में सूरजमुखी बाग ज्यादा लोकप्रिय हैं। बाग की कढ़ाई के लिए कलाकार जिस स्रोत से नमूने की चयन करता है, रंग संयोजन करता है, उसी के आधार पर डिजाइन का नामकरण कर देता है जैसे—शालीमार बाग, ककड़ी बाग, खीरा बाग, बैंगन बाग, कद्दू बाग, धनिया बाग, मिर्च बाग, जहाज बाग, गेंदा

बाग, मोतिया बाग, करेला बाग, मोर बाग, तोता बाग, कबूतर बाग इत्यादि रंगों के आधार पर भी नमूने का नामकरण किया जाता है। जैसे दोरंग बाग – दो रंग, पंचरंगा बाग – पांच रंग, सतरंग बाग – सात रंग, नौरंगाबाग – नौ रंग इत्यादि। बाग कढ़ाई में मुगल काल के प्रभाव भी दृष्टिगोचर होते हैं। मुगलों के शैली के आधार पर बाग का नामकरण भी किया गया है जैसो – चार बाग, शालीमार बाग, चौरसिया बाग, धूप-छांव बाग इत्यादि।

17. छँमाह फुलकारी :-

छँमाह फुलकारी एक बाग का रूप है। इसमें छोटे-छोटे शीशों को जोड़कर कढ़ाई की जाती है तथा यह कढ़ाई राजस्थानी कढ़ाई से मेल खाती है। इसमें भी बिल्कुल भी कपड़ा दिखाई नहीं देता तथा यह मशीनी कढ़ाई से बनी फुलकारी होती है।

18. चंबा फुलकारी :-

इस फुलकारी पर फूलों की टहनियों की भांति कढ़ाई की जाती है। इसमें चारों साइडों में टहनियां बनी होती हैं तथा बीच में छोटे-छोटे फूल होते हैं। इस फुलकारी का उपयोग नवजात शिशु के लिए होता है।

19. सैंची फुलकारी :-

यह फुलकारी ज्यादातर मोगा फिरोजपुर आदि इलाकों में मिलती है। यह फुलकारी संसार भर के कला प्रेमियों की हरमन प्यारी फुलकारी है। इस फुलकारी में एक गांव की लड़की अपने आसपास के जीवन तथा उसके हाव-भाव को फुलकारी में चित्रित करती है जैसे – कोई चरखा कातती का चित्र, कहीं दूध रिड़कते हुए दिखाया गया है तथा बाहर से आए में महेमान को कुर्सी पर बिठाकर हाथ में शरबत का गिलास तथा पंखा झोलते हुए दिखाया गया है। किसान को हल जोतते हुए, पहलवान को कुश्ती करते हुए दिखाया गया है। हर तरह के जीव-जंतु जो कि ज्यादातर गांव में देखने को मिलते हैं जैसे – घोड़ा, बैल, मोर, कौवा, कबूतर, चिड़िया इत्यादि के चित्रों की कढ़ाई की जाती है। एक तरह से गांव का पूरा जन जीवन सैंची फुलकारी में देखने को मिलता है।

20. परांठा फुलकारी :-

इस फुलकारी के आलेखन को परांठा फुलकारी के नाम से जाना जाता है। यह फुलकारी लाल रंग की है। इस पर रेशमी धागे से कढ़ाई की जाती है। एक तरफ लाल और दूसरी तरफ क्रीम रंग से

कढ़ाई की जाती है। इसकी किनारी भी बहुत सुंदर ढंग से बनाई गई है जो की एक दूसरे को काटते हुए जा रही है। यह दूर से ही आकर्षित करती है।

21. लहरीया फुलकारी :-

इस फुलकारी के चित्र में लाल धरातल पर लाल, हरे और सफेद रंग के त्रिभुज बने हुए हैं। जो की ऊंचाई को दिखा रहे हैं और इनको और सुंदर बनाने के लिए सीपी सितारों का प्रयोग किया गया है।

फुलकारी पांच नदियों के संगम से निखर कर उत्पन्न हुई एक देसी कला है जिसमें पंजाबी औरतों की मेहनत रंग झलकता है तथा इनमें उनके व्यक्तित्व तथा रंगीले स्वभाव की छाप है। यह पंजाबी औरतों की उंगलियों का ही कमाल है कि उन्होंने छोटी सी सुई तथा धागे की सहायता से ही कला की एक अलौकिक दुनिया रच दी है। सबसे ज्यादा समय बाग की कढ़ाई करने में लगता है। पुराने समय में दहेज के समान में बाग को बहुत महत्व दिया जाता था। दुल्हन तथा उसके परिवार की समृद्धि का परिचय उसके दहेज में लाए हुए बाग तथा फुलकारी से होता था। अमीर परिवार के लोग अपनी बेटियों को दहेज में 51 फुलकारी देते थे। जब घर में लड़की पैदा होती थी तो तभी से उसके किसी अंग के साथ खदर का कपड़ा छूकर फुलकारी की कढ़ाई शुरू की जाती थी और इस फुलकारी में एक माँ अपनी बेटी के प्रति अपनी ममता और प्रेम को संजोता थी और यह उसके विवाह की फुलकारियों में अहम स्थान रखती थी। इस फुलकारी में एक माँ अपनी बेटी के सपनों की कढ़ाई करती थी। इस फुलकारी में फूलों की कढ़ाई न होकर हमारे आसपास के जनजीवन को दृश्य चित्रित किया होता था।

पंजाबी महिलाओं की परंपरागत फुलकारी कला

पंजाब की एक खूबसूरत और रंगीन कढ़ाई, फुलकारी सदियों से इस क्षेत्र की संस्कृति का एक प्रिया हिस्सा रही है। हालांकि इसकी सटीक उत्पत्ति अस्पष्ट है। कई लोगों का मानना है कि फुलकारी की शुरुआत 15वीं शताब्दी में हुई थी। संभवतः इसे मध्य एशिया से पलायन करने वाले जाट जनजातियों द्वारा पंजाब लाया गया था। दूसरों का मानना है कि यह फ्रांस फारसी कला से प्रभावित हो सकता है, विशेष रूप से 'फुलकारी' (गुलकारी) के रूप में जाने वाली शैली जिसका अर्थ 'फूलों का काम' भी है। यह समृद्ध इतिहास फुलकारी को फुलकारी अमृतसर मार्केट शॉपिंग का एक अनिवार्य आकर्षण बनाता है। जहां हर सिलाई में परंपरा और कलात्मक एक साथ आती है।

अपने शुरुआती दिनों में फुलकारी ऐसी चीज नहीं थी। जिसे लोग बाजारों में बेचते थे। इसके बजाय यह घर पर महिलाओं द्वारा किया जाने वाला एक शिल्प था। आमतौर पर उनके खाली समय के दौरान। सूती कपड़े और रेशमी धागे जैसी सरल सामग्रियों का उपयोग करके ये महिलाएं जटिल डिजाइन बनती थी, जिन्हें अक्सर उपहार के रूप में दिया जाता था। या शादी की रस्मों के हिस्से के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। फुलकारी सिर्फ एक सजावटी वस्तु नहीं थी, यह खुशी, समृद्धि और उर्वरता का प्रतीक थी, जिससे यह पंजाबी शादियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई।

फुलकारी को खास बनाने का तरीका यह है कि इसे किस तरह से बनाया जाता है। कढ़ाई कपड़े के पीछे की तरफ की जाती है, लेकिन सुंदर पैटर्न सामने की तरफ दिखाई देते हैं। अक्सर फूलों, पक्षियों और पारंपरिक प्रतीकों से प्रेरित डिजाइन लंबी और छोटी टाँके का उपयोग करके बनाए जाते हैं। कपड़े, आमतौर पर मोटे सूती कपड़े जिसे 'खादर' के रूप में जाना जाता है, को लाल, पीले, नारंगी, हरे, गुलाबी जैसे चमकीले रंगों में रंगा जाता है। फुलकारी में इस्तेमाल किए जाने वाले धागे आमतौर पर रेशम के होते हैं, जो अपनी चमकदार चमक के लिए जाने जाते हैं, जो रंगीन कपड़े के खिलाफ खूबसूरती से दिखते हैं।

पिछले कुछ सालों में फुलकारी ने आधुनिक फैशन में अपनी जगह बनाई है। आज आप फुलकारी को न केवल शॉल और दुपट्टे जैसी पारंपरिक कपड़ों पर बल्कि जैकेट, हैंडबैग और यहां तक की घर की सजावट की वस्तुओं पर भी देख सकते हैं। पुराने और नए के इस मिश्रण ने फुलकारी को न केवल पंजाब के बल्कि पूरे भारत और उसके बाहर भी लोकप्रिय बना दिया है।

अगर आप फुलकारी का असली रूप देखना चाहते हैं, तो अमृतसर आपके लिए सबसे सही जगह है। यहां के बाजार फुलकारी के सामानों से भरे पड़े हैं, जिनमें से हर एक पंजाब की समृद्ध विरासत की कहानी बयां करता है। लेकिन अगर आप ज्यादा तल्लीन करने वाला अनुभव चाहते हैं,

जहां आप देख सकें की फुलकारी कैसे बनाई जाती है और खुद भी इसे आजमा सकें तो साझा गांव एक बेहतरीन जगह है।

❖ साझा पिंड : एक सांस्कृतिक गांव जहां फुलकारी रहते हैं :-

अमृतसर के चहल पहल भरे शहर के ठीक बाहर सझा पिंड है जो एक सांस्कृतिक गांव है, जो पंजाब के पारंपरिक जीवन की झलक पेश करता है। यहां आप वह सब कुछ अनुभव कर सकते हैं जो पंजाब को खास बनाता है। इसके जीवंत, संगीत और नृत्य से लेकर इसके स्वादिष्ट भोजन और गर्म जोशी से भरे आतिथ्य तक सझा पिंड का एक मुख्य आकर्षण फुलकारी हाउस है। एक ऐसी जगह जहां आप फुलकारी की खूबसूरती को करीब से देख सकते हैं।

साझा पिंड के फुलकारी हाउस में फुलकारी सिर्फ खरीदने वाली चीज नहीं है, यह ऐसी चीज है जिसे आप अनुभव करते हैं। कुशल कारीगर जिन्होंने अपने पूर्वजों से यह कला सीखी है। आपके सामने ही फुलकारी पर काम करते हैं। उन्हें हर डिजाइन को ध्यान से सिलते हुए देखना आपको इन बेहतरीन कृतियों को बनाने में लगे समय और कौशल के लिए गहरी सराहना देता है। और अगर आप इच्छुक हैं तो आप उनके मार्गदर्शक न में फुलकारी सीखने में भी अपना हाथ आजमा सकते हैं।

❖ साझा पिंड में फुलकारी की खरीदारी :-

शगना दी फुलकारी (सझा पिंड में फुलकारी हाउस) में खरीदारी करना एक अनूठा अनुभव है। प्रत्येक वस्तु को पीढ़ियों से चली आ रही पारंपरिक तकनीकों का उपयोग करके सावधानी से हाथ से तैयार किया जाता है। चाहे आप किसी खास अवसर पर पहनने के लिए पारंपरिक फुलकारी का दुपट्टा या आधुनिक जैकेट या कुशन कवर की तलाश कर रहे हो, आपके यहां कई तरह के विकल्प मिलेंगे। अमृतसर में सझा पिंड में खरीदारी को खास बनाने वाली बात यह है कि आपको पंजाब की संस्कृति और इतिहास से जुड़ाव महसूस होता है। हर फुलकारी आइटम एक कहानी बयां करती है और जब आप एक खरीदते हैं तो आप उस कहानी का एक हिस्सा घर ले जाते हैं। साथ ही साथ सझा पिंड से फुलकारी खरीद कर आप स्थानीय कारीगरों का समर्थन कर रहे हैं और इस खूबसूरत परंपरा को जीवित रखने में मदद कर रहे हैं।

❖ खरीदारी से कहीं अधिक: एक पूर्ण सांस्कृतिक अनुभव :-

फुलकारी की खरीदारी एक आकर्षक है, लेकिन सझा पिंड में इससे कहीं ज्यादा है। पूरा गांव आगंतुकों को एक प्रमाणिक एक पंजाबी अनुभव देने के लिए डिजाइन किया गया है। आप भांगड़ा और

गिद्धा जैसे पारंपरिक लोक नृत्य देख सकते हैं जो ऊर्जा और आनंद से भरे होते हैं, आप पारंपरिक व्यंजनों का उपयोग करके बनाए गए स्वादिष्ट पंजाबी भोजन का भी आनंद ले सकते हैं और बैलगाड़ी की सवारी और मिट्टी के बर्तन बनाने जैसी मजेदार गतिविधियां आजमा सकते हैं।

सझा पिंड एक ऐसी जगह है जहां आप आराम कर सकते हैं और पंजाब में जीवन के सरल सुखों का आनंद ले सकते हैं। यह परिवारों, दोस्तों के समूह हो या पंजाबी संस्कृति के बारे में अधिक जानने में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए एकदम सही है।

पंजाबी पारंपरिक महिलाएं उन महिलाओं को संदर्भित करती हैं जो पंजाबी संस्कृति से संबंधित हैं, जो मुख्य रूप से दक्षिण एशिया के पंजाब क्षेत्र में पाई जाती हैं, जो भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजित है। पंजाबी संस्कृति अपनी समृद्ध परंपराओं जीवंत रंगों और जीवंत उत्सवों के लिए जानी जाती है। पंजाबी पारंपरिक महिलाओं से संबंधित कुछ पहलू इस प्रकार हैं :-

1. पहनावा :-

पंजाबी महिलाएं पारंपरिक रूप से सलवार कमीज पहनती हैं, जिनमें एक लंबा ट्यूनिंग स्टाइल टॉप जैसा होता है जिसे कमीज कहा जाता है और ढीले-ढाले पैट जिसे सलवार कहा जाता है। इस पोशाक को अक्सर दुपट्टे से पूरित किया जाता है। जो गर्दन या कंधों के चारों ओर पहना जाने वाला एक लंबा दुपट्टा होता है। पंजाबी महिलाओं के पोषक अपने चमकीले रंगों, जटिल कढ़ाई और अलंकरणों के लिए जान जाते हैं।

2. आभूषण :-

पंजाबी महिलाएं अक्सर पारंपरिक आभूषणों से खुद को सजाती हैं। इसमें सोने की बालियां, हार, चूड़ियां और पायल शामिल हो सकते हैं। इन आभूषणों को अक्सर जटिल पैटर्न और रत्नों से डिजाइन किया जाता है।

3. फुलकारी :-

फुलकारी एक पारंपरिक पंजाबी कढ़ाई तकनीक है। पंजाबी महिलाएं अक्सर फुलकारी कढ़ाई वाले दुपट्टे, शॉल और सूट पहनती हैं। फुलकारी में आमतौर पर ज्यामितिय फूलों के पैटर्न में चमकीले धागों का काम शामिल होता है।

4. पारंपरिक उत्सव :-

पंजाबी महिलाएं विभिन्न सांस्कृतिक समारोह और त्योहारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ऐसा ही एक त्यौहार है बैसाखी, जो फसल के मौसम का प्रतीक है। महिलाएं रंग-बिरंगे परिधान पहनकर गिद्धा और भांगड़ा जैसे पारंपरिक लोक नृत्य में भाग लेती हैं और अपनी ऊर्जा का प्रदर्शन करती हैं।

5. मेहंदी :-

मेहंदी या हिना पंजाबी परंपराओं का एक अभिन्न अंग है। महिलाएं शादी और त्योहार जैसे खास मौकों पर अपने हाथों और पैरों पर जटिल मेहंदी डिजाइन लगती हैं। इसी सुंदरता और शुभता का प्रतीक माना जाता है।

6. पंजाबी व्यंजन :-

पंजाबी महिलाएं अपने पाक कौशल के लिए जानी जाती हैं। वे पारंपरिक पंजाबी व्यंजन जैसे सरसों का साग, मक्की की रोटी, बटर और कई तरह के पराठे बनाने में माहिर हैं।

7. पारिवारिक और सामाजिक जीवन :-

पंजाबी महिलाएं अक्सर पारिवारिक परंपराओं और मूल्यों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे घरेलू जिम्मेदारियां, बच्चों की परिवार, परवरिश में सक्रिय रूप से शामिल होती हैं और अक्सर अपने परिवारों के लिए एक सहारे के रूप में काम करती हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि पंजाबी संस्कृति में परंपराओं और प्रथाओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल हैं और व्यक्तिगत अनुभव और विकल्प अलग-अलग हो सकते हैं।

चरखे और फुलकारी का नाता

चरखा वह धुरी है जिसके चारों ओर पंजाबी महिलाओं की सभी कलाएं विकसित हुई हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में चरखे का आज भी यह महत्वपूर्ण स्थान है। एक समय था जब शहरों में भी चरखे की यह महिमा थी। चरखा पंजाब के हर गांव में, हर घर का अभिन्न अंग है। 4 साल की उम्र की लड़कियां भी पहिया चलाना जानती हैं और यह काम बहुत आसान भी है। घरेलू उपयोग के लिए कपड़ा तैयार करने के लिए चरखा बहुत उपयोगी है।

निवार, धारी, खेस, चादर, छटियाँ, नाला, कढ़ाई और पहनने के लिए मोटे और महीन खदर दोनों की बुनाई चरखा ऐसे सभी हस्तशिल्पों से निकटता से संबंधित है। भेड़ की कच्ची ऊन और कोकून के रेशमी रेशे भी चरखे पर काते जाते हैं। फुलकारी खादर पर बनाई जाती है और खादर के लिए यह चरखे पर निर्भर होती है। खादर की बुनाई में छेद होते हैं, इसलिए कढ़ाई करते समय आंखें उस पर टिकी रह सकती हैं। आंखों पर कोई भार नहीं पड़ता और इससे सिकुड़ने या खींचने से बचने के लिए किसी फ्रेम की जरूरत नहीं होती। बगीचा और यह केंद्र फुलकारियों के लिए एक अदभुत केंद्र है।

सर्वोत्तम गुणवत्ता का होला लाल पदर, हलवान पूर्वी पंजाब के लुधियाना और पश्चिमी पंजाब के बहालपुर में तैयार किया जाता है। कभी-कभी सटीकता के लिए सादे कपड़े के साथ प्रकाश में एक्सटेंशन को प्राथमिकता दी जाती है। नौसिखिया होने के कारण उस पर सुरक्षा अधिक निष्पक्ष एवं स्पष्ट थी। परंतु आंखों में आंसू भी बहुत थे। आजकल वीडियो महिलाओं पर लिटेन लटठा पैपलिन आदि का ही प्रयोग किया जाता है। आज के आधुनिक चरखे को संभालना और ले जाना आसान है और यह एक छोटे बक्से में बंद है।

गांव में आज भी पुराने जमाने का चरखा चलाया जाता है। यह आकार में बड़ा होता है। काफी जगह घेरता है और बड़े पैमाने पर होने के कारण यह छोटे बच्चों का लक्ष्य बना रहता है। बरसने में एक अजीब सा आनंद था। जो आज उन्हें नहीं मिला। एक पुराने प्रकार का चरखा देखने लायक है। उनके पिंड को लाल और पीले रंग से रंगा जाता है और मोतियों, मोतीयों और चीनी से सजाया जाता है। उन दिनों सर्दियों में आने वाले लोग अपनी बेटियों की शादी में यह चरखा उपहार स्वरूप देते थे। आजकल सिर्फ सिलाई मशीन ही दी जाती है।

चरखा का प्रयोग एक समय पूरे पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किया जाता था। इसका प्रयोग आमतौर पर भारत में किया जाता था, लेकिन अब यह केवल पंजाब के गांव में ही देखा

जाता है। अगर हमें फुलकारी को पुनर्जीवित करना है तो हमें चरखे को भी पुनर्जीवित करना होगा। दोनों की जीवन डोर एक समान है।

शहरों और पूरे भारत में चरखे का पुनरुद्धार काफी हद तक महात्मा गांधी के प्रयासों का परिणाम है। उन्होंने ने इसे एक जीवंत शक्ति और भारतीय पुनर्स्थान का प्रतीक बनाया। इसे प्यार और सम्मान दिया जाता है। चरखा चलाना सभी कांग्रेसी पुरुषों और महिलाओं का मुख्य कर्तव्य है। उनके धर्म का मुख्य अंग है। यह एक शक्तिशाली राजनीतिक हथियार है और विनम्रता तथा कड़ी मेहनत के राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में इसकी महानता सार्वभौमिक है। गांव में अभी भी छोटी-मोटी चीजे हैं और युवा महिलाएं सुबह होने तक सियाल रातें काटती हैं। एक बूढ़ी औरत या विधवा त्रिमूर्ति देखभाल करती है।

लेखक ने बर्मा के टोंगू गांव के कारण पड़ोसी के घर में पूरी तरह से बांस से बना एक भारतीय शैली का ठेला देता था। पिछले शताब्दी में यूरोपीय देशों में भी चरखे का आम उपयोग होने लगा है। इसे घर की दहलीज के पास सम्मानजनक स्थान मिल रहा है। इस पर ऊन काता जाता था। “फ्लाइंग डचमैन” गीत – नोट एक बिंदु पर आता है, “घूम ओ पहिए घूमन अन लिपिटिडी ए ऊन लपटना ए। कई लोग चरखे को आधुनिक जीवन के अनुकूल नहीं मानते और चरखा चलाने को समय की बर्बादी मानते हैं। परंतु मेरी राय यह है कि इसके घुमकर का मधुर संगीत मन को आरामदायक स्थिति में ले जाता है और आनंद देता है, कुछ घंटों के लिए पहिया घुमाना एक अच्छा ध्यान भटकाने वाला काम है।

❖ चरखे के बारे में कुछ खास बातें :-

- चरखा प्राकृतिक रेशों से धागा या सूत कातने का एक उपकरण है।
- चरखा भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक प्रतीक था। महात्मा गांधी ने से अहिंसा, स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता का प्रतीक बनाया था।
- चरखा, सूत तैयार करने का एक हस्त चलित उपकरण है। यह एक छोटा पहिया होता है, जिसे हाथ से घुमाया जाता है। चरखे पर एक हाथ से ड्राइव व्हील को घुमाया जाता है और दूसरे हाथ से धूरी की नोक से सूत काता जाता है।
- देशभर में सबसे बड़ा चरखा, उत्तर प्रदेश के नोएडा में बना है। यह चरखा प्लास्टिक कचरे से बना है।
- चरखा, भारत में अंग्रेजों के आने से पहले से ही प्रचलित था। इतिहासकारों का मानना है कि सिंधु घाटी सभ्यता में भी लोग चरखे से सूत कातने लगे थे।

- इंदिरा गांधी ने साल 1930 में 'बाल चरखा संघ' की स्थापना की थी। इस संघ में बच्चों को सूत कातना और बुनाई सिखाई जाती थी।

इस समय तक जो भी चरखे चलते थे और जिनकी खोज हो पाई थी, वे सब खड़े चरखे ही थे। आजकल खड़े चरखे में एक बैठक, दो खंबे, एक फरई (मोड़िया और बैठक को मिलाने वाली लकड़ी) और आठ पंक्तियों का चक्र होता है। देश के भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न आकर के खड़े चरखे चलते हैं। चरखे का व्यास 12 इंच से 24 इंच तक और तकुओं की लंबाई 19 इंच तक होती है। उस समय के चरखों और तकुओं की तुलना आज के चरखों से करने पर आश्चर्य होता है। अभी तक जितने चरखों के नमूने प्राप्त हुए थे, उनमें चिकाकोल (आंध्र) खड़ा चरखा सबसे अच्छा था। इसके चाक का व्यास 30 इंच था और तकुवा भी बारीक तथा छोटा था। इस पर मध्यम अंक का अच्छा सूत निकलता था।

चतुर्थ अध्याय

- पंजाब की कला से सम्बन्धित कविता और बोली

पंजाब की कला से सम्बंधित कविता और बोली

पंजाबी मजबूत होते हैं और दिल खोलकर हंसते हैं। बंगालियों को उनकी बात समझ में नहीं आई। वे उन्हें कायर समझने की भूल करते हैं। खुले भाईचारे के बावजूद पंजाब का दिल बहुत गर्म है और इसकी कल्पना काव्यात्मक है, वह ईमानदार ईमानदार और स्वाभाविक भी है।

पंजाबी महिला ने वल्करी से लेकर लोक कविता तक अपनी खूबसूरत आत्मा को व्यक्त किया है। इन आंसुओं में उसकी आत्मा धड़कती है।

अतः फुलकारी सच्चे अर्थों में एक स्वदेशी कला है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि पंजाब के 'लो कगीतो' में इसकी सुंदरता और कलात्मकता की प्रशंसा की जाती है। आज भी जब फुलकारी फैशन आइटम नहीं रही, मशहूर पंजाबी कवियत्री अमृता प्रीतम फुलकारी गीत गाती है। देवेंद्र सत्यार्थी एक प्रसिद्ध लोक गीत संग्रहकर्ता हैं। उन्होंने ने पूरे भारत, वर्मा और लंका की यात्रा की और लोकगीत एकत्रित किए। उनके कनेक्शन में फुलकारी पर बने कई खूबसूरत गाने मौजूद हैं। अमृता प्रीतम और सत्यार्थी दोनों पंजाब की ग्रामीण युवा महिलाओं और गर्भवती महिलाओं के जीवन और प्रेम के बारे में हैं। लिखना, इसलिए उनके गानों में अवसर फुलकारी आती रहती है। आगे बढ़ते हुए हमने फुलकारी के बारे में कुछ गाने दिए हैं, जो उनके कौशल के बारे में बहुत कुछ बताते हैं।

अमृता शेरगिल एक प्रसिद्ध पंजाबी चित्रकार हैं। उनके कला-प्रेमी पिता सरदार उमराव सिंह मजीठिया का कुछ समय पहले निधन हो गया था। अमृता शेरगिल ने अपनी तस्वीर 'बिसराम' में फुलकारी को अमर कर दिया है। इसमें कुछ किसान, लड़कियों को दिखाया गया है। एक लड़की काली जमीन पर स्टार-गर्दन वाले चबली फूल से सजी एक साधारण फुलकारी पहनती है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि फुलकारी ने पंजाबियों की लोक कविता में अपना स्थान पाया है। जब गांव की लड़कियां फुलकारी चुनने के लिए एकत्रित होती हैं, तो वे गीत जोड़ती हैं और गाती हैं। यदि फुलकारी उसे लड़की के लिए आरक्षित है जिसकी शादी होनी है तो वह सुहाग गीत गाती है, जिसमें दुल्हन के भविष्य, उसके नए रिश्तों और उसकी प्रेमिका को शुभकामनाएं और आशीर्वाद की झलक होती है, और अगर फुलकारी निंगर परिवार के लिए होती तो घोड़ियों बिक जाती। इस फुलकारी के रूमानी स्वरूप का हमारी लोक कला से बहुत घनिष्ठ एवं अभिन्न संबंध है। फुलकारी निकालने की शुरुआत काव्यात्मक माहौल में होती है और सुंदर-सुंदर गीत गाते हैं।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि फुलकारी ने पंजाब की कविता में एक अच्छा खासा स्थान प्राप्त किए हुए हैं क्योंकि यह एक साधारण सी बात थी कि फुलकारी का काम करते हुए लड़कियां गाने गया करती थी। यदि वे किसी दुल्हन के लिए कढ़ाई वाली फुलकारी बना रही होती थी

तो उसे समय वे सुहाग गाती थी और दुआएं देती थी कि उसका आने वाला जीवन खुशियों से भरा हो जाए। यदि वे फुलकारी दुल्हे के परिवार के लिए बनाती थी तो उस समय वे घोड़ियां गाती थी जिसमें वे दूल्हे व उसके परिवार को अपनी कल्पना में रखकर गीत गाती थी।

वो अपनी आत्मा को फुलकारी में प्रदर्शित कर चुकी है। और उनका कविता के लिए जो प्यार है वो बड़ी भारी मात्रा में पंजाब के लोक गीतों में पाया गया है। फुलकारी को एक सच्ची कला के रूप में लिया गया है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जब हम इसमें सुंदरता व आकर्षण पंजाब के लोक गीतों को पाते हैं। यहां उतक कि जब फुलकारी का आजकल फैशन नहीं है, तब भी प्रसिद्ध कवियत्री अमृता प्रीतम ने इसके गीत गाये।

पंजाबी औरतों का डील डोल बड़ा मजबूत होता है और दिल से हंसती हैं। कई बार ऐसा होता है कि जो लोग उन्हें अच्छी तरह नहीं जानते वे उन्हें अच्छा नहीं समझते। इस सब की बजाय वह कुछ इस तरह की दिखाई देती हैं उनका दिल प्यार से भरा होता है उनकी सोच काव्य होती है और इनमें शक्ति बहुत होती है किसी चीज में सच्चाई भरने की।

जैसा कि हमने देखा ही कला तो हर जगह व्यापक है। जैसे हम कोई भी कार्य करें तो वह कला के बिना असंभव है। कला का सबसे प्रमुख कार्य है मानव को आत्मिक शांति प्रदान करना। महात्मा गांधी ने यहां तक कहा है जो कला आत्मा दर्शन करने की शिक्षा नहीं देती, वह कला नहीं है। कहने का भाव यह है कि जब फुलकारी हम बनाते हैं उसके डिजाइन से लेकर एक-एक धागे को चुनकर लगाना कला है। यदि उसे देखकर हमारी आत्मा खुश न हो तो वह कला नहीं है। मनुष्य की रचना जो उसके जीवन में आनंद प्रदान करती है। कला कहलाती है। मनुष्य के अंदर एक अपूर्व शक्ति गुप्त रूप से कार्य करती है। यदि वह इस शक्ति का प्रयोग करता है तो उसका जीवन आनंदमय हो जाता है और यदि वह इसका दुरुपयोग करता है तो उसका पतन हो जाता है। अतएव जीवन को सुखमय बनाने के लिए मनुष्य ने साहित्य संगीत, नृत्य, वाद्य, नाट्य चित्रांकन आदि कलाओं की ओर ध्यान परीक्षण किया है। इन कलाओं में से किसी एक कला को भी यदि मनुष्य पूर्ण रूप से अपना लेता है तो वह कलाकार बन जाता है। एक कलाकार अपनी कलाकृति को देख आनंद का अनुभव करता है। वह आनंद का अकथनीय होता है। इस प्रकार वह मानवीय कृति जो उसके जीवन में सौंदर्य एवं आनंद के अनुभूति जागृत करती है, कला कहलाती है। जब फुलकारी बनाई जाती है तो उसे बनाने वाले कलाकार को यह नहीं पता होता कि वह इनमें कौन सा धागा लगा दे, वह वही रंग इस्तेमाल करता है जिससे उसे आनंद मिले और आनंद से बनाई गई फुलकारी को देखकर दूसरों का मन भी आनंदित हो जाता है। कला भावों को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम है। चित्रकार अपनी कला का प्रदर्शन रेखाओं

तथा रंगों द्वारा करता है। इसी तरह से फुलकारी सुई और धागे के माध्यम से फुलकारी में अपनी भावनाओं को दर्शाता है।

फुलकारी जिसे बड़े ही रोमांचक व लोक कला से मिलकर बनाया गया है। किसी भी फुलकारी को बनाने की पहली अवस्था काव्य माहौल में ही की जाती है। जिसमें शादी का हंसी मजाक के आकर्षण और तरो ताजगी को ध्यान में रखकर किया जाता है। फुलकारी का लोक गीतों में भी बहुत महत्व है। घर में जब भी खुशी का अवसर होता है। तब लोकगीत गाए जाते हैं। जो कि फुलकारी के लोकगीत इस प्रकार हैं :—

!! फुलकारी के लोक—गीत !!

1. उत्ते फुलकारी मै रहिन्दी कुवारी, सस्सू पुत परदेस नूं तोरया ई।
कडदना ऐ बाग सस्सू सुती ऐ जाग। सस्सू पुत परदेस नूं तोरया ई।
तंद नही पानी मेरी ऐहल जवानी, सस्सू पुत परदेस नूं तोरया ई।
चम्बा खेल, सस्सू बिछडे मेल, सस्सू पुत परदेस नूं तोरया ई।।
2. खंह बिच्च पानी, मां मेरी रानी, कडेगी कसीदड़ा पायेगी मधानी।।
3. मैं कड़ढना दिल्ली दरवाजा, पच्चीयां दी लिया लोगड़ी।
4. फुलकारी मेरी रेशमी, रंग न आया ठीक।
छेती दरशन देवणे, मैं रस्ता रही उडीक।।
5. मेरे सिर फुलकारी आ तुसी परदेस गये, जीवन किस कारी आ।
6. कील फूल मै कडढके करनी हां अरदास। छेती आ मिल सज्जणा, भुज चुक करनी माफ।
7. फुलकारी साड़ी रेशमी उते चमकन मोर, गल्लां तुसाडियां मिट्ठियां, अन्दरों दिल ने होर।

8. फुल कडढयां जे फेरवा फुल कडद जे तोरी दा, तेरी दा की रंग सलाहीए, रंग सलाहीए गोरी दा।
हुसन गोरी दा चों —चों पदा जिओ मखियो मखयारी दा, नैन गोरी दे कजला पाया, डाडा रंग फुलकारी
दा।

गौरीयनी तूं खरी सियानी तेरी कोइ रीत नही, रेशम—रेशम हर कोइ कैहदां, रेशम मूंहो बोले दा,
फुलकारी दा रंग गोरीए, इश्क हुसन संग तोल दां।

9. धी होवे तां धन होवे क्या जी निरधन धी न हो, दियां लख फुलकारियां जित्थे धी दा आदर हो।

10. छनद प्रागे आइए जाइए, छनद प्रागे वारी, डार कूजां दी सोहनी कडूनी, मूंह तो चुक फुलकारी।

11. चिट्ठे पद दा मोतिया, ते साबियां डंडियां पा, किस पे सिरते पला कीता,
सूही फुलकारी दा। सिर फुलकारी, हाथ छन कंगन। पैर पंजेबां पा।
ऐदर सखियां, ओदर सखियां। बैठी पीडा डाह। रन्त फिरी वाह मोह लिया।
बन्न चैल चबेला। जो सिर फुलकारी साबदी। उते रेशम पीला।।

मैंने जिन लोक गीतों को दर्शाया है वे बहुत कम हैं। यदि फुलकारी के बारे में गीत और कविता की चर्चा की जाए तो उसके बारे में सारांश में बताना असंभव है, क्योंकि ऐसे कई गीत हैं जो मैंने भी सुन न होंगे। यह गीत हमारी पंजाबी सभ्यता को बहुत आगे तक ले जाते हैं। ये गीत हमारी पंजाबी सभ्यता में चार चांद लगा देते हैं।

यहां मैंने फुलकारी में कविता का योगदान दिया है परंतु फुलकारी ही कला है। यह एक ऐसी कला है जो लोक कला के अंतर्गत आती है। क्योंकि घर की औरतों और बूढ़ी औरतें इसे हर समय जब भी वह घर का काम करके बैठती हैं तो वे फुलकारी निकालने लग जाती हैं और साथ—साथ कविता गाती हैं, जो की फुलकारी की कविता इस प्रकार है :—

॥ फुलकारी की कविता ॥

1. रेशम का धागा भी कितना निराला है, इन को भी एक दूसरे में पिरो जाना है,
पिरो दिया सांचे में तो बशीर उतर आना है, फिर फूल और शीशे की फुलकारी को,
आंचल पर अपना रूप दिखाना है।

2. फुलकारीया।

महीन चमकते रेशमी धागे, इनको आपस में जब पिरो दिया, खूबसूरती उतर गई सांचे में,
फूलों का अक्स उतर आया दामन पर, कभी आंगन तो कभी दहलीज पर,
कभी नाजुक से हाथों की उंगलियों के बीच, उलझते तो कभी सुलझते,
उलझकर कभी सुलझते, खुलते बंधते से फूलों में उतरा रेशम तो, बन गई फुलकारियाँ

3. आईफोन और महंगे तोहफे देने वाले शहजादे बहुत देखे, प्रेमी वो चाहिए जो फुलकारी ओढ़ा दे।

4. मुझे यकीं है कि तू लौट आएगा, पर पता नहीं यह वक्त कब आएगा।
लेकिन तुम जब भी आओ, खाली हाथ मत आ जाना। कोशिश करना कि मेरे जीते जी आओ।
और मेरे लिए ढेर सारा वक्त ले आना। अगर आओ तुम मेरे मरने के बाद तो तुम कफन की जगह,
मेरे लिए 'फुलकारी' ले आना।

5. शाम को उसकी दिवाली वाली तस्वीर आयी, खूबसूरत फुलकारी में सजी,
चेहरे पर जुल्फें आती उसके, वह झुक कर फूलों के बीच, सजे दीये को जलाती।।

मैंन फुलकारी में कविता को दर्शाया है। इसमें फुलकारी पर कविता के बारे में बताया है।
फुलकारी में कविता को प्रत्यन किया गया है।

गिद्दा वाणी हमारे लोकगीतों का सबसे प्रिय काव्य रूप है। लम्बी वाणी या गीद्दा वाणी एक ही लड़की बोलती है। अतः वक्त बाकी लड़कियां चुपचाप खड़ी रहती हैं, जब वह लड़की आखिरी छंद पर पहुंचती है तो उसके समेत बाकी सभी लोग आखिरी छंद उठाकर नाचने लगते हैं और दोनों लड़कियां समूह के घेरे में आकर नाचने लगती हैं।

इन गिद्दा गीतों में समय-समय पर छंदा बंदी का विकास हुआ है। सबसे पहले गिद्दे में टोटके की केवल दो पंक्तियों का प्रयोग किया जाता था। बाद में धीरे-धीरे इसमें गांव से गांव चुनना, या खट के ब्यारई, आदि जैसे वाक्यांश जोड़कर और अधिक टोटके जोड़ने से ये बोलियां लंबी हो गई हैं।

गिद्दा की बोली का पूरा रंग ग्रामीण सांस्कृतिक मेले, शादी, विवाह, त्योहार और अन्य त्योहारों के अवसर से जुड़ा होता है। इन बोलियों को पुरुष और महिला दोनों गाते हैं। इन गिद्द बोलियां में फुलकारी बोलियां को दर्शाया गया है।

।। फुलकारी के गिद्दे बोलियां ।।

1. उते हीर ने लई फुलकारी, कुर्ती खदर दी पाई, हंथ उते सजन चुडियां, रंगली में हदी लाई।

कूडियां चांद चढ़ गया, हीर गिहे विच आई, रोनक कूडियां दी हो गई दुनी सवाई ।।

2. बगलें दे खंब चिटें सुन दे, कोयल सुन दी काली, बगलां ता आपने भाईयै रल गया,
रह गई कोयल विचारी, हांका घर विजयां छड़ मित्रता फुलकारी ।

3. रसम ने खां ली, गम ने पी ली, गम दी करो नियारी, गम हड़ा नो एयो खा जादी, जिवें लकड़ नो
आरी, को ढे चड़ के वेखन लगी, लदे जान वपारी, उतरन लगी ते कढ़ा वजयां, दुख लग जादा भरी ।
चल देवर मेरा लाज करादें , जिते वसे ललारी, पहले मेरी कुर्ती लभ दे दूजे लभें मेरी फुलकारी ।
दुख मेरे भागा दा, छड़ दे वैद मेरी नाड़ी ।।

4. साँप मेरे क्यों लड़ जावे, मै मापेयां नो पियारी, माँ ता मेरी दाज बनावें ।
सुने बाग फुलकारी, हट के बैठ मित्रत रा, सभ नो जानु पियारी ।।

5. आरी आरी आरी, विच दरवाजे दे, फुल कढ़न फुलकारी वि दरवाजे दे ।।

6. सास मेरी दे माता निकल, निकल मारी मारी, सास मेरी दे माता निकल, निकल मारी मारी,
सोहरा मेरा पुजन लगा, लाई के लाल फुलकारी ।।

7. सुन नी कूड़ियें फुलकारी वालीयें , अखाँ ना मटकाईयें , नी खुहँ ते होजे चरजा,
चरचां ना करवाईयें , धर्मी बाबल दी पाग नो दाग न लाईये ।।

पुरुषों की कविता महिलाओं की तुलना में भारी होती हैं। वहां ढोलकी की जगह ढोल माल ले लेता है। भांगड़ा, धमाल, धमाका, बागी, लूड़ी, जौली आदि उनकी शायरी में कायल करने का जरिया है। इनमें भांगड़ा, बोलियां अधिक लोकप्रिय है। वे विभिन्न त्योहार या दिनों पर एक साथ नाचते गाते हैं।

भंगड़ा की बोलियां और टप्पा की संरचना में अधिक अंतर नहीं है। इनमें अंतर केवल इतना है कि भांगड़ा बोलियां में अपनी भावनाओं को राग में प्रस्तुत करने और उनका पर्याप्त मिलान करने के लिए हमारे दैनिक जीवन की किसी वस्तु का प्रयोग किया जाता है ताकि अगली कहीं जाने वाली बात पूरी ताकत से कई जा सके। अतः यह कहना उचित होगा कि फुलकारी का हमारी कलाओं में भी उंचा स्थान है।

पंचम् अध्याय

- फुलकारी में उपयोग होने वाली सामग्री
- पंजाब की फुलकारी हस्त की कढ़ाई

फुलकारी में उपयोग होने वाली सामग्री

पंजाबी संस्कृति में फुलकारी बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है। फुलकारी शब्द का अर्थ है – खिले फूल। कपड़े पर सुंदर-सुंदर रंग-बिरंगे फूलों की कढ़ाई फुलकारी कहलाती है। इस कढ़ाई का आकार सच में ही इसके नाम से मेल खाता है। फुलकारी की असली पवित्रता का परिचय तब होता है जब यह सिखों के पवित्र गुरु ग्रंथ साहिब जी के ऊपर ढका जाता है।

फुलकारी फूलों से खिली हुई क्यारी है जिसे कपड़े पर संजोया गया है। जिस तरह से हम मिट्टी में फूलों के पौधे लगाकर उसे बाग का नाम देते हैं, उस तरह से एक कलाकार ने इसे कपड़े पर संजोकर एक बाग बनाया और बाग में से पत्तियां निकाल कर उसे फुलकारी का नाम दिया।

1. बाग :-

बाग के लिए लाल रंग का कपड़ा होता है। सबसे पहले लाहन दी जाती है अथवा सुई से पूरे कपड़े की चारों तरफ कच्चा टांका लगाया जाता है तथा बाद में बीचो-बीच इसी टाँके के डिब्बे बनाए जाते हैं। फिर उसमें फूल निकाले जाते हैं। इनकी कढ़ाई बहुत रंग-बिरंगें रेशमी धागों से की जाती है। यह कढ़ाई बहुत अधिक समय लेती है। कसीदाकार का इसमें परफेक्ट होना बाग से ही पहचाना जाता है। जो बहुत अच्छे तरीके से बाग की कढ़ाई करती है और वही कढ़ाई सीखाने वाली होती है।

2. चरखे :-

चरखे में भी हमारी इस शिल्प कला की प्रसिद्ध बेमुला स्थान प्राप्त किया है। पंजाब ने घर पर ही चरखे की सहायता से रूई कातकर सुंदर दरियां, खेस तथा खदर बुनती हैं, जिनमें कला का भरपूर सौंदर्य निहारने को मिलता है।

3. कपड़ा :-

फुलकारी सामान्य रूप से मोटे सूती कपड़े अथवा खदर के वस्त्र पर की जाती है। इस वस्त्र की कताई और बनाई अधिकतर हाथ से ही की जाती है। यह खदर देखने में सख्त बनावट का नजर आता है। खदर के दो टुकड़ों को आपस में जोड़कर कढ़ाई की जाती है, क्योंकि खदर की चौड़ाई कम होती है। खादर सफेद, लाल, पीले, काले अथवा नीले रंग का हो सकता है।

4. डिजाइन :-

फुलकारी में फूलों के डिजाइन होते हैं, परंतु इसके साथ-साथ चांद, सूरज, मकड़ी के जाल और लहरें आदि बनाए जाते हैं। इसमें कई प्रकार के ज्यामितीय नमूने ऐंठन के बिना अथवा कम ऐंठन

से बनाए जाते हैं। फूलकारी के डिजाइन पहले से निश्चित नहीं होते थे और न ही कोई इन्हे ट्रेस इत्यादि का उपयोग होता था। कढ़ाई करते —करते किसी के दिमाग में जो आता वही बना देते। इसी तरह से फूलकारी फूलों की कढ़ाई तक न सीमित रहकर गांवों के जनजीवन से संबंधित हो गई। लड़कियों ने एक दायरे में रहकर कला की क्षेत्र में रंग और डिजाइन की सहायता से कपड़े पर अलौकिक दुनिया रच दी।

5. टाँका :—

यह कढ़ाई कपड़े के उल्टी तरफ की जाती है। यह कढ़ाई का टाँका रफू करने वाला लंबा अथवा छोटा टाँका होता है। इससे भरवा प्रभाव आता है। इसलिए यह कढ़ाई काफी संघनी होती है। फूलकारी में डिजाइन को न ट्रेस किया जाता है, न ही खिंचा जाता है। इसमें कपड़े की उल्टी तरफ धागों को गिनकर टाँका लिया जाता है तथा डिजाइन कपड़े की सीधी तरफ बनता है। इसमें पूरा कपड़ा ही कढ़ाई से ढका जाता है। टाँके को बहुत ध्यान से बनाना पड़ता है। एक टाँके के गलत बनने पर पूरे डिजाइन को खराब कर देता है।

6. धागा :—

फूलकारी की कढ़ाई में रेशम का धागा प्रयोग किया जाता है। इस धागे को पट का धागा भी कहते हैं, क्योंकि यह ऐंठन के बिना वाला धागा होता है।

7. रंग :—

फूलकारी के लिए धागों का रंग सफेद, लाल, सन्तरी, सुनहरी, पीला, गुलाबी हो सकता है।

8. प्रयोग :—

पहले इस कढ़ाई का प्रयोग ओढ़ने वाली चादरों पर किया जाता था, परंतु आजकल इसका प्रयोग साड़ियां, कुर्ती, कश्न कवर तथा अन्य कई सुंदर वस्त्रों पर किया जाता है।

9. माउंटिंग :—

कपड़े को तना हुआ रखने के लिए उसे लकड़ी के फ्रेम या घेरे पर लगाया जाता है।

10. सुई :—

सुई ब्लेड दो प्रकार की होती है और यह तो सीधी होती है या घुमावदार।

पंजाब की फुलकारी हस्त की कढ़ाई

फुलकारी एक ग्रामीण पारंपरिक कला है, जिसमें पंजाब में महिलाओं द्वारा कढ़ाई की हुई ओढ़नी (सिर पर ओढ़ने का कपड़ा या शॉल) का उपयोग किया जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है “फूलों का काम” जो एक महिला के जीवन में मिल का पत्थर मानी जाने वाली घटनाओं से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

“फूल” का मतलब है – “फूल” और “कारी” का मतलब है – काम। इसे “गुलकारी” के नाम से भी जाना जाता है। यह एक बहुत ही जटिल सुई का काम है जिसमें चमकीले रंग के धागे मुख्य रूप से लाल, नारंगी, नीले, हरे आदि होते हैं।

फुलकारी महज एक वस्त्र नहीं है, यह सामाजिक और अनुष्ठानिक परंपराओं में निहित लोकाचार का एक हिस्सा है।

❖ फुलकारी के मूल के बारे में :-

- फुलकारी प्राचीन काल में मध्य एशिया के प्रवासी जाट लोगों द्वारा भारतीय उपमहाद्वीप में लाई गई थी।
- फुलकारी की तकनीक और पैटर्न का दस्तावेजीकरण नहीं किया गया था बल्कि मौखिक रूप से प्रसारित किया गया था। इसलिए प्रत्येक क्षेत्रीय समूह को उसके अनूठे कढ़ाई के काम से पहचाना जा सकता था।
- फुलकारी की परंपरा अवसर सिख विरासत से जुड़ी हुई थी लेकिन चूंकि यह हिंदुओं और मुसलमानों के बीच भी साझा की गई थी, इसलिए यह धार्मिक रूप से विशिष्ट होने की तुलना में भौगोलिक रूप से अधिक विशिष्ट है।

❖ फुलकारी के इतिहास के बारे में :-

- फुलकारी का उल्लेख वारिस शाह द्वारा रचित प्रसिद्ध पंजाबी लोक कथा हीर रांझा (एक प्रेम कथा) में किया गया है, जिनके पूर्वज ईरान से भारत आए थे।
- इसकी लोकप्रियता 15वीं शताब्दी में महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल से चली आ रही है।

- कढ़ाई उनके जीवन का एकमात्र प्रतिबिंब थी। वे जो चीज देखी थी, जो सब्जियां खाती थी, जो जानवर उनके पास होते थे, उन पर कढ़ाई की जाती है। हर महिला की कढ़ाई करने का अपना तरीका होता है। प्रतिनिधित्व करने का अपना तरीका होता है।

❖ फुलकारी की सामग्री :-

- कढ़ाई का काम हमेशा सादे सूती कपड़े (खट्टर) पर किया जाता था। इसके धागे को हाथ से काता जाता था। बुनकर बनाया जाता था और प्राकृतिक रंगों से रंगा जाता था।
- असल कढ़ाई पट से की जाती थी जो पंजाबी में बिना मुड़े हुए रेशमी धागे के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द है। यह धागा चीन या अफगानिस्तान से मंगवाया जाता था और फिर जम्मू और अमृतसर में रंगा जाता था।

❖ फुलकारी का महत्व :-

- फुलकारी एक लड़की के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लड़की के जन्म के साथ ही उसकी दादी को भावी दुल्हन के लिए साज-सम्मान बनाने का काम शुरू हो जाता था है, जिसे दुल्हन अपनी शादी के दौरान पवित्र अग्नि के चारों ओर घूमते समय पहनती है।
- जब कोई महिला लड़के को जन्म देती है तो उसे फुलकारी दी जाती है जिसे वह प्रसव के बाद पहली बार बाहर आते समय या किसी धार्मिक त्योहार के दौरान पहनती है। इसी तरह जब कोई महिला मर जाती है तो उसके शरीर को फुलकारी से ढक दिया जाता है।
- फुलकारी कभी भी बिक्री के लिए नहीं बनाई जाती थी, यह एक परिवार द्वारा अपने उपयोग के लिए बनाई जाती थी।

❖ रंगों का महत्व फुलकारी में :-

- खट्टर चार रंगों का हो सकता है — सफेद रंग परिपक्व महिलाओं या विधवाओं को दिया जाता है। लाल रंग युवाओं से जुड़ा हुआ है और सबसे व्यापक स्वर है। काला और नीले रंग को रोजाना पहने जाने वाले शॉलो के लिए रखा गया था क्योंकि वे दाग और गंदगी को प्रकट होने से रोका जा सके।
- रंगीन धागों का महत्व, लाल रंग जुनून का प्रतीक है, सफेद रंग पवित्रता का प्रतीक है, सुनहरा या पीला रंग इच्छा और प्रचुरता का प्रतीक है। हरा रंग प्रकृति और उर्वरता का प्रतीक है।

नीला रंग शांति का प्रतीक है। बैंगनी रंग लाल रंग की ऊर्जा और नीले रंग की शांति के बीच सहजीवन का प्रतीक है।

❖ रूपांकनो :-

- फुलकारी पर्दी पर थोड़ी मात्रा में कढ़ाई होती थी जिसमें पुष्प और ज्यामितीय आकृतियों प्रमुख होती थी।
- सरल फुलकारी पर्दी के साथ-साथ विस्तृत बाग के टुकड़ों में रूपांकनों में ऐसी रचनाएं शामिल होती हैं जिनमें न केवल फूल और ज्यामितीय डिजाइन शामिल होते हैं, बल्कि अन्य प्रतीक और वस्तुएं भी होती हैं, जो इन टुकड़ों पर कढ़ाई करने वाली महिलाओं को रोजमर्रा के जीवन का हिस्सा होती हैं।
- एक विशेष प्रकार के कढ़ाई वाले भाग को एक नाम दिया गया था।

❖ फुलकारी की लोकप्रिय रूपांकनों :-

- मोतिया – चमेली का फूल
- सूरजमुखी – सूरजमुखी
- गेंदा – गेंदा
- कमल का पौधा – कमल
- करेला – करेला
- कंकी – गेहूं
- मिर्च – मिर्च
- लेहरिया बाग – लहर
- मोर – मोर
- गौभी – फूलगोभी
- धनिया – धनिया

हाल ही में परांठा के नाम से एक नया रूप विकसित किया गया है।

❖ फुलकारी की तकनीक :-

- कढ़ाई अधिकांशतः अनियमित मोटाई के खदर पर की जाती है, जिसमें सामान्यतः प्रति सामी 10–12 धागे होते हैं।
- खदर को पतली पट्टियों में बुना जाता था और आवश्यक चौड़ाई के लिए एक साथ मिला दिया जाता था।
- कपड़े के पिछले हिस्से से कढ़ाई करके डिजाइन और समरूपता बनाई जाती है। इसलिए पहले कपड़े पर कढ़ाई करना और फिर बेस कपड़े को रंगना (ऐसी तैयारी के साथ की रेशम का धागा रंगा न जाए) आसान था। ताकि हल्के रंग पर ताने और बने स्पष्ट रूप से दिखाई दें।
- कभी–कभी खादी पर फुलकारी करने से पहले कपड़े पर कढ़ाई करने का पैटर्न बना लिया जाता है।
- अधिकांशतः कढ़ाई किए जाने वाले पैटर्न कपड़े पर पहले से नहीं बनाए जाते थे। कढ़ाई करने वाले को डिजाइन बनाने के लिए खादी के प्रत्येक धागे को सावधानी पूर्वक गिनना पड़ता था।
- जब कढ़ाई का एक भाग पूरा हो जाता था तो कपड़े को गंदे होने से बचाने के लिए उसे एक साफ सफेद कपड़े में लपेट दिया जाता था, जबकि कढ़ाई रहित भाग पर काम जारी रहता था।

❖ फुलकारी के टाँके :—

- फुलकारी बनाने के लिए डार्निंग स्टिच सबसे ज्यादा इस्तेमाल की जाने वाली तकनीक थी और किसी भी पीस की गुणवत्ता इस स्टिच की चौड़ाई के हिसाब से मापी जा सकती थी। स्टिच जितना पतला होता था, पीस उतना ही महीन होता था।
- असामान्य डिजाइन बनाने या खदर के किनारे बनाने के लिए कभी–कभी कुछ अन्य टाँके जैसे हेरिंगबोन स्टिच, रनिंग स्टिच, होलबाइन स्टिच या बटन होल स्टिच का भी प्रयोग किया जाता था।
- आकृति को भरने के लिए साटन सिलाई या स्टैप सिलाई के रूप में जाने वाली विविधता को प्राथमिकता दी गई।

उपसंहार

लोक कला की कहानी — मानव जीवन, लोक कला का मानव जीवन से गहरा संबंध है। लोक कला की प्रणाली मानव संस्कृति के प्रारंभ से चली आ रही है। प्रत्येक क्षेत्र की लोक कला अपने ही ढंग से की जाती है। इसमें मानव जीवन की अभिव्यक्ति बड़े ही सशक्त ढंग से होती है। गांव में, शहर में, लोक कला की सृजना इस उद्देश्य से की जाती है।

मैं शाहबाद मारकंडा की निवासी हूँ। सबसे पहले मैंने फुलकारी के विषय को चुना, क्योंकि मुझे फुलकारी बहुत अच्छी लगती है। मुझे फुलकारी की जानकारी प्राप्त करने के लिए मेरी मम्मी ने मुझे पटियाला में भेजा था ताकि मैं फुलकारी की जानकारी प्राप्त कर सकूँ। फुलकारी के लिए मैं पटियाला में मौसी के घर गई थी। फुलकारी के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मेरी मौसी के घर के पास पड़ोस में काफी सारी महिलाएं फुलकारी निकलती हैं, जिन्होंने मुझे फुलकारी के बारे में बहुत कुछ बताया है।

फुलकारी के बारे में बताते हुए महिलाओं के नाम रीना, ममता, निशा, भूपेंद्र कौर, अजीत कौर ने मेरी बहुत मदद की है। मैंने फुलकारी निकलते हुए महिलाएं देखी जो कि पंजाब से हैं। वहीं से मुझे पंजाबी सभ्यता और फुलकारी की जानकारी प्राप्त हुई और उन्होंने मुझे पंजाब की कई फुलकारियों के डिजाइन भी दिखाए। इतनी सुंदर फुलकारियों और इतने अच्छे लोगों से मिलकर मुझे बहुत खुशी मिली है।

माँ, अपनी बेटी के विवाह उत्सव पर हाथों से बनी वस्तुओं को भेंट सब रूप देती है, जो देखने में बहुत ही आकर्षक लगते हैं। पटियाला में फुलकारियों का निर्माण करते देखा है, इनके ऊपर विभिन्न प्रकार के टांके प्रयोग किए जाते हैं। इनके ऊपर पशु, पक्षियों की छवियां अंकित करना मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति रही है। फुलकारी में जो डिजाइन बनाए जाते हैं देखने में बहुत आकर्षक लगते हैं।

पशु, पक्षियों के अलावा उनकी कृतियां अधिकतर फूलों को चित्रित किया जाता है क्योंकि फूलों को सुंदरता का प्रतीक माना जाता है। इसमें कई तरह के अलग-अलग रंगों का प्रयोग किया जाता है। इसमें हर प्रकार के टांके भी अलग-अलग और नाम भी अलग-अलग है।

आज का समय मशीनी भी हो गया है। इसे मशीनी युग कहा जाने लगा है, क्योंकि आज के समय में लोग अपना समय बचा कर विभिन्न प्रकार की कढ़ाई मशीनों से निकलवाने लग गए हैं, जिससे लोक कला लुप्त होती जा रही है, परंतु फिर भी कहीं न कहीं लोक कला ग्रामीण जीवन में अभी मौजूद है।

अतः इस शोध का उद्देश्य यही है कि लोक कला का स्थान मशीनीकरण न ले सके और हमारी लोक कला की आभा का प्रकाश इसी तरह प्रज्वलित रहे। हमें अपनी संस्कृति और लोक कला से जुड़े रहना चाहिए, क्योंकि बिना लोक कला के कोई भी राष्ट्र व समाज उन्नति नहीं कर सकता।

ਸੰਦਰਭ ਗ੍ਰੰਥ ਸੂਚੀ

- 1 ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਵੀਰੇਸ਼ਵਰ, ਨੂਪੂਰ ਸ਼ਰਮਾ, ਕਲਾ ਦਰਸ਼ਨ, ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਾ ਹਾਊਸ 11, ਸ਼ਿਵਾਜੀ ਮਾਰਗ, ਮੇਰਥ – 250001, ਪ੍ਰ0. ਸੰ0. 3, 4, 14, 47, 84, 139, 148, 183, 232
- 2 ਡਾ॰ ਰੀਤਾ ਪ੍ਰਤਾਪ, ਭਾਰਤੀ ਚਿੱਤਰਕਲਾ ਏਵ ਸੂਰਤਿਕਲਾ ਕਾ ਇਤਿਹਾਸ, ਪੂਰਵ ਆਚਾਰਯ, ਚਿੱਤਰਕਲਾ ਵਿਭਾਗ ਰਾਜਸਥਾਨ ਵਿਸ਼ਵਵਿਦਯਾਲਯ, ਜਯਪੂਰ, ਪ੍ਰ0. ਸੰ0. 352
- 3 Dr. Santosh Sharma, ਸ਼ਰੀਰ ਕ੍ਰਿਯਾ ਵਿਭਾਜਨ, ਵਸਤੁ ਏਵ ਤਨ੍ਤੁ ਵਿਭਾਜਨ, ਮਾਰਡਨ ਪਬਲਿਸ਼ਰਜ਼, In Imprint of MBD Groop AN ISO 9001:2008, Page no. 9, 10, 12
- 4 ਮਹਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਰੰਧਾਵਾ, ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਭਾਗ, ਪੰਜਾਬ ਪਟਿਆਲਾ, 1960 – 2100, ਪ੍ਰਿੰਟਰ : ਨਵਯੁਗ ਪ੍ਰੈਸ, ਚਾਂਦਨੀ ਚੌਕ, ਦਿੱਲੀ ਪ੍ਰ– 36, 37, 38, 40, 41
- 5 ਅਮਰਜੀਤ ਕੌਰ ਘੁੰਮਣ, ਗਿੱਧੇ ਤੇ ਭੰਗੜੇ ਦੀਆਂ ਬੋਲੀਆਂ, ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ ਫਾਊਂਡੇਸ਼ਨ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, ਪ੍ਰ– 3, 8, 10, 15, 28
- 6 John Gillow Nicholas Barnard, Indian Textiles, Om Books International 4379/4B Prakash House Ansari Road, Darya – Ganj, New Delhi 110002 India, Page no. 150, 151, 152

Web Sites

1. <https://en.wikipedia.org>10December202411:00am.
2. <https://theamrisarstore.com>, 2 January, 2025, 10:45 a.m.
3. <https://www.Saddapind.co.in>, 13 January, 2025, 01:05 p.m.
4. <https://Phukariembroidery.wordpress.com>,25February2025,12:30AM

चित्र संग्रह सूची

क्र. सं.	नाम
1	फुलकारी निकलते हुए महिलाएँ
2	बाग फुलकारी
3	चोप फुलकारी
4	सुभर फुलकारी
5	घूँघट बाग फुलकारी
6	नीलक फुलकारी
7	तिलपत्र फुलकारी
8	शीशेदार फुलकारी
9	रेशमी शीशा बाग फुलकारी
10	वरी दा बाग फुलकारी
11	कच्छ की फुलकारी
12	भवन बाग फुलकारी
13	सतरंगा बाग फुलकारी
14	धूप छांव भाग फुलकारी
15	चाँद रानी बाग फुलकारी
16	बेलन बाग फुलकारी
17	सूरजमुखी बाग फुलकारी
18	छँमाह फुलकारी
19	चंबा फुलकारी
20	सैची फुलकारी
21	परांठा फुलकारी
22	लहरीया फुलकारी
23	चरखा
24	डिजाइन
25	टांका
26	माउंटिंग
27	धागा

28	पंखी
29	परस
30	पंजाबी सूट
31	पंजाबी जूती
32	मशीनी फुलकारी
33	तकिया का खोल
34	शॉल
35	रुमाल

चित्र सूची



फुलकारी निकलते हुए महिलाएँ



बाग फुलकारी



चोप फुलकारी



सुभर फुलकारी



घूंघट बाग फुलकारी



नीलक फुलकारी



तिलपत्र फुलकारी



शीशेदार फुलकारी



रेशमी शीशा बाग फुलकारी



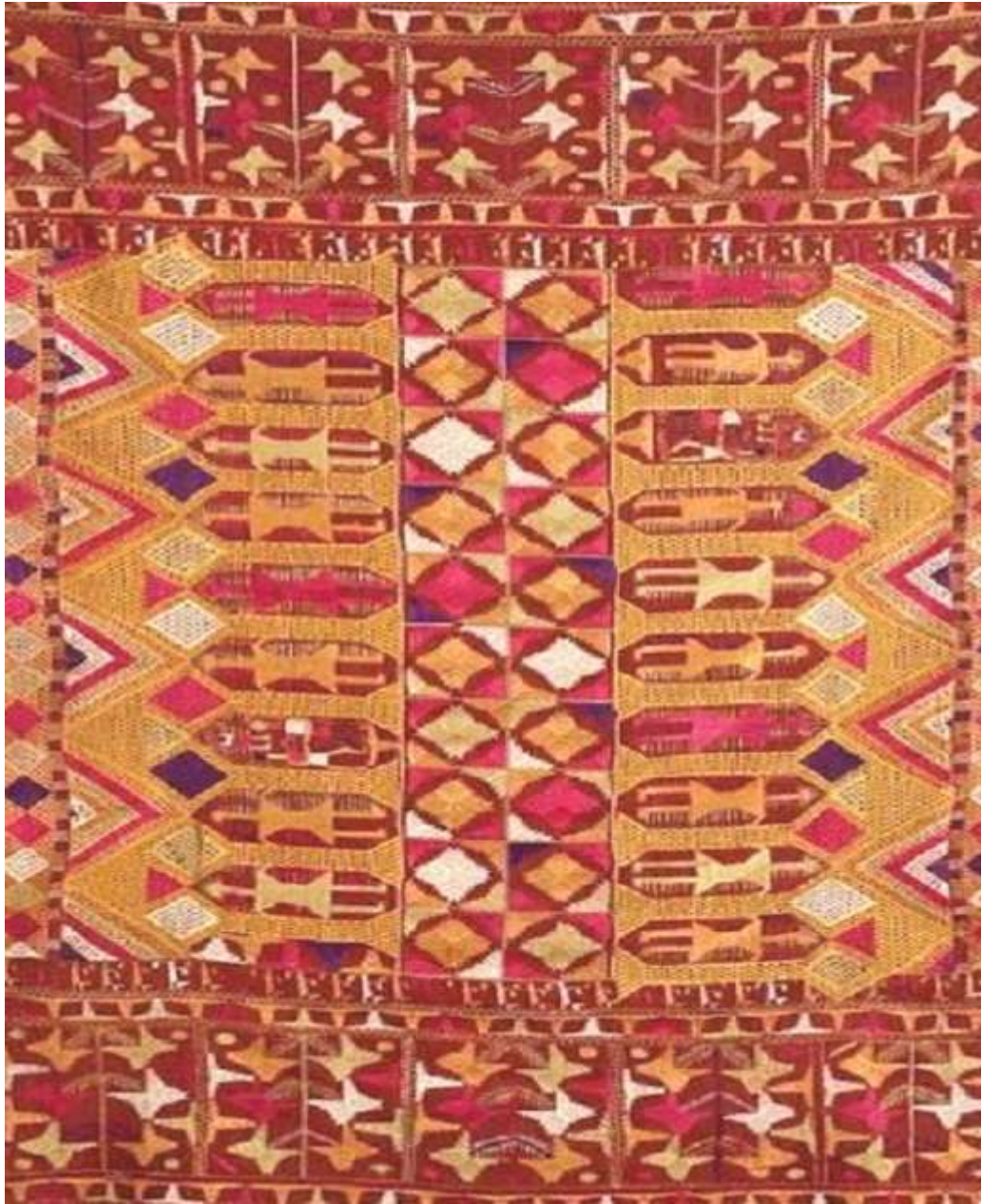
वरी दा बाग फुलकारी



कच्छ की फुलकारी



भवन बाग फुलकारी



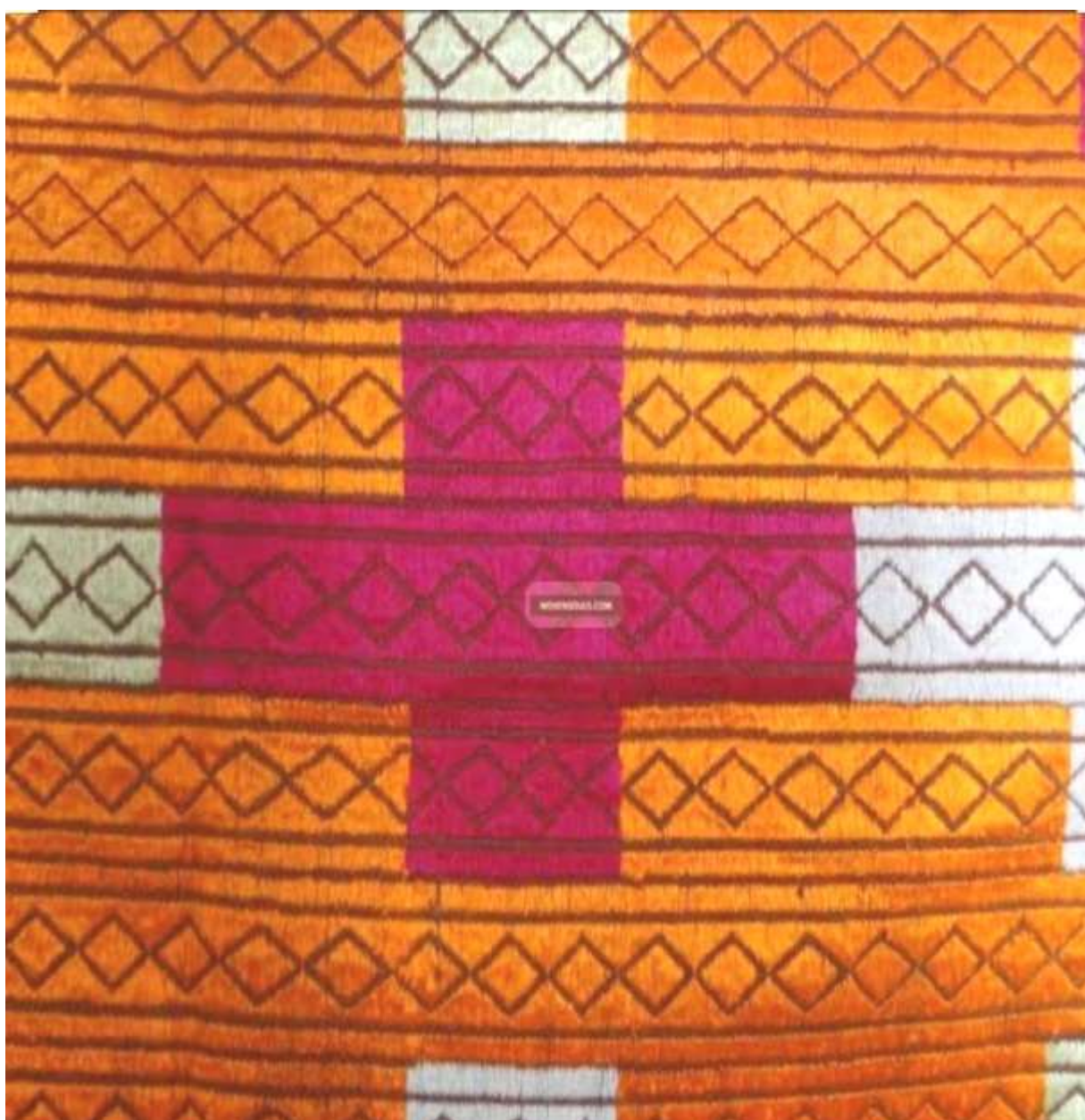
सतरंगा बाग फुलकारी



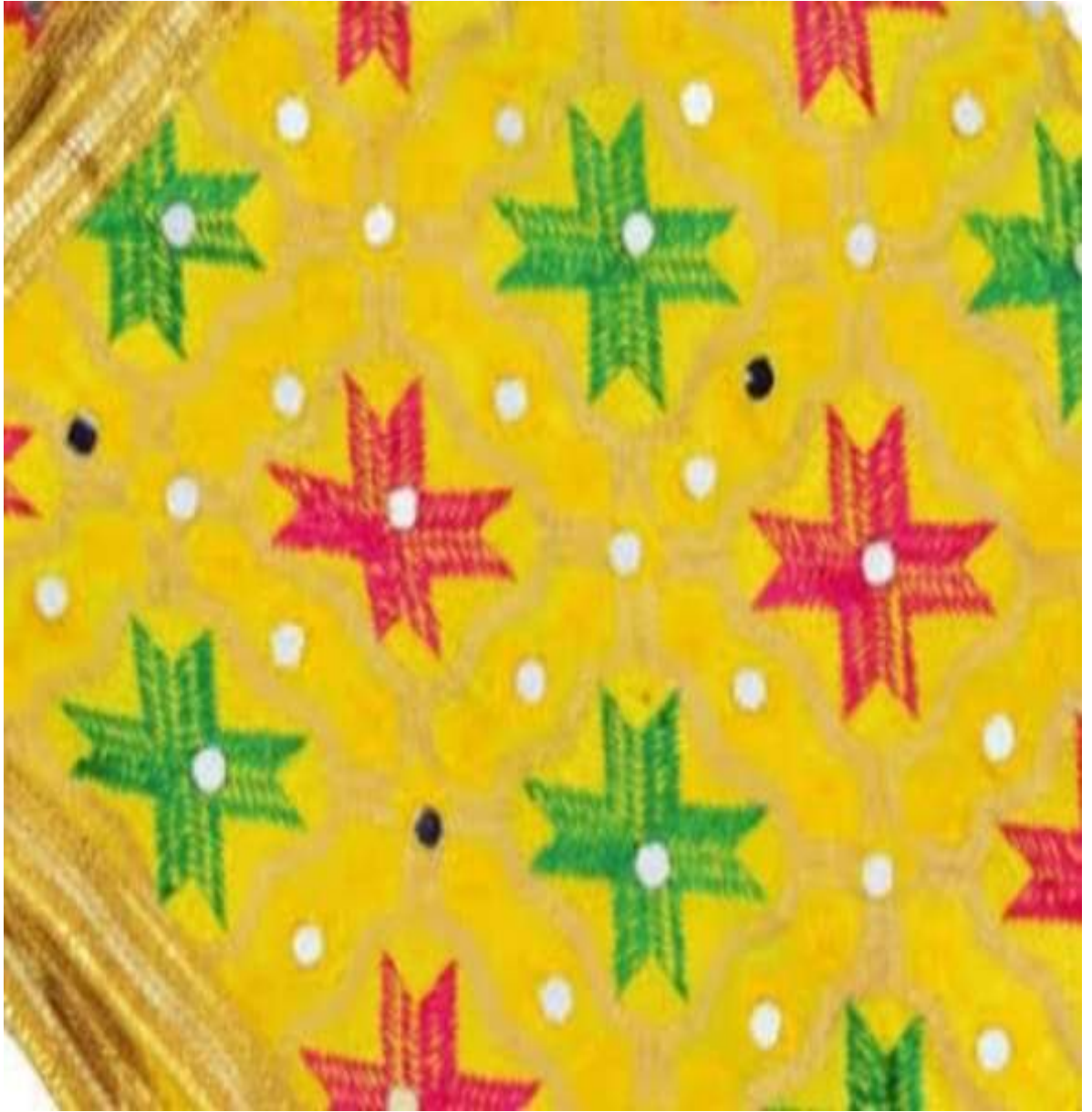
धूप छांव बाग फुलकारी



चाँद रानी बाग फुलकारी



बेलन बाग फुलकारी



सूरजमुखी बाग फुलकारी



छँमाह फुलकारी



चंबा फुलकारी



सैंची फुलकारी



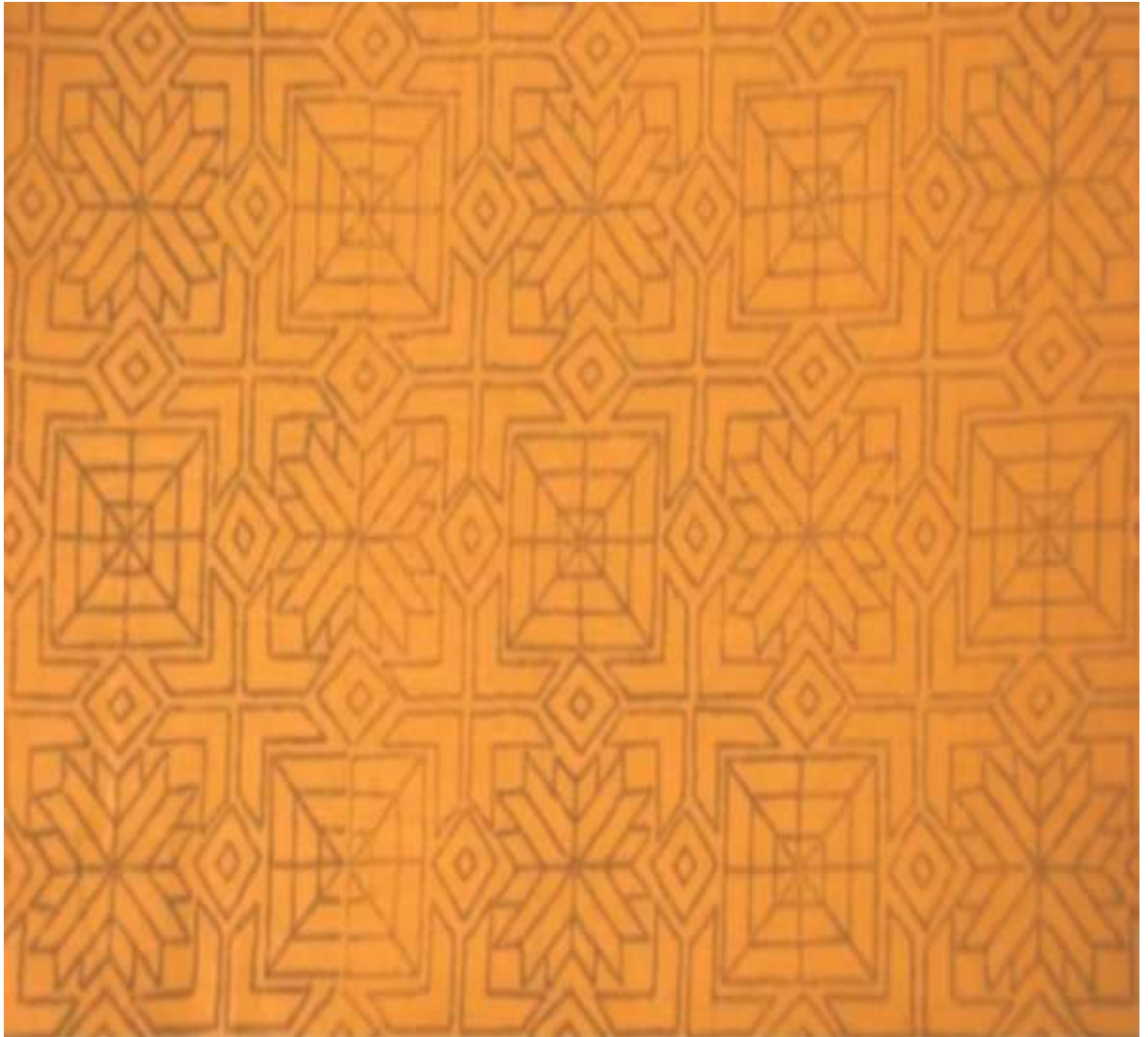
परांठा फुलकारी



लहरीया फुलकारी



चरखा



डिजाइन



टांका



माउंटिंग



धागा



पंखी



परस



ਪੰਜਾਬੀ ਸੂਟ



ਪੰਜਾਬੀ ਜੂਤੀ



मशीनी फुलकारी



तकिया का खोल



शॉल



रुमाल

“हरियाणा के हस्तनिर्मित और मशीनों से बने
आभूषणों का अध्ययन”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
की
ललित कला स्नातकोत्तर
उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा एवं निर्देशिका
श्रीमती संतोष
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (सा0)

शोधकर्त्री
मानसी शर्मा
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)



ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

“हरियाणा के हस्तनिर्मित और मशीनों से बने
आभूषणों का अध्ययन”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा एवं निर्देशिका

श्रीमती संतोष

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय

शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री

मानसी शर्मा

स्नातकोत्तर

(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मीरकण्डा)

2024–2025

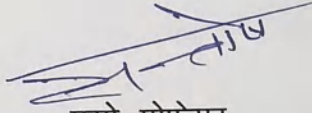
ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मानसी शर्मा, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने "हरियाणा के हस्तनिर्मित और मशीनों से बने आभूषणों का अध्ययन" शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक : 10/05/25



एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

आर्य कन्या महाविद्यालय,

शाहाबाद (मा0)

कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मानसी शर्मा, अनुक्रमांक न0. 2230899006, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " हरियाणा के हस्तनिर्मित और मशीनों से बने आभूषणों का अध्ययन " शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक: 10/05/25



प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

कला का दुनिया भर में अलग – अलग लोगों के लिए अलग – अलग अर्थ है। कला हमारे विचारों, भावनाओं और इच्छाओं की अभिव्यक्ति है। यह मनोरंजन, आत्म प्रतिनिधित्व और अपनी भावनाओं और विश्वासों को व्यक्त करने का एक अनूठा स्रोत है। महिलाओं की आंतरिक सुंदरता और भावनाओं को व्यक्त करने का ऐसा ही एक तरीका आभूषण बनाना है। आभूषणों की डिजाइनिंग और नक्काशी भी अपने आप में कला का एक रूप है।

आभूषणों में सजावटी वस्तुएं शामिल होती हैं जिन्हें लोग अपने श्रृंगार के लिए पहनते हैं, जैसे कि अंगूठी, झुमके, हार और पेंडेंट आदि। आभूषण कला का एक रूप है क्योंकि इसे रचनात्मक दिमाग से बनाया और डिजाइन किया जाता है। इस परियोजना का संदर्भ हरियाणा के लोगों द्वारा पहने जाने वाले पारंपरिक आभूषणों के बारे में है। इस शोध प्रबंध में मैंने पांच अध्याय बनाए हैं।

- ➔ प्रथम अध्याय में – हरियाणा का इतिहास, कला, कला का महत्व, लोक कला व हरियाणा की लोक कला के बारे में बताया गया है।
- ➔ द्वितीय अध्याय में – आभूषणों का इतिहास, आभूषणों में अंलकरण तथा आभूषण बनाने में कारीगरों की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।
- ➔ तृतीय अध्याय में – हस्तनिर्मित आभूषण, मशीनी आभूषण तथा हस्तनिर्मित आभूषण व मशीनी आभूषणों में अन्तर के बारे में बताया गया है।
- ➔ चतुर्थ अध्याय में – हरियाणा में आभूषणों की बनावट तथा आभूषणों के प्रकार के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है।
- ➔ पंचम अध्याय में – हरियाणा में स्थित संग्रहालयों, कृष्ण संग्रहालय, धरोहर संग्रहालय व कुरुक्षेत्र के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र सूची को प्रस्तुत किया गया है। इसमें लघु शोध प्रबंध के माध्यम से स्थापित की गई मौलिक मान्यताओं को प्रतिपादित किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को सावधानी पूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है।

इस शोध पत्र में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उनके लिए मैं ही दोषी हूँ। अतः इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी भी हूँ।

मानसी शर्मा

शोधकर्त्री

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उल्लेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा, की प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ० श्रीमति आरती त्रेहन जी का भी आभार प्रकट करती हूँ कि उन्होंने ललित कला विषय में स्नात्तोत्तर कक्षाएं सुचारु रूप से प्रारंभ कर हमारे चिरलंघित स्वप्न को साकार करने का प्रयास कर रही है।

मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा, के ललित कला विभाग की अध्यक्ष आदरणीय श्रीमती संतोष के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय – समय पर लघुशोध कार्य करने में सहयोग और प्रेरणा दी।

इसके साथ-साथ मैं अपने परिवारजनों का भी हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई।

मैं अपने आदरणीय एसि. प्रौ० श्री महेश धीमान जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

मानसी शर्मा

शोधकर्त्री

विषयानुक्रमिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आमार	
प्रथम अध्याय:	01 — 18
— हरियाणा का इतिहास	
— कला	
— लोक कला	
— हरियाणा की लोक कला	
द्वितीय अध्याय :	19 — 28
— आभूषणों का इतिहास	
— आभूषणों में अलंकरण	
— आभूषण बनाने में कारीगरों की भूमिका	
तृतीय अध्याय:	29 — 46
— हस्तनिर्मित आभूषण	
— मशीनी आभूषण	
— हस्तनिर्मित आभूषण और मशीनी आभूषणों में अंतर	
चतुर्थ अध्याय:	47 — 65
— आभूषणों के प्रकार	
— हरियाणा में आभूषणों की बनावट	
पंचम अध्याय :	66 — 71
— हरियाणा में संग्रहालय	
— घोहर संग्रहालय	
— कृष्ण संग्रहालय	
— कला कृतियों का कलात्मक विवरण	
— उपसंहार	72 — 72
— संदर्भ ग्रंथ सूची	73 — 73
— चित्र संग्रह सूची	74 — 74
— चित्र सूची	75 — 97

प्रथम अध्याय

- हरियाणा का इतिहास
- कला
- लोक कला
- हरियाणा की लोक कला

हरियाणा का इतिहास

हरियाणा का इतिहास बहुत पुराना है। हरियाणा में कई ऐतिहासिक स्थल व कई सांस्कृतिक परंपराएं हैं। इस राज्य में सिंधु घाटी सभ्यता के कई स्थल मौजूद हैं जो सभ्यता का उद्गम स्थल था। हरियाणा में कई ऐतिहासिक लड़ाइयां लड़ी गई हैं जैसे कि तराइन की लड़ाई, पानीपत की लड़ाई और करनाल की लड़ाई। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान इसे पंजाब प्रांत के एक भाग के रूप में प्रकाशित किया गया था। सन 1966 में यह भारत का एक अलग प्रशासनिक राज्य बन गया। चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा राज्यों की संयुक्त राजधानी बन गई।

हरियाणा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'हरित' से मानी जाती है जिसका अर्थ है— 'हरा या उपजाऊ'। यह नहीं कहा जा सकता कि हरियाणा शब्द कब प्रचलित हुआ। वैसे हरियाणा शब्द का प्राचीनतम उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिला है 'हरियाणों हरमाणयानः। रचत हरियाणे इत्यादि निगमो भवती। इसका भाग्य इस प्रकार है —

ऋजमुक्षणयायने रजतं हरयाणे।

रथ युक्तमसनाम सुषामणि॥

यह शब्द राजा द्वारा इस्तेमाल की गई वस्तु के रूप में प्रयुक्त किया गया है जिसका अर्थ है— 'सदा यान समय में 'यान' शब्द रथ, वाहनों आदि के लिए प्रयुक्त होता था। पंडित गिरीशचंद्र अवस्थी ने 'हरियाणे नित्याकालेमवा भिप्रस्थितयान' कह कर यह सिद्ध किया है कि जिस राजा का रथ चलता रहता था, इससे उस राजा का नाम 'हरियाण' पड़ गया। कालांतर में 'हरियाण' राजा के नाम पर इस प्रदेश का नाम 'हरियाण' पड़ा, जो बाद में हरियाणा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरियाणा का नाम इस तथ्य से भी आया है कि 'हरि' (भगवान विष्णु) कुरुक्षेत्र की भूमि पर आए थे। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र को देवताओं की भूमि के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि यहां पर महाभारत का युद्ध हुआ था।

हरियाणा की आबादी में हिंदुओं की संख्या अधिक है। सिख और मुसलमान एक छोटा लेकिन महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक हैं, ईसाइयों का भी एक छोटा समुदाय है। 21वीं सदी की शुरुआत में हरियाणा की लगभग तीन चौथाई आबादी ग्रामीण बनी रही। हालांकि वाणिज्यिक, औद्योगिक और कृषि विपणन केंद्रों के रूप में शहरों का तेजी से विकास हुआ। हरियाणा कृषि में भी समृद्ध है, चावल और गेहूं की भरपूर मात्रा में पैदावार करता है। हरियाणा का समग्र भारतीय संस्कृति के निर्माण में योगदान अपने तरीके से उल्लेखनीय रहा है।

हरियाणा को धरती का स्वर्ग भी माना जाता है, क्योंकि देवता इसी धरती पर आए हैं। हरियाणा एक ऐसा स्थान है जहां पांडवों ने यहां इंद्रप्रस्थ की स्थापना की थी। हरियाणा पर कई राजाओं ने शासन किया है और यहां कई लड़ाइयां लड़ी गई हैं, जिनमें कुरुक्षेत्र की महान लड़ाई शामिल है, जो पांडवों और कौरवों के बीच लड़ी गई थी।

1739 में करनाल की लड़ाई जब फारस के नादिर शाह ने कहते हुए मुगल साम्राज्य को झटका दिया और 1526 में हुई पानीपत की लड़ाई जब मुगल नेता बाबर के इब्राहिम लोदी को हराया और भारत में मुगल शासन की स्थापना की। सदियों से हरियाणा कई कालखंडों से गुजरा है। जैसे वैदिक काल, इस्लाम पूर्व हिंदू बौद्ध काल, सल्तनत काल, मुगल साम्राज्य मराठा काल और औपनिवेशिक काल जिसमें 1857 का स्वतंत्रता संग्राम और दंगे शामिल हैं। हरियाणा का इतिहास मिथकों, किंवदंतियों, और वीरता और गौरव से भरा पड़ा है। पवित्र वेद यही लिखे गए थे। यह ब्रह्मांड का जन्म स्थान है। भगवान कृष्ण ने भागवत गीता के उपदेश में यही सुनाएं और महान संत वेद व्यास ने भी यहीं संस्कृत में महाभारत लिखी। संस्कृत दस्तावेज आर्यों द्वारा लिखे गए थे जो 2000 और 1500 ईसा पूर्व के बीच उत्तर से इस क्षेत्र में उतरे थे।

हरियाणा को आर्यों का जन्म स्थान भी माना जाता है। हरियाणा ने सदियों से प्रवास की कई लहरों का अनुभव किया है। दक्षिण हरियाणा कई वैदिक ग्रंथों का घर था और 10000 साल पुराने कई दस्तावेज पाए गए और मनु और भगु के नाम से भी जाना जाता है, जो जल प्रलय के समय के दस्तावेज हैं। हरियाणा के दिन स्थानों का महाभारत में उल्लेख किया गया है वह है, गुड़गांव – गुरु द्रोणाचार्य का गांव, सोनप्रस्थ – सोनीपत, पनरस्थ – पानीपत, लिप्रस्थ – तिलपुट, पृथुदका – पेहवा, आदि हरियाणा के कई हिस्सों जैसे पेहोवा, कुरुक्षेत्र, तिलपत और पानीपत में मिट्टी के बर्तन, मूर्तियां और आभूषण पाए गए हैं जो महाभारत युद्ध के ऐतिहासिकता को भी साबित करते हैं।

कला

कला शब्द की उत्पत्ति 'कल' धातु से हुई है, जिसका अर्थ सुंदर और मधुर है। यह दोनों शब्द परस्पर संबंधित हैं। कला शब्द के लिए इतावली शब्द 'ल' आर्ते (L'arte), फ्रेंच ल आर्ट (L'art), स्पेनिश एल आर्ट (elarte) तथा अंग्रेजी आर्ट है। ये सभी शब्द अर नामक मूल धातु से उत्पन्न हैं। 'कल' शब्द के लिए पहले 'शिल्प' शब्द का प्रयोग किया गया था, जिसे उपयोगी कला के लिए प्रयुक्त किया जाता था। भारतीय परंपराओं के अनुसार कला उन सभी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित है। यूरोपीय शास्त्रों में भी कला को प्रमुख माना है।

कला एक सार्वभौमिक मानवीय क्रिया है जो हर युग, हर स्थान, हर समय में पाई जाती है, चाहे वह अभिव्यक्ति के रूप में हो, संप्रेषण के रूप में हो, या मनोरंजन के रूप में हो। कला का मूल्य यद्यपि सार्वभौम में है परंतु इसकी जड़ें उस समाज, उस संस्कृति में रहती हैं, जहां से वह उपजती है। किसी भी जीवित और जीवन्त सभ्यता में कला उस सभ्यता के विकास और पूर्णता का अनिवार्य मूलभूत अंग है। कला को समाज और संस्कृति से भी काटा नहीं जा सकता।

जब भी मानव में चेतना जागी, वह अपने-अपने आस-पास के संसार के विषय में जागरूक हुआ, उसने अपनी जिज्ञासु दृष्टि चारों ओर डाली। उसने अपने अस्तित्व, संसार के अस्तित्व को अर्थ देना चाहा। स्वयं को जानने, संसार को जानने की यह उत्कंठा उसकी प्राचीनतम असम्बद्ध कृतियों में स्पष्ट होती है और जानने और समझने की इस उत्कंठा ने संपूर्ण दर्शन और विज्ञान, कला और संस्कृति और सभी कुछ जो मूल्यवान हैं, उसे जन्म दिया है।

➤ परिभाषा :-

'कला' को परिभाषा में बांधना इतना आसान नहीं है, फिर भी विद्वानों ने 'कला' की परिभाषा दी है। पाश्चात्य विद्वान प्लेटो ने 'कला' को 'सत्य की अनुकृति की अनुकृति' कहा है, तो अरस्तू ने 'कला' को 'अनुकरण' माना है। गोथे ने कला को सत्य की प्रतिकृति स्वीकारते हुए कहा है कि - कला की सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि वह किस प्रकार महान सत्य की प्रतिकृति प्रस्तुत कर सके।

दूसरी ओर क्रोने के अनुसार - 'कला बाह्य प्रभावों की अभिव्यक्ति' है। हीगल ने 'कला' को 'आधिभौतिक सत्ता' से संबंध करते हुए इस आधिभौतिक सत्ता को अभिव्यक्त करने का माध्यम' कहा है। रस्किन ने कला को ईश्वरीय कृति के प्रति मानव का आह्लाद मानते हुए कहा है कि - कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आह्लाद की अभिव्यक्ति है।

भारतीय चिंतकों ने भी कला को परिभाषित किया है। रविंद्र नाथ टैगोर ने कहा है कि - मनुष्य जिसमें अपनी अभिव्यक्ति करता है, उसे कला कहते हैं। डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'कला' को

भावों के साथ संबंध करते हुए कहा है कि कला किसी विचार या कल्पना को दृश्य रूप देती है। कला का यही रहस्य है। इसमें लोक सांस्कृतिक परंपरा को व्याख्या होती है।

इन सभी परिभाषाओं से यह बात उभरी है कि कला में अभिव्यक्ति होती है। अभिव्यक्ति के दो स्तर होते हैं। प्रथम मन का स्तर और दूसरा चाक्षुक रूप का स्तर। मूर्त रूप में आने से पूर्व कला की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति मन में हो चुकी होती है। मन में होने वाली इस अदृश्य अभिव्यक्ति की तीव्रता ही कला को मूर्त रूप दिलवाने का कारक बनती है।

इन परिभाषाओं से यह भी पता चलता है कि कला में ईश्वर, सत्य, भाव और बाह्य प्रभाव की अभिव्यक्ति होती है। ईश्वर और सत्य की कल्पना तो परम सौंदर्य में है, अतः सिद्ध हुआ है कि इसकी अभिव्यक्ति सौंदर्य की ही अभिव्यक्ति है। मन में उठे भाव बाह्य प्रभाव के कारण धनीभूत होकर कला का रूप ले लेते हैं। मन में भाव भी अकारण नहीं उठते, उनके पीछे कुछ न कुछ कारण अवश्य होते हैं। बाह्य प्रभाव भी तात्कालिक नहीं होते, बल्कि नया जाने कब-कब प्रभाव किस समय कलाकार के लिए प्रेरक बन जाते हैं। इस प्रकार यह निश्चित हुआ कि भावों की सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति की कला कहलाती है।

‘कल’ का अर्थ सुंदरता पूर्वक नियोजित करना या बांधना। अतः अपनी वस्तु को कलाकार जिस कौशल एवं चतुराई से सेनिवद्धित करके रंग, भाषा आदि में अभिव्यक्ति करता है, वही उसकी कला होती है।

➤ कला का स्वरूप :-

कला में ‘सौंदर्य’ मूल तत्व है। कला, स्थान, व्यक्ति के अनुसार सौंदर्य बोध में अंतर हो सकता है, किंतु यह निश्चित है कि एक कला, एक स्थान या एक जैसी मानसिकता के लोगों की सौंदर्य अनुभूति एक जैसी होगी।

मनुष्य के मन में भाव उठते रहते हैं। ये तीव्र भाव सौंदर्य के साथ ‘कला’ में मूर्त रूप ग्रहण कर लेते हैं। इन भावों का आधार ईश्वर, सत्य, बाह्य प्रभाव, सौंदर्य अनुभव आदि कुछ भी हो सकता है। मात्र अभिव्यक्ति भी ‘कला’ नहीं कही जा सकती। इसके लिए सौंदर्याभिव्यक्ति जरूरी है। जब कुम्हार, बढ़ई, सुनार, लुहार आदि कोई व्यवसाय अपनी किसी वस्तु को नया रूप देने में आनंद मग्न होता है तब वह एक सुंदर कलाकृति का सर्जन करता है। मगर जब वह उस कलाकृति जैसे अनेक रूप परिश्रम से निर्मित करता है, ताकि उन्हें बेचकर मुनाफा कमा सके तो यह इसका व्यावसायिक कार्य हो जाता है और उसकी सहजता और मौलिकता भी जाती रहती है। व्यवसाय के लिए निर्मित ऐसी उपयोगी वस्तुओं को ‘कला’ नहीं कहा जा सकता।

मनुष्य की ज्ञान, क्रिया और भावना नामक तीन प्रवृत्तियों में से ज्ञान ने विज्ञान व दर्शन को, क्रिया ने धर्म व्यवसाय को और भावना ने साहित्य व कला को जन्म दिया। इन तीनों के लक्ष्य में काफी अंतर है। विज्ञान का लक्ष्य 'सत्य' है, व्यवसाय का 'शिव' और कला का 'सुंदरम्'।

कला का स्वरूप बहुत व्यापक होता है। कला कई रूपों में मौजूद है जैसे की चित्रकला, मूर्ति कला, संगीत कला, शिल्प कला, फोटोग्राफी, डिजिटल कला, साहित्य तथा संगीत और आदि कला का मकसद लोगों को उत्साहित करना, मनोरंजन करना और शिक्षित करना भी होता है।

- चित्रकला :- चित्रकला में रंगों, आकारों और रेखाओं का उपयोग करके सुंदर चित्र बनाए जाते हैं।
- मूर्ति कला :- मूर्ति कला में पत्थर, धातु या अन्य पदार्थों में मूर्तियां बनाई जाती हैं।
- संगीत कला :- संगीत में ध्वनियों का उपयोग करके गीत, राग और अन्य संगीत में रचनाएं बनाई जाती हैं।
- शिल्पकला :- शिल्प कला में विभिन्न पदार्थों का उपयोग करके सुंदर और उपयोगी वस्तुएं बनाई जाती हैं।
- फोटोग्राफी :- फोटोग्राफी में कैमरे का उपयोग करके सुंदर और यादगार चित्र लिए जाते हैं।
- डिजिटल कला :- डिजिटल कला में कंप्यूटर और अन्य डिजिटल उपकरणों का उपयोग करके सुंदर और रचनात्मक कला बनाई जाती है।
- साहित्य :- साहित्य शब्दों में पदार्थों का उपयोग करके कविताएं, कहानियां और अन्य साहित्यिक रचनाएं बनाई जाती हैं।

➤ कला का महत्व :-

कला का महत्व कई तरह से है। यह शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, भावनात्मक विकास और संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देती है। कला के जरिए हम अपनी संस्कृति को समझते हैं और अपने इतिहास से जुड़ते हैं। कला हमें आत्मिक शांति का एहसास कराती है। कला के महत्व के कुछ और पहलू हैं जैसे -

1. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता :-

कला में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है, जिसमें कलाकार अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं।

2. सुंदरता और आनंद :-

कला सुंदर और आनंददायक होती है, जो लोगों को आनंद और संतुष्टि प्रदान करती है।

3. संवेदनशीलता :-

कला मानव की संवेदनशीलता को जागृत करती है, जिससे लोगों को अपने आसपास की दुनिया के प्रति अधिक संवेदनशील बनाया जा सकता है।

4. संस्कृति का संरक्षण :-

कला संस्कृति को सुरक्षित और समवर्धित करती है, जिससे हमारी सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाया जा सकता है।

5. आत्म — विकास :-

कला आत्मविश्वास का एक महत्वपूर्ण साधन है, जिससे व्यक्ति अपने आत्म विश्वास और आत्मसम्मान को बढ़ा सकता है।

6. सामाजिक परिवर्तन :-

कला सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली साधन है, जिससे समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है।

7. आर्थिक विकास :-

कला आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण स्थान है, जिससे कलाकारों और कला संस्थाओं को आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

8. शिक्षा :-

कला शिक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिससे छात्रों को रचनात्मक और आत्म विकास के अवसर प्राप्त हो सकता है।

9. स्वास्थ्य :-

कला स्वास्थ्य के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है जिससे लोगों को तनाव और चिंता से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

10. रचनात्मक :-

कला रचनात्मकता को बढ़ावा देती है, जिससे लोगों को नए और अनोखे विचारों को व्यक्त करने के अवसर प्राप्त हो सकते हैं।

11. आत्म सम्मान :-

कला आत्मसम्मान को बढ़ावा देते हैं जिनसे लोगों को अपने बारे में सकारात्मक महसूस हो सकता है।

12. सामाजिक संबंध :-

कला समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कला सामाजिक संबंधों को मजबूत बनाती है जिससे लोगों को एक दूसरे के साथ जुड़ने और संवाद करने के अवसर प्राप्त हो सकते हैं। यह समाज में शांति और सद्भावना को बढ़ावा देने में मदद करती है।

13. इतिहास का अध्ययन :-

कला के माध्यम से हम इतिहास का अध्ययन कर सकते हैं। यह हमें हमारे अतीत के बारे में जानकारी प्रदान करती है और हमें हमारे पूर्वजों के जीवन और संस्कृति के बारे में जानने का अवसर प्रदान करती है।

➤ कला की अवधारणाएं :-

अनेक कालों में बहुत से विद्वानों ने कला पर अपनी अलग-अलग अवधारणाएं व्यक्त की हैं जैसे—

- 'प्लेटो' — कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है।
- 'अरस्तु' — कला अनुकरण है।
- 'हीगल' — कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है।
- 'क्रौये' — कला बाह्य प्रभावों की अभिव्यक्ति है।

- 'टॉल्सटॉय' – कला भावों की क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि, शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना है। उसे देखने या सुनने वाले के मन में वही भाव जागे।
- 'फ्रायेंड' – कला दमित भावनाओं का रूप है।
- 'प्रसाद जी' – ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का मानव द्वारा शारीरिक तथा मानसिक कौशल पूर्ण निर्माण करना है।
- 'मैथिलीशरण गुप्त' – अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला है (साकेत पंचम सर्ग)।
- 'डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल' – कलाभवन का पृथ्वी पर अवतार है।
- 'रविंद्र नाथ टैगोर' – कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है।

प्रत्येक कलाकृति से कलाकार व दर्शक दोनों को ही यदि एक प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त हो तो उसे सच्चे अर्थों में कला की संज्ञा दी जा सकती है।

लोक कला

लोक कला, जिसे अंग्रेजी में **Folk Art** कहते हैं। आम लोगों द्वारा, बिना किसी खास प्रशिक्षण के अपनी संस्कृति और परंपराओं को दर्शाने के लिए बनाई गई कला है। मुख्य रूप से कार्यात्मक या उपयोगितावादी दृश्य कला जो हाथ से (या सीमित यांत्रिक सुविधाओं के साथ) निर्माता या एक छोटे से सीमित सुबह द्वारा उपयोग के लिए बनाई जाती हैं और जिसमें धारणीयता का एक तत्व होता है, परंपरा का लंबे समय तक अस्तित्व।

लोक कला में स्वदेशी संस्कृति से या उपहारों या अन्य श्रमशील व्यापार के लोगों द्वारा निर्मित कला शामिल है। लोक कलाएं एक समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में निहित और प्रतिबिंबित होती हैं। वे लोकगीत और सांस्कृतिक विरासत के क्षेत्र से जुड़ी अभिव्यंजक संस्कृति के शरीर को समझते हैं। लोक कला में वे वस्तुएं शामिल हैं जिन्हें ऐतिहासिक रूप से एक पारंपरिक समुदाय के भीतर तैयार और उपयोग किया जाता है। ये महत्वपूर्ण और लगातार पुनर्जीवित कलात्मक परंपराएं उन मूल्यों और उत्कृष्ट के मनकों द्वारा आकार लेती हैं जो पारित हो जाती हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी, अक्सर परिवार और समुदाय के साथ, प्रदर्शन, बातचीत और अभ्यास के माध्यम से लोक कला में मूर्त वस्तुएं शामिल होती हैं। वे बर्तन, कपड़े, नृत्य कला या आभूषण कुछ भी हो सकते हैं।

लोक कला के रूप में मौजूदा रूप और डिजाइन के कुशल तकनीकी निष्पादन के कारण इन्हें कला का काम माना जाता है। इन वस्तुओं में कई विशेषताएं होती हैं जो उन्हें भौतिक संस्कृति की अन्य कलाकृतियों से अलग करती हैं। लोक कला बनाने वाले लोगों को लोक कलाकार के रूप में जाना जाता है। शिल्पकार और महिलाएं एक स्थापित संस्कृति ढांचे के भीतर काम करते हैं। उनके पास काम करने की एक पहचानने योग्य शैली और अपने टुकड़ों को तैयार करने या डिजाइन करने का तरीका होता है, जो उनके काम को पहचानने और उसके सांस्कृतिक मूल का पता लगाने की अनुमति देता है। किसी विशेष संस्कृति का व्यक्तिगत नवाचार और इतिहास लोक कला के बनाने में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाता है।

लोक कला उत्पादों के बारे में महत्वपूर्ण बात यह है कि वे बड़े पैमाने पर उत्पादित नहीं होते हैं। उन्हें एक बार में एक रूप में बनाया जाता है या तो हाथ या फिर हाथ और मशीन दोनों से। इस प्रकार के उत्पादन के परिणाम स्वरूप लोक कला उत्पादन के रूप में बनाए गए टुकड़े अद्वितीय और व्यक्तिगत रूप से पहचाने जाते हैं।

ज्यादातर लोक कला वस्तुएं हाथ से बनाई गई और पुरानी हैं, आज भी दुनिया भर के कई क्षेत्र में इसे हाथ से बनाया जाता है। पुराने समय में लोक कला की वस्तुएं घर या समुदाय में दैनिक जीवन में कुछ कार्यों को पूरा करने के लिए बनाई जाती थी। यही कारण है कि वस्तुएं और डिजाइन

बनाना जारी रहा। लोक कला कई आकारों में आती हैं, अधिकांश लोक कला के निर्माता स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग करते हैं तथा परिचित आकृतियों और रूपों की प्रतिकृति बनाते हैं।

“लोक कला” शब्द के अंतर्गत आने वाली वस्तुओं के प्रकार अलग-अलग होते हैं। इस कला रूप को “विविध सांस्कृतिक उत्पादन के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यूरोप में इसके उपयोग से समझा जाता है, जहां इस शब्द की उत्पत्ति हुई और संयुक्त राज्य अमेरिका में जहां यह अधिकांशतः बहुत अलग-अलग रेखाओं के साथ विकसित हुआ”।

यूरोपीय दृष्टिकोण से, एडवर्ड लूसी – स्मिथ ने इसे “अनौपचारिक कला, ललित और लागू दोनों, जो माना जाता है कि साधारण लोगों की सामूहिक जागरूकता में निहित है, के रूप में वर्णित किया है। लोक कला की अवधारणा विशिष्ट रूप से 19वीं सदी की है। आज यह अपने साथ पूर्व औद्योगिक समाज के लिए उदासीनता का रंग लेकर चलती है।”

➤ लोक कला : अर्थ और परिभाषा :-

‘लोक’ शब्द का प्रयोग जाति, वर्ग, धर्म, संप्रदाय, नगर, ग्राम, शिक्षित, अशिक्षित, धनी, निर्धन एवं विकसित – अविकसित के भेदों से ऊपर उठकर समष्टि के लिए किया जाता है। वर्गीय दृष्टि का निषेध करने वाले ‘लोक’ का कोई भी कृतिव मानव के परिष्कार के लिए होता है। लोक कला ऐसे ही मानव समूह है कि सहज अभिव्यक्ति का एक रूप है।

‘लोक’ की इस सहज अभिव्यक्ति का लक्ष्य लोक जीवन को सजाना-संवारना होता है। अतः कहा जा सकता है कि लोक जीवन को सजाने – संवारने के लिए जिस रूपांकन का प्रयोग किया जाता है, उसे लोक कला कहते हैं।

लोक कला का विकास मानव सभ्यता के अभ्युदय के साथ-साथ हुआ। यह कला मानव की आस्थाओं एवं धार्मिक विश्वासों के नियमन में पली-बड़ी और विकसित हुई। हमें वैदिक काल से भी पहले इसके सांस्कृतिक एवं साहित्य संदर्भ उपलब्ध होते हैं।

भारतीय साहित्य में घर के आंगन, दालान, रसोई व दीवारों पर स्त्रियों के द्वारा उकेरे गए चित्रों का उल्लेख मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि सदियों से घर की सुख समृद्धि, पारस्परिक सद्भाव, सामूहिकता और घर आंगन की मांगलिक अभिलाषा के प्रतीक के रूप में लोक कला अभिव्यक्ति पाती रही है।

➤ लोक कला : स्वरूप :-

लोक कलाकार किसी चित्रशाला में जाकर प्रशिक्षण नहीं लेता तथा जन्मजात कौशल पर आधारित ‘लोक कला’ के लिए उपयुक्त कला सामग्री कहीं बाहर से नहीं लानी पड़ती, बल्कि घर, आंगन

में ही मिल जाती है। इसी सहज सुलभ सामग्री से लोक कलाकार अपने सीधे-साधे लोगों के लिए चित्रांकन करता है।

एक लोक कलाकार को न किसी समीक्षक की परवाह होती है और न ही किसी प्रचार की आवश्यकता। वह तो बिना किसी स्वार्थ के 'स्वान्तः सुयाय' साधना करता है। यह अलग बात है कि घर की सुख समृद्धि उसे लोक कला के पुरस्कार स्वरूप मिलती है। तीन धाराओं में प्रथम थी - शुद्ध कलाकृति जो सात्विक आनंद का स्रोत थी और जिसमें भौतिक उपयोगिता की कोई बात नहीं थी। दूसरी वे कलाकृतियां थी, जो उपयोगी भी थी और कलात्मक भी। तीसरी धारा के अंतर्गत कला का वह रूप विकसित हुआ, जिसे मानव ने अपने घर, आंगन और परिवेश को उत्फललित, आकर्षक एवं सुसज्जित करने के लिए प्रयुक्त किया। इसे ही लोक कला कहा गया है।

सदियों से चली आ रही लोक कला की परंपरा को महिलाओं ने जीवित रखा है। पर्व, त्यौहार, व्रत, उपवास एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठानों पर वह अपने घर, परिवार, जाति, समाज, पुत्र, पुत्री, भाई-बहन एवं पति की सुख समृद्धि के लिए अनेक मांगलिक कार्य करती हैं। इन मांगलिक अनुष्ठानों में रेखांकन एवं चित्रांकन का प्रमुख स्थान है। मंगल कामनाओं के लिए उकड़े जाने वाले इन्हीं चित्रों से ही लोक कलाओं का उद्भव और विकास हुआ है।

मांगलिक पर्वों के अतिरिक्त महिलाएं फुर्सत के समय भी टोकरी, चटाई, कालीन, स्वेटर, तकिया, रुमाल, चादर, भित्तियों, बिटोड़ों आदि पर शोभा के लिए कई प्रकार के अलंकरण करती रहती हैं। इन अलंकरणों एवं कढ़ाई बुनाई के लोक कला के कई प्रकारों का उद्भव और विकास किया है।

महिलाएं मांगलिक अनुष्ठानों एवं हस्त निर्मित वस्तुओं के माध्यम से जी अनंगढ़ कला का प्रकटीकरण करते हैं, उसमें कहानी के अनुष्ठान के अनुसार प्राकृतिक के उपादानों प्राकृति तत्वों एवं लोक परिवेश की वस्तुओं का शहर संयोजन करती हैं। इस संयोजन में पीपल, आम, कदली वृक्ष, इनके पत्ते, बेल, सूरज, तारा, जल, घड़ा, मछली, सारस, तोते, मोर, सर्प, घोड़ा, हाथी, भाला, तलवार, ढाल, तीर, चक्र कंधी, चाप, तोरण द्वार, चारखाना, त्रिकोण, वृत्ति, लहरिया, त्रिभुज, वर्ग, आड़ी-तिरछी रेखाओं से बनी मानवाकृतियां आदि। लोक प्रचलित रूपों को प्रयुक्त किया जाता है। इस लोक अलंकरण में जो भी रंग मिल जाते हैं, उन्हें महिलाएं स्वयं तैयारी कर लेती हैं। इन रंगों में सहज सुलभ कालिख, खड़िया, चाक, मुलतानी मिट्टी, कायेला, गेरू, हल्दी आदि प्रमुख हैं।

तूलिका सींख पर रूई लपेट कर बना ली जाती थी। रंगीन कपड़ों की कतरनें, पन्नी, गोबर की टिकलियाँ, चावल, गोंद, धागे आदि सहजता से उपलब्ध वस्तुओं को पर्वानुसार प्रयुक्त कर लिया जाता है।

➤ लोक कला की विशेषताएं :-

लोक कला का निर्माण लोक मानव उपयोगिता के आधार पर करता है। लोक कला का संबंध मन के आनंद की अभिव्यक्ति से जुड़ा होता है। जब भी मौज मस्ती और आनंद के अवसर आते हैं, लोक मानस उसकी अभिव्यक्ति, विभिन्न क्रियाकलाओं के माध्यम से करता है। 'लोक कला परंपरा के प्रवाह में चमकते और सादगी से सुशोभित होती है। सरल आकृतियों में निर्मित होने के कारण वह थोड़ी सी कुरूप, स्थूल एवं बस्पष्ट होती है। यह सरलता लोक कलाओं का मुख्य आकर्षण है।'

लोक कला में जातिगत विशेषताएं भी पाई जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के बीच जो निश्चित व्यवसाय होते हैं उनसे उनकी जातिगत भावनाओं का निर्माण होता है। किसी विशेष व्यवसाय में लगे हुए व्यक्तियों का प्रकृति के जिन उपकरणों से संबंध रहता है, उन्हीं से संबंधित उनके कला रूप होते हैं।

लोक कलाएं पारंपरिक होती हैं। परंपरा के रूप में कुछ आलेखन, रूपाकार तथा अभिप्राय एक से दूसरी पीढ़ी द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। धीरे-धीरे रीति-रिवाज, अनुष्ठान, विश्वास तथा वातावरण सब में ये अभिप्राय घुल-मिल जाते हैं और उनका हिस्सा बन जाते हैं।

लोक कला की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित इस प्रकार हैं :-

- जनसाधारण की कला :- यह कला आम लोगों द्वारा विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और जनजातीय समुदायों में बनाई जाती है।
- परंपरिकता :- लोक कला में, पीढ़ियों से चलती आ रही कलाकृतियों और तकनीकों का उपयोग किया जाता है।
- सादे और सहज :- लोक कला में जटिलता या दिखावा नहीं होता बल्कि सादगी और सहजता होती है।
- सामुदायिक अभिव्यक्ति :- लोक कला समुदाय की संस्कृति, रीति रिवाजों और सामाजिक मूल्यों को दर्शाती है।
- उपयोगितावादी :- लोक कला में कलाकृतियों का उपयोगितावादी पहलू भी होते हैं। जैसे कि दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली वस्तुएं होती हैं।

हरियाणा की लोक कला

हरियाणा की लोक कला एक समृद्ध और विविध परंपरा है जो इस क्षेत्र की सांस्कृतिक और इतिहास को दर्शाता है। हरियाणा की लोक कला में विभिन्न प्रकार की कला रूपों का समावेश है, जिनमें कुछ का विवरण इस प्रकार है :-

➤ हस्त कसीदाकारी :-

हरियाणा में महिलाओं के द्वारा की जाने वाली हस्त कसीदाकारी एवं फुलकारी की सदियों पुरानी लोक परंपरा रही है। तीन-चार दशक पहले तक कर्सत के दिनों में ग्रामीण महिलाएं किसी चौबारे या आलान में अपने-अपने चरखे या अन्य कसीदाकारी का सामान लेकर एकत्रित हो जाती थी। ओढ़नी, चूदड़ी, सोपाली, दुकनिया आदि के सौंदर्य को बढ़ावा हेतु इन पर शीशे के छोटे-छोटे गोल-गोल टुकड़े लगाए जाते थे। हरियाणा में सभी आयु वर्ग की महिलाएं अपने-अपने हुनर के अनुसार सिलाई, कढ़ाई, बुनाई आदि करती आई है। कोई बैलों के पाल व मखेरणों की कसीदाकारी में दक्ष होती थी, तो कोई रंग-बिरंगी टोपी, थैले, बीजोहड़ी आदि पपीहा, हाथी, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, आदी करने में परंपरागत होती थी।

➤ भित्ति चित्र :-

हरियाणा की हवेलियों, चौपालो, कुओं, बाबांड़ियों, सरोवरों की बारह दरियों, धर्मशालाओं, ठाकुरद्वाराओं, शिवालियों, मंदिरों, मठो, साधुओं के डेरों, छतरियों आदि की दीवारों पर बने भीति चित्रों से पता चलता है कि ये चित्र जीवन जगत के हर पत्र पक्ष को दर्शाते हैं।

➤ मिट्टी के खिलौने :-

हरियाणा में मिट्टी के खिलौने बनाने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। हरा-भरा प्रदेश होने के कारण यहां मोर, तोता, चिड़िया, हरियल, कबूतर आदि के खिलौने भी प्राप्त हुए हैं। प्रेरणा नामक घुमक्कड़ जाति की महिलाएं आजकल भी गली-गली में घुमकर हुक्का, पपैहा, गाय, बैल, ऊंट, कुत्ता आदि की मिट्टी के पके हुए खिलौने आटा, अनाज, गुड़ आदि के बदले में देकर जाती हैं।

➤ सांझी :-

एक मातृ देवी का नाम है, जिसके नाम पर मिट्टी से प्रतिमाएं बनाई जाती हैं। इसे त्योहार के रूप में मनाया जाता है, जो मुख्य रूप से दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में

महिलाओं और लड़कियों द्वारा मनाया जाता है। उनकी प्रतिमाओं को विभिन्न आकृतियों में ढाला जाता है जैसे कि ब्रह्मांडीय पिंड या देवी का चेहरा, और उन्हें अलग-अलग रंग दिए जाते हैं। स्थानीय कुम्हार उनके शरीर के विभिन्न अंगों जैसे कि हाथ, पैर, आभूषणों और हथियारों से सजे चेहरे की प्रतिमाएं बनाते हैं। ये जोड़ प्रतिमा को सुंदर और आकर्षक बनाते हैं। इस तरह से प्रतिमा में किए जाने वाले जोड़ परिवार की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करते हैं। यह छवि दुर्गा पूजा या नवरात्रि के नौ दिनों से पहले बनाई जाती है और सांझी उत्सव दशहरे के दिन सांझी के विसर्जन के साथ समाप्त होता है।

➤ गौरा माँ :-

लोक कला में गौरा का अंकन विशेष रूप से गीली मिट्टी अथवा सुपारी द्वारा निर्मित होता है, जो चिआयामी होती है। लोक जीवन में गौरे को अनाज में ही प्रतिस्थापित करने की प्रथा है। लोक गीतों में गौ अभिप्राय सुयोग्य वर प्राप्ति तथा शुभंकर के रूप में वर्णित है।

➤ अहोई माता :-

इनकी पूजा कार्तिक मास में अष्टमी को की जाती है। ऐसी मान्यता है कि अहोई मां पुत्र प्रदान करने वाली है और सभी मृतक पुत्रों को जीवित करने का समर्थन इनमें है। अहोई माता को लोक में 'होई' की भी कहा जाता है। अहोई मां हिमाचल प्रदेश और पहाड़ी क्षेत्र में देवी दुर्गा के रूप में भी पूजी जाती है और इनका बच्चों के स्वास्थ्य और सुरक्षा से संबंध है।

➤ कुम्भ कला :-

नवपाषाण युग में जब हरियाणा में खेती-बाड़ी आरंभ हुई तभी से मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का जन्म हुआ। मिताथल (भिवानी, हिसार, जींद) से उत्पन्न से मिले कच्चे पक्के मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों से पता चलता है कि पुराने समय से ही यहां मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग होता रहा है। लेकिन कुम्हार की नई पीढ़ी के किशोर इस पुश्तैनी धंधे के प्रति वे उदासीनता दिखाई देते हैं, लेकिन बुजुर्ग कुम्हार पारंपरिक शैली से कार्य करने को अधिक सरल और स्वाभाविक मानते हैं।

➤ अन्य लोक कलाएं :-

1. कपड़े के खिलौने :-

हरियाणा के गांव की औरतें कपड़े द्वारा कपड़े के ऊंट, बैल, रथ, गाड़ी, घोड़ा, गाय, कबूतर, चिड़िया, झुनझुना, गेंद आदि अनेक प्रकार के खिलौने बनाने में माहिर होती हैं। झुनझुना बनाने के लिए

माचिस में गेहूं के दानों का या कोई दाल, कंकर डालकर उस पर रंगदार कपड़ा चढ़ाया जाता है। फिर इसे बड़े ही सलीके से कपड़ा और गोटा पेमक से गढ़े हुए आधा फुट कि सरकंडे से जोड़ दिया जाता है और जब बच्चे इसे पकड़ कर हिलाते हैं तो झुनझुन-झुनझुन की ध्वनि निकलती है। इसी तरह कपड़े से मोर, कुत्ता, भालू, बंदर आदि अन्य पशु पक्षी और गुड्डा-गुड्डियां भी बनाई जाती हैं।

2. बदनवार :-

अन्य लोक कलाओं में बिन्दरवाल भी एक है, जिसे कलात्मक रूप देखकर घर के मुख्य द्वार बांधा जाता है। नव विवाहिताएं तो बदनवार के किनारों पर गोटा पेमक लगाकर कलात्मक फुलकारी की जाती है।

3. रंगीन दरी :-

गाँव के बुनकर सदियों से ही ठेठ देसी यंत्रों के बीच में सफेद और किनारों पर रंगदार सूत की दरियां खडड़ी द्वारा बनाई जाती हैं। गाँव की महिलाएं ज्यादा औजारों से ही रंगीन दरियां आसान बनाने में माहिर हैं। जब दर्जी सिलाई के लिए कपड़ों की कटाई-छंटाई करती है तो काफी कतरने बच जाती हैं। बस इन्हीं बची हुई रंग-बिरंगे कतरनों को एकत्रित करके दरियां व आसन बना लेती हैं। फिर भी कतरनों के रंगों का संयोजन और दरी निर्माण की शैली लोक कला का सुंदर नमूना है।

4. फुलझड़ी

लोक कला का एक आकर्षक रूप फुलझड़ी भी है। इसे बनाने के लिए सरकंडे के एक डेढ़ फुट के टुकड़े काटकर इन्हें वर्णाकार रूप में जोड़ा जाता है। मंदिर के आकार प्रकार जैसे इस ढांचे के सरकंडे पर रंगीन कपड़ा — कागज लपेटकर ऊपर से गोटा पेमक चढ़ाकर कलात्मक रूप दे दिया जाता है।

5. पलंग निर्माण कला :-

पुरुष भी एक कुशल लोक कारीगर सनी, गूज, सूत, सीमेंट के खाली कटटे के रस्से आदि का बाण बाटकर बड़े कलात्मक पतंग, खाट, पीढ़ा-पीढ़ी आदि भरते हैं। हरियाणा के इन्हीं गांवों में ऐसे कलावंत अभी भी हैं जो अभी भी पलंग खाट बनाते हैं।

6. तुलियों के खिलौने :-

कई स्त्री-पुरुष बारीक सरकंडों, तुलियों आदि से बच्चों के लिए खिलौने जैसे रथ, घोड़ा, ऊंट, गाड़ी, आदि बनाते हैं। हर गांव में ऐसे लोग प्रतिभा संपन्न स्त्री-पुरुष होते हैं जो अपनी कला अभिरुचियों के द्वारा हस्तकलाओं को बचाए रखने का प्रयास करते हैं।

7. लाडली निर्माण कला :-

घर में बेकार पड़े कागजों को पानी के मटके में डालकर गला लिया जाता है। गल जाने के बाद इसकी लुगदी तैयार कर ली जाती है। इस लुगदी को इच्छा अनुसार छोटी बड़ी कई प्रकार की डाडली बना ली जाती है और सूखने पर पीली मिट्टी, खड़ी या सफेदी से पोचकर ऐसी चित्रकारी और फुलकारी की जाती है जो देखने में योग्य होती है।

8. टोकरी निर्माण कला :-

हरियाणा में हर चीज को समाजयोग्य पर हर स्थान पर हृदय के वृक्ष मिलते हैं, जिनकी डालियां मजबूत होने के साथ-साथ मुड़ने-तुड़ने वाली भी होती हैं। कांटी-छांटी और झांगी हुई इन शहतूत की डालियों से गांव के कलात्मक लोग टोकरी, टोकरा, झल्ला, छाबड़ा, बोहिया आदि बनाते हैं। इन चीजों को शिल्पकार अपने प्रयोग में लाते हैं और ज्यादा मात्रा होने पर बेच देते हैं। बोहिया में रोटियां रखी जाती हैं, इसके अतिरिक्त बारीक सरकंडों से छाज, खारी, पिटारी आदि बनाए जाते हैं।

9. रस्सी :-

पशुओं के गले की गल, पट्टी, पट्टा, केशकियास के समय महिलाओं के उतरे हुए बालों से 'जतनी' मोर पंखों की 'चरो' व रंग बिरंगी कपड़ों की कतरनों से पट्टी व गांठली, पीतल या स्टील के नन्हे नन्हे घुंघरू को पिरोकर चौरासी आदि बनाने में यहां के पुरुष कलात्मक होते हैं। इसके अलावा ज्वार, बाजरा, मक्की आदि की फसल पकने पर तोता, चिड़िया आदि पक्षी आकर बैठते हैं तथा फसल खराब करते हैं। इन्हें उड़ाने के लिए बनाई गई टाट व गोफियां और चीज रखने के लिए बनाई जाने वाली सिर्फ सिड़ौरी आदि ऐसी कलात्मक चीज है, इन्हें हाथ से बांटे गए बारीक बान से बनाया गया है।

10. तोता :-

पुरानी रूई या कपड़े के टुकड़ों को लेकर उनके ऊपर तोता रंगी हरा कपड़ा सिलकर, तोते का आकार बना लिया जाता है। लाल कपड़े से उसकी चोंच बनाई जाती है। इसे ओर ज्यादा अच्छा दिखाने के लिए उस पर सूई या क्रिरोशिये से वैसे ही रंगों के धागों की बारीक रेखाएं बनाई जाती हैं

जैसी रेखाएं तोते के शरीर पर होती हैं। मुख्य द्वार की चौखट पर लटकता तोता लोक कला की उत्कृष्ट की गवाही देता है।

11. पंखी लोक कला :-

बदलते समय के साथ लोक कला में भी निखार आ गया है तथा शहरी वर्ग लोग भी लोक कला की तरफ आकर्षित होते गए हैं। पंखी की सृजन करना बड़ा ही रोचक पूर्ण है। ग्रामीण महिलाएं अपने व्यस्त जीवन में से समय निकालकर पंखियों का निर्माण करती हैं। ग्रामीण महिलाएं कला के प्रति अपनी भावनाओं एवं रुचि को उजागर करती हैं। प्राचीन समय में तो कला को शिक्षित करने के लिए कोई भी संस्था नहीं थी तथा कलाकार अपने अनुभवों से ही कला के क्षेत्र सृजनात्मक कार्य सिखते थे, तथा अपनी भावनाओं एवं भावनाओं को पंखी कला, गृह सज्जा, अज्यना आदि द्वारा दर्शाया। इन सभी लोक कलाओं में पंखी और दरी ऐसी कला है जो अधिकतर सभी ग्रामीण महिलाओं ने की है। पंखी ग्रामीण क्षेत्र की लोक कला का अभिन्न अंग है जो कि विश्व भर में प्रसिद्ध है। यह ग्रामीण औरतों द्वारा बनाई गई रचना है।

पंखी की कला 4000 साल से भी पूर्व की है, जब मानव जंगलों में रहता था अर्थात् आदिमानव के काल से हैं। तब से लेकर आज तक अर्थात् आधुनिक समय तक यह कला विकसित होती आ रही है। लेकिन जैसे-जैसे मानव वैसे-वैसे उसकी कल्पना शक्ति का भी विकास होता गया।

द्वितीय अध्याय

- आभूषणों का इतिहास
- आभूषणों में अलंकरण
- आभूषण बनाने में कारीगरों की भूमिका

आभूषणों का इतिहास

आभूषण लोक संस्कृति के लोकमान्य अंग हैं। व्यक्तिगत श्रृंगार के लिए मानव शरीर पर पहनने जाने वाली कोई भी वस्तु आभूषण कहलाती है। आभूषण शरीर या कपड़ों से जुड़े हो सकते हैं। आभूषण लगभग हर शरीर के अंग को सजाने और पहनने के लिए बनाए जाते हैं चाहे वह हेयर पिन हो या फिर पर की उंगलियों की अंगूठी।

आभूषण विभिन्न सामग्रियों से बने होते हैं। प्राचीन काल में जब मनुष्य ने आभूषण बनाना शुरू किया तो वह हड्डियों के, हाथी दांत, लकड़ी और बीजों आदि के आभूषण बनते थे लेकिन सदियों से मनुष्य ने बहुत अधिक विस्तृत सामग्री जैसे सोना, रतन, एंबर, मूंगा, मोती और अन्य कीमती धातुओं से आभूषण बनाना शुरू कर दिया।

आभूषणों का इतिहास बहुत विस्तृत है। विभिन्न संस्कृतियों में इसके कई अलग-अलग उपयोग हैं और यह हमें प्राचीन संस्कृतियों के काम करने के तरीके के बारे में भी बहुत कुछ बताता है। आभूषण शब्द 'ज्वेल' शब्द से लिया गया है, जिसे 13वीं शताब्दी में पुराने फ्रांसीसी "जूल" में अंग्रेजीकृत किया गया था।

आभूषण शरीर के श्रृंगार के सबसे पुराने रूपों से एक है। हाल ही में मिले नारियल के गोले को सबसे पुराने "ज्ञात" आभूषण माना जाता है। बाद में मनुष्यों ने हड्डियों, दांतों, जामुन, पत्रों और नक्काशीदार हड्डियां आदि से आभूषण बनाना शुरू कर दिया। बाद में जब सभ्यताएँ अस्तित्व में आईं तो उन्होंने अपने खुद के अनूठे प्रकार के आभूषण बनाने शुरू कर दिए।

मिस्त्रवासियों के लिए आभूषण का मतलब विलासिता था। वे अन्य धातुओं की तुलना में सोने की दुर्लभता और व्यावहारिकता को प्राथमिकता देते हैं। मिस्त्र के लोग मृत्यु के समय भी आभूषण पहनते थे और अक्सर कब्र के समान के साथ रखे जाते थे। समय-समय पर अलग-अलग लोगों जैसे यूरोप, ग्रीस और रोम आदि के लोगों द्वारा अलग-अलग तरह के आभूषण बनाए जाते थे।

18वीं शताब्दी में आभूषणों के विकास पर रोमांटिकवाद का गहरा प्रभाव पड़ा है। हालांकि आज के समय में अलग-अलग परिधानों पर पहनने के लिए अलग-अलग तरह के आभूषण उपलब्ध हैं, लेकिन जब आभूषण अस्तित्व में आए तो पहले वह आज के मानकों के अनुसार फैशन में नहीं थे, लेकिन समय के साथ-साथ अपनी शैली, रूप, रंग और अर्थ बदल दिया और विभिन्न प्रकार के कीमती रत्न और रचनात्मक डिजाइनों और अन्य कीमती धातुओं का उपयोग करके इसे और अधिक फैशनेबल बना दिया।

हम कह सकते हैं कि आभूषणों का स्वभाव है कि वे बदलते रहते हैं और पुराने हो जाते हैं और नए परिधान के साथ फिट होने के लिए उन्हें बदल दिया जाता है और फिर से डिजाइन किया जाता है। आज के समय में पहनने के लिए बहुत सारे अलग-अलग प्रकार के आभूषण उपलब्ध हैं। खासकर महिलाओं के लिए हर आयु और हर वर्ग के लोगों के लिए सस्ते और महंगे दोनों तरह के आभूषण उपलब्ध हैं। सामान्य शब्दों में आभूषण के दो मुख्य प्रकार हैं — एक है (प्रोडक्शन)— उत्पादन ज्वेलरी जो किसी मूल डिजाइन की नकल होती है और दूसरी है मूल डिजाइन में जो एक तरह की होती है।

उत्पादन ज्वेलरी ज्यादातर सस्ती सामग्री से बनी होती है और ओरिजिनल ज्वेलरी आमतौर पर बहुत कीमती सामग्री से बनी होती है, फिर पोशाक के आभूषण आते हैं जो सस्ती सामग्री से उत्पादन आभूषण का ही एक प्रकार है। इसे कृत्रिम आभूषण भी कहते हैं। आज के समय में घर्षण और सफाई आदि के तरीके से अपने कीमती आभूषणों को बनाए रखना और उनकी मरम्मत करना बहुत आसान बन जाते थे तो वह आज की तरह रंगीन नहीं होते थे। इसका मुख्य कारण यह है कि उसे समय में रंगों के बारे में जानकारी और दृष्टिकोण आज के युग और समय की तुलना में मनुष्य तक ही सीमित था। ज्यादातर प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल किया जाता था, लेकिन आज हम हर रंग के आभूषण बना और खरीद सकते हैं।

आभूषणों में अलग-अलग रंग उन्हें अपनी खूबसूरती देते हैं। आभूषण बनाने में रंगों की अहम भूमिका होती है क्योंकि यह आभूषणों में सुंदरता जोड़ते हैं और रंगों के आधार पर हम अपने आभूषणों को अपने पहनावे से मिलाकर पहन सकते हैं। आज हमारे पास अपनी मनचाही सामग्री के गुणों तथा नमूनों के अनुसार किसी भी तरह के आभूषण बनाने के कई तरह की सामग्री मौजूद है। दूसरी और प्राचीन काल में आभूषण सामग्री की उपलब्धता के आधार पर बनाए जाते थे क्योंकि उस समय मनुष्य को सोने या हीरे आदि जैसी कीमती वस्तुएं नहीं मिली थी। यही कारण है कि उनका निर्माण सीमित था और जो कुछ भी उनके पास उपलब्ध था उससे ही आभूषण बनते थे।

सांस्कृतिक अंतर के आधार पर विभिन्न धातुओं और डिजाइनों से बने आभूषण थे और अब भी हैं। इसका उपयोग भारत में विभिन्न उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है जैसे कि आभूषणों को दहेज के रूप में देना — भारत में बहुत प्रसिद्ध परंपरा थी। आभूषणों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है पोशाक आभूषण, मूल आभूषण, संस्कृति का आभूषण, प्रतीकात्मक आभूषण और पारंपरिक आभूषण इत्यादि।

हालांकि आभूषणों को कभी-कभी धन दिखाने और व्यक्तिगत श्रृंगार के रूप में देखा जाता है, लेकिन यह अन्य कार्य भी करता है जैसे कि कपड़े को एक साथ रखना या बालों को व्यवस्थित रखने के लिए। सदियों से आभूषणों का उपयोग मनुष्य के द्वारा कई अलग-अलग कामों में किया जा रहा है

जैसे की व्यक्तिगत श्रृंगार और सुंदर दिखने की वजह से, धन के प्रदर्शन के लिए या मुद्रा के रूप में उपयोग के लिए।

कार्यात्मक उपयोग के लिए जैसे कि पकड़ना। प्रतीकात्मक के लिए जैसे की सदस्यता या स्थिति दिखाना और कलात्मक प्रदर्शन आदि विभिन्न संस्कृतियों में आभूषणों का अलग-अलग उपयोग और विश्वास है। पुराने समय में आदिवासी लोग और आज के समय के लोग हड्डियों, लकड़ी के पत्रों आदि जैसी प्राकृतिक सामग्रियों से आभूषण बनते और पहनते हैं। कई जनजातीय आभूषणों को अस्थायी रूप से शरीर को संशोधक के रूप में अयोग्य करती हैं, वे कभी-कभी अपने शरीर पर आभूषणों का एक गुच्छा लगाते या लटकाते हैं।

यह आभूषण एक मनके के जितने छोटे और मोटरसाइकिल के हैंडल जितने बड़े हो सकते हैं। इस प्रक्रिया को पियसिंह के नाम से भी जाना जाता है, जिसे इतिहास में बुरा माना जाता था और इसकी सरहाना नहीं की जाती थी, लेकिन अब यह दुनिया भर में विशेष रूप से युवाओं में एक बढ़ती हुई प्रवृत्ति है। कुछ लोगों के लिए शरीर में छेद करवाना अब स्वीकृति का प्रतीक और साहस का प्रतीक बन गया है। जबकि अन्य लोग इसे पूरी तरह से अस्वीकार करते हैं।

आभूषणों में अलंकरण

अर्थ है सजावट या सजाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाली वस्तुएं जैसे की गहने, कपड़े या अन्य सजावटी वस्तुएं जो किसी व्यक्ति की वस्तु को सुंदर बनाने या उसे विशेष रूप देने के लिए उपयोग किए जाते हैं।

आभूषणों में अलंकरण की प्रक्रिया में विभिन्न चरण शामिल होते हैं जैसे की डिजाइन तैयार करना, सामग्री का चयन करना और अलंकरण तकनीकों का उपयोग करना। अलंकरण की प्रक्रिया में विशेष सभ्यता और कौशल की आवश्यकता होती है जिसे आभूषणों को एक अनोखा और आकर्षक रूप दिया जा सके। अलंकरण की कला को विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है जैसे की फैशन डिजाइन और कला आभूषणों में अलंकरण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो उन्हें अधिक आकर्षक और विशिष्ट बनाता है।

अलंकार के विभिन्न प्रकार होते हैं जैसे कि नक्काशी, पॉलिश, रंगाई, मीनाकारी और घड़ाई। ये अलंकरण तकनीक से आभूषणों को एक अनोखा और आकर्षक रूप देते हैं। अलंकरण का महत्व न केवल आभूषणों के आकर्षण को बढ़ाने में है बल्कि यह उन्हें पहनने वाले की व्यक्तिगत शैली और व्यक्ति को भी व्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है। इसके अलावा अलंकरण आभूषणों को सांस्कृतिक महत्व प्रदान करता है और उन्हें विभिन्न संस्कृतियों व परंपराओं का प्रतीक बनाता है।

अलंकरण की कला आभूषणों को एक नए स्तर पर ले जाती है जिससे वह न केवल सजावटी वस्त्र बन जाते हैं, बल्कि एक कलात्मक अभिव्यक्ति का भी माध्यम भी बन जाते हैं। आभूषणों में अलंकरण के विभिन्न प्रकार आभूषणों में अलंकरण के विभिन्न प्रकार होते हैं जिनमें से कुछ प्रमुख हैं :-

1. नक्काशी :-

नक्काशी एक प्रकार का अलंकरण है जिसमें आभूषणों पर विभिन्न प्रकार के डिजाइन और आकर बनाए जाते हैं।

2. पॉलिश :-

पॉलिश एक प्रकार का अलंकरण है जिसमें आभूषणों को चमकाने और उन्हें अधिक आकर्षक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों और तकनीक का उपयोग किया जाता है।

3. रंगाई :-

रंगाई एक प्रकार का अलंकरण है जिसमें आभूषणों को विभिन्न प्रकार के रंगों से रंगने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों और तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

4. मीनाकारी :-

मीनाकारी एक प्रकार का अलंकरण है जिसमें आभूषणों पर विभिन्न प्रकार के डिजाइन और आकर बनाए जाते हैं और उन्हें रंगने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों और तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

5. जड़ाई :-

जड़ाई एक प्रकार का अलंकरण है जिसमें आभूषणों पर विभिन्न प्रकार के रत्नों और पत्थरों को जड़ने के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीक का उपयोग किया जाता है।

➤ विभिन्न संस्कृतियों में आभूषणों का महत्व :-

➔ संस्कृत व सामाजिक पहचान :-

आभूषण किसी व्यक्ति के सामाजिक वर्ग, जाति, धर्म या समुदाय से संबंधित हो सकते हैं।

➔ सौंदर्य और आकर्षण :-

आभूषणों का उपयोग शरीर को सजाने और सुंदरता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

➔ धार्मिक और प्रतीकात्मक अर्थ :-

कुछ आभूषण प्रतिकों या मान्यताओं से जुड़े होते हैं।

➔ कला और शिल्प :-

आभूषणों की कलात्मकता और शिल्प कौशल को दर्शाने के लिए भी उनका उपयोग किया जाता है।

→ इतिहास और विरासत :-

आभूषण किसी संस्कृति के इतिहास और विरासत को भी दर्शाते हैं।

आभूषण बनाने में कारीगरों की भूमिका

सुनार वह व्यक्ति होता है जो सोने और अन्य कीमती धातुओं के साथ काम करने में माहिर होता है। पुराने समय में सुनार केवल आभूषण ही नहीं बनाते थे बल्कि वह चांदी के बर्तन, थालियाँ, प्याले, सजावटी बर्तन, धार्मिक और औपचारिक वस्तुएं और कुछ अन्य चीज भी बनाते थे। कारीगर आमतौर पर वे लोग होते हैं जो धातु को फइलिंग, आरी, फोर्जिंग, सोल्डरिंग, पॉलिशिंग व कास्टिंग के माध्यम से बनाने में कुशल होते हैं। इस व्यापार से बड़े पैमाने पर आभूषण बनाने में कुशल होते हैं। इस व्यापार में परंपरागत रूप से यह कौशल लोगों से लोगों या परिवार से परिवार या संस्कृति से संस्कृति में पारित किए गए थे।

आधुनिक समय में ऐसे लोगों के लिए विशेष आभूषण विद्यालय बनाए गए हैं जो आभूषण बनाने की कला के साथ-साथ डिजाइनिंग और उससे संबंधित कई अन्य कौशल सीखना चाहते हैं। प्राचीन समय में सुनार बैंकिंग कार्य भी करते थे जैसे किसी भी मूल्यवान वस्तु भूमि या सोने की कस्टडी के बदले लोगों को ऋण देना। दुनिया में हमारे पास विभिन्न संग्रहालय में संग्रहित आभूषणों के कई उदाहरण हैं जो पुराने समय के सुनारों द्वारा बनाए गए थे, जब मशीन नहीं थी और सारा काम हाथों से किया जाता था। कई तकनीकों का उपयोग करके जो आज भी आधुनिक सुनार द्वारा उपयोग की जाती हैं। उस समय के कुछ सुनारों द्वारा हासिल की गई कुछ कुछ तकनीक और कौशल आधुनिक समय में भी इतने उच्च स्तर के हैं, सुनार अक्षर बैंकर कहलाते हैं क्योंकि वह सोने का व्यापार करते हैं और मूल्यवान वस्तुओं के सुरक्षित भंडारण के लिए पर्याप्त सुरक्षा भी रखते हैं।

कभी-कभी चांदी के कारीगरों को भी सुंदर माना जाता था। लेकिन वे सुनार से अलग धातुओं में काम करते हैं। सुनार जाति, भारत में सुनार जाति के सबसे पुराने समुदायों में से एक है जिनकी शानदार सोने की कलाकृतियां लंदन में 1851 को महान प्रदर्शनी में प्रदर्शित की गई थी। भारत में विश्वकर्मा सुनार जाति है। उत्कीर्णन की प्रिंट मेकिंग तकनीक जर्मनी में सुनारों के बीच 1430 के आसपास विकसित हुई। उन्होंने लंबे समय तक अपने धातु के टुकड़ों पर इस तकनीक का इस्तेमाल किया था।

प्राचीन काल से ही सुनार की तकनीकी गुणवत्ता मानकों के आभूषणों के समान बनाने के लिए हर छोटी-छोटी तरह से विकसित हुई है। आधुनिक समय में वास्तविक सुनार दुर्लभ है। ऐतिहासिक रूप से सुंदर ने फ्लैटवेयर, प्लेट्स, गॉब्लेट, सजावटी सामान भी बनाए हैं, लेकिन कीमती धातुओं की बढ़ती कीमतों ने इस तरह की वस्तुओं के निर्माण को काफी हद तक कम कर दिया है।

प्राचीन समय में एक सुनार डिजाइनिंग, नक्काशी, फोर्जिंग के बारे में सब कुछ जानता था और विभिन्न धातुओं और आभूषणों के बारे में ज्ञान रखता था, लेकिन आज आभूषण डिजाइनिंग और बनाने की कला के तहत विभिन्न पाठ्यक्रम हैं जैसे कि धातुओं का अध्ययन, आभूषण डिजाइनिंग और आभूषण बनाना आदि।

आभूषण बनाने की कला को विभिन्न स्तरों के अध्ययन में विभाजित किया गया है और पिछले कुछ वर्षों में इसका व्यापक रूप से विस्तार हुआ है। आधुनिक समय में वास्तविक सुनार दुर्लभ है लेकिन पुराने समय में एक सुनार को डिजाइनिंग, नक्काशी, फोर्जिंग के बारे में सब कुछ पता था और उसे विभिन्न धातुओं और आभूषण के बारे में जानकारी थी।

फाईलिंग, सोल्डरिंग, साइनिंग, फोर्जिंग, कास्टिंग और धातु को चमकाने के माध्यम से धातु बनाने में कुशल। ये कौशल सदियों से पारित किए गए थे। आजकल आभूषण कला विद्यालय हैं जहां छात्रों को आभूषण बनाने के कई कौशल सीखाए जाते हैं। आधुनिक युग में आभूषण बनाने का अधिकांश कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है न की हाथों से। मशीनों से किया जाने वाला काम कहीं अधिक सरल और कम समय लेने वाला होता है और साथ ही सटीक और सटीक होता है, क्योंकि मशीन से गलतियां होने की संभावना बहुत कम होती हैं।

आभूषणों की दुनिया में सुनारों ने सदियों से बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्राचीन काल में सुनार अपने द्वारा बनाए गए आभूषणों पर अपनी निशानी लगाते थे जिससे आभूषण का पता लगाना संभव हो जाता है, जो इतिहासकारों के लिए बहुत उपयोगी है। मध्ययुग में, सोने की कारीगरी में आमतौर पर चांदी की कारीगरी भी शामिल थी, लेकिन पीतल के कारीगर और अन्य आधार धातुओं के कारीगर आमतौर पर अलग-अलग गाइड में होते थे, क्योंकि व्यापारों को ओवरलैप करने की अनुमति नहीं थी।

ऐसा कहा जाता है कि सोना बनाने की कला एकमात्र ऐसी कला है जो अन्य सभी कलाओं के कुछ पहलुओं का उपयोग करते हैं और इसलिए एक सुनार के पास कौशल और ज्ञान की एक विस्तृत श्रृंखला होती है।

कुछ बहुत पुराने आभूषणों अभी भी हमारे लिए संग्रहालय में देखने के लिए उपलब्ध हैं जो कि ज्यादातर ऐसी सामग्रियों से बने हैं जो आसानी से खराब नहीं होती। कुछ आभूषण हजारों साल पुराने हैं और उन तकनीकों का उपयोग करके बनाए गए थे जो आज भी आधुनिक सुनार इस्तेमाल करते हैं। सोना सुनारों के काम या मुख्य तत्व था।

सोने का उपयोग सभी संस्कृतियों में आभूषण बनाने के लिए मनुष्यों द्वारा किया जाता रहा है, क्योंकि यह धातु सदियों से लोगों के लिए उपलब्ध और मूल्यवान है। जहां सोना उपलब्ध नहीं है, वहां

इसे आयात किया जाता था और इन गतिविधियों का इतिहास व्यापक है। दुनिया भर के संग्रहालय में अफ्रीका, एशिया, यूरोप, अमेरिका और भारत जैसे विभिन्न देशों में सदियों में पुराने आभूषणों का संग्रह है। आधुनिक समय में आभूषण निर्माण में बहुत बदलाव आया है।

उस समय के सुनारों से कई तकनीकी सीखी। सुनार हमेशा से सबसे धनी रहे हैं और हमारे समाज में उनकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। शुरुआती समय के सुनारों द्वारा रखे गए रिकॉर्ड इतिहासकारों के पास पाए गए हैं और उनके पास रखे गए हैं जो उनके लिए बहुत उपयोगी है। सुनारों के पास प्रभावशाली आभूषण बनाने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान का एक विस्तृत क्षेत्र है और सोना सभी धातुओं में सबसे अधिक लचीला होने के कारण भी अधिक कारीगरों को इसके साथ अद्भुत चीज करने और अपनी रचनात्मकता दिखाने का अनूठा अवसर देता है। आज के युग और समय में सुनार आभूषण बनाने के लिए विभिन्न विभिन्न तरह के औजार इस्तेमाल करता है। जैसे कि व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला प्लैटिनम।

तृतीया अध्याय

- हस्तनिर्मित आभूषण
- मशीनी आभूषण
- हस्तनिर्मित आभूषण और मशीनी आभूषणों में अंतर

हस्त निर्मित आभूषण

हस्त निर्मित आभूषण या दस्तकारी वाले आभूषण ऐसे आभूषण हैं जिन्हें मशीनों के उपयोग के बजाय हाथ से इकट्ठा और बनाया गया है। यह पंच प्रेस, सीएनसी, मशीनरी और कास्टिंग जैसी बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रक्रियाओं के उपयोग को रोकता है। कुछ ऐसी प्रक्रियाओं का नाम लेने के लिए जिनके उपयोग से आभूषण 'हस्तनिर्मित' के रूप में योग्य नहीं होंगे। इसके अलावा 'हस्तनिर्मित' आभूषण किसी भी सामग्री से और कई तरह की तकनीकों के साथ बनाए जा सकते हैं।

दुनिया के सबसे बेहतरीन आभूषण हाथ से बनाए जाते हैं। एक बार में एक टुकड़ा 'हस्तनिर्मित' आभूषण बनाने जाने के लिए यह आइटम किसी आभूषण कारीगर द्वारा कच्ची धातु से बनाया जाना चाहिए। केवल हाथ से नियंत्रित उपकरणों का उपयोग करके आभूषण बनाने की खोई हुई कला में हाथ से बने बेहतरीन आभूषण बनाने के लिए अत्यधिक कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है, जो औजारों को मैन्युअल रूप से नियंत्रित करते हैं और कीमती धातुओं और रत्नों को कला के कार्यों में बदल देते हैं। यही कारण है कि हर जगह आभूषण पारखी जानते हैं कि हस्तनिर्मित आभूषण बढ़िया आभूषणों में शिल्प कौशल के लिए बेंचमार्क है।

पुराने जमाने की शिल्पकला की भावना में सांचो और ढलाई के पूर्व निर्मित भागों का पारंपरिक उपयोग त्याग दिया गया है। हमारी दुकान में कच्चे सोने और प्लैटिनम को मिश्र धातु में मिलाया जाता है और प्रयोग किया जाता है। कीमती धातु की सलाखों को फिर वंचित आकृतियों में गढ़ा जाता है, जिन्हें फिर छोटे भागों और सेटिंग्स में बनाया जाता है। इन सटीक टुकड़ों को फिर आभूषण निर्माण की कला में कुशल मास्टर मॉडल निर्माता के स्थिर हाथों द्वारा अत्यधिक तापमान पर सोल्डर और वेल्ड किया जाता है।

कीमती धातु के एक टुकड़े से निर्मित, जिसे मिलों के साथ हाथ से रोल किया जाता है और ड्रॉ प्लेटो के माध्यम से खींचा जाता है। फिर धातु को फाइल किया जाता है, पीस लिया जाता है और टूल किया जाता है। तैयार हस्तनिर्मित मॉडल को पत्थर की सेटिंग्स के लिए तैयार करने के लिए आभूषण पॉलिशिंग से गुजरा होगा। पॉलिश करने के बाद विशेषज्ञ पत्थर सेटर रत्नों को सहारा देने के लिए प्रॉंग और धातु के दीवारों में हाथ से सीटें काटते हैं। फिर पत्थरों को बिठाया जाता है और एक मास्टर स्टीन सेटर के हाथों से सावधानीपूर्वक सुरक्षित किया जाता है।

अंत में परिणामी हस्तनिर्मित आभूषण इस तरह से पूरा होता है जैसे इसे पूरे युगों से राजघराने के लिए बनाया गया था।

प्लैटिनम, सोना, हीरे और कीमती रत्नों से हाथ से आभूषण बनाना हमारे ज्वेलर्स की जीवन महत्वाकांक्षा है। ये प्रतिभाशाली कारीगर 1980 में हमारे दरवाजे खोलने के बाद से डैनबरी, कनेक्टिकट में हमारे स्टूडियो में कीमती हस्तनिर्मित आभूषण बना रहे हैं।

➤ गुणवत्ता और स्थायित्व :-

हस्तनिर्मित वस्तुएं लंबे समय तक चलने के लिए बनाई जाती हैं। कारीगर बेहतरीन सामग्रियों का संवैधानिकपूर्वक चयन करते हैं और उच्चतम गुणवत्ता मानकों को सुनिश्चित करने के लिए समय परीक्षणित तकनीकों का उपयोग करते हैं। जब आप किसी हस्तनिर्मित वस्तु में निवेश करते हैं तो आप आश्वस्त हो सकते हैं कि यह समय की कसौटी पर खड़ा उतरेगा।

➤ हस्त निर्मित आभूषण के प्रकार :-

- तार से लिपटे आभूषण
- मनके आभूषण
- गड्ढे हुए आभूषण
- पॉलीमर मिट्टी के आभूषण
- टेराकोटा आभूषण
- हस्तनिर्मित चांदी के गहने
- हस्त निर्मित सोने के गहने
- हस्त निर्मित धातु आभूषण
- कागज के गहने
- लकड़ी के आभूषण
- राल आभूषण
- मिट्टी के आभूषण
- क्रोशिया आभूषण
- तामचीनी आभूषण
- उत्कीर्ण आभूषण

➤ हस्त निर्मित आभूषणों के महत्व के कुछ प्रमुख बिंदु :-

→ कलात्मक और अद्वितीयता :-

हस्तनिर्मित आभूषण, बड़े पैमाने पर उत्पादित आभूषणों की तुलना में प्रत्येक टुकड़ा अद्वितीय होता है, जो कारीगर की कलात्मक और कौशल का प्रदर्शन करता है।

→ उच्च गुणवत्ता :-

हस्तनिर्मित आभूषणों में, कारीगर उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री का उपयोग करते हैं और प्रत्येक टुकड़े को ध्यान से बनाते हैं, जिससे यह टिकाऊ और सुंदर होते हैं।

→ स्थानीय कारीगरों का समर्थन :-

हस्तनिर्मित उत्पाद खरीदकर आप कारीगरों की आजीविका में योगदान देते हैं और पारंपरिक कला रूपों को बनाए रखने में मदद करते हैं, और कारीगरों को उनके कौशल और श्रम के लिए उचित मुआवजा मिलता है।

→ नैतिक और टिकाऊ उत्पादन :-

कई हस्तनिर्मित आभूषण कारीगर पर्यावरण के अनुकूल सामग्रियों और पारंपरिक तकनीकों का उपयोग करते हैं, जो आभूषण बनाने की प्रक्रिया के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में मदद करते हैं।

→ अनुकूलन :-

हस्तनिर्मित आभूषणों को अपनी पसंद और आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित किया जा सकता है, जो आपको एक अद्वितीय और व्यक्तिगत टुकड़ा प्राप्त करने की अनुमति देता है।

→ सांस्कृतिक विरासत :-

हस्तनिर्मित आभूषण अक्सर सांस्कृतिक परंपराओं और कलात्मकता को दर्शाते हैं, जो उन्हें एक अनूठी और सार्थक उपहार बनाते हैं।

→ व्यक्तिगत संबंध :-

हस्तनिर्मित आभूषणों में कारीगर का व्यक्तिगत स्पर्श होता है, जो उन्हें केवल एक सहायक वस्तु से अधिक, एक कलाकृति बनाता है।

→ सस्ती :-

हस्तनिर्मित आभूषणों की कीमत अक्सर बड़े पैमाने पर उत्पादित आभूषणों की तुलना में अधिक होती है, लेकिन वे उच्च गुणवत्ता और अनूठेपन के कारण एक बेहतर निवेश होते हैं।

➤ हस्तनिर्मित आभूषण बनाने की सामग्री :-

आभूषण बनाने की कला बहुत ही मनमोहक है। आभूषण बनाने की वस्तुओं से आप व्यक्तिगत आभूषण बना सकते हैं जैसे – ब्रॉच, अंगूठियां, हार, झुमके, कंगन इत्यादि।

आभूषण शरीर के हर अंग को सुंदर बनाने के लिए बनाए जाते हैं, हेयरपिन से लेकर पैर की अंगूठियां तक। जबकि पारंपरिक आभूषण कीमती धातुओं से बनाए जाते हैं। आज कल आभूषण डिजाइन कर सकते हैं। जहां डिजाइन और रचनात्मकता को महत्व दिया जाता है। जैसे-जैसे आभूषण बनाने का विकास हुआ, आभूषण शिल्पकला ने भी हस्तनिर्मित आभूषण बनाने वाली सामग्रियों के साथ गति प्राप्त की है। हस्तनिर्मित आभूषण बनाने की सामग्री निम्नलिखित इस प्रकार है :-

➤ तार / स्ट्रिंग सामग्री :-

- रेशम धागा – 100 प्रतिशत रेशम धागे का उपयोग मोती और अन्य धातुओं को पिरोने के लिए किया जाता है। आप अपनी पसंद के अनुसार किसी भी रंग के इस रेशम धागे का उपयोग कर सकते हैं।
- स्टील की तार – इसका मुख्य उद्देश्य बीज मोती, सेरेमिक, कांच, धातु और अन्य पत्थर के मोतियों को पिरोना है।
- तांबे का तार – वह तार जो प्राकृतिक रूप से रंग से लेपित होता है और आभूषण बनाने में लपेटने के लिए उपयोग किया जाता है।
- चांदी का तार – वह तार जो आमतौर पर तार लपेटने और अंगूठी बनाने के लिए उपयोग किया की जाती है।
- हेमप कॉर्ड – एक मजबूत और टिकाऊ केबल जो बेल्ट, हार, कंगन और अन्य चीज बनाने में उत्कृष्ट है।
- चमड़े की डोरी – यह अपनी चिकनी फिनिशिंग के साथ एक समान रंग और लचीली बनावट के लिए जान जाती है।

- स्टेटेल कॉर्ड – 100 प्रतिशत रियान कार्ड, आभूषणों की ट्रीमिंग, सजावट और बहुत कुछ के लिए उपयोग किया जाता है।
- चैन – सममित धातु की कड़ियों से बनी होती है, जो एक साथ जुड़ी होती है और इसका उपयोग ज्यादातर नेकपीस बनाने में किया जाता है।

➤ मोती :-

- बीच मोती – छोटे कांच के मोती, ज्यादातर आभूषण और कढ़ाई में उपयोग किए जाते हैं।
- पोनी बीड्स – ये बीड्स बड़े छेद वाले प्लास्टिक के बीड्स होते हैं, जिनका उपयोग आमतौर पर बालों की चोटी बनाने और सिर के आभूषणों में किया जाता है।
- कांच के मोती – इनमें चेक ग्लास, लैंपवर्क मोती या डाइक्रोइक प्रभाव, अद्भुत मनका काम शामिल है।
- प्लास्टिक के मोती – विभिन्न आकार और साइज में प्लास्टिक से बने मोती, जिनमें किफायती पर्लर और पोनी मोती, साथ ही आभूषण बनाने के लिए फैशनेबल और आकर्षक पेटेंट शामिल है।
- लकड़ी के मोती – यह मोती आमतौर पर प्राकृतिक लकड़ी से बने होते हैं और आमतौर पर कला के साथ नक्काशी किए जाते हैं।
- पेडेंट – ये मोतियों या कलाकृतियों के समान हो सकते हैं, जिनमें लटकन के रूप में लटकाने के लिए एक जम्प रिंग होती है।

➤ निष्कर्ष :-

- आईपिन – मोतियों को पकड़ने के लिए प्रयुक्त धातु की पिन, जो अलग-अलग लंबाई की होती है तथा एक सिरे पर आंखनुमा बंद करने वाली पिन होती है।
- हेडपिन – मोतियों को पकड़ने के लिए उपयोग किए जाने वाले धातु के पिन अलग-अलग लंबाई के बने होते हैं और एक छोर पर सपाट बंद होते हैं।
- क्लैस्प्स – हार और कंगन के लिए विभिन्न फिनिश में धातु के क्लोजर – इसमें टॉगल, बैरल, स्टैंडर्ड मैग्नेटिक आदि शामिल है।
- क की बाली के सामान – मछली के कांटे, हुप्स, लीवर बैक इत्यादि शामिल है।

➤ औजार :-

- वायर कटर — साइड और एंड कटिंग संस्करणों में उपलब्ध।
- नॉटर्स — लगातार गांठ बनाने के लिए धागे में गांठ लगाने के लिए उपयोग किया जाता है।
- गोल नाक प्लायर्स — सिरों को गोल करने और शिल्पकार्य तार को आकार देने के लिए उपयोग किया जाता है। ये राउंड नोज प्लायर्स में दो गोल जबड़े होते हैं और यह आभूषण बनाने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। ये तारों को मोड़ने और लूप बनाने के लिए बहुत बढ़िया काम करते हैं। ये वायर हुप्स, बेड और क्लैस्प और जंप रिंग को एक सुंदर चीकने कर्व में बनाने में भी मदद करते हैं।
- समानांतर प्लायर्स — समानांतर प्लायर्स में एक बॉक्स होता है, जो प्लायर्स के जबड़े को एक दूसरे के समांतर रखता है। वे शीट को सीधा करने या दबाव डालते समय धातु को पकड़ने के लिए आदर्श है, क्योंकि ये प्लायर्स धातु को एक जगह पर मजबूती से टिकाए रखेंगे।
- साइड कटर — साइड कटर मूलतः एक तेज धार के साथ साफ और स्वच्छ कट के लिए प्लायर्स है। वे धातु के तार को काटने के लिए एक उत्कृष्ट उपकरण है। ये कई अकारों में उपलब्ध है, ताकि कई सामग्रियों को साफ सुथरा काटा जा सके।
- फ्लैट नाक सरौता — ये जंप रिंग खोलने, वायर-रैण्ड सिरों को बंद करने और अन्य कार्यों को पूरा करने में मदद करते हैं। फ्लैट नोज प्लेयर्स में दो फ्लैट जबड़े होते हैं, जो आपके धातु के टुकड़ों पर मजबूत पकड़ बनाने और जरूरत पड़ने पर कोणीय मोड़ बनाने में मदद करते हैं।
- बेंच वाइस — जब आप धातु के साथ काम कर रहे होते हैं, तो इसके लिए ताकत और मजबूत पकड़ की आवश्यकता होती है। शुरुआती लोगों के लिए बेंच वाइस उनके धातु के काम की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए एक बढ़िया निवेश हैं जब उन्हें बांधा जाता है, तो वाइस धातु के काम के खरोंच के जोखिम को कम करते हुए औजारों पर मजबूत पकड़ बनाए रखने में मदद करता है।
- जॉइंटिंग हैमर — बॉल — पेन हैमर के नाम से भी जाना जाने वाला जॉइंटिंग हैमर गोल और चपटा सिर वाला होता है। गोल सिर एक बेहतरीन टेक्सचरिंग टूल बनता है, जबकि चपटा सिरा डोमिंग टूल के साथ टुकड़ों में कर्व कर करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।
- चिमटी — चिमटी आपके आभूषण टूल किट के लिए बहुत ही जरूरी है, न केवल आपको गर्म होने पर आपके डिजाइन को संभालने के लिए इनकी जरूरत होती है, बल्कि इन्हें सोल्डर करते समय भी आइटम को सहारा देने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इन खास चिमटियों में लकड़ी के, इसुलेटेड हैंडल होते हैं जो आपको जलने से बचसते हैं।

- ट्रिबलेट - आभूषण बनाने की शुरुआत करते समय यह संभावना है कि आप साधारण अंगूठियां बनाने से शुरुआत करेंगे। ट्रिबलेट जिसे रिंग मैङ्गल के रूप में भी जाना जाता है, का उपयोग अंगूठियों को बनाने, आकार देने और पुनः आकार देने के लिए किया जाता है।
- ज्वेलर्स आरा फ्रेम और ब्लेड - जौहरी की आरी सबसे अच्छा उपकरण है, जिसका उपयोग आप धातु की ट्यूबिंग, मोटे तार को काटने और धातु की शीट को आकार में काटने के लिए कर सकते हैं।
- गैस माशाल - आपको अपने आभूषणों को सोल्डर करने के लिए एक उपयुक्त गैस टॉर्च की आवश्यकता होगी। यह छोटा ज्वेलर्स गैस टॉर्च शुरुआत करने के लिए एक बढ़िया जगह है। खासकर अगर आपको टॉर्च संभालने की आदत नहीं है, इसकी लौ छोटी है और यह छोटे टुकड़ों को सोल्डर करने के लिए उपयुक्त है।
- धातु रूलर या कैलीपर गेज - आभूषण डिजाइन करते समय, सटीक माप सुनिश्चित करने के लिए आपको एक धातु मापन की आवश्यकता होगी।
- वैकल्पिक रूप से आप इंच और सेंटीमीटर में आसानी से और जल्दी से सटीक और आंतरिक बाहरी और गहराई माप करने के लिए कैलीपर गेज का उपयोग कर सकते हैं।

मशीनी आभूषण

मशीन से बने आभूषणों के निर्माण में विभिन्न प्रकार की मशीनों का उपयोग किया जाता है जैसे की लेथ मशीन, ड्रिलिंग मशीन और ग्राइंडिंग मशीन। इन मशीनों का उपयोग आभूषण की आकृति, आकार और अन्य विवरणों को बनाने के लिए किया जाता है। मशीनी आभूषणों का विकास कई सदियों में हुआ है। मशीन से बने आभूषणों का निर्माण 18वीं शताब्दी में शुरू हुआ था, जब औद्योगिक क्रांति के दौरान मशीनों का विकास हुआ था। इस दौरान मशीनों का उपयोग और आभूषणों के निर्माण में किया जाने लगा था, जिससे आभूषण की विविधता और डिजाइन बढ़ गई थी।

औद्योगिक क्रांति के दौरान, मशीनों का विकास हुआ था, जो आभूषणों के निर्माण में उपयोग की जा सकती थी। इन मशीनों में लेथ मशीन, ड्रिलिंग मशीन और ग्राइंडिंग मशीन शामिल थी। इन मशीनों का उपयोग आभूषणों की आकृति, आकार और अन्य विवरण को बनाने के लिए किया जाता था। इससे आभूषण की गुणवत्ता और सुंदरता बढ़ गई थी।

19वीं शताब्दी में, मशीन से बने आभूषणों का निर्माण व्यापक रूप से शुरू हुआ था। इस दौरान, आभूषणों के निर्माण व्यापक रूप से शुरू हुआ था। इस दौरान आभूषणों के निर्माण में उपयोग बढ़ गया था और आभूषणों की विविधता और डिजाइन भी बढ़ गई थी। आभूषणों के निर्माण में नई मशीनों और तकनीक का विकास हुआ था। जैसे कि स्टैम्पिंग मशीन और पॉलिशिंग मशीन। इससे आभूषण की गुणवत्ता और सुंदरता और भी बढ़ गई थी।

20वीं शताब्दी में, मशीन से बने आभूषणों का निर्माण और भी व्यापक हो गया था। इस दौरान नई मशीनों और तकनीक का विकास हुआ था जैसे कि कंप्यूटर नियंत्रित मशीनें और लेजर कटिंग मशीनें। इससे आभूषणों की विविधता और डिजाइन और भी बढ़ गई थी। आभूषणों के निर्माण में नई तकनीक का प्रयोग किया जाने लगा था जैसे कि 3डी प्रिंटिंग और कैड, कैम। इससे आभूषणों की गुणवत्ता और सुंदरता और भी बढ़ गई थी।

आजकल मशीन से बने आभूषणों का निर्माण एक बड़ा उद्योग है और आभूषणों की विविधता और डिजाइन बहुत अधिक है। मशीन से बने आभूषणों का उपयोग विभिन्न अवसरों और आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है जैसे कि - शादी और अन्य समारोहों, फैशन और सौंदर्य और उपहार के रूप में। आभूषणों के निर्माण में नई तकनीकों और मशीनों का उपयोग किया जा रहा है, जिससे आभूषणों की गुणवत्ता और सुंदरता और भी बढ़ रही है। इसके अलावा, मशीन से बने आभूषणों के निर्माण में नई तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है जैसे - आर्टिफिशियल, इंटेलिजेंस और मशीन

लर्निंग। इससे आभूषण की डिजाइनिंग और निर्माण में नई तकनीक का उपयोग करने से आभूषणों की गुणवत्ता और सुंदरता और भी बढ़ रही है।

➤ मशीनी आभूषणों की तकनीक :-

1. लेथ मशीन तकनीक :-

लेथ मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की आकृति और आकर को बनाने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों को एक लेथ मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों की आकृति और आकर को बनाया जाता है। लेथ मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

2. ड्रिलिंग मशीन तकनीक :-

ड्रिलिंग मशीन तकनीक का उपयोग आभूषण में छेद करने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषण को एक ड्रिलिंग मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों में छेद किया जाता है। ड्रिलिंग मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

3. ग्राइडिंग मशीन तकनीक :-

ग्राइडिंग मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की सतह को चिकना और चमकदार बनाने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों को एक ग्राइडिंग मशीन पर रखा जाता है और मशीन के द्वारा आभूषणों की सतह को चिकना और चमकदार बनाया जाता है। ग्राइडिंग मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

4. इलेक्ट्रोप्लेटिंग तकनीक :-

इलेक्ट्रोप्लेटिंग तकनीक का उपयोग आभूषणों की सतह पर धातु की एक पतली परत को जमाने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों को एक इलेक्ट्रोप्लेटिंग मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों की सतह पर धातु की एक पतली सी परत को जमाया जाता है। इलेक्ट्रोप्लेटिंग तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

5. 3 डी प्रिंटिंग तकनीक :-

3 डी प्रिंटिंग तकनीक का उपयोग आभूषणों के जटिल डिजाइन को बनाने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों को एक 3डी प्रिंटिंग मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों के जटिल डिजाइन को बनाया जाता है। 3डी प्रिंटिंग तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

6. लेजर कटिंग मशीन :-

लेजर कटिंग तकनीक का उपयोग आभूषणों की जटिल डिजाइन को काटने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों को एक लेजर कटिंग मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों की जटिल डिजाइन को काटा जाता है। लेजर कटिंग तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

7. कंप्यूटर नियंत्रित मशीन तकनीक :-

कंप्यूटर नियंत्रित मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की जटिल डिजाइन को बनाने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों को एक कंप्यूटर नियंत्रित मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों की जटिल डिजाइन को बनाया जाता है। कंप्यूटर नियंत्रित मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

8. सी.एन.सी मशीन तकनीक :-

सीएनसी मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों के जटिल डिजाइन को बनाने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों को एक सी.एन.सी मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों की जटिल डिजाइन को बनाया जाता है। सी.एन.सी मशीन तकनीक का उपयोग आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

9. वेल्डिंग तकनीक :-

वेल्डिंग तकनीक का उपयोग आभूषणों के विभिन्न भागों को जोड़ने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में आभूषणों के विभिन्न भागों को एक वेल्डिंग मशीन पर रखा जाता है और फिर मशीन के द्वारा आभूषणों के विभिन्न भागों को जोड़ दिया जाता है।

➤ मशीन से बने आभूषणों के प्रकार :-

1. सोने के आभूषण :-

सोने के आभूषण मशीन से बने आभूषणों का एक प्रमुख प्रकार है। सोने के आभूषणों में विभिन्न प्रकार के डिजाइन और आयताकार आकार होते हैं। सोने के आभूषण बहुत आकर्षित होते हैं।

2. चांदी के आभूषण :-

चांदी के आभूषण मशीन से बने आभूषणों का एक अन्य प्रमुख प्रकार है। चांदी के आभूषणों में विभिन्न प्रकार के डिजाइन और आकर होते हैं जैसे हार, कंगन, झुमके, बाली, अंगूठी, कमरबंद।

चांदी के आभूषणों के फायदे :-

- चांदी के आभूषणों की कीमत कम होती है।
- चांदी के आभूषणों का उपयोग विभिन्न अवसरों पर किया जाता है।
- चांदी के आभूषणों का डिजाइन अधिक आकर्षक होता है।
- चांदी के आभूषण शांति का प्रतीक होते हैं।

3. तांबे के आभूषण :-

तांबे के आभूषण मशीन से बने आभूषणों का एक अन्य प्रकार है। तांबे के आभूषणों में विभिन्न प्रकार के डिजाइन और प्रकार होते हैं।

4. हीरे के आभूषण :-

हीरे के आभूषण मशीन से बने आभूषण का एक प्रमुख प्रकार है। हीरे के आभूषणों में विभिन्न प्रकार के डिजाइन और आकर होते हैं जैसे - हार, कंगन, झुमके, बाली, अंगूठी। हीरे से बने आभूषणों का मूल्य बहुत अधिक होता है। इनका उपयोग विभिन्न अवसरों पर किया जाता है। हीरे के आभूषणों का डिजाइन अधिक आकर्षक होता है।

➤ मशीन से बने आभूषणों का महत्व :-

1. विविधता और गुणवत्ता :-

मशीन से बने आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता अधिक होती है। मशीन से बने आभूषण में विभिन्न प्रकार के डिजाइन, आकार और रंग होते हैं।

2. कम लागत :-

मशीन से बने आभूषणों की लागत कम होती है। मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन अधिक तेजी से और कम लागत पर किया जा सकता है।

3. तेजी से उत्पादन :-

मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन अधिक तेजी से किया जा सकता है। मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन करने में कम समय लगता है।

4. सटीकता -

मशीन से बने आभूषणों में सटीकता अधिक होती है, मशीन से बने आभूषणों का आकार और डिजाइन अधिक सटीक होता है।

5. आकर्षक डिजाइन :-

मशीन से बने आभूषणों में आकर्षक डिजाइन होता है। मशीन से बने आभूषणों का डिजाइन अधिक आकर्षक और आधुनिक होता है।

6. विभिन्न अवसरों के लिए उपयुक्त :-

मशीन से बने आभूषण विभिन्न अवसरों के लिए उपयुक्त होते हैं। मशीन से बने आभूषणों का उपयोग शादी, पार्टी, फैशन और अन्य अवसरों के लिए किया जा सकता है।

7. आसानी से उपलब्ध :-

मशीन से बने आभूषण आसानी से उपलब्ध होते हैं। मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन अधिक तेजी से किया जा सकता है और वे आसानी से उपलब्ध होते हैं।

8. विभिन्न प्रकार के धातुओं का उपयोग :-

मशीन से बने आभूषणों की विविधता और गुणवत्ता अधिक होती है। मशीन से बने आभूषण में विभिन्न प्रकार के डिजाइन, आकार और रंग होते हैं।

2. कम लागत :-

मशीन से बने आभूषणों की लागत कम होती है। मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन अधिक तेजी से और कम लागत पर किया जा सकता है।

3. तेजी से उत्पादन :-

मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन अधिक तेजी से किया जा सकता है। मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन करने में कम समय लगता है।

4. सटीकता -

मशीन से बने आभूषणों में सटीकता अधिक होती है, मशीन से बने आभूषणों का आकार और डिजाइन अधिक सटीक होता है।

5. आकर्षक डिजाइन :-

मशीन से बने आभूषणों में आकर्षक डिजाइन होता है। मशीन से बने आभूषणों का डिजाइन अधिक आकर्षक और आधुनिक होता है।

6. विभिन्न अवसरों के लिए उपयुक्त :-

मशीन से बने आभूषण विभिन्न अवसरों के लिए उपयुक्त होते हैं। मशीन से बने आभूषणों का उपयोग शादी, पार्टी, फैशन और अन्य अवसरों के लिए किया जा सकता है।

7. आसानी से उपलब्ध :-

मशीन से बने आभूषण आसानी से उपलब्ध होते हैं। मशीन से बने आभूषणों का उत्पादन अधिक तेजी से किया जा सकता है और वे आसानी से उपलब्ध होते हैं।

8. विभिन्न प्रकार के धातुओं का उपयोग :-

मशीन से बने आभूषणों में विभिन्न प्रकार के धातुओं का उपयोग किया जा सकता है। मशीन से बनाये आभूषणों में सोना, चांदी, तांबा और अन्य धातुओं का प्रयोग किया जा सकता है।

9. विभिन्न प्रकार के रत्नों का उपयोग :—

मशीन से बने आभूषणों में विभिन्न प्रकार के रत्नों का उपयोग किया जा सकता है। मशीन से बने आभूषणों में हीरा, मोती, पन्ना और अन्य रत्नों का उपयोग किया जा सकता है।

10. आकर्षक और आधुनिक डिजाइन :—

मशीन से बने आभूषणों में आकर्षक और आधुनिक डिजाइन होते हैं। मशीन से बने आभूषणों के डिजाइन अधिक आकर्षक और आधुनिक होते हैं।

हस्त निर्मित आभूषणों और मशीनी आभूषणों में अंतर

हाथ से बने आभूषण, मशीन से बने आभूषणों की तुलना में ज्यादा महंगे होते हैं, लेकिन यह ज्यादा टिकाऊ और बेहतर गुणवत्ता वाले भी होते हैं। हाथ से बने आभूषण कुशल कारीगरों द्वारा बनाए जाते हैं, जिन्हें अपने काम पर गर्व होता है। मशीन ऑपरेटर के विपरीत जो इस बात से ज्यादा चिंतित रहते हैं कि वह कितनी तेजी से उत्पाद बना सकते हैं।

हस्तनिर्मित प्रक्रिया ग्राहकों को उनके आभूषणों के पीछे के लोगों के साथ बातचीत करने की अनुमति देता है। ग्राहक अपने पसंद का डिजाइन चुन सकते हैं और जरूरत पड़ने पर बदलाव का अनुरोध कर सकते हैं। हस्तनिर्मित आभूषणों में कस्टमाइज किए गए संदेश प्रतिक या आघाक्षर जोड़ना भी संभव है। हस्तनिर्मित आभूषण सोने, चांदी, प्लैटिनम और कई अन्य धातुओं से बनाए जा सकते हैं। हस्तनिर्मित आभूषणों की तुलना में मशीन से बने आभूषणों को चुनने के कई कारण हैं, लेकिन ऐसे भी कई कारण हैं जिनकी वजह से आपको हस्तनिर्मित आभूषणों को चुनना चाहिए।

हस्तनिर्मित आभूषणों में कलाकृति और व्यक्तिगत स्पर्श होता है, जबकि मशीन से बने आभूषणों में अधिक सटीक और सुसंगत डिजाइन होते हैं। हस्तनिर्मित आभूषणों को एक कलाकार द्वारा हाथ से बनाया जाता है, जिसमें अक्सर व्यक्तिगत स्पर्श और अद्वितीय डिजाइन शामिल होता है। मशीन से बने आभूषणों में एकरूपता और सटीकता होती है, लेकिन वे उतनी अनूठी नहीं हो सकते हैं।

मशीनी आभूषण मशीनों की मदद से बनाए जाते हैं, जबकि हस्तनिर्मित आभूषण हाथों से बनाए जाते हैं। मशीनी आभूषण अधिक सामान और एक रूप होते हैं, जबकि हस्त निर्मित आभूषण अधिक विशिष्ट और अनोखे होते हैं। मशीनी आभूषणों की गुणवत्ता कम अच्छी हो सकती है, जबकि हस्तनिर्मित आभूषणों की गुणवत्ता अधिक अच्छी होती है।

मशीन आभूषण कम महंगे होते हैं, जबकि हस्तनिर्मित भूषण अधिक महंगे होते हैं। मशीनी आभूषणों में कम रचनात्मक होती है, जबकि हस्त निर्मित घोषणा में अधिक रचनात्मक और अनोखा बंधन होता है।

इन अंतरों के कारण मशीनी और हस्तनिर्मित आभूषणों का उपयोग अलग-अलग अवसरों पर किया जाता है। मशीन आभूषण अधिकतर दैनिक उपयोग के लिए उपयुक्त होते हैं, जबकि हस्तनिर्मित आभूषण विशेष अवसरों पर पहनने के लिए उपयुक्त होते हैं।

मशीनी आभूषण जल्दी से बनाए जा सकते हैं, जबकि हस्तनिर्मित आभूषण बनाने में अधिक समय लगता है। मशीनी आभूषणों की लागत कम होती है, जबकि हस्तनिर्मित आभूषणों की लागत अधिक होती है।

मशीनी आभूषण अधिक सामान और एकरूप होते हैं, जबकि हस्तनिर्मित आभूषण अधिक विशिष्ट अनोखे होते हैं। यह अंतर उनकी डिजाइन और निर्माण प्रक्रिया में दिखाई देता है।

➤ हस्त निर्मित आभूषणों और मशीनी आभूषणों के लाभ :-

❖ हस्तनिर्मित आभूषणों के लाभ :-

- कला और शिल्प का प्रदर्शन - हस्त निर्मित आभूषण कला और शिल्प का प्रदर्शन करते हैं।
- व्यक्तिगत स्पर्श - हस्तनिर्मित आभूषण व्यक्तिगत स्पर्श देते हैं जो उन्हें पहनने वाले की व्यक्तिगत शैल को दर्शाते हैं।
- हस्तनिर्मित आभूषण अधिक अर्थपूर्ण होते हैं :- हस्त निर्मित आभूषण में अक्सर अधिक अर्थपूर्ण होते हैं जो उन्हें और भी विशेष बनाती हैं।
- हस्तनिर्मित घोषणा अधिक टिकाऊ होते हैं - हस्त निर्मित आभूषण अक्सर अधिक टिकाऊ होते हैं क्योंकि वे गुणवत्ता वाली सामग्री से बनाए जाते हैं।
- विशिष्टता - हस्तनिर्मित आभूषण विशिष्ट और अनोखे होते हैं, जो उन्हें पहनने वाले को अलग बनाते हैं।
- रोजगार में वृद्धि - हस्तनिर्मित आभूषण हाथ से बनाए जाते हैं और इनको बनाने के लिए अधिक कारिगरों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का आभूषण से कारिगरों के रोजगार में भी वृद्धि होती है।
- विशेष अवसरों के लिए उपयुक्त - हस्तनिर्मित आभूषण विशेष अवसरों पर पहनने के लिए उपयुक्त होते हैं।

➤ मशीनी आभूषणों के लाभ :-

- कम समय में उपलब्ध - मशीनी आभूषण कम समय में उपलब्ध होते हैं, जो उन्हें विशेष अवसरों या घटनाओं के लिए उपयुक्त बनाते हैं।
- किफायती - मशीनी आभूषण किफायती होते हैं और विभिन्न बजटों के अनुसार उपलब्ध होते हैं जो उन्हें अधिक लोगों के लिए सुलभ बनाते हैं।

- विभिन्न शैलियों में उपलब्ध – मशीनी आभूषण विभिन्न शैलियों और डिजाइनों में उपलब्ध होते हैं जो उन्हें पहनने वाले को अपनी व्यक्तिगत शैली के अनुसार चुनने की अनुमति देते हैं।
- आधुनिक और वर्तमान में लोकप्रिय – मशीनी आभूषण अक्सर आधुनिक और वर्तमान में लोकप्रिय डिजाइनों में आते हैं, जो उन्हें पहनने वाले को फैशनेबल और स्टाइलिश बनाते हैं।
- कम लागत – मशीनी आभूषण कम लागत पर उत्पादित किए जा सकते हैं।
- निरंतर उपलब्धता – मशीनी आभूषण निरंतर उपलब्ध होते हैं और नए डिजाइन और शैलियों को नियमित रूप से पेश किया जाता है, जो उन्हें पहनने वाले की अपनी शैली को उद्यान रखने में मदद करते हैं।
- कम वजन – मशीनी आभूषण अक्सर कम वजन वाले होते हैं, जो उन्हें पहनने में आरामदायक बनाते हैं।
- हस्त निर्मित आभूषणों की हानियाँ :-
- महंगे – हस्तनिर्मित आभूषण अक्सर महंगे होते हैं, क्योंकि उन्हें बनाने में अत्यधिक समय और श्रम लगता है।
- सीमित उपलब्धता – हस्तनिर्मित आभूषणों की उपयोगिता सीमित होती है क्योंकि वे विशिष्ट डिजाइन और शैलियों में बनाए जाते हैं।
- अनिश्चिता – हस्तनिर्मित आभूषणों की गुणवत्ता और डिजाइन में अनिश्चिता हो सकती है क्योंकि वे मानव श्रम पर निर्भर करती हैं।
- समय लेने वाले – हस्तनिर्मित आभूषण बनाने में अधिक समय लगता है, जो उन्हें पहनने वाले को एक त्वरित समाधान नहीं देता है।

→ विशिष्टता की समस्या — हस्तनिर्मित आभूषणों में विशिष्टता की समस्या हो सकती है जैसे कि दो आभूषण बिल्कुल एक जैसे नहीं हो सकते।

➤ मशीनी आभूषणों की हानियाँ :-

→ कम विशिष्टता — मशीनी आभूषण अक्सर कम विशिष्ट और अनोखे होते हैं क्योंकि वे मशीनों द्वारा बनाए जाते हैं।

→ गुणवत्ता की कमी — मशीनी आभूषणों की गुणवत्ता कम अच्छी हो सकती है, यदि मशीन ठीक से काम नहीं कर रही हो या सामग्री खराब हो।

→ भावात्मक मूल्य की कमी — मशीनी आभूषणों में भावात्मक मूल्य कम होता है क्योंकि वह मशीनों द्वारा बनाए जाते हैं और उनमें व्यक्तिगत स्पर्श नहीं होता है।

→ एक समानता की अधिकता — मशीनी आभूषण एक समान और एकरूप होते हैं जो उन्हें पहनने वाले को एक अलग शैली नहीं देते हैं।

→ पर्यावरण प्रभाव — मशीनी आभूषणों के उत्पादन में पर्यावरण प्रभाव हो सकता है जैसे कि ऊर्जा की अधिक खपत और प्रदूषण।

चतुर्थ अध्याय

- आभूषणों के प्रकार
- हरियाणा के आभूषणों की बनावट

आभूषणों के प्रकार

हरियाणा में पहने जाने वाले प्रमुख आभूषण :-

1. स्त्रियों के आभूषण
2. पुरुषों के आभूषण

❖ स्त्रियों के आभूषण निम्न प्रकार से हैं :-

1. सिर के आभूषण :-

- शीश फूल :- यह सिर पर पहने जाने वाला आभूषण है जो गोलाकार टिकड़ी से बना होता है। इसे सिर के पीछे बालों में दोनों ओर सोने के बारीक सांकल बांध कर ललाट पर लटकीई जाती है।
- फूल :- यह चांदी या सोने का बना आभूषण है, जो सिर पर बांधा जाता है।
- सिंगार - पट्टी :- यह मस्तक (माथे) का आभूषण है। यह पूरे माथे को ढकता है। इसे जूड़ा, बन्दनी, कोड़ी और विरलता भी कहते हैं। यह चांदी की बनी होती है।
- बोरला :- यह मोटे बेर के आकार का सोने या चांदी का आभूषण है जो नगीने जड़कर बनाया जाता है। इसे माथे के बीच में लटकता हुआ पहना जाता है। इसके आगे के भाग में छोटे-छोटे दाने उभरे हुए होते हैं तथा पीछे वाले भाग में हुक बना होता है, जिससे धागा बांधकर महिलाएं बालों के मध्य में ललाट पर लटकाते हुए बांधती हैं।
- सिरमांग :- यह सोने से बना होता है जिसे मांग के बीच में मस्तक पर लटका के पहना जाता है। यह सुहागिन स्त्रियों के मांग के स्थान पर तिल्ली के आकार का चैन से जुड़ा जाने वाला गहना है।
- केश - पिन :- यह सोने या चांदी से निर्मित होती है। यह केश (बालों) में लगाई जाती है। इसे अंग्रेजी के क्लिप शब्द को विस्तृत कर कलफ भी क्या कहा जाता है।
- छाज :- यह सोने या चांदी का बना होता है। इसे पूरे माथे पर लटकाया जाता है।
- रखड़ी (पोंची) :- यह बेर के समान गोलाकार आकृति में होती है। परंतु रखड़ी पर कीमती पत्थर के नगों की जड़ाई की जाती है। यह सिर पर और मांग के ऊपर बांधा जाता है। रखड़ी

के पीछे लगाई जाने वाले सोने के छोटे हुक को सरी या बगड़ी कहते हैं। रखड़ी को सुहाग का प्रतीक माना जाता है।

- मौड़ :- विवाह के अवसर पर दूल्हे व दुल्हन के कान व सिर पर बांधने का मुकुट मौड़ कहलाता है।
- टीका - तिलक :- 2 इंच परिधि का सोने की परत का बना हुआ फूल जिसमें नगीनों की जड़ाई की होती है। इसे महिलाएं सोने की सांकली से मांग भरने की जगह पर पहनीत हैं।
- गोफण :- यह स्त्रियों को बालों की वेणी (यानी छोटी-छोटी लंटे) में गुंथा जाने वाला आभूषण है।
- मैमद :- स्त्रियों के माथे पर पहने जाने वाला आभूषण। इस पर कई लोकगीत भी गाये जाते हैं।

2. नाक के आभूषण :-

- बेस्सर :- यह नाक के मध्य में पहने जाने वाला आभूषण है जिसे आमतौर पर छोटी नथ भी कहते हैं।
- नाथ /नथ :- यह सोने से निर्मित होती है। इसे पहनने के लिए नाक के बांयी और छेद करवाया जाता है। यह आकार में बड़ी होती है। इसे विवाहित स्त्रियों द्वारा पहना जाता है।
- कोका :- यह सोने, चांदी या जड़ाऊ हीरे से बना दाने के आकार का एक आभूषण है जिससे महिलाओं द्वारा नाक के बांयी और पहना जाता है। इसमें ऊपर घुंड़ीदार नगीना होता है जो आमूमन लाल या सफेद रंग का होता है।
- पुरली :- यह लौंग से बड़ा, गोलाकार और छिद्रदार आभूषण है, जिसे नाक के बांयी और पहना जाता है।
- नथली :- नथ का छोटा रूप नथली कहा जाता है।
- बेसरि :- यह सोने की तार का बना होता है जिसमें नाचता हुआ मोर बना होता है। ग्रामीण महिलाएं इसके एक डौरा बांध कर सिर के बालों में फंसाकर नाक में पहनती हैं।
- भवैरा :- लौंग के बड़े आकार को भवैरा कहते हैं। इसे ज्यादातर बिश्नोई महिलाएं नाक में पहनना पसंद करती हैं।
- नक्शेर :- नाथ की तरह छोटी बाली नक्शेर कहलाती है। जिसमें मोती पिरोया जाता है। कुंवारी लड़कियों में इसका प्रचलन ज्यादा है। इससे 'नाक की बाली' भी कहते हैं।

3. कान के आभूषण :-

- बूजली :- यह चांदी या सोने से निर्मित होती है। यह गोलाकार आकृति की होती है जो किसी सिक्के के आकार की होती है। इसे आमतौर पर बुजुर्ग महिलाओं द्वारा कान में पहना जाता है।
- ढेड़े :- यह चांदी के बने होते हैं जिसे कानों में पहना जाता है।
- कर्णफूल :- यह सोने या चांदी द्वारा निर्मित आभूषण है जो स्त्रियों द्वारा कान के निचले हिस्से में पहना जाता है। यह पुष्पकार आभूषण है जिसके बीच में नगीनें जड़े होते हैं।
- बाली :- यह गोल वलयकार आकार का चांदी या सोने का आभूषण है जिससे कान के निचले हिस्से में पहना जाता है।
- डाड़े :- यह चांदी के होते हैं, जिसे कानों के पास लटकते हुए पहना जाता है।
- झुमका :- यह सोने से निर्मित है जो महिलाओं के कान का एक आभूषण है जिसे कान में लटकाकर पहना जाता है। यह कर्णफूल की तरह होता है, लेकिन बीच में सोने के गोल बुंदे होते हैं व इनके चैन भी लगाई जाती हैं।
- झुमकी :- सोने या चांदी का कर्णफूल या झुमका के आकार का बना चैन का आभूषण है, जिसके नीचे छोटी-छोटी घुंघुरियाँ बनी होती है।
- ओगन्या :- कान के ऊपरी हिस्से पर पान के पत्ते के समान सोने या चांदी का आभूषण है।
- गुड़दा :- सोने के तार के आगे मुद्रा के आकार का मोती पिरोकर कान में पहने जाने वाला आभूषण है।
- कांटा :- यह सोने या चांदी की तार से बना आभूषण है जिसके ऊपर सोने या चांदी के छोटी घुंड़ी लगी होती है।
- पीपल पत्र :- कान के ऊपरी हिस्से में सोने या चांदी का गोलाकार (अंगूठी के आकार का) छेद करके पहने जाने वाला आभूषण पीपल पत्र कहलाता है।
- बाजपट्टी :- कान का आभूषण है, जो झुमके के साथ लटकता रहता है।
- कुड़क :- यह छोटे बच्चों को सर्वप्रथम कान छेद कर सोने या चांदी के पतले तार पहनाए जाते हैं। उन्हें कुड़क कहते हैं। बाद में इन्हें लूंगें, गडवा या मुरकी पहनीई जाती है।
- मोरुवर :- महिलाओं द्वारा कान में पहने जाने वाला मोर रूपी आभूषण मोरुवर होता है। इसे कान से लटकाकर पहना जाता है।

4. गले के आभूषण :-

- हसँली :- यह गले के नीचे स्थित हसँली नामक हड्डी को सुरक्षा प्रदान करता है। छोटे बच्चों को उनकी हसँली खिसकने से बचाने के लिए धातु के मोटे तार को जोड़कर गोलाकार आभूषण हसँली होता है।
- अड :- इस चौथे फेरे में ननिहाल पक्ष से दुल्हन को पहनाया जाता है।
- दुस्सी :- वर्तमान में प्रचलित गले के नेकलेस की तरह का परंतु उससे भारी व बड़ी आकृति का आभूषण है। इसे तुसी भी कहते हैं।
- मटरमाला / मोहन माला :- यह महिलाओं द्वारा पारिवारिक उत्सवों पर पहने जाने वाली मटर की आकृति के दानों से जड़ित सोने की मटर माला होती है। यह लंबाई में बड़ी होती है।
- माला :- सोने के गोल बीजों का बना गले का आभूषण। यह सोने के अतिरिक्त मोतियों से भी निर्मित होती है। यह मटरमाला से लंबाई में छोटी होती है।
- गलश्री / गलसरी :- यह गले का एक आभूषण है, जिसमें सोने के मोटे मानकों को तीन या पांच पंक्तियों में सूती कपड़े के आधार पट्टी पर लगाया जाता है। इसे गले से चिपकाकर पहना जाता है।
- कंठी / कण्ठी :- यह सोने के मानकों को से बनी हुई कण्ठ माला होती है। इसके पेटेंट में जो लटकन बनी होती है उसे पीपल के पत्ते की तरह बनाया जाता है और ठप्पा लगाकर उभरी हुई आकृतियां बनाई जाती हैं।
- गुलबंद :- महिलाओं द्वारा पहना जाने वाला एक आभूषण, जिसमें पट्टी पर छोटे तथा सुनहरी पुष्प कली वाले दाने जड़े होते हैं।
- जंजीर :- यह सोने या चांदी की बनी श्रृंखला या माला होती है जिसे स्त्री या पुरुष दोनों धारण करते हैं।
- झालरा :- गले में पहने जाने वाला लम्बा हार, जो अधिकतर चांदी के सिक्कों की डोर में तीन चार अंगुल के अंतर पर गूथन से बनता है, जिसमें घुंघरियां होती हैं।
- खूंगाली/हासँली :- सोने या चांदी के तार का बना गोलाकार आभूषण है। यह मध्य में से जोकर चौकार (चौड़ा) तथा किनारों पर पतला होता है। इसमें लगे हुक व कुण्डी को आपस में फंसा कर गले में पहना जाता है। यह गले में स्थित हसँली नामक हड्डी को सुरक्षा प्रदान करता है।

- तांती :- किसी देवी - देवता के नाथ पर कलाई या गले में चांदी का तार या धागा बांधा जाता है, जिसे तांती कहते हैं।
- हार :- यह गोलाकार रत्न से जड़ित सोने का आभूषण है, जिसे महिलाएं गले में पहनती हैं। तौलखे हारों से लेकर कहीं तरह के जैसे - चंपाकली, चंदनहार, हंसहार व उर्वशी हारों का उल्लेख मिलता है। हार के बीच में कई ताबीज या डिजाइनदार टिकड़ा होता है।
- रामनवमी / नावों :- यह सोने से बना लंबा आभूषण है जिसके दोनों और माँदलियां लगे होते हैं।
- चंदनहार/रानीहार :- यह सोने से निर्मित होता है। इसमें कई लड़ियाँ और बीच-बीच में कई टिकड़ (आयताकार टुकड़े) होते हैं। यह अभी भी काफी लोकप्रिय हार है।
- चौकी :- यह देवताओं की मूर्ति अंकित गले का आभूषण है। इसे चैन में देवताओं की सोने या चांदी की बनी मूर्ति के साथ पहना जाता है।
- तुलसी :- छोटे-छोटे मूर्तियों की माला जिसे तिमणिए व दुस्सी के साथ गले में पहना जाता है, तुलसी कहलाती है।
- हमेल :- सोने से बना हारनुमा आभूषण होता है।
- मंगलसूत्र :- यह विवाहित स्त्रियों द्वारा सुहाग के प्रतीक के रूप में पहने जाने वाला आभूषण है। यह काले मोतियों के साथ सोने या चांदी की धातु से बना हारनुमा है।
- मुक्तमाला/सुभरगी :- प्राचीन काल में आमीर स्त्रियों में मोतियों के माला का चलन था, जिसे मुक्तमाला या सुभरगी कहते थे। माणिक रत्नों से जड़ी माला 'माणिक्यमाला' कहलाती है।
- माँदिलया :- ताबीज की तरह या ढोलक के आकार का बना छोटा आभूषण, जिसे काले डोर में पहना जाता है, माँदिलया कहलाता है।
- कठला :- यह गले का आभूषण है, जिसे आमतौर पर सूती एवं रेशमी दागों को मिलाकर बल देकर बनाई गई डोर में बड़े-बड़े मोती पिरोकर बनाया जाता है।
- पतरी :- सोने या चांदी से बना गले का ताबीज जिसकी आकृति पान अथवा शहतूत के पत्ते जैसी होती है।
- बटन :- सोने या चांदी का आभूषण है। सामान्य बटनों के स्थान पर जंजीर के साथ बटन लटके होते हैं, इसे कुर्ता - कुर्ती व कमीज के साथ पहना जाता है।

5. हाथ के आभूषण :-

- आरसी :- आईना जड़ित अंगूठी, जिसे स्त्रियां दाहिने हाथ के अंगूठे में पहनती हैं। छोटा या आईना एक कब्जे के साथ जुड़ा होता है, जिसे ऊपर नीचे करने से आईना खुलता या बंद होता है।
- अंगूठी :- स्त्री - पुरुषों द्वारा सोने - चांदी या हीरा जड़ित एक छल्लानुमा आभूषण जिसे आमतौर पर अनामिका उंगली में पहना जाता है। इसे 'बिंठी व मुंदड़ी' भी कहते हैं। तीन आँतों वाली मोटी अंगूठी 'झोत' कहलाती है।
- पौहचां / पुणच :- कलाई यानी पुणच पर पहने जाने वाले आभूषण को पौहचां या पुणच के नाम से जाना जाता है।
- हथफूल/सावपान :- हाथ की हथेली के पीछे पहने जाने वाला सोने या चांदी के घुँघरियों से बना आभूषण हथफूल या सोवनपान कहलाता है। यह लड़ियों के साथ अंगूठियां जड़ा एक गहना है, जिसे त्योहारों या विवाह आदि पर धारण किया जाता है। यह हाथ की चारों उंगलियों, अंगूठे से लेकर पूरी बाहरी हथेली को घेरता हुआ, हाथ की कलाई तक आता है।
- गजरा :- यह कलाई का एक गाना है। यह चूड़ी की तरह ढीला/ ढाला न होकर कलाई से चिपका रहता है।
- छनं - कंगन :- छनकने वाला हाथ का एक आभूषण, जिसे औरतें पहनती हैं।
- पछेल्ली :- यह कलाई का आभूषण है, जिसके ऊपर चोंचदार बीज होते हैं।
- कांगनी :- यह कलाई का आभूषण, जिसे हल्के कंगन को कंगनी कहते हैं।
- टाड/टडडे/टडिया/अणत :- यह बाजू में पहना जाता है। तांबे की छड़ से बना चुड़े की तरह का आभूषण जिस पर सोने या चांदी की परत चढ़ी होती है। इसमें चांदी की बनी एक पट्टी पर घूँघरू लटका दिए जाते हैं।
- बाजूबंद :- यह बाजू पर बाँदा जाने वाला सोने की बेल्ट जैसा आभूषण है। सामान्यतः विवाह पर बाजूबंद पहनने का रिवाज है। छोटा व पट्टीनुमा बाजूबंद को 'भुजबंद' रहते हैं। इसे बाजूबंद, उतरणी, बाजूफूल और बाजूबांक भी कहते हैं।
- अनंत :- यह बाजू के ऊपरी भाग में पहने जाने वाला आभूषण है, जिसमें अधिकांशतः बनी होते हैं। इसे पहनते समय सर्प मुख बाजू के बाहरी और रखा जाता है।
- कंगन :- महिलाओं के लिए कलाई में पहनने का एक आभूषण है, जिसकी मोटी का घेरा सवा इंच होता है।

- कड़ा :- सोने चांदी या अन्य धातुओं से निर्मित गोलाकार आभूषण कड़ा हाथ या पांव में पहने जाने वाला आभूषण है, जिससे चुड़ा भी कहते हैं। इसकी मोटाई कंगन जितनी होती है। इसकी ऊपरी परत पर ठप्पा लगाकर फूल पत्तियां उभारी जाती हैं।
- दस्तबंद :- यह हाथ में पहने जाने वाला सोने या चांदी से निर्मित आभूषण है।
- मुद्रिका :- हाथों की उंगलियों में पहने जाने वाली नगीना जड़ी अंगूठी को मुद्रिका कहते हैं।
- लंगर :- चांदी के मोटे तारों से बना कड़ों के नीचे पहने जाने वाला आभूषण लंगर कहलाता है।
- फूँदा :- चूड़ी या कड़े पर सिंगार के लिए फदेनुमा बांधे जाने वाला आभूषण फूँदा कहलाता है।
- नोगरी :- मोतियों की लड़ियों के समूह से बना आभूषण जिसे हाथ में चूड़ियों के बीच में पहना जाता है।
- आंवला सेवटा :- ठोस चांदी से बना हाथ में कड़े के साथ धारण किया जाने वाला आभूषण है।
- दायणी / दायण :- यह दो उंगलियों में एक साथ पहने पहनी जाने वाली अंगूठीनुमा आभूषण होता है।
- चूड़ :- चार आंगुल चौड़ा चांदी का भूषण जो कलाई में पहना जाता है।
- गौखरु :- सोने व चांदी से बना छोटे-छोटे निकोले दानेनुमा गोलाकार बना आभूषण जो हाथ की कलाई में चूड़ियों के मध्य में पहना जाता है।

6. पांव के आभूषण :-

- कड़ी :- चांदी से निर्मित कड़ी पांव के टखनों के ऊपर पहने जाने वाला वलयाकार आभूषण है, जो छेलकड़े के नीचे पहना जाता है। यह कड़े से पतले होते हैं। दो टुकड़ों को जोड़कर बनाया गया कड़ा जिसे आसानी से खोलकर पहना जा सके 'खीलीबासां, खलिफासां' कहलाता हैं।
- गजरियाँ :- ये पांव में पहने जाने वाला आभूषण है जो चांदी से बने होते हैं।
- चुटकी :- सुहागन स्त्री द्वारा पांव के अंगूठे के पास वाली उंगली में पहने जाने वाली चांदी की छल्ली को चुटकी या बिछुए कहा जाता है।
- नेवरी :- महिलाओं द्वारा पहने जाने वाला वलयाकार आभूषण, जिसमें घुंघरु की ध्वनि निकलती है। यह पायल की तरह का आभूषण है जिसे आंवला के साथ पहना जाता है।

- छेलकड़े :- यह चांदी से बने होते हैं। यह कड़ी से छोटे व हल्के होते हैं। इसे बुजुर्ग महिलाओं द्वारा कड़ी के ऊपर पैरों में पहना जाता है।
- अंगूठा :- यह पांव के अंगूठे में पहने जाने वाला अंगूठी की आकृति का होता है।
- झांझर (रमझोल) :- यह पायलनुमा आभूषण है, जिसमें रुनझुन की आवाज आती है। यह पायल से मोटा व भारी होता है, व इसकी झनझनाहट भी ज्यादा होती है।
- हीरनामी :- यह चांदी से बनी बना कड़ी जैसा आभूषण है जो पांव में पहना जाता है। लच्छे, तोड़े व तिनके ठोस चांदी के आभूषण हैं।
- तोड़ा / लगर :- यह कड़ा के नीचे पहना जाता है, जो चांदी के मोटे तारों को जोड़कर ऊपर से पतला व नीचे से चौड़ा बनाया जाता है।
- टणका :- यह चांदी से बना गोलाकार आभूषण है, जो पैरों में पहनने पर टणक-टणक की आवाज करता है। यदि ऐसे आभूषण पर मक्के के दोनों के आकार बने हो तो वह आभूषण 'मक्या' कहलाते हैं।
- टावंला :- यह सोने या चांदी से बना आवंलानुमा, जो विशिष्ट लहरों युक्त कड़ा है, जिसे महिलाएं पांव में पहनती हैं।
- गोलया :- चांदी की चौड़ी तथा सादी अंगूठियां जो पांव में पहनी जाती हैं, गोलया कहलाती हैं। यदि इन पर फूलों की आकृति बनी हो तो यह 'जौलरी' कहलाती हैं।
- पगपान :- यह हथफूल के समान पैरों का आभूषण है। यह पांव के अंगूठे में उँगलियों के छल्लों को चैन से जोड़कर पायल की तरह पैर के ऊपर हुक से जोड़कर पांव में विवाह के अवसर पर पहना जाता है। इसके अलावा पात्ती, कड़ी, पात्ती, फूल, त्रात्री, गिटीयां, गजरियां, झांझन, चूड़ी, कड़े, रमझोल, बिछिया आदि पांव के आभूषण हैं।

7. कमर के आभूषण :-

- तागड़ी/तगड़ी :- यह सोने चांदी से बना कमर में पहने जाने वाला भूषण है। इसे आमतौर पर घाघरा, दमण व साड़ी पर पहना जाता है।
- नाड़ा :- यह चांदी का झब्बेदार जेवर है, जो घागरे के नाड़े के साथ बांधा जाता है।
- पल्लू :- यह चांदी का जेवर है जो स्त्रियों के ओढ़ने के पल्ले पर बांधा जाता है।
- कणकती/कंदोरा :- कमर में पहने जाने वाला सोने या चांदी की झूलती लड़ियों की पट्टीकायुक्त आभूषण 'कणकती या कंदोरा' कहलाता है।

- सटका :- सोने चांदी से बनी चौकोर जालियों की जंजीर सोने चांदी की चाबियाँ लटकती रहती है, आभूषण जो पेटिकोट के 'नेफे' में अटकाकर लटकाया जाता है।

❖ पुरुषों के आभूषण :-

- गोल्फ/गोफिया :- पुरुषों द्वारा गले में पहने जाने वाला सोने का हार।
- कठला :- पुरुषों द्वारा गले में पहने जाने वाला सोने का आभूषण है। इसमें आमतौर पर सूती व रेशमी धागों को मिलाकर बलदेकर बनाई गई डोर में बड़े-बड़े मोती पिरोए जाते हैं।
- जंजीरा :- यह पुरुषों द्वारा पहने जाने वाला कान का जेवर है।
- मुरकी :- सोने या चांदी का ठोस, कड़क बालीनुमा आभूषण मुरकी कहलाती है। इसे पुरुष अपने कानों में पहनते हैं।
- जंजीर :- यह सोने या चांदी से निर्मित श्रृंखला या माला होती है, जिसे गले में पहना जाता है।
- पत्ररी :- यह गले का ताबीज होता है, जिसकी आकृति पान अथवा शहतूत के पत्ते जैसी होती है।
- चौपं :- चांदी से बना चौकोर जालियों की जंजीर जिसे पुरुष अपनी कमर या पेट पर लपेटकर पहनता है। (इसके अलावा अंगूठी, मौड़, कड़ा आदि भी पुरुषों के आभूषण होते हैं।

हरियाणा के आभूषणों के प्रकार

प्रतीकात्मक आभूषण पहनने की परंपरा लंबे समय से चली आ रही है। हरियाणवी आभूषणों की विरासत बहुत समृद्ध है। हरियाणा के लोग कई तरह के आभूषण पहनते हैं और वे विभिन्न धातुओं जैसे सोना, चांदी, पीतल आदि से बने होते हैं। ज्यादातर हरियाणवी आभूषण चांदी से बने होते हैं, जिन्हें हरियाणा के आम लोग पहनते हैं। हालाँकि अमीर लोग ज्यादातर आभूषण सोने के पहनते हैं, क्योंकि वे इसे खरीद सकते हैं। पुराने समय में जब आभूषण बनाने या डिजाइन करने के लिए कोई मशीन उपलब्ध नहीं थी, जैसा कि अब कंप्यूटर प्रोग्राम या अन्य तकनीकी उपकरण या इलेक्ट्रॉनिक मशीनें हैं, तो सुनार केवल अपने हाथों और बहुत सीमित औजारों से आभूषण बनाते थे। देश के हर क्षेत्र की एक अनूठी संस्कृति और परंपरा है, जो अक्सर उनके डिजाइनों में झलकती है। भारत के विभिन्न हिस्सों के पारंपरिक आभूषण इस क्षेत्र के लोगों के जीवन का एक अभिन्न अंग हैं। यह सांस्कृतिक विशिष्टता ही है, जिसने भारतीय आभूषणों को दुनिया भर में बेहद पसंद किया है।

भारत के साथ-साथ हरियाणा में भी बहुत समय से आभूषणों में दर्शाने के लिए प्रकृति से विभिन्न प्रकार के डिजाइन और आकार लिए जाते रहे हैं जैसे कि मोर, हाथी, शेर, मछली या कछुआ जैसे जानवरों का चित्रण। लोगों द्वारा पहने जाने वाले हर आभूषण का एक खास महत्व होता है। साथ ही विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे और विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ और रेखाएँ भी होती हैं। कुछ आभूषणों में ज्यामितीय आकृतियाँ या अलग-अलग प्रकार की रेखाएँ होती हैं। कुछ आभूषणों पर रंग-बिरंगे पत्थरों से नक्काशी की गई होती है और कुछ पर नहीं। हरियाणवी आभूषणों पर प्रकृति है और उन्होंने अपने आभूषणों में डालने के लिए प्रकृति की गोद से बहुत कुछ लिया है, जिससे आभूषण अधिक सुंदर और अर्थपूर्ण लगते हैं।

हरियाणा के आभूषणों में हम विभिन्न प्रकार के पशु, आकृतियाँ और वनस्पतियाँ देख सकते हैं, जो इस प्रकार हैं: —

1. मोर :—

मोर दुनिया भर में एक बहुत ही लोकप्रिय और सुंदर जानवर है। यह भारत का राष्ट्रीय पक्षी भी है। मोर के डिजाइन का इस्तेमाल सदियों से आभूषणों और कपड़ों में किया जाता रहा है, मुख्यतः इसकी सुंदरता और अन्य आध्यात्मिक कारणों की वजह से। हरियाणा में भी मोर का चित्रण विभिन्न आभूषणों जैसे झुमके, हार और अंगूठियों और पैर की अंगूठियों पर देखा जा सकता है। आभूषण या तो

मोर के आकार के होते हैं या फिर मोर की तरह उकड़े जाते हैं। ये आभूषण सोने और चांदी से बने हो सकते हैं। कुछ आभूषणों में मोर के रंग-बिरंगे पत्थरों को भी उकड़ा जाता है ताकि उनके रंग-बिरंगे पंख दिखें और वे और भी सुंदर दिखें। मोर सबसे सुंदर जानवरों में से एक है, जब इसे आभूषणों पर चित्रित किया जाता है तो यह आभूषणों को और भी सुंदर बना देता है।

2. कछुआ :-

कछुए के आभूषण अपनी सुंदरता और अन्य आध्यात्मिक कारणों की वजह से भारत की संस्कृति में बहुत पुराने हैं। आभूषणों में कछुआ व्यवस्था, सृजन, धैर्य, सहनशीलता और सुरक्षा का प्रतीक है। कई संस्कृतियों में कछुए के आभूषण सौभाग्य के लिए पहने जाते हैं। हरियाणा के लोग कछुए के आभूषण अंगूठी या हार के रूप में पहनते हैं। कछुए की अंगूठियां बहुत प्रसिद्ध हैं और लोगों के बीच व्यापक रूप से उपहार में दी जाती हैं। कछुए के आभूषण पुरुष और महिला दोनों द्वारा पहने जाते हैं।

3. मछली :-

मछली धन, उर्वरता, प्रचुरता, जल और जीवन का प्रतीक है। भारत में मछली कुछ आध्यात्मिक अर्थों का भी प्रतीक है। भारत में मछली आभूषण प्रसिद्ध हैं। हरियाणा के लोग मछली के आभूषण जैसे झुना, जगूठि और पैर की अंगूठियां भी पहनते हैं। ये आभूषण विभिन्न धातुओं और विभिन्न रंगों और आकारों से बनाए जा सकते हैं।

4. सिंह :-

आभूषणों में शेर का भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक अर्थ भी है। शेर साहस, न्याय, शक्ति, ताकत, ज्ञान, गर्व, गरिमा, प्रभुत्व, अधिकार, भौतिक संपदा और धन का प्रतीक है। शेर के आभूषण भारतीय लोगों द्वारा सदियों से पहने जाते रहे हैं। इसे राजाओं और अमीर और शक्तिशाली लोगों द्वारा लोकप्रिय रूप से पहना जाता था। हरियाणा में भी लोग पेंडेंट या अंगूठी आदि के रूप में शेर के आभूषण पहनते हैं। यह आभूषण मुख्य रूप से पुरुषों द्वारा पहना जाता है, लेकिन महिलाएं भी इसे पहन सकती हैं।

5. फूल :-

विभिन्न प्रकार के फूलों को अलग-अलग आभूषणों जैसे गुलाब, कमल और टैगेट आदि पर चित्रित किया जाता है या उकड़ा जाता है। कमल का फूल मुख्य रूप से भारतीय आभूषणों में दर्शाए

जाने वाले मेल फूलों में से एक है। कमल का फूल भारत का राष्ट्रीय फूल भी है और भारत के लोगों के लिए इसका धार्मिक महत्व भी है। कमल के फूल को हार, झुमके, हेयर पिन, चूड़ियाँ और अंगूठियाँ आदि जैसे आभूषणों पर दर्शाया जाता है। चमेली के फूल का भी हरियाणा के आभूषणों में हार, अंगूठियाँ, झुमके, पैर की अंगुली की अंगूठियों और चूड़ियों आदि में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। यह पाँच छह पंखुड़ियों वाला एक छोटा सफेद फूल है। यह एक तारे जैसा दिखता है और आभूषणों में गढ़े जाने पर यह सुंदर दिखता है।

6. लोग पट्टी :-

हरियाणा के आभूषणों में पीपल पट्टी या पीपल पत्ती का खूब इस्तेमाल होता है। इसे मुख्य रूप से हार में दर्शाया जाता है। कुछ आभूषणों पर पीपल के पत्ते उकड़े गए होते हैं और कुछ आभूषणों का आकार पीपल के पत्तों जैसा होता है। हरियाणा में पीपल पट्टी के आभूषण पारंपरिक हैं। ये आभूषण सोने या पीतल से बने होते हैं। हरियाणा में पीपल पट्टी को दुल्हन के आभूषणों पर भी डिजाइन किया जाता है।

7. हिमालयन चिनार के बीज :-

हिमालयी चिनार के बीज मोतियों जैसे दिखते हैं और इन बीजों के आकार के मोतियों का इस्तेमाल हरियाणा के आभूषणों में बड़े पैमाने पर किया जाता है। ये बीज आकार में छोटे होते हैं और झुमके, हार, मांगटीका जैसे आभूषणों में इस्तेमाल किए जाते हैं। चूड़ियाँ, हथफूल, तगड़ी और पायल आदि में ये बीज मोतियों की तरह हो सकते हैं।

8. तोता :-

तोता खुशी और सच्चाई का प्रतीक है। यह एक सुंदर पक्षी है और इसे कई भारतीय आभूषणों में दर्शाया जाता है। हरियाणवी संस्कृति में तोते को झुमके, हेयर पिन, हार, कड़ा और पैर की अंगूठियों आदि जैसे आभूषणों में देखा जा सकता है। तोते को जोड़े में भी दर्शाया जाता है। आभूषणों में तोते को दर्शाने के लिए हरे पत्थर या रंग का भी इस्तेमाल किया जाता है।

9. ईगल :-

भारत में पुराने समय में शाही लोग ईगल आभूषण पहनते थे। इसे पेंडेंट और अंगूठियों जैसे आभूषणों में दर्शाया गया है। ईगल आभूषण ज्यादातर पुरुषों द्वारा पहने जाते हैं, लेकिन महिलाएं भी

इसे पहन सकती हैं। ईगल आत्म खोज, नवीनीकरण, पुनर्जन्म, आंतरिक शक्ति और साहस का प्रतीक है। ईगल आभूषण मुख्य रूप से सोने या चांदी से बना होता है।

10. कबूतर :-

कबूतर एक बहुत ही सुंदर पक्षी है जो देखभाल, भक्ति, पवित्रता और शांति का प्रतीक है। वैसे तो यह पक्षी सफेद रंग का होता है लेकिन आभूषण के रूप में यह सोने या चांदी आदि से बना होता है। यह रंगीन भी हो सकता है या इस पर रंगीन या चांदी के पत्थर जड़े होते हैं। हरियाणा में लोग कबूतर की बालियाँ, अंगूठियों या पैर की अंगूठियाँ आदि पहनते हैं।

11. हंस :-

भारत के लोगों के लिए इसका आध्यात्मिक महत्व भी है। हंस अनुग्रह, प्रेम, सौंदर्य, पवित्रता और लालित्य का प्रतीक है। हंस को आभूषणों जैसे कि झुमके और हेयरपिन आदि में दर्शाया जाता है।

12. सारस बीज :-

सारस वृक्ष के बीज हरियाणा राज्य में पाए जाते हैं। इन बीजों का आकार हरियाणा के आभूषणों में लिया जाता है। जिन आभूषणों में इन बीजों का आकार मोतियों के रूप में होता है, उनमें तागड़ी, हार, झुमके, चूड़ियाँ और हाथफूल आदि शामिल हैं।

13. मद्रास थॉर्न—

मद्रास थॉर्न, जिसे जंगल जलबी के नाम से भी जाना जाता है, हरियाणा के आभूषणों में लिया जाता है, मुख्य रूप से इसके आकार और इसके बीजों के आकार के कारण। यह मद्रास थॉर्न गोल आकार का होता है और एक दूसरे से जुड़े गोल मोतियों जैसा दिखता है। इस मद्रास थॉर्न को हरियाणवी आभूषणों में कई आभूषणों में दर्शाया गया है।

14. साँप :-

साँप का एक दिव्य अर्थ है क्योंकि यह भगवान शिव का है। कई हरियाणवी आभूषणों में साँप को देखा जा सकता है जैसे कि बाजूबंद, अन्नंत और अंगूठियों में। बहुत से आभूषण जो गोल आकार के होते हैं, उन्हें अक्सर साँप जैसा दिखने के लिए बनाया जाता है। साँप जल, शक्ति, मृत्यु और पृथ्वी का प्रतीक है।

15. अलग :-

भारतीय आभूषणों में विभिन्न प्रकार की रेखाएं अलग-अलग चीजों का प्रतीक होती हैं जैसे कि टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं पुरुष और स्त्री के मिलन का प्रतीक है।

16. ज्यामितीय आकार :-

भारतीय आभूषणों में प्रयुक्त ज्यामितीय आकृतियों के भी अलग-अलग अर्थ होते हैं, जैसे बिंदु ब्रह्मांड के केंद्र का प्रतीक है, षट्भुज शिव और शक्ति का प्रतीक है, जबकि वृत्त समय और गति का प्रतीक है।

17. ऊँ के बारे में :-

ओम हिंदू धर्म में सबसे पवित्र प्रतीक या मंत्र है। ओम को ब्रह्मांड की ध्वनि के रूप में जाना जाता है। ओम प्रतीक का इस्तेमाल पूरे भारत के साथ-साथ हरियाणा में भी आभूषणों में खूब किया जाता है। हम ओम को पेंडेंट, अंगूठियों और कंगन जैसे आभूषणों में देख सकते हैं। ओम पूरे दिव्य ब्रह्मांड का प्रतीक भी है।

18. सूर्य और चंद्रमा :-

प्राचीन लोगों के लिए, सूर्य और चंद्रमा ब्रह्मांड के सबसे तात्कालिक और दृश्यमान पहलू थे, जो उन्हें ब्रह्मांड में सबसे अधिक प्रत्यक्ष और दृश्यमान तत्व बनाने के लिए प्रभावित करते थे। उन्हें अपने आभूषणों से जोड़ना चाहिए। सूर्य ज्ञान और प्रकाश प्रभाव और शक्ति का प्रतीक है। भारत में कई लोग सूर्य देवता का प्रतिनिधित्व करने के लिए सूर्य के आभूषण पहनते हैं। सूर्य के आभूषण मुख्य रूप से सोने में होते हैं लेकिन इन दिनों यह अन्य सस्ती धातुओं में भी उपलब्ध हैं। सूर्य के आभूषण पुरुष और महिला दोनों द्वारा पहने जाते हैं। सूर्य को झुमके, हार और अंगूठी आदि जैसे आभूषणों में दर्शाया गया है। जबकि चंद्रमा का भी धार्मिक महत्व है क्योंकि यह भगवान शिव का आभूषण है और यह चंद्र देवता का भी प्रतीक है। यह समय, चक्र, मानस, प्रशंसा, छाया और संतुलन का भी प्रतीक है।

19. देवी-देवता :-

सदियों से भारतीय आभूषणों में देवी-देवताओं को दर्शाया जाता रहा है। भारतीय देवी-देवताओं की तस्वीरों वाले आभूषणों को 'मंदिर आभूषण' के रूप में जाना जाता है। ये आभूषण विभिन्न धातुओं

जैसे सोना, चांदी और पीतल आदि से बने होते हैं। ये आभूषण हार, चूड़ियों, झुमके या अंगूठियों आदि हैं। इन आभूषणों को अवसर बिस्तरों के साथ परोया जाता है या जटिल फिलिग्री से तैयार किया जाता है। इस आभूषण में भगवान शिव, भगवान विष्णु, देवी लक्ष्मी, देवी संतोषी, भगवान गणेश, भगवान कृष्ण, देवी सरस्वती आदि जैसे देवी-देवताओं को दर्शाया जाता है।

20. मोती :-

नाशपाती सदियों से आभूषणों में इस्तेमाल की जाती रही है। विभिन्न संस्कृतियों में नाशपाती को चंद्रमा से जोड़ा जाता है। वे विनम्रता, पवित्रता और शुद्धता का प्रतीक हैं। नाशपाती को झुमके, हार, अंगूठियां और चूड़ियाँ आदि जैसे आभूषणों में उकेरा या जोड़ा जाता है।

21. रंग :-

आभूषणों में विभिन्न रंगों के अलग-अलग अर्थ होते हैं जैसे लाल रंग ऊर्जा का प्रतीक है, हरा रंग सौभाग्य का प्रतीक है और इसे अक्सर शादियों में पहना जाता है, नीला रंग ज्ञान का प्रतीक है, चांदी शक्ति का प्रतीक है और सोना सौभाग्य का प्रतीक है।

22. आत्म अभिव्यक्ति :-

प्रतीकात्मकता के अलावा, आभूषण आत्म अभिव्यक्ति का एक शानदार तरीका है। अलग-अलग तरह के आभूषण आपके व्यक्तित्व या शैली को दर्शा सकते हैं, उदाहरण के लिए, अगर आप गले में भगवान शिव का लॉकेट पहन रहे हैं। तो यह दर्शाता है कि आप भगवान शिव के भक्त हैं।

23. रिश्ते :-

आभूषणों का एक बहुत लोकप्रिय उद्देश्य रिश्तों को दर्शाना है। शादी के छल्ले और सगाई की अंगूठियाँ इसके सबसे अच्छे उदाहरण हैं। इस तरह के आभूषण आपके और दूसरों के लिए रिश्ते के प्रति आपके प्यार और प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं।

24. सुरक्षा :-

आभूषणों में ताबीज के रूप में काम करने की एक लंबी परंपरा है, जो इसे धारण करने वाले व्यक्ति के लिए सौभाग्य लाता है। दुनिया भर की संस्कृतियों में कई लोग अभी भी सुरक्षित या सुरक्षित महसूस करने के लिए आभूषणों का उपयोग करते हैं। आभूषण लोगों को अर्थ, विचार, मूल्यों और

अनुष्ठानों का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक भौतिक प्रतीक प्रदान करते हैं। ये प्रतीक आभूषण पहनते समय स्वामी की भावना को बदल सकते हैं। यह प्रतीकात्मकता अवसर आभूषणों को स्वामी के लिए अधिक सार्थक और महत्वपूर्ण बनाती है।

25. वृक्ष :-

पेड़ों की विशेषता वाले कुछ आभूषण आस्था, विकास और पुनरुत्थान का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संस्कृति में कहा जाता है कि कई पेड़ अलग-अलग देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। पेड़ अक्सर जीवन और मृत्यु के विचार का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस तरह शाखाएँ बढ़ती और फैलती रहती हैं, उसी तरह पेड़ भी खोज और विकास जारी रखने के लिए पहनने वाले का सहारा बना रहता है।

26. तीर :-

तीर का प्रतीक प्रेम का प्रतिनिधित्व करता है। तीर आगे बढ़ने के लिए शक्ति और साहस रखने की याद भी दिलाता है। वे कभी-कभी सुरक्षा का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

दुनिया भर में आभूषणों को महत्व के साथ पहना जाता है। आभूषणों में विभिन्न प्रकार के डिजाइन और चित्रण उनके लिए अलग-अलग अर्थ रखते हैं। आभूषणों में प्रतीकात्मकता की अवधारणा भारत में सदियों पुरानी है और आज भी हरियाणा राज्य में है। प्रत्येक आभूषण और उसके डिजाइन का एक अर्थ और पहनने का अवसर होता है और आभूषणों और उनके विभिन्न प्रतीकों के प्रति लगाव भारत में बहुत अधिक रहा है। यह परंपरा और संस्कृति का एक मुख्य हिस्सा बन गया है। भारत में और भारत के हर राज्य में लगभग सभी शरीर के अंगों के लिए उच्च गुणवत्ता वाले आभूषण उपलब्ध हैं। भारत में आभूषण केवल श्रृंगार के उद्देश्य से ही नहीं पहने जाते हैं, बल्कि उनके लिए और भी अधिक अर्थ और महत्व है। बच्चों की कमर और कलाई में में। पहने जाने वाले कुछ आभूषण एक्यूंपंक्चर में भी मदद करते हैं। माताएँ अपने बच्चों को हाथ, कमर और गले या पैरों में पायल के मोतियों के साथ आभूषण पहनाती हैं ताकि जब बच्चा हिले तो वे आवाज करें और माँ को दूर से ही पता चल जाए कि उसका बच्चा कहाँ है। सोने के आभूषण शरीर के ऊपरी हिस्से में पहनने की सलाह दी जाती है क्योंकि यह व्यक्ति की आभा और ऊर्जा के साथ घुलने-मिलने के लिए अधिक उपयुक्त होता है। विभिन्न उपयोगों वाले अन्य आभूषण इस प्रकार हैं :-

1. पैर की अंगुली की अंगुठी :-

भारत में चांदी की बिछिया महिलाओं द्वारा पहनी जाती है क्योंकि पैर शरीर का सबसे निचला हिस्सा होते हैं और धरती से जुड़े होते हैं और माना जाता है कि यह जमीन के साथ बेहतर संयोजन है। चांदी की बिछिया पहनने से प्राण भी सक्रिय होते हैं और पूरे शरीर को तरोताजा कर देते हैं।

2. चूड़ियाँ :-

ऐसा भी कहा जाता है कि जब महिलाएं चूड़ियां पहनती हैं और चूड़ियों का जो हिस्सा कलाई पर लटकता है, उससे रक्त संचार बेहतर होता है। चूड़ियों की वजह से शरीर में ऊर्जा बनी रहती है।

3. मंगलसूत्र :-

भारतीय संस्कृति में प्रत्येक महिला के गले में मंगलसूत्र और उसमें पहने जाने वाले काले मोतियों को बुरी नजर से बचाने वाला माना जाता है।

4. झुमके :-

कान में झुमके की पकड़ से शरीर पर एक्यूंपक्वर जैसा प्रभाव पड़ता है। चुंबकीय झुमके पहनने से मोटापे का इलाज भी किया जा सकता है।

5. नाक की नथ :-

कहा जाता है कि नाक छिदवाने से महिलाओं में होने वाले मासिक दर्द को कम करने में मदद मिलती है। आमतौर पर नाक की अंगूठी नाक के बाईं ओर पहनी जाती है क्योंकि प्रजनन तंत्रिकाएँ इससे जुड़ी होती हैं।

6. हार :-

ऐसा माना जाता है कि हार प्राण शक्ति के केंद्र में स्थित ऊर्जा को सक्रिय करता है। यह भावनाओं को नियंत्रित करता है और उन्हें शुद्ध करता है।

7. उंगलियों की अंगूठियां :-

उंगलियों में तंत्रिकाएँ होती हैं जो शरीर से जुड़ी होती हैं और प्रत्येक उंगली व्यक्ति के एक महत्वपूर्ण भावनात्मक और शारीरिक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। अंगूठियों उस संबंध को स्थापित करने में मदद करती हैं। उदाहरण के लिए, शादी की अंगूठी अनामिका उंगली पर पहनी जाती है और व्यापक रूप से हृदय और उसकी भावनाओं से जुड़ी होती है।

पंचम् अध्याय

- हरियाणा में संग्रहालय
- घरोहर संग्रहालय
- कृष्ण संग्रहालय

➤ धरोहर म्यूजियम :-

हरियाणा का मतलब हिंदी में विरासत होता है। हरियाणा में धरोहर संग्रहालय भारत के हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र जिले में स्थित है। यह संग्रहालय हरियाणा के पुरातात्विक, सांस्कृतिक और स्थापत्य इतिहास और विरासत को प्रदर्शित करने के लिए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के स्वर्ण जयंती वर्ष में स्थापित किया गया था। संग्रहालय में 23 खंड और दीर्घाएँ हैं जो हरियाणवी संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को प्रदर्शित करती हैं जैसे -

- युद्ध नायक
- स्वतंत्रता सेनानी
- हरियाणा की प्राथमिक विरासत
- हरियाणा के लोक संगीत वाद्ययंत्र
- दीवार पेंटिंग
- पांडुलिपियाँ
- घर (मवेशी शेड)
- कृषि एवं लोक उत्सव
- हरियाणा की जल विरासत
- निंदा करना
- चारपाई (खाट)
- हरियाणा के घरेलू लेख
- हरियाणा की कला एवं शिल्प
- परिवहन ओ हरियाणा
- हरियाणा की व्यावसायिक कलाकृतियाँ / उपकरण
- हरियाणवी ऑन आनर्मेंट्स
- हरियाणवी रसोई
- हरियाणा के लोक वेशभूषा

- थिएटर चौबर
- पुस्तकालय और अनुसंधान
- राजकिशन नैन फोटो गैलरी
- हरियाणा के आभूषण
- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय - इतिहास की एक झलक

हरियाणवी लोक कला, संगीत और नृत्य प्रदर्शन के लिए ओपन एयर थिएटर भी है। यह वास्तव में आगंतुकों को यह एहसास कराता है कि वे एक ठेठ हरियाणवी गांव में हैं। रसोई दीर्घाओं में एक बड़ी खुली मिट्टी की रसोई है, जिसमें पीतल से बने कंटेनर, प्लेट और गिलास, दही और पानी रखने के लिए मिट्टी के बर्तन, अचार के लिए बेलनाकार चीनी मिट्टी के बर्तन, चपातियों के लिए बैत की टोकरियाँ, मिट्टी के तेल की लालटेन व ईंधन के रूप में गाय के डंक केक के साथ पारंपरिक चूल्हे पर खाना पकाती महिलाओं के मॉडल हैं।

वहां प्रदर्शित महिलाएं उचित हरियाणवी परिधानों व आभूषणों में सजी हुई हैं। वहां कई अन्य ऐतिहासिक चीजें भी संग्रहालय में प्रदर्शित हैं, जिन्हें खाण्डों में विभाजित किया है। केंद्र में गहरा कुआं है, जहां गांव की महिलाएं पानी भरती हैं और सिर पर घड़ा रखकर चलती हैं।

हरियाणवी संस्कृति पर्यावरण, ऐतिहासिक, आभूषण और अन्य हरियाणवी वाद्य यंत्रों से संबंधित कई चित्र भी संग्रहालय में विभिन्न खंडों में लगे हुए हैं। संग्रहालय में प्रदर्शित महिलाओं, पुरुषों व बच्चों की आकृतियां यथार्थवादी और बहुत सुंदर लगती हैं। पीपल के पेड़ के नीचे लकड़ी का वाद्य यंत्र बजता एक आदमी, पारंपरिक हरियाणवी संस्कृति का प्रतीक है। दर्जी, नाई, लोहार, कुम्हार, बुनकर, चूड़ी बेचने वालों की दुकान और पवित्र हिंदू अनुष्ठान जैसे - यज्ञ भी प्रदर्शित किए गए हैं। यह संग्रहालय पारंपरिक हरियाणवी संस्कृति के सुंदर झलक देते हैं।

धरोहर संग्रहालय की स्थापना कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के स्वर्ण जयंती वर्ष में हरियाणा के पुरातात्विक, सांस्कृतिक और स्थापना इतिहास और विरासत को प्रदर्शित करने के लिए की गई थी।

- थिएटर चौबरा
- पुस्तकालय और अनुसंधान
- राजकिशन नैन फोटो गैलरी
- हरियाणा के आमूषण
- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय – इतिहास की एक झलक

हरियाणवी लोक कला, संगीत और नृत्य प्रदर्शन के लिए ओपन एयर थिएटर भी है। यह वास्तव में आगंतुकों को यह एहसास कराता है कि वे एक ठेठ हरियाणवी गांव में हैं। रसोई दीर्घाओं में एक बड़ी खुली मिट्टी की रसोई है, जिसमें पीतल से बने कंटेनर, प्लेट और गिलास, दही और पानी रखने के लिए मिट्टी के बर्तन, अचार के लिए बेलनाकार चीनी मिट्टी के बर्तन, चपातियों के लिए बैत की टोंकरियाँ, मिट्टी के तेल की लालटेन व ईंधन के रूप में गाय के डंक केक के साथ पारंपरिक चूल्हे पर खाना पकाती महिलाओं के मॉडल हैं।

वहां प्रदर्शित महिलाएं उचित हरियाणवी परिधानों व आमूषणों में सजी हुई हैं। वहां कई अन्य ऐतिहासिक चीजें भी संग्रहालय में प्रदर्शित हैं, जिन्हें खाण्डों में विभाजित किया है। केंद्र में गहरा कुआं है, जहां गांव की महिलाएं पानी भरती हैं और सिर पर घड़ा रखकर चलती हैं।

हरियाणवी संस्कृति पर्यावरण, ऐतिहासिक, आमूषण और अन्य हरियाणवी वाद्य यंत्रों से संबंधित कई चित्र भी संग्रहालय में विभिन्न खंडों में लगे हुए हैं। संग्रहालय में प्रदर्शित महिलाओं, पुरुषों व बच्चों की आकृतियां यथार्थवादी और बहुत सुंदर लगती हैं। पीपल के पेड़ के नीचे लकड़ी का वाद्य यंत्र बजता एक आदमी, पारंपरिक हरियाणवी संस्कृति का प्रतीक है। दर्जी, नाई, लोहार, कुम्हार, बुनकर, घूड़ी बेचने वालों की दुकान और पवित्र हिंदू अनुष्ठान जैसे – यज्ञ भी प्रदर्शित किए गए हैं। यह संग्रहालय पारंपरिक हरियाणवी संस्कृति के सुंदर झलक देते हैं।

धरोहर संग्रहालय की स्थापना कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के स्वर्ण जयंती वर्ष में हरियाणा के पुरातात्विक, सांस्कृतिक और स्थापना इतिहास और विरासत को प्रदर्शित करने के लिए की गई थी।

श्रीकृष्ण म्यूजियम

श्री कृष्ण संग्रहालय भारत के हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र में स्थित है। श्री कृष्ण संग्रहालय की स्थापना कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा वर्ष 1987 में की गई थी। इस संग्रहालय में प्राचीन मूर्तियाँ, नक्काशी और पेंटिंग, डायोरमा, विशाल मूर्तियाँ, अवास्तनविक ध्वनियाँ और मूलमुलैया से होकर गुजरने वाली सैर सहित कई तरह की प्रदर्शनी है।

इस संग्रहालय में कई विशाल पेंटिंग व बड़ी स्क्रीन है जिन पर महाभारत के विभिन्न दृश्य दिखाए गए हैं। यह संग्रहालय भगवान कृष्ण के पथ के रहस्य को उजागर करता है। यह संग्रहालय रचनात्मकता से भरा है और इसने महाभारत और भागवत गीता में वर्णित कृष्ण के बहुमुखी व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इस संग्रहालय में दह दीर्घाएँ हैं, दो ब्लॉकों में दो ब्लॉकों में तीन-तीन। इस संग्रहालय में प्रदर्शित की जाने वाली चीजें हैं :-

- पत्थर की मूर्तियाँ
- कांस्य ढलाई
- पत्ती नक्काशी
- मिट्टी के बर्तन
- टेराकोटा कलाकृतियाँ

यह संग्रहालय महाभारत के इतिहास को दर्शाता है और कई दृश्यों को दर्शाता है। इस संग्रहालय में विभिन्न और अज्ञात भारतीय कलाकारों द्वारा बनाई गई बहुत ही सुंदर कलाकृतियाँ हैं। पूरे संग्रहालय में बहुत बड़े आकार के चित्र प्रदर्शित किए गए हैं जो पूरे महाभारत की कहानी और भगवान कृष्ण के जीवन के विभिन्न चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सभी भारत भर से एकत्रित कलाकृतियों को मदद से बनाए गए हैं।

यह संग्रहालय तीन मंजिला इमारत है। संग्रहालय के शीर्ष भाग में महाभारत के विभिन्न चरणों को दिखाने वाली बड़ी स्थिति है, जो मुख्य आकर्षण है। श्री कृष्ण कुरुक्षेत्र के मुख्य आकर्षण और पर्यटन स्थलों में से एक हैं। कला प्रेमियों के लिए यह एक बहुत ही सुंदर संग्रहालय है। इस संग्रहालय

में विभिन्न भारतीय राज्यों की असंख्या पेंटिंग और मूर्तियां प्रदर्शित की गई हैं। इसमें विभिन्न दीर्घाओं में चितारा, ताल पत्र चित्र, वर्ली और मधुबनी है।

भगवान श्री कृष्ण की लकड़ी की मूर्तियां विभिन्न रूपों और आकारों में विभिन्न दीर्घाओं में प्रदर्शित की गई हैं। इनमें से कुछ मूर्तियां बहुत बड़ी हैं और वे आगंतकों को अद्भुत लगती हैं। इस संग्रहालय में भगवान श्री कृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसंगों को दर्शाया गया है जैसे - भारी बारिश के बीच वासुदेव द्वारा शिशु कृष्ण को टोकरी में रखकर नदी पार करना, श्री कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को अपनी छोटी उंगली को नोक पर उठाना, ताकि गांव के लोग हानिकारक बारिश से बच सकें और श्री कृष्ण का अपनी अपनी प्रिय राधा के साथ घूमना आदि।

इस संग्रहालय में ऐतिहासिक हरियाणवी आभूषणों का भी एक खंड है जैसे कि - बनावली, फतेहाबाद, हरियाणा से आभूषण।

➤ हड़प्पा काल लगभग (2400 से 17 ईसवी पूर्व)

- मोतियों से बना हार
- बोराला
- तांबे की चूड़ियां
- तांबे की हेयर पिन
- टेराकोटा चूड़ियां
- कुणाल, फतेहाबाद, हरियाणा से आभूषण

➤ पूर्व हड़प्पा काल (लगभग 3100 ईसवी पूर्व) :-

- टेराकोटा मूर्तियों से बना हार
- चांदी के आभूषणों की पेंटिंग
- मूर्तियों से बने हार
- सोने के आभूषण
- चांदी के आभूषण

➤ प्रदर्शन हेतु रखे गए अन्य आभूषण :-

- टेरा कोटा चूड़ियां, लगभग (2400 ईसवी पूर्व)
- फाइनैस चूड़ियां, लगभग (2400 ई0 पूर्व)
- टेराकोटा चूड़ी सी. (2500 से 1700 ई0 पूर्व)
- हड़प्पा स्तत से फाइनस चूड़ियां, लगभग (2500 से 1750 ईसवी पूर्व)
- शंख की चूड़ियां, आघ ऐतिहासिक काल (1500 से 1200 ईसवी पूर्व)
- संगीतमय हार, पीतल लगभग, (17वीं शताब्दी ईसवी पूर्व भारत)

कला कृतियों का कलात्मक विवरण

1. धरोहर में हरियाणा के पारंपरिक आभूषण पहने महिला की मूर्ति :-

यह धरोहर में हरियाणा के पारंपरिक आभूषण पहने महिला की मूर्ति है, जिसमें महिला ने पारंपरिक हरियाणवी पोशाक (घाघरा, चोली, ओढ़नी) पहने हुए हैं और गले में भारी हार, चांदी की कमरबंद, चूड़ियाँ, झुमके और माथे पर बोरला आदि आभूषण पहने हुए हैं।

2. टीका :-

इस तस्वीर में जो आभूषण दिखाया गया है उसे विशेष रूप से माथे पर पहनने वाला 'बोरला' या 'मांग टीका' कहते हैं, जो हरियाणवी संस्कृति में बहुत लोकप्रिय है। इसमें एक लंबी चैन के साथ एक गोल लटकन तथा ऊपर की ओर एक हुक लगी हुई है। इसमें बारीक कटिंग की गई है और निचले हिस्से में छोटे-छोटे घुंघरू या लटकन लगे हुए हैं।

3. झुमकी :-

इस तस्वीर में हरियाणवी पारंपरिक 'कान की झुमकी' आभूषण को दिखाया गया है जो सोने से बनी है। इसमें फूल, पत्तियों और गोल नक्काशीदार डिजाइन बनाया गया है। नीचे की ओर छोटे गोल लटकन लगे हुए हैं।

4. नथ :-

इस तस्वीर में हरियाणा की पारंपरिक एक बड़ी नथ (नाक की बाली) को दिखाया गया है, जो हस्त निर्मित है। इस नथ में मोतियों की झूलती हुई श्रृंखला बनी है। इसमें आगे के हिस्से में नुकीले लटकन लगे हुए हैं।

5. हंसला :-

यह हंसला एक पारंपरिक हरियाणवी आभूषण है जो गले में पहना जाता है। यह पीतल या सोने से बना होता है और इसके बीच में नग या कांच का जड़ा लगा होता है।

6. बोला और श्रृंगार पट्टी पहने महिला :-

इस तस्वीर में एक हरियाणवी महिला पारंपरिक पोशाक और आभूषण पहने हुए दिखाई गई है। उसने सिर पर पारंपरिक बोरल और श्रृंगारपट्टी पहने हुए हैं।

7. पुरली, बूजली और हालरा :-

इस तस्वीर में एक वृद्ध महिला पारंपरिक गहने पहने हुए हैं। वह पुरली, बूजली, (नाक की बाली) और हालरा धारण किए हुए हैं।

8. झालरा :-

यह एक पारंपरिक झालरा है, जिसे गले में हार के रूप में पहना जाता है। इसमें सिक्के और चकौर लटकन लगे होते हैं, जो इसकी सुंदरता बढ़ाते हैं।

9. कंगनी :-

यह कंगनी हस्त निर्मित है। इसे मोतियों और धागे द्वारा बनाया गया है। यह लड़कियों द्वारा हाथ में पहने जाने वाला आभूषण है।

10. हस्तनिर्मित क्रोशिया :-

यह एक हस्त निर्मित क्रोशिया हार है। इस हार में छोटे-छोटे घुंघरू और मोतियों की सजावट की गई है, जो इसे आकर्षक बनाती है।

11. कंगन :-

यह पारंपरिक कांसे या धातु से बना कंगन है जिसे हाथों में पहना जाता है। इस पर उभरे हुए गोलाकार डिजाइन इसकी सुंदरता और शिल्पकार को दर्शाते हैं।

12. मणको द्वारा निर्मित हार :-

कुणाल फतेहाबाद हरियाणा (3100 ईसवी पू०) यह मणको से बना प्राचीन हार है जो टेराकोटा मिट्टी से निर्मित है। यह हार कुरुक्षेत्र के पास कुणाल फतेहाबाद हरियाणा क्षेत्र से 3100 ईसवी पू० का है।

13. कृष्ण संग्रहालय में स्थित हार :-

यह पारंपरिक हार कृष्णसंग्रहालय में संरक्षित है जिसमें धातु और मणकों का उपयोग किया गया है। इसके मध्य में बड़ा लटकन और दोनों ओर सजावट की गई की हुई है।

14. हार :-

यह पारंपरिक हार कृष्णसंग्रहालय में संरक्षित है। यह हीरे की धातु या पत्थर जैसी सामग्री से बना हुआ है। हार में लटकन लगे हुए हैं, जिन्हें एक मोटी डोरी या रस्सी में पिरोया गया है।

15. माणकों द्वारा निर्मित हार :-

इस तस्वीर में एक मृण्मय हार दिखाया गया है जो हरियाणा के फतेहाबाद जिले में स्थित कुणाल नामक पुरातत्विक स्थल से प्राप्त हुआ है। यह मृत्तिकाओं से निर्मित माणकों का हार गोल और चपटी आकृति में एक डोरी में पिरोया गया है।

16. हथफूल :-

इस तस्वीर में हरियाणा का पारंपरिक हथफूल दिखाया गया है। यह एक मध्यवर्ती गोलाकार डिस्क होती है। इस डिस्क से पांच श्रृंखलाएं निकलती हैं, जो पांचों उंगलियों से जुड़ी होती हैं। हर चैन के अंत में एक अंगूठी होती है। ऊपर की ओर एक चैन कलाई की ओर जाती है और बड़े कड़े से जुड़ती है। यह चांदी से बना होता है।

17. नेवरी :-

यह एक प्रकार की पारंपरिक पायल या मोती कड़ी होती है, जिसे ग्रामीण महिलाएं पैरों में पहनती हैं। यह अक्सर चांदी, पीतल या कभी-कभी मिक्स धातु से बनाई जाती है। यह उत्साह और ऊर्जा का संकेत मानी जाती है।

18. मुर्की पहने आदमी :-

इस तस्वीर में हरियाणवी ग्रामीण पुरुष को दिखाया गया है जो पारंपरिक वस्त्र और मुर्की आभूषण पहने हुए हैं। यह मुर्की आभूषण केवल श्रृंगार का अंग नहीं बल्कि कभी-कभी सामाजिक प्रतिष्ठा, जातिय पहचान का प्रतीक भी होती है।

19. मोर के डिजाइन का हार :-

इस तस्वीर में एक मोर के डिजाइन वाला हार और झुमके दिखाए गए हैं, जिसमें मोर की पूंछ में रंगीन पत्थरों और कुंदन का प्रयोग हुआ है जो इस पारंपरिक रूप देता है।

20. कमरबंद :-

इस तस्वीर में एक युवती को पारंपरिक भारतीय परिधान साड़ी में दिखाया गया है। युवती ने कमर पर एक सुंदर कमरबंद पहना हुआ है जिसके बीच में एक पारंपरिक लटकन है जो इसे और अधिक आकर्षक बनाता है।

21. हार :-

इस तस्वीर में हरियाणा का पारंपरिक सोने का हार है। इसमें यह पान के पत्ते जैसी आकृति के कई डिजाइन जोड़कर एक सुंदर श्रृंखला बना रहे हैं। इस हार में मुख्य रूप से पायली और मोती के डिजाइन हैं जो पारंपरिक हस्तकला का उदाहरण हैं। इस हार में भगवान गणेश को चित्र और मोतियों द्वारा डिजाइन बनाया गया है।

22. झूमर :-

यह तस्वीर एक पारंपरिक झूमर की है जो महिलाओं द्वारा सिर पर पीछे की ओर सजाया जाता है।

23. दुल्हन सेट :-

इस तस्वीर में एक पारंपरिक दुल्हन सेट दिखाया गया है। यह सेट दुल्हन की शादी के दिन पहने जाने वाले सभी आभूषणों का संग्रह है जिसमें सोने के द्वारा देवी देवताओं की आकृतियां जैसे लक्ष्मी और सिक्के जैसे गोल डिजाइन बनाए गए हैं।

24. चांदी की पायल :-

इस तस्वीर में चांदी की पायल दिखाई गई है जिसे स्त्रियों द्वारा पहना जाता है। इसमें छोटे-छोटे घुंघरू और पत्तियों जैसे डिजाइन बने हुए हैं। इसमें हाथ की नक्काशी या मशीन की सहायता से डिजाइन बनाया गया है।

आभूषण लगभग हर शरीर के अंग को सजाने और पहनने के लिए बनाए जाते हैं। चाहे वह पैर हो या फिर पैर की अंगूठियां। आभूषण अलग-अलग सामग्रियों से बने होते हैं। आभूषणों का इतिहास बहुत बड़ा है। विभिन्न संस्कृतियों में इसके अलग-अलग उपयोग हैं और यह हमें प्राचीन संस्कृतियों के काम करने के तरीके के बारे में भी बहुत कुछ बताता है। हम कह सकते हैं कि आभूषणों की प्रकृति बदलती रहती है और नए परिधान के साथ फिट होने के लिए उन्हें बदला जाता है। आज महिलाओं के लिए बहुत से अलग-अलग तरह के आभूषण उपलब्ध हैं, खास तौर पर महिलाओं के लिए।

आभूषणों की डिजाइनिंग पिछले कई सालों से तुलनात्मक रूप से स्थिर रही है। सालों पहले के मूल संदर्भ, उत्पादन की तकनीक और सामग्री का इस्तेमाल आज भी किया जा रहा है। लेकिन आधुनिक तकनीक और मशीनरी ने आभूषण निर्माता और डिजाइनर को कुछ पुराने तरीकों के मुकाबले सरल विकल्प दिए हैं। भारत में आभूषणों का एक लंबा इतिहास है, जो सदियों से सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभावों के माध्यम से कई बदलावों से गुजरा है। आभूषण बनाने की कला भारत की सबसे पुरानी कलाओं में से एक है। भारतीय आभूषणों में विविधता, विभिन्न धार्मिक जरूरतों से आई है, क्योंकि हर धर्म के लोग अलग-अलग तरह के आभूषण बनाते हैं, जो उनकी अलग-अलग जीवन शैली, संस्कृति का प्रतीक हो सकते हैं और उन्हें दूसरों से अलग कर सकते हैं।

भारत के हर हिस्से में विभिन्न शैलियों के आभूषण पाए जा सकते हैं, जो पारंपरिक और समकालीन दोनों शैलियों में भारतीय आभूषणों को विशाल विविधता प्रदान करते हैं।

हरियाणा की संस्कृति और विरासत बहुत समृद्ध है। हरियाणा का इतिहास हजारों साल पुराना है। हरियाणा अपने आभूषणों के लिए जाना जाता है। चांदी, हड्डी, सोने और लाख से बने आभूषणों में पारंपरिक डिजाइन का इस्तेमाल किया जाता है, जिसमें कोई बदलाव नहीं किया गया है। हरियाणा में चांदी के आभूषण बहुत लोकप्रिय हैं। हरियाणा में हस्त निर्मित और मशीनी दोनों प्रकार के आभूषण पहने जाते हैं। चांदी के आभूषण बहुत लोकप्रिय हैं। आभूषण हमेशा से ही हरियाणा के लोगों का गौरव रहे हैं। हरियाणा के पारंपरिक आभूषण धरोहर संग्रहालय और श्री कृष्ण संग्रहालय जैसे विभिन्न संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

हरियाणा : संस्कृति एवं कला - डॉ०. सन्तराम देशवाल, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला,
पृ० सं०. 1, 2, 4, 5, 34, 35, 36, 37, 38, 39

भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, डॉ०. आर.डी.
सेनी, 1 अक्टूबर, 2009, पृ० सं०. 3, 4, 5, 6

Anmol Roy : Jewellery Designing Sonali Publication, Edition 2011 = 1, 4,
Introduction

<https://www.britannica.com>

<https://www.gradeup.com>

<https://en.m.wikipedia.org> = 4 March 2025

Jewelry design.com = 15 Feb, 2025

Hunarindia.org.in = 19 March 2025

En.m.wikipedia.org = 20 March 2025

En.m.wikipedia.org = 22 March 2025

info@namstech.com = 28 March 2025

www.hindujagruti.org = 25 March 2025

en.m.wikipedia.org = 12 March 2025

13 sukrajclasses.com = 28 march 2025

Jewelorydesign.com = 5 Jan 2025

Irishjewel.com

Sukrajclasses.com

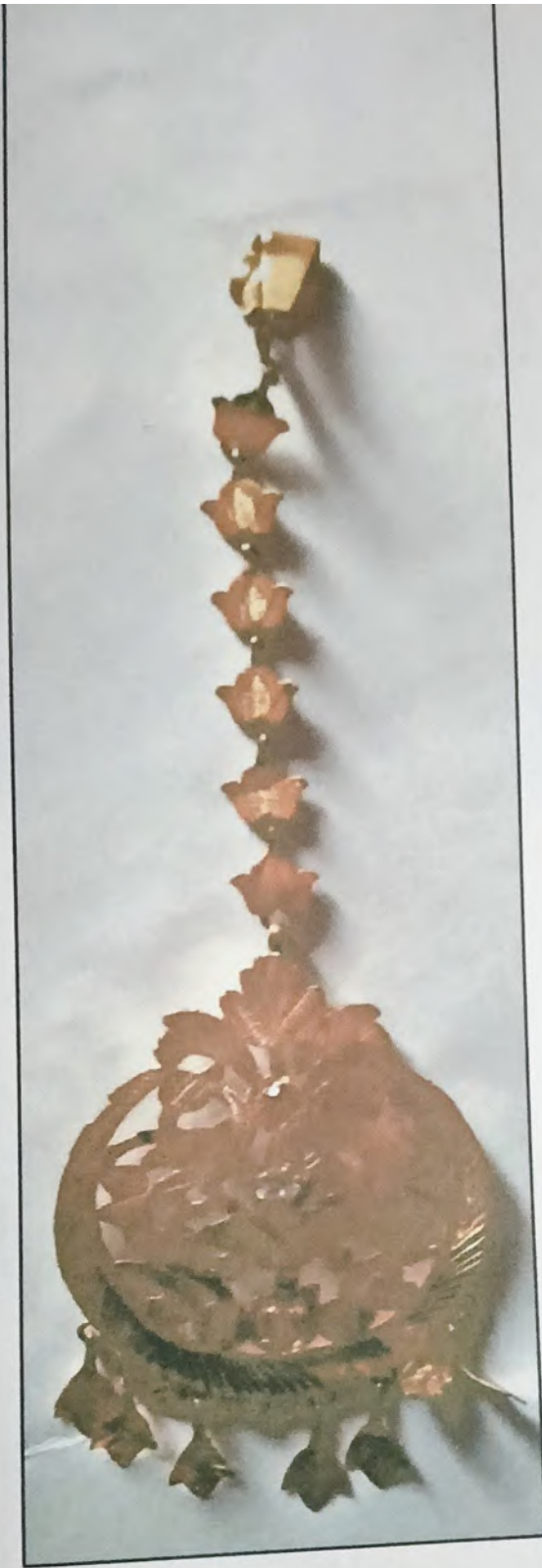
<https://en.wikipedia.org>

चित्र संग्रह सूची

नाम	
1	धरोहर में हरियाणा के पारंपरिक आभूषण पहने महिला की मूर्ति
2	टीका
3	झुमकी
4	नथ
5	हंसला
6	बोरला और श्रृंगार पट्टी पहने महिला
7	पुरली, बूजली और हालरा पहने महिला
8	झालरा
9	कंगनी
10	हस्तनिर्मित क्रोशिया हार
11	कंगन
12	मणकों द्वारा निर्मित हार (कुणाल फतेहाबाद, हरियाणा, 3100ई0 पू0)
13	कृष्ण संग्रहालय में स्थित हार
14	हार
15	मणकों द्वारा निर्मित हार
16	हथफूल
17	नेवरी
18	मुर्की पहने आदमी
19	मोर के डिजाइन का हार, झुमके
20	कमरबंद
21	हार
22	झुमर
23	दुल्हन सेट
24	चांदी की पायल



धरोहर में हरियाणा के पारंपरिक आभूषण पहने महिला की मूर्ति



टीका



झुमकी



नथ



हंसला



बोरला और श्रृंगार पट्टी पहने महिला



पुरली, बूजली और हालरा पहने महिला



झालरा



कंगनी



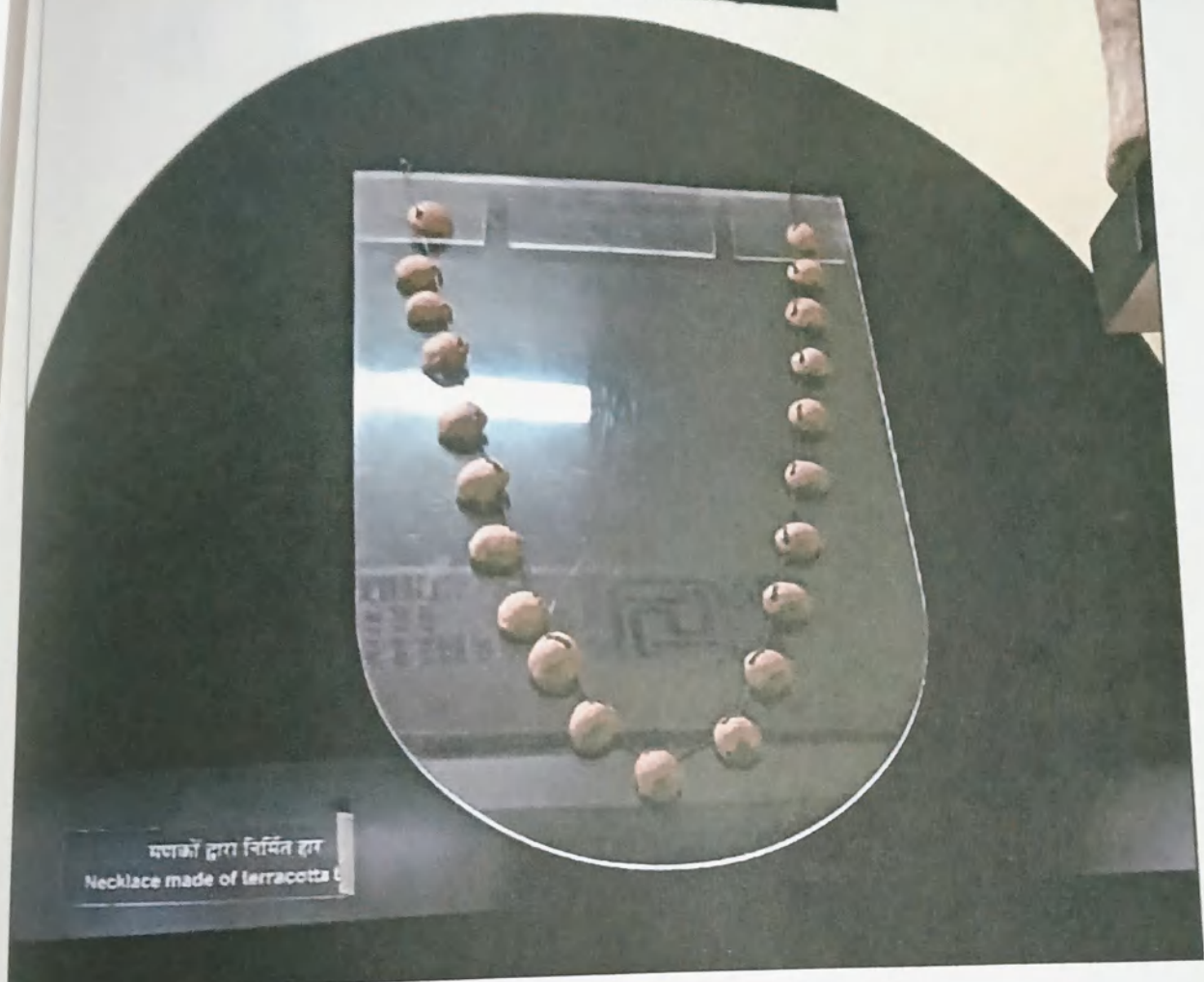
हस्तनिर्मित क्रोशिया हार



कंगन

2

Kunal, Fatehabad, Haryana
Pre Harappan Period (C. 3100 BCE)



मणकों द्वारा निर्मित हार
Necklace made of terracotta

मणकों द्वारा निर्मित हार (कुणाल फतेहाबाद, हरियाणा, 3100ई० पू०)

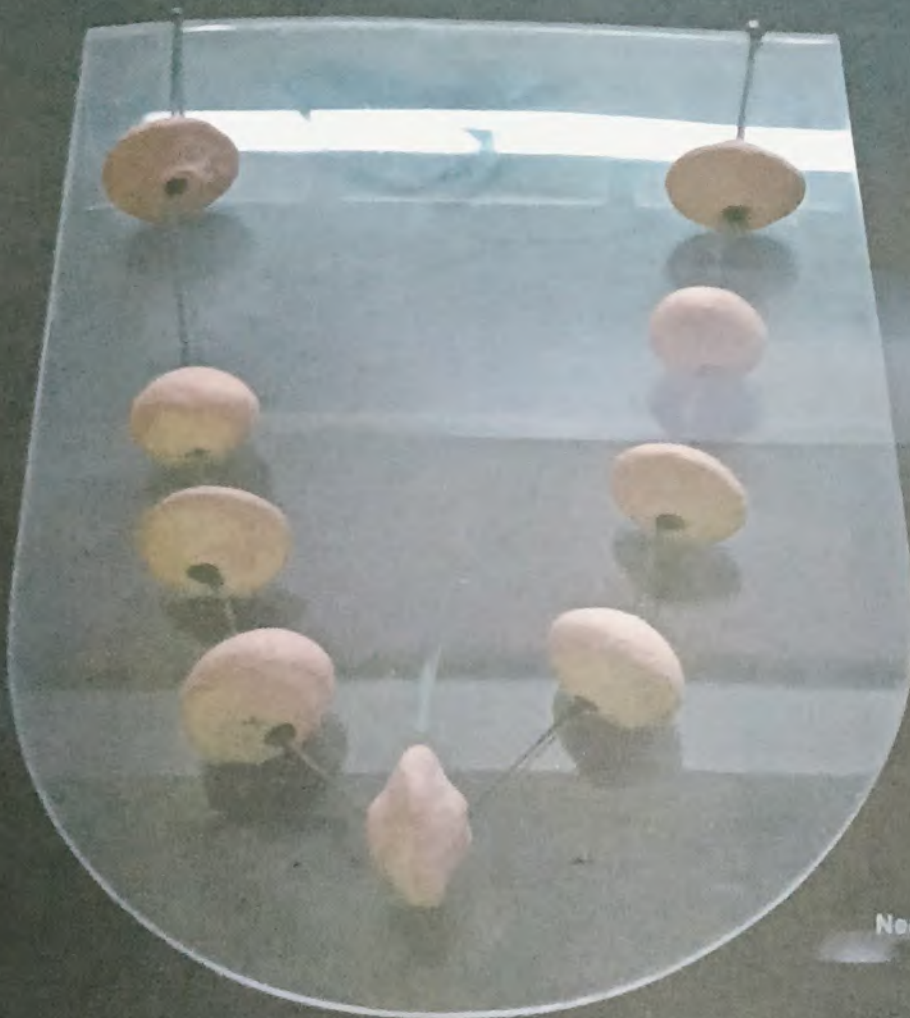


कृष्ण संग्रहालय में स्थित हार



814

कुणाल, फतेहाबाद, हरियाणा
आदि हड़प्पा कालीन (3100 ई० पू०)



मणकों द्वारा निर्मित
Necklace made of terracotta

मणकों द्वारा निर्मित हार



हथफूल



नेवरी



मुर्की पहने आदमी



मोर के डिजाइन का हार, झुमके



कमर बंध



हार



झुमर



दुल्हन सेट



चांदी की पायल

“कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय की
भारतीय चित्रकला का अध्ययन”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा

श्रीमती संतोष

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय

शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री

ईशा

स्नातकोत्तर

(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ईशा, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय की भारतीय चित्रकला का अध्ययन” शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं ईशा, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध "कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय की भारतीय चित्रकला का अध्ययन" विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है, उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिका

श्रीमती संतोष

शोधकर्त्री

ईशा

आर्य कन्या महाविद्यालय,

शाहाबाद (मा0)

कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ईशा, अनुक्रमांक न0. 130249906, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने "कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय की भारतीय चित्रकला का अध्ययन" शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक:

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

कुरुक्षेत्र की महान धरोहरों में श्री कृष्ण संग्रहालय भी आता है। कुरुक्षेत्र की इसी महान धरोहर के कारण इस क्षेत्र की प्रसिद्धी धर्म क्षेत्र के रूप में हुई। कुरुक्षेत्र का श्री कृष्ण संग्रहालय एक अनूठी परिकल्पना है इसमें भगवान कृष्ण के बहुआयामी स्वरूप को कला के माध्यम से दर्शाया गया। जिसे देश के अलग-अलग कोने से एकत्रित किया गया है। मनोरंजन के साथ शिक्षा प्रदान करता है। इस संग्रहालय में एक तीसरा आयाम जुड़ा है वह कृष्ण – चरितामृत की रसानुभूति का सात्विक आनंद।

संग्रहालय की चित्रकला को देखकर कुशल चित्रकारों के अपने काम के प्रति समर्पण भावना का पता चलता है। पुरातन इतिहास के बारे में लोगों को ज्यादा ज्ञान न होने के कारण नाम मात्र ही जानकारी के अलावा कुछ नहीं मिलता। किंतु आज के समय के आधुनिक लोग अपनी इस बहुमूल्य धरोहर की अहमियत को समझते हुए, इसके विकास की ओर अग्रसर हो रहे हैं तथा इसके उत्थान के लिए प्रत्यनशील है।

कला के इतिहास में श्री कृष्ण संग्रहालय की प्राचीन चित्रकला के अध्ययन को मैंने आवश्यक समझा ताकि लोगों को इस कला से अवगत करवाया जा सके।

अतः मैंने अपने इस लघु शोध में श्री कृष्ण संग्रहालय कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक धरोहर की महत्वता को समझने व समझाने का प्रयत्न किया है। यह विषय मेरी रुचि के अनुकूल है। इस विषय में मेरी रुचि इन चित्रकला को देखकर बढ़ी। श्री कृष्ण संग्रहालय के चित्रकला ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया। मैंने अत्यधिक परिश्रम से इस विषय पर अध्ययन किया। इस लघु शोध को मैंने पांच अध्यायों में विभाजित किया है। जो इस प्रकार है :-

- ➔ प्रथम अध्याय – इस अध्याय में कला, भारतीय चित्रकला का इतिहास और कुरुक्षेत्र का इतिहास का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।
- ➔ द्वितीय अध्याय – इस अध्याय में कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय का संक्षिप्त परिचय और श्री कृष्ण कथा व कथा पर आधारित चित्र पर प्रकाश डाला है।
- ➔ तृतीय अध्याय – इस अध्याय में श्री कृष्ण संग्रहालय के चित्रों का विवरण और श्री कृष्ण के चित्रों की शैली के बारे में बताया गया है।

➔ चतुर्थ अध्याय – इस अध्याय में श्री कृष्ण संग्रहालय का कला में योगदान के बारे में लिखा है।

➔ पंचम अध्याय – इस अध्याय में श्री राजेंद्र राणा के साथ साक्षात्कार लिखा है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया गया है। इसमें लघु शोध प्रबंध के माध्यम से स्थापित की गई मौलिक मान्यताओं को प्रतिपादित किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि विद्वान समीक्षक उन्हें अलक्ष्य करने की कृपा करें।

इस शोध पत्र में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उसके लिए केवल मैं दोषी हूँ। अंत में इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

ईशा

शोधकर्त्री

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उल्लेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा, की प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ० श्रीमती आरती त्रेहन जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पूरे शोध कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया व ललित कला विषय में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रारंभ कर हमारे चिरलंबित स्वपन को साकार करने का मौका प्रदान किया।

मैं ललित कला विभाग, की अध्यक्ष आदरणीय श्रीमति संतोष जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर लघुशोध कार्य करने में सहयोग और प्रेरणा दी।

इसके साथ-साथ मैं अपने परिवार जनों का भी हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई।

मैं अपने गुरु आदरणीय एसि प्रौ० श्री महेश धीमान सर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

ईशा

शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आभार	
प्रथम अध्याय:	01 – 24
– कला	
– भारतीय चित्रकला का इतिहास	
– कुरुक्षेत्र का इतिहास	
द्वितीय अध्याय :	25 – 40
– कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय का संक्षिप्त परिचय	
– श्री कृष्ण कथा व कथा पर आधारित चित्र	
तृतीय अध्याय:	41 – 54
– श्री कृष्ण संग्रहालय के चित्रों का विवरण	
– श्री कृष्ण के चित्रों की शैली	
चतुर्थ अध्याय:	55 – 57
– श्री कृष्ण संग्रहालय का कला में योगदान	
पंचम अध्याय :	58 – 64
– श्री राजेन्द्र राणा के साथ साक्षात्कार	
– उपसंहार	65 – 65
– संदर्भ ग्रंथ सूची	66 – 66
– चित्र संग्रह सूची	67 – 68
– चित्र सूची	69 – 99

प्रथम अध्याय

- कला
- भारतीय चित्रकला का इतिहास
- कुरुक्षेत्र का इतिहास

कला

कला का उद्गम प्रागैतिहासिक काल से माना जाता है। मानव ने जिस समय प्रकृति की गोद में आंख खोली उसी समय से अपने आसपास के वातावरण से प्रभावित होकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने के लिए पत्थरों और तूलिका द्वारा रेखाकृतियों के माध्यम से गुफाओं और चट्टानों पर भित्तियों को अंकित करना प्रारंभ किया, जो कला का प्रारंभिक रूप था। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया। कला के नए-नए स्वरूप सामने आने लगे और नए मापदण्ड स्थापित होते गए और कला ने गुफा चित्रों, चिह्नों, शिल्पकारी आदि विभिन्न चरणों से गुजरते हुए आधुनिक स्वरूप धारण किए। कला एक व्यापक अवधारणा है जिसे परिभाषित करना मुश्किल है, परंतु इसे निम्न तथ्यों द्वारा समझा जा सकता है –

“कला मानव की रचना है जो उसके जीवन में आनंद की अनुभूति प्रदान करती है, वह कला कहलाती है”।

शास्त्रों से पता चलता है की सबसे पहले कला शब्द का प्रयोग ‘ऋग्वेद’ में हुआ है। प्रथम शताब्दी में ‘भरतमुनि’ ने अपने ‘नाट्यशास्त्र’ में कला शब्द का यथार्थवादी प्रयोग किया। जिसके द्वारा कला और जीवन के बीच के संबंधों को गहराई से समझने में कोशिश करता है।

“न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न साविधा – न सा कला।”

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसमें कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, जो कला न हो। इससे पहले के ग्रन्थों में कला शब्द का प्रयोग हुआ है परंतु वहां पर इसका अर्थ ‘कार्य कुशलता’ या उस समय कला के लिए ‘शिल्प’ शब्द प्रयुक्त होता था।

संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में कलाओं की संख्या 64 मानी गई है। कला शब्द का संबंध संस्कृति भाषा से है। इसकी उत्पत्ति ‘कल’ धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ प्रेरित करना। कुछ विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति ‘क’ धातु को माना है— “कं (सुखम्) लाति इति कलम्, कं आनन्द लाति इति कला”।

कला का अर्थ – प्रेरित करना, सुंदर, मधुर, सुख देने वाला है।

कला शिल्प कौशल है अतः कला का अर्थ “शिल्प कौशल की प्रक्रिया से युक्त सृजन रूप, जो कला की सुंदरता और सुख की अनुभूति प्रदान करता है। भारतीय दर्शन के अनुसार कला सत्यम् शिवम् सुंदरम् है। चित्र, मूर्ति, काव्य, साहित्य में सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है, वह आनंदमय होती है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार सत्य और सौंदर्य एक ही वस्तु है जो सत्य है, वही सुंदर है, उसी से आनंद की

प्राप्ति होती है। कला शब्द इतना व्यापक है कि कला को परिभाषा में बांधना इतना आसान नहीं है, फिर भी विद्वानों ने कला की परिभाषाएं दी हैं जैसे –

- ➔ मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार – “अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला है”।
- ➔ रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार – “मनुष्य जिसमें अपनी अभिव्यक्ति करता है, उसे कला कहते हैं”।
- ➔ डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार – “कला किसी विचार या कल्पना को दृश्य रूप देती है”।

इन सभी परिभाषाओं से यह पता चलता है कि कला में भी अभिव्यक्ति होती है। कला मानव संस्कृति की उपज है। कला का जन्म मानव की सौंदर्य भावना से हुआ है। कला का शाब्दिक अर्थ – किसी वस्तु का छोटा अंश। कला की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी कर सकते हैं क + ला, क – कामदेव–सौंदर्य, हर्ष व उल्लस, ला – देना, ‘कलांति ददातीति कला’ अर्थात् सौंदर्य की अभिव्यक्ति करने वाली और व्यक्ति को सुख प्रदान करने वाली वस्तु कला है।

आधुनिक काल में कलाओं का वर्गीकरण दो बिंदुओं पर किया गया है –

1. उपयोगी कला
2. ललित कला

➤ उपयोगी कला :-

उपयोगी कला मानव समाज के लिए उपयोगी होती है।

➤ ललित कला :-

सौंदर्य या लालित्य भावनाओं को व्यक्त करने वाली कलाएं ही ललित कला कहलाती हैं अर्थात् वह कला जो हमें सौंदर्य और आनंद का अनुभव कराती है। जैसे– चित्रकलाएं, संगीत, नृत्य, नाटक, तथा विभिन्न प्रकार की कलाएं। ललित कला का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। अतः ललित कला का नामकरण केवल पाश्चात्य संपर्क की देन है। ‘पाश्चात्य विद्वानों’ ने ललित कलाओं के अंतर्गत सिर्फ पांच कलाएं मानी हैं। –

स्थापत्य कला, मूर्ति कला, चित्रकला, संगीत कला, एवं काव्य कला।

इसके अलावा थिएटर और नृत्य जैसी कलाएं भी शामिल हैं। आजकल ललित कला में अतिरिक्त आधुनिक रूप भी शामिल है जैसे की फिल्म, फोटोग्राफी, वीडियो उत्पादन, स्टूडियो ग्लास इन सभी रूपों को ललित कला के अंतर्गत शामिल किया गया है।

ललित कला की एक परिभाषा है कि "एक दृश्य कला जो मुख्य रूप से सौंदर्य और बौद्धिक उद्देश्यों के लिए बनाई जाती है" इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, ड्राइंग, जल रंग, ग्राफिक्स, वास्तुकला शामिल है। ललित कला और सजावटी कला या लागू कला के बीच मुख्य अंतर यह है कि ललित कला का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य और बौद्धिक है, जबकि सजावटी कला और लागू कला का मुख्य उद्देश्य व्यावहारिक उपयोग के लिए होता है।

ललित कला को मुख्य रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया गया है :-

1. दृश्य कला
2. प्रदर्शन कला या मंचीय कला

1. दृश्य कला :-

- चित्रकला
- मूर्ति कला
- वास्तुकला
- फोटोग्राफी (छायांकन)
- ग्राफिक्स

2. मंचीय कला या प्रदर्शन कला -

- संगीत कला
- काव्य कला
- नृत्य कला
- नाट्य कला
- चल चित्रकला

➤ कला के प्रकार :-

कला के कई प्रकार होते हैं, इन प्रकारों को अलग-अलग रीतियों में गिना जाता है।

(क) वस्तु , रूप अथवा तत्वों का निर्माण किया जाता है। इन्हीं के आधार पर कला के प्रकार का नाम रखा जाता है जैसे –

1. वास्तु कला या स्थापत्य कला :-

भवन निर्माण कला जिसमें वस्तुओं को एक नए और रचनात्मक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें वस्तुओं को उनके मूल रूप से अलग करके एक नए अर्थ में प्रस्तुत किया जाता है जैसे – मंदिर, स्तूप, चैत्य, मकबरे आदि।

2. मूर्तिकला :-

इसमें एक ठोस वस्तु को आकार देकर एक नए रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे – पत्थर, धातु, लकड़ी छोटी बड़ी मूर्तियां।

3. चित्रकला :-

इसमें रंगों और आकारों का उपयोग करके दृश्य या भावना को प्रस्तुत किया जाता है जैसे— भवन की भित्तियों, वस्त्र, भोजपत्र या कागज पर अंकित चित्र।

4. मुद्राकला :-

इसमें सिक्के और मोहरे बनाई जाती हैं।

(ख) कभी-कभी जिस पदार्थ से कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है, उस पदार्थ के नाम पर कला का प्रकार जाना जाता है जैसे –

1. प्रस्तरकला : इसमें पत्थर या अन्य कठोर सामग्रियों पर चित्र या डिजाइन बनाए जाते हैं।

2. धातुकला : इसमें धातु, काँसे, ताँबे अथवा पीतल को आकार देकर विभिन्न प्रकार की वस्तुएं व मूर्तियां बनाई जाती हैं।

3. दंतकला : इसमें हाथी के दांत से कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है।

4. मूर्तिका कला : इसमें मिट्टी से निर्मित कलाकृतियाँ या खिलौने बनाए जाते हैं।

5. चित्रकला : इसमें रंगों और आकारों का उपयोग करके दृश्य या भावनाओं को प्रस्तुत किया जाता है।

(ग) मूर्तिकला भी अपने निर्माण शैली के आधार पर प्रायः दो प्रकार की होती है –

1. मूर्ति कला : इसमें चारों ओर तराशकर मूर्ति का रूप दिया जाता है। ऐसी मूर्ति का अवलोकन आगे से, पीछे से चारों ओर से किया जाता है।

1. उत्कीर्ण कला
2. भास्करीय कला

➤ समाज में कला :-

कला व्यक्ति की भावनाओं और विचारों को व्यक्त करती है। व्यक्तित्व सामाजिक समायोजन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है किसी भी संस्कृति में पाए जाने वाले सामाजिक मूल्यों, बाध्यताओं और परंपराओं को कला के रूप में प्रदर्शित करती है साथ ही संस्कृति जो व्यक्ति के लिए चुनौती रखती है, वह भी कला के रूप में प्रमाणित होती है। संसार के प्रति व्यक्ति की गहरी भावनाएं कला के माध्यम से व्यक्त होती हैं। आदि कवि वाल्मीकि का उदाहरण इसके लिए उचित है – ऋषि नित्य की भांति स्नान के लिए जा रहे थे, रास्ते में उनके सामने एक मार्मतक दृश्य आया। पेड़ पर बैठे प्रेम मग्न क्रौंचे पक्षियों के जोड़े में एक आखेटक का शिकार होकर गिरा। उसकी साथिन के करुण विलाप से ऋषि का हृदय विचलित हो उठा, उसके मुख से अनायास ही काव्य फूट पड़ा – “मां निषाद प्रतिष्ठाम्.....”। यह संसार का प्रथम काव्य उद्गार था।

समाज में मानव की दिनचर्या की गतिविधियों जैसे – व्यवसाय, मनोरंजन, धर्म, उत्सव, राज्य व शासन आदि के लिए निश्चित नियम और मापदंड होते हैं। समाज में मानव इन्हीं मापदंडों के द्वारा अपनी प्रतिक्रिया देते हैं।

कला ही समाज के सौंदर्य को अनेक रूपों में हमारे सामने प्रदर्शित करती है। समाज और कला दोनों रचनात्मक, मानसिकता के निरंतर फलती-फूलती हैं। कलाकार इसी समाज का एक अंग होकर उसके साथ चलता है और उसके उदाहरण कलाकृतियों में उपस्थित है। इसी कारण कला समाज का ही प्रत्यक्ष रूप है।

कला का दूसरा काम व्यक्ति और वातावरण के बीच में संतुलन बनाए रखना है। यदि यह संतुलन न हो तो उस समाज का जीवन टूट जाता है। कला जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा न रहकर अलग पड़ जाती है। इसका एक अच्छा उदाहरण है कि औद्योगिक क्रांति के बाद का समाज। इसमें तकनीकी प्रगति की बाढ़ आई। इसमें ऐसी परिस्थितियां बनीं कि मानव कला को भूल गया, न कला जीवन का अभिन्न अंग रही और ना ही मनुष्य की रुचि रही। मनुष्य पागल की तरह बहता जा रहा है।

कला कुछ उच्च लोगों का मनोरंजन व सजावटी सामग्री बची है। ऐसे लगता है कि आधुनिक जीवन में कला एकदम कट गई है। कला जीवन का अनिवार्य अंग नहीं है।

समाज में कला शक्ति और संजीवनी उर्जा बनाए रखती है। वह समाज में समायोजन व संतुलन बनाए रखती है। जब कभी भी समाज में अत्याचार व अव्यवस्था होती है, तो कला एक आश्रय प्रदान करती है।

कला समाज में एक ऐसा हथियार है जिसके द्वारा वह व्यक्तियों को घड़ सकती है, उनके विश्वास, आकांक्षाओं और भावनाओं को रूप देती है जिससे वह समाज में शांति ला सके और समाज में सुविधाजनक होकर रहे। कुछ संस्कृतियां समाप्त हो जाने पर भी अपनी कला सामग्री के रूप में जिंदा रहती हैं। उदाहरण के लिए हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से मिली हुई सामग्री उस समय के सांस्कृतिक जीवन को प्रकट करती है। समाज में कला महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कला समाज की सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने और आगे बढ़ाने में मदद करती है।

➤ भारत में कला

भारत में कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भारत में कला सौंदर्यशास्त्र और दर्शन की गहराई, धर्म व शास्त्रों से उत्पन्न हुई है। इन्हें सांसारिक महत्वहीन या क्षणिक सुख का साधन नहीं माना गया। कला में जीवन का सार है। कि कला के भीतर जीवन के मूल तत्वों को दर्शाना हैं। इसमें कल्पना, आदर्श, प्राचीन परंपरा आदि छिपी हैं।

भारतीय वाग्दमंय में कला शब्द का सबसे पहला प्रयोग ऋग्वेद में मिला है। इसके बाद कई शास्त्र शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय ब्राह्मण, अरण्यक और अथर्ववेद में कला शब्द का प्रयोग किया गया है। भारतीय कला की अवधारणा यूनानियों से भिन्न रही, कला का शिल्प के रूप में नहीं, बल्कि दर्शन और आध्यात्मिकता के माध्यम के रूप में देखा गया है, सांसारिक रूप में नहीं। भारत में कला संस्कृति की गहराई और विविधता को प्रदर्शित करती है। भारत में कला के प्रमुख रूप जैसे मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य कला, हस्तशिल्प और कारीगरी है।

➤ कला की विशेषताएं :-

1. सृजनात्मकता :-

कला में सृजनात्मक का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें कलाकार अपनी कल्पना, अनुभव, रचनात्मकता का उपयोग करके नए व अलग रूपों का निर्माण करता है।

2. भावनात्मक अभिव्यक्ति :-

कला भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम है जिसमें कलाकार अपनी भावनाओं को रंगों, आकारों, ध्वनियों और शब्दों के द्वारा व्यक्त करता है।

3. सौंदर्य और आकर्षण :-

कला का उद्देश्य सौंदर्य और आकर्षण को पैदा करना है जो दर्शकों को आकर्षित करता है तथा कला के साथ जोड़ता है।

4. सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व :-

कला सांस्कृतिक और इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है जो हमें अतीत की घटनाओं और मूल्यों, परंपराओं की जानकारी प्रदान करती है।

5. व्यक्तिगत्ता और अनोखापन :

व्यक्तिगत्ता और अनोखापन का कला में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसमें कलाकार अपनी विशिष्ट शैली और दृष्टिकोण का उपयोग करके अपनी कला को अलग बनाता है।

6. आत्मव्यक्ति :-

इसमें कलाकार अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करता है। इसलिए कला में आत्मव्यक्ति को शक्तिशाली माध्यम माना जाता है।

7. प्रेरणा :-

कला प्रेरणा का एक शक्तिशाली स्रोत है जो लोगों को नए विचारों, भावनाओं और अनुभवों के लिए प्रेरित करती है।

8. संवाद :-

कला संवाद का एक महत्वपूर्ण माध्यम है जिसमें कलाकार अपने दर्शकों के साथ संवाद स्थापित करता है।

भारतीय चित्रकला का इतिहास

भारतीय चित्रकला की भारतीय कला में बहुत लंबी परंपरा और इतिहास है। सबसे शुरुआती भारतीय पेंटिंग प्रागैतिहासिक काल की शैल चित्रकारी थी। पाषाण काल से ही मनुष्य ने गुफाओं में चित्र बनाना शुरू कर दिया था। होशंगाबाद और भीमबेटका क्षेत्र में कदराओं और गुफाओं में मनुष्य के चित्रण के प्रमाण मिले थे। इन चित्रों में शिकारी शिकार करते हुए, मानव समूह में स्त्रियां तथा पशु-पक्षियों आदि के प्रमाण मिले। भीमबेटका शैलाश्रयों में पाए गए पाषाण युग के कुछ शैल चित्र लगभग 10,000 साल पुराने हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में जलवायु परिस्थितियों के कारण आज बहुत कम शुरुआती उदाहरण बचे हैं।

भारत के प्राचीन हिंदू और बौद्ध साहित्य में चित्रों से सजाए गए महलों और अन्य इमारत के उल्लेख हैं। अजंता की गुफाओं में की गई चित्रकारी कई शताब्दियों में तैयार हुई थी। इसकी सबसे प्राचीन चित्रकारी ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी की है। इन चित्रों में भगवान बुद्ध को अलग-अलग रूपों में दर्शाया गया है। भारतीय चित्रकला को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है— भित्तिचित्र, लघु चित्र और कपड़े पर चित्रकारी। भित्तिचित्र वे बड़े काम हैं जो दीवारों पर बनाए जाते हैं जैसे कि अजंता की गुफाओं और कैलाशनाम मंदिर। लघु चित्र छोटे पैमाने पर बनाए जाते हैं और किताबों या एल्बमों में रखे जाते हैं। कपड़े पर चित्रकारी अक्सर लोक कला के रूप में, उदाहरण के लिए महाकाव्य कविता के यात्रा करने वाले पाठकों द्वारा उपयोग की जाती थी जैसे कि राजस्थान के भोपा और अन्य जगहों पर चित्रकथी और तीर्थयात्राओं के स्मृति चिन्ह के रूप में खरीदी जाती थी। बहुत कम बची हुई कलाकृतियां लगभग 200 साल से पुरानी हैं। लेकिन यह स्पष्ट है कि यह परंपरा बहुत पुरानी है।

➤ प्रागैतिहासिक शैल कला :-

प्रागैतिहासिक चित्रकलाएं आमतौर पर चट्टानों पर बनाई जाती थी और इन चट्टानों पर नक्काशी को पेट्रोग्लिफ कहा जाता था। इन चित्रों में आम तौर पर बाइसन, भालू, बाघ आदि जानवरों को दर्शाया जाता है। सबसे पुरानी पेंटिंग गुफाओं में की गई रॉक आर्ट है जो लगभग 30 हजार साल पुरानी है जैसे भीमबेटका गुफा चित्र।

1. साहित्य :-

चित्रकला पर कई महत्वपूर्ण भारतीय ग्रंथ हैं। इसमें से कुछ प्रमुख ग्रंथ हैं जो चित्रकला के बारे में विस्तार से बताते हैं। इनमें से कुछ बड़े विश्वकोश जैसे ग्रंथों के भीतर अध्याय हैं, वे 4वीं और 13वीं शताब्दी के बीच के हैं।

- चित्रसूत्र, हिंदू ग्रंथ विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अंतर्गत अध्याय 35—43
- नग्नजित का चित्रलक्षण
- संमरागण सूत्रधार
- अपराजिताप्राच्छा
- मानसोल्लासा
- अभिलाषीतार्थ चिंतामणि
- शिल्प रत्न

चित्रकला पर यह ग्रंथ भारतीय विचारों, चित्रकला के सिद्धांत और अभ्यास पर चर्चा करते हैं। इसमें अन्य विषयों पर भी चर्चा की गई है जैसे कि अन्य कलाओं से चित्रकला के संबंध, कैनवास या दीवार तैयार करने के तरीके, रंग रजक बनाने की विधियां। इन ग्रंथों में चित्रकला के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

2. भित्तिचित्र :-

भारतीय भित्तिचित्रों का इतिहास बहुत पुराना है। प्रारंभिक मध्यकालीन समय से शुरू होता है जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर 8वीं—10वीं शताब्दी ईस्वी तक है। भारत में 20 से ज्यादा ऐसी जगह है जहां इस कला के भित्तिचित्र पाए जाते हैं जिसमें मुख्य रूप से प्राकृतिक गुफाएं और चट्टानों से बने कक्ष शामिल हैं। इसमें अजंता की गुफाएं, बाघ, एलोरा गुफाएं शामिल हैं।

इन भित्तियों में मुख्य रूप से बौद्ध, जैन, हिंदू धर्म के धार्मिक विषयों को दर्शाया गया है। लेकिन कुछ स्थान ऐसे भी थे जहां चित्रकला धर्मनिरपेक्ष थी। इसमें छत्तीसगढ़ की सबसे पुरानी ज्ञात चित्रित गुफा और रंगमंच जोगीमारा और सीता बेगा गुफाएं शामिल हैं, जो तीसरी से पहले शताब्दी ईसा पूर्व के बीच की हैं।

➤ 11वीं शताब्दी से पहले की लघु चित्रकारी :-

भारतीय चित्रकला के प्रारंभिक अवशेष मुख्य रूप से लघु चित्र हैं, जो ग्रंथों या बक्से जैसी वस्तुओं पर बनाए गए हैं। कपड़े पर बड़ी पेंटिंग के अस्तित्व के प्रमाण होने के बावजूद मध्ययुगीन भारतीय पेंटिंग के बहुत कम नमूने बचे हैं। कुछ बौद्ध पेंटिंग तिब्बत और मध्य एशिया से मिली हैं जो भारतीय पेंटिंग की शैली में बनाई गई हैं। 11वीं और 12वीं शताब्दियों में लघु चित्रकला का आगमन हुआ जो ताड़ पत्ता पांडुलिपियों पर उकेरे गए चित्रों के रूप में सामने आईं।

1. पूर्वी भारत :-

पूर्वी भारत में बौद्ध धर्म के केंद्र नालंदा, ओदंतपुरी, विक्रमशिला और सोमपुरा थे। इन केंद्रों में 10वीं शताब्दी से लघु चित्रकला का विकास हुआ। इन लघु चित्रों में बौद्ध देवताओं और बुद्ध के जीवन के दृश्य को दर्शाया गया है। ये चित्र ताड़ के पत्ते की पांडुलिपियों पर बनाए गए थे। पूर्वी भारतीय चित्रकला का प्रभाव म्यांमार और तिब्बती थगकां चित्रकला में भी देखा जा सकता है।

2. पश्चिमी भारत :-

पश्चिमी भारत, विशेष रूप से गुजरात से बची हुई सचित्र पांडुलिपियों 11वीं शताब्दी के आसपास की है। इन पांडुलिपियों में ज्यादातर जैन धर्म के ग्रंथ हैं। जिनमें कल्प सूत्र सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। कल्प सूत्र में तीर्थंकरों की जीवनी और उनकी कहानियां हैं। पार्श्वनाथ और महावीर की जीवनी शामिल है। इन पांडुलिपियों के चित्रकला में विशिष्ट शैली और रंगों का इस्तेमाल हुआ है जिसमें सोने का बहुत ज्यादा इस्तेमाल होता है। जिसमें सोने का बहुत ज्यादा इस्तेमाल होता था इन चित्रों में आकृतियों को तीन चौथाई दृश्य में दर्शाया गया, जिसमें विशिष्ट नाक और आंख दिखाई दे।

➤ भारतीय चित्रकला का षडंग :-

प्राचीन ग्रंथों में चित्रकला के छह महत्वपूर्ण पहलुओं को परिभाषित किया गया है। इन छह अंगों का अनुवाद इस प्रकार किया गया है —

1. रूपभेदा : दृष्टि का ज्ञान
2. प्रमाण : ठीक अनुपात, नाप तथा बनावट
3. भाव : आकृतियों में दर्शक की चित्रकार के हृदय की भावना दिखाई दे।
4. लावण्य योजना : सौंदर्य का समावेश तथा कलात्मक
5. सादृश्य : देखे हुए रूपों की समान आकृति
6. वर्णिका भंग : ब्रश और रंगों का प्रयोग करने का कलात्मक तरीका

बौद्धों द्वारा चित्रकला के बाद के विकास से संकेत मिलता है कि इन छह अंगों को भारतीय कलाकारों द्वारा व्यवहार में लाया गया था और यह वे मूल सिद्धांत हैं जिन पर उनकी कला आधारित थी।

➤ प्रारंभिक आधुनिक काल (1526—1857ई) :-

1. मुगल चित्रकला :-

मुगल चित्रकला भारतीय चित्रकला की एक शैली है जो आमतौर पर पुस्तक पर चित्रण तक सीमित है और जो लघु चित्रों में की जाती है। वह 16वीं और 19वीं शताब्दी के बीच मुगल साम्राज्य की अवधि के दौरान उभरी, विकसित हुई और आकार लिया। मुगल शैली फारसी लघु चित्रों से काफी प्रभावित थी और बदले में इसने कई भारतीय शैलियों को प्रभावित किया, जिसने चित्रकला की राजपूत, पहाड़ी और दक्कन शैलियां शामिल हैं।

मुगल चित्रकला भारतीय, फारसी और इस्लामी शैलियों का अनोखा मेल थी। मुगल राजा शिकारी और विजेताओं के रूप में अपने कार्यों के दृश्य रिकॉर्ड चाहते थे। इसलिए उनके कलाकार सैन्य अभियानों या राज्य के मिशनों में उनके साथ जाते थे।

अकबर के शासनकाल ने भारतीय लघु चित्रकला में एक नए युग की शुरुआत की। अपनी राजनीतिक शक्ति को मजबूत करने के बाद फतेहपुर सीकरी में एक नई राजधानी बनाई। जहां उन्होंने भारत में दो फारसी मास्टर कलाकारों मीर सैयद अली और अब्दुस समद की देखरेख में एक एटलियर स्थापित किया। इससे पहले दोनों ने काबुल में हुमायूँ के अंतर्गत काम किया था और 1555 में सिंहासन वापस पा लिया, तो वह उनके साथ भारत आए 100 से अधिक चित्रकारों को नियुक्त किया गया था जिन्होंने चित्रकला के एक नए स्कूल को जन्म दिया। जिसे मुगल स्कूल ऑफ़ मिनीएचर पेंटिंग्स के नाम से जाना जाता है।

लघु चित्रकला के उस स्कूल द्वारा एक ओर प्रारंभिक उत्पादन अकबर हमजानामा पांडुलिपि थी जो की दरबारी इतिहासकार बदायुनी के अनुसार 1567 में शुरू हुई थी और 1582 में पूरी हुई थी। हमजानामा पैगंबर के चाचा अमीर हमजा का एक महाकाव्य फारसी विवरण है जिसे मीर सैयद अली द्वारा चित्रित किया गया था। अकबर की पेंटिंग बड़ी और कपड़े पर चित्रित थी।

उसके बाद जहांगीर ने कलाकारों को चित्र और दरबार के दृश्य का चित्रित करने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके सबसे प्रतिभाशाली चित्रकार उस्ताद मंसूर, अबुल हसन और बिशन दास थे।

शाहजहां ने चित्रकला का संरक्षण जारी रखा। इस काल में कुछ प्रसिद्ध कलाकार थे जैसे मीर हाशिम, छीतरमन, मनोहर आदि थे। औरंगजेब को ललित कलाओं में कोई रुचि नहीं थी। संभवतः उसके इस्लामी रूढ़िवादी के कारण। संरक्षण की कमी के कारण, कलाकार दक्कन और राजपूताना के हिंदू दरबारों में चले गए, जिससे इन केंद्रों की शैलियों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

➤ ब्रिटिश औपनिवेशिक काल :-

1. कंपनी शैली :-

18वीं शताब्दी में जब भारत में कंपनी का शासन शुरू हुआ तो उस समय बड़ी संख्या में यूरोपीय लोग भारत में आकर बस गए। कंपनी शैली एक ऐसी पेंटिंग शैली है जो भारतीय और यूरोपीय

कलाकारों द्वारा बनाई गई थी। इस शैली में राजपूत और मुगल चित्रकला के पारंपरिक तत्वों को पश्चिमी तकनीक के साथ मिश्रित किया गया था।

2. प्रारंभिक आधुनिक भारतीय चित्रकला:-

18वीं शताब्दी की शुरुआत में भारत में तेल और चित्रफलक चित्रकला की शुरुआत हुई जिसके कारण कई यूरोपीय कलाकार भाग्य की तलाश में भारत आए। भारत की रियासतों के दरबार ने यूरोपीय कलाकारों को आकर्षित किया। भारतीय कलाकारों ने पश्चिमी प्रभाव को आत्म सुधार के साधन के रूप में देखा। कला विद्यालयों की स्थापना ने भारतीय कला के पश्चिमीकरण को बढ़ावा दिया।

भारत में सबसे पहले औपचारिक कला विद्यालय स्थापित किए गए। अर्थात् मद्रास में गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स (1856), कोलकाता में गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ एंड क्राफ्ट (1854) और मुंबई में सर जेजे स्कूल आफ आर्ट।

राजा रवि वर्मा आधुनिक भारतीय चित्रकला के अग्रणी थे। उन्होंने तेल चित्रकला और चित्र फलक चित्रकला के साथ पश्चिमी परंपराओं और तकनीक का उपयोग किया। हिंदू देवताओं और महाकाव्य के प्रसंग को चित्रित किया। 19वीं शताब्दी के अन्य प्रमुख भारतीय चित्रकार महादेव विश्वनाथ धुरंधर, ए.एक्स त्रिनदे, एम.एफ. पीठावाला, सावलाराम लक्ष्मण हल्दाकर और हेमेन मजूमदार।

आर शिव कुमार के अनुसार 19वीं सदी में भारतीयों ने पश्चिमी संस्कृति को अपनाने के साथ-साथ अपनी परंपराओं को भी बचाया। इसमें राष्ट्रवादी सांस्कृतिक आंदोलन का जन्म हुआ। अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने पश्चिमी प्रभावित यथार्थवाद और एशियाई तत्वों दोनों का उपयोग किया। जिसने उन्हें "प्रारंभिक आधुनिकतावाद के करीब" ला दिया। इससे बंगाल कला विद्यालय का पुनरुत्थान हुआ, जो भारतीय संस्कृति को समृद्धि को प्रदर्शित करता है।

3. बंगाल स्कूल :-

बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट एक प्रभावशाली शैली थी जो 20वीं सदी की शुरुआत में ब्रिटिश राज के दौरान फली फूली। यह भारतीय राष्ट्रवाद से जुड़ी थी, परंतु कई ब्रिटिश काल प्रशंसकों ने इसको बढ़ावा दिया। बंगाल स्कूल एक ऐसा आंदोलन था जिसने भारतीय कला में एक नए युग की शुरुआत की। यह अकादमिक कला शैलियों और ब्रिटिश प्रभाव के खिलाफ एक प्रतिक्रिया थी जो उस समय भारतीय कला में प्रचलित थी। इस आंदोलन के पीछे एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे अर्नेस्ट बिन फील्ड हैवेल, जो ब्रिटिश कला शिक्षक थे। उन्होंने कोलकाता स्कूल ऑफ आर्ट में शिक्षण विधियों में सुधार करने का प्रयास किया, लेकिन इससे विवाद हुआ और छात्रों ने हड़ताल कर दी। हालांकि इस आंदोलन को कवि और कलाकार रवीन्द्र नाथ टैगोर के भतीजे अवनीन्द्रनाथ टैगोर का समर्थन मिला। उन्होंने अजंता

चित्रकला शैली से प्रभावित कई कृतियां चित्रित की और सबसे प्रसिद्ध पेंटिंग भारत माता में एक युवा महिला को हिंदू देवी देवताओं की तरह चार भुजाओं के साथ दिखाया गया है।

आजादी के बाद आधुनिकतावादी विचारों के प्रसार के साथ भारतीय कला परिदृश्य पर बंगाल स्कूल का प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगा। इस आंदोलन में के.जी. सुब्रमण्यन की भूमिका महत्वपूर्ण है।

➤ स्वतंत्रता के बाद (1947 वर्तमान) :-

भारतीय कला पर औपनिवेशिक काल के दौरान पश्चिम प्रभावों का प्रभाव पड़ा। कुछ कलाकारों ने भारतीय विषय को चित्रित करने के लिए पश्चिमी विचारों का उपयोग किया, जबकि अन्य जैसे जामिनी रॉय ने लोक कला से प्रेरणा ली। भारती दयाल ने पारंपरिक मिथिला पेंटिंग को समकालीन तरीके से प्रस्तुत किया और अपने काम में यथार्थवाद और अमूर्तता का संयोजन किया।

1947 में स्वतंत्रता के बाद, भारत में कला के कई विद्यालय स्थापित हुए। इन विद्यालयों ने आधुनिक तकनीक और विचारों को बढ़ावा दिया। कलाकारों ने प्रदर्शनी के लिए दीर्घाएँ स्थापित की। आधुनिक भारतीय कला में पश्चिमी शैलियों का प्रभाव दिखाई देता है, लेकिन यह अक्सर भारतीय विषयों और छवियों से प्रेरित होती है। प्रमुख कलाकारों को जब अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली रही थी।

1947 में स्वतंत्रता के बाद, प्रगतिशील कलाकार समूह की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य भारत के नए तरीकों से अभिव्यक्त करना था। समूह के संस्थापकों में के.एच.आरा, एसके बाकरे, एमएफ हुसैन और रजा शामिल थे। समूह का प्रमुख प्रभाव भारतीय कला पर बहुत पड़ा था। 1950 के दशक में लगभग सभी प्रमुख कलाकार इस समूह से जुड़े थे। इसमें मनीषा डे, वी.एस. गायतोडे, और अकबर बदमाशी जैसे प्रसिद्ध कलाकार शामिल थे। इन कलाकारों ने भारतीय कला को नई दिशा दी और आधुनिक भारतीय कला के प्रतीक बन गए।

कला इतिहासकारों ने उनकी कृतियों को भारतीय लोकचित्र का प्रतिबिम्ब माना। भारतीय कला के बारे में, चर्चा में वृद्धि कला विद्यालयों में कला के प्रति दृष्टिकोण को और मजबूत किया। गीता कपूर और आर शिव कुमार जैसे आलोचकों ने भारत में समकालीन कला अभ्यास पर फिर से विचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने क्यूरेटर के रूप में भूमिका निभाई, जिससे आधुनिकता और भारतीय कला को फिर से परिभाषित किया जा सके।

1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण के बाद, भारतीय कला को बढ़ावा मिला। विभिन्न क्षेत्रों में कलाकारों ने अलग-अलग शैलियों में कलाकृतियाँ बनानी शुरू कर दी। इस दौरान कलाकारों ने नई अवधारणाएं पेश की, जो पहले भारतीय कला में नहीं देखी गईं। देवज्योतिरे ने एक नई शैली की शुरुआत की जो पूरी तरह से भारतीय धरती पर विकसित हुई है। यह शैली अमूर्तता की भारतीय अवधारणा को ध्यान में रखती है और भारतीय जीवन के नियमित दृश्यों को शानदार छवियों में बदलने के लिए इसका उपयोग करती है।

➤ अमूर्त चित्रकला का स्वरूप :-

1. आकृतियों में सरलीकरण :-

अमूर्त चित्रण एक ऐसी कला है जिसमें चित्रकार बाहरी दुनिया से प्रेरणा लेता है। लेकिन इसमें प्रकृति के बाहरी स्वरूप को नहीं दिखाया जाता बल्कि उसके पीछे छिपे सत्य को प्रस्तुत किया जाता है। चित्रकार स्वतंत्र होकर स्वच्छंद रंगों और रेखाओं के माध्यम से अपने अंदर के भाव को व्यक्त करता है। यह कला वस्तु निरपेक्ष नहीं है, वस्तुनिरपेक्ष कला के संबंध में एक विद्वान ने लिखा है कि— “वस्तु के ब्रह्मा रूप से सुख प्राप्त होता है तो आंतरिक चैतन्य से जीवन”।

चित्रों में रेखाएँ व रंग वही होते हैं, परंतु चित्रकार उनको नए-नए तरीकों से प्रयोग करता है। इसमें चित्रकार की भावनाएं मुख्य भूमिका निभाती हैं। सर हरबर्ट रीड ने ‘फिलास्फी ऑफ मॉडर्न आर्ट’ में ठीक ही लिखा है कि आधुनिक काल ‘इलेस्ट्रेशन’ नहीं ‘इण्टरप्रटेशन’ है। ‘प्रतिभा’ नहीं प्रतीक है, क्योंकि कलाकार जो भी चित्र बनाता है उसके पीछे गहन अर्थ छुपे होते हैं तथा चित्रकार द्वारा चित्रित आकृतियां विभिन्न भावों का प्रतीक होती हैं, जिन्हें समझने में कभी-कभी दर्शकों को मुश्किल होती है। इसलिए चित्रों में अभिव्यक्ति के साथ-साथ सम्प्रेरण होना जरूरी है।

आधुनिक भारतीय चित्रकार रजा के चित्रों में सरल ज्यामितियां आकृतियां देखने को मिलती हैं। उन्होंने अपनी आंतरिक भावनाओं को पहले ही की गई यात्राओं तथा प्रकृति से जुड़े अनुभवों को अपने दृश्य चित्रों में विभिन्न सरल प्रतीकों तथा ज्यामितिया आकृतियों के द्वारा संसार, जल तथा प्राकृतिक आदि विभिन्न चित्रों में व्यक्त किया। रजा के चित्रों में आकृतियां विलीन होने लगी तथा अनुभव भरा वातावरण जिसे अमूर्त कहा जाता है, प्रकट होने लगा।

अंग्रेजों के शासनकाल में भारत में यथार्थवादी चित्रण हुआ। यथार्थवाद का तात्पर्य है संसार के बाह्य रूप की प्रधानता इसके प्रचार के लिए अंग्रेजों ने भारत के कई स्थानों पर कला के स्कूल खोल दिए और यथार्थवादी चित्रों की जगह-जगह पर प्रदर्शनियां होने लगी। परंतु कुछ समय के बाद भारतीय चित्रकार यथार्थवादी कला में बंधा हुआ महसूस करने लगे थे। 19वीं शताब्दी में सामाजिक तथा राजनीतिक उथल-पुथल हुई तथा भारतीय चित्रकारों ने आजाद होकर कार्य करना शुरू कर दिया। अब भारतीय कला समाजवादी से हटकर व्यक्तिवादी हो गई। कलाकारों ने नई दिशाओं की ओर कदम बढ़ाते हुए नए प्रवाहों को जन्म दिया। अब भारतीय कलाकार अपनी आंतरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने लगे। इन कलाकारों ने यथार्थ सौंदर्य को इस प्रकार नकार दिया और सभी कलाकारों ने अपने लिए नए नियम बना लिए। भारत में अमूर्त कला का प्रारंभ गगनेंद्र नाथ के द्वारा धनवाद के माध्यम से हुआ। गगनेंद्रनाथ पहले ऐसे कलाकार थे जिन्होंने अपनी कलाकृतियों में अमूर्त तत्वों का समावेश किया। वह धनवाद से बहुत प्रभावित थे।

2. प्रतीकात्मकता :-

19वीं सदी में अंग्रेजों के साथ पाश्चात्य कला भी भारत आई, जिसमें यथार्थ चित्रण प्रमुख था। इसका प्रभाव भारतीय चित्रकारों पर भी पड़ा तथा यथार्थवादिता की ओर अग्रसर होती गई। कलाकारों ने सादृश्यता के आधार पर चित्र बनाए, लेकिन जल्द ही उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की भावना को व्यक्त करने के लिए नए तरीके खोजे। शुरु में ही अपने भावों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति मानव में रही है। आधुनिक चित्रकारों ने जिस प्रकार आत्माभिव्यक्ति को आगे बढ़ाया है, उसी प्रकार प्रागैतिहासिक चित्रकला मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की कला इसके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार भारतीय आधुनिक कलाकारों ने अमूर्त चित्रण की शुरुआत की। उनका मानना है कि कला में ऐसी आकृतियों का प्रयोग किया जाए जो न कभी दर्शकों ने देखी हो या जो भौतिक संसार से बिल्कुल अलग हो। इसके लिए कलाकारों ने अपनी कला में अलग-अलग प्रतीकों का प्रयोग किया है। दासल के अनुसार – प्रतीक अभिव्यक्ति का संक्षिप्त और मूर्त का साधन है। जिस प्रकार एक बीज के अंदर वृक्ष का अस्तित्व छिपा रहता है, उसी प्रकार प्रतीक में कलाकार की अनेक भावनाएं समाई रहती हैं।

आदिकाल में भी मनुष्य ने अपनी अनुभूतियों और इच्छाओं को प्रकट करने के लिए कला में प्रतीक का ही प्रयोग किया है। आदिमानव को ज्यादा ज्ञान नहीं था कि वह वस्तु पूर्ण चित्र बना सके इसलिए उन्होंने उन वस्तुओं को प्रतीक के रूप में बनाना शुरु किया था। ऐसा कहा गया है कि इन प्रतीकों के पीछे भय, उपासना, रहस्य, अतिविश्वास आदि भावनाएं रही हैं।

आदिमकला ही नहीं अजंता कला भी प्रतीकात्मक है। इसमें उपासनो की मनोरम छटा दिखाई पड़ती है। अजंता में महात्मा बुद्ध के जीवन की कथाओं को प्रतीक के रूप में दिखाया गया है। इस युग में मूर्ति पूजा वर्जित थी, इसलिए बुद्ध के प्रतीक जैसे वृक्ष, चक्र, स्तूप, छात्र तथा कमल का प्रयोग पूजा के लिए होता था।

कला पर समाज, राजनीतिक आदि सभी का बहुत प्रभाव पड़ता है। किंतु धर्म का व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा है। कलाकारों ने देवी देवताओं को प्रतीकात्मक शैली में बनाया है, क्योंकि कभी भी किसी ने भी देवी देवताओं को नहीं देखा या कवल कल्पना और पौराणिक ग्रन्थों में स्थित स्वरूप से चित्रकारों ने उनकी रचना की जैसे— सरस्वती श्वेत की देवी कही जाती है। श्वेत वर्ण में अंकित है क्योंकि श्वेत वर्ण ज्ञान का प्रतीक है। आधुनिक अमूर्त कलाकार नए-नए तरीकों को अपने चित्रों में उपयोग करते हैं जैसे डूबता हुआ सूरज, निराशा तथा उड़ती चिड़िया स्वतंत्रता का प्रतीक है। अमूर्त चित्रकारों ने केवल प्रतीक रूपों को ही नहीं बल्कि प्रतीक रंगों का भी प्रयोग किया जैसे लाल रंग क्रोध उत्तेजना का, हरा रंग खुशी का, लेकिन आधुनिक अमूर्त चित्रकारों ने यथार्थ रूपों का त्याग किया और रंगों का भी त्याग किया। उन्होंने रंगों का प्रयोग अपने मूड के हिसाब से करना शुरु कर दिया।

3. प्रतिरूपात्मक अंकन :-

कलाकार शुरुआत से ही अपनी कला दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहता है तथा अलग प्रयोग करना चाहता है। स्वतंत्रता मिलने से पहले भारतीय कलाकारों ने पाश्चात्य प्रभाव से जुड़े हुए चित्र बनाए, जिसमें कलाकार ने जैसा बाहर से संसार देखा वैसा ही चित्रित किया। वह जीवन को उतना ही यथार्थ मानते थे जितना उसको अपनी आंखों से देखा। दुनिया के बाहर के रूप को सच मानते थे।

राजा रवि वर्मा ने यथार्थ चित्रण बनाए थे उन्होंने सामाजिक तथा धार्मिक विषय पर यथार्थवादी चित्र बनाए। भारत के लोग उनकी कला से बहुत प्रभावित हुए थे। किंतु कुछ समय बाद कलाकारों को यथार्थ चित्रण में रुचि कम होने लगी क्योंकि अब वह इस कला से जकड़ा हुआ महसूस करने लगे थे। वह आजाद होने के लिए छटपटाने लगे। अब चित्रकारों ने अपनी मर्जी से तथा नई सोच से चित्र बनाना शुरू कर दिया था।

जब कलाकार किसी वस्तु के बाहर के स्वरूप की अपेक्षा करता है तथा उसमें निजी भावनाओं का समावेश करता है। उसे अभिव्यंजना कहते हैं अभिव्यंजना का अर्थ होता है— भावना का प्रकटीकरण।

अमूर्त चित्रकारों ने कला को संगीत के समान माना है जिसमें कलाकार वस्तु सादृश्य के बिना ही उसकी रचना करता है। इसी प्रकार चित्रकार भी प्रत्यक्ष वस्तु के सादृश्य के बिना ही रंगों और आकारों के जरिए अपनी भावनाएं व्यक्त करता है।

कान्डिसकी के अनुसार — कलाकृति में दो तत्व होते हैं, एक आंतरिक व दूसरा बाह्य। आंतरिक भावनाएं दर्शकों के समान भावनाओं को जगाने में समर्थ होती है, आंतरिक भावनाओं का होना जरूरी है नहीं तो कलाकृति पाखंड मात्र है।

चित्रकार अपने मन में अनेकों अनुभवों को इकट्ठा करता रहता है तथा अमूर्त चित्रण करते समय उनका प्रतिरूप अपने चित्रों में अंकित करता है। इसके लिए वह विभिन्न प्रतिकों का भी प्रयोग करता है।

➤ अमूर्त चित्रण के विकास में चित्रकारों का योगदान :-

1. एफ.एन.सूजा :-

एफ.एन.सूजा एक प्रसिद्ध भारतीय चित्रकार थे जिन्होंने अमूर्त कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अमूर्त कला को भारत में लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूजा ने अपनी कलाकृतियों में सुंदरता के पीछे की गहराई को चित्रित किया है। उनकी कला में तेज और कटीली रेखाएं होती हैं, जो उनकी मुख्याकृतियों को और भी आकर्षक बनाती हैं। वे आकर में छोटे होते हैं, जबड़ा चिपका हुआ, मुंह खुला हुआ और विभिन्न जगहों से उग आये आंख, नाक, उन्हें अजीब

दुनिया का आदमी बनाते हैं। सूजा की कुछ अमूर्त कृतियों में उन्होंने चेहरे को सीधे रेखाओं से बनाया है, जो बहुत ही अस्पष्ट और अनोखा है। सूजा ने अपनी कृतियों में सौंदर्य और दरकिनार कर कंटीली, नुकीली, भयानक अमूर्त मानव कृतियां बनाई।

2. कृष्ण हवाल जी आरा :-

कृष्ण हवाल जी आरा ने प्रायोगिक रूप से भी अनेकों चित्र बनाए हैं। कभी ज्यामितीय तो कभी प्रतीक वादी चित्र, कभी जल रंग, तो कभी तैल रंग या सिर्फ चारकोल, कभी स्टील लाइफ तो कभी अमूर्त चित्रण। अमूर्त चित्रों में उन्होंने आकृतियों को सरल एवं अस्पष्ट बनाकर रंगों को फैलाकर लगाया है। इसी प्रकार उनका एक संघर्ष भरा चित्र है “Let We for get Hit Sacrifice” के जी.आरा. ने भारतीय कला में अमूर्तता की शुरुआत की, जो उस समय एक नए और अनोखे विचार के रूप में सामने आई। अमूर्तकला के विकास में उनका बहुत योगदान रहा है।

3. सैयद हैदर रजा :-

सैयद हैदर रजा अमूर्त चित्रकला के क्षेत्र में एक पुराना नाम है जिन्होंने अपनी कृतियों के जरिए अमूर्त चित्रकला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। रजा के जरिए भारतीय अमूर्त कला ने भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी अपने विशेष पहचान बनाई है। रजा के अंदर भारत की मिट्टी की गंध बसी हुई है। अपने बचपन की यादों और यात्राओं के समय देखे गए प्राकृतिक दृश्य को उन्होंने बड़ी आसानी से वर्षों बाद भी अपने चित्रों के माध्यम से साकार रूप दिया। रजा की अभिव्यक्ति में काफी बदलाव देखने को मिला है। शिक्षा पूरी करने के उपरांत उन्हें एक “लैंडस्केप आर्टिस्ट” के रूप में काफी ख्याति मिल चुकी थी। उस समय चित्र एवं चित्रकला के प्रति स्थापित मान्यताएं तेजी से बदल रही थी और अमूर्त अंकन की दिशा में मुख्य धारा का बहाव स्पष्टतर देखा जा रहा था। उस समय बहुत चित्रकारों ने उसमें अपनी रुचि दिखाई थी। उन चित्रकारों में एक नाम रजा का भी था, जिन्होंने अपनी कला के माध्यम से अमूर्त चित्रण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

4. मकबूल फिदा हुसैन :-

मकबूल फिदा हुसैन का अमूर्त कला के विकास क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी कला में हम अमूर्तता के भी दर्शन करते हैं। उन्होंने अपने आकृतियों को रेखाओं में बांधकर उन्हें एक पूर्व और अपवर्तनीय रूप में बनाया है। हुसैन की कला में हम अमूर्त कला के मुख्य गुणों को देखते हैं। उन्होंने अपने चित्रों में रंगों और प्रतीकों का उपयोग विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किया है।

उन्होंने रंगों और प्रतीकों को इस तरह से उपयोग किया जो दर्शकों को एक विशेष भावना या अर्थ की ओर ले जाता है। हुसैन के संपूर्ण जीवन का प्राथमिक प्रतीक भारतीय नारी है जो अनेक प्रकार की पीड़ा सहती हैं वह पीड़ा, वेदना और घुटन की प्रतीक हैं। उन्होंने अपनी कृति “मदर टेरेसा” में चेहरे को न दिखाकर मात्रा उनकी साड़ी का नीला किनारा बनाया। हुसैन ने अमूर्त कला को नए स्तर पर पहुंचा है।

5. कृष्ण खन्ना :-

कृष्ण खन्ना का अमूर्त कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। कृष्ण खन्ना अमूर्त चित्रण करने वाले चित्रकारों में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। शुरुआत में उन्होंने आकृति मूलक में किया था, परंतु बाद के वर्षों में उन्होंने अमूर्त में काम किया और नए व अनोखे तरीके से अपनी कला को प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने चित्रों में संगीत को भी स्थान दिया था, तथा एक पूरी रागमाला चित्रित की है।

6. रामकुमार :-

रामकुमार भारत के उन महत्वपूर्ण चित्रकारों में से एक है जिन्होंने भारत में अमूर्त कला की स्थापना की। रामकुमार एक चित्रकार होने के साथ-साथ एक संवेदनशील कथाकार भी हैं। रामकुमार ने इन दोनों ही क्षेत्रों में संतुलन बनाकर रखा है। वे अपनी रचनाओं के बारे में कम बात करते हैं। रामकुमार के वाराणसी के दृश्य चित्रों की श्रृंखला तथा स्केच आधुनिक चित्रण अमूर्त शैली के उत्तम उदाहरण हैं। सन 1970 के पश्चात उनके चित्रों में अमूर्तता ज्यादा प्रदर्शित थी क्योंकि उनके गुरु ‘फर्नान्ड लीगर’ क्यूब शैली के उस्ताद थे। अपने दृश्य चित्रों में रामकुमार, खण्डों में आकाश, पृथ्वी, प्रकृति आदि को अंकित करते हैं।

7. वी.एस. गायतोण्डे :-

भारत में अमूर्त चित्रण के विकास में गायतोण्डे का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके चित्रों की गहराई हमारे मन को छू जाती है। गायतोण्डे ने शुरुआत में आकृतिपरक चित्रों का सृजन किया जो धीरे-धीरे अमूर्त की ओर बढ़ने लगा। उन्होंने अपने चित्रों में आध्यात्मिक और अमूर्त विषयों को चित्रित किया। उनकी चित्रकला में स्त्रियों का चित्रण प्रमुख या खासकर नृत्य करती नर्तकी। उनका दृष्टिकोण अमूर्तवादी था उसमें उन्होंने रंगों और आकृतियों का उपयोग करके अमूर्त कला द्वारा अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त किया। उन्होंने नर्तकी को स्पष्ट नहीं बनाया, कुछ-कुछ भागों में अमूर्त जैसे

बनाया है। 1950 के उपरांत उनके चित्रों में अमूर्तन का प्रारंभ होता है जो कि अंत तक रहा। इससे उनके दृश्य चित्रों में एक मौन तथा शांति प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि हम किसी ध्यानस्थ योगी के मन में प्रवेश कर रहे हैं। गायतोण्डे ने अपनी कृतियों के माध्यम से भारतीय कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गायतोण्डे उन चित्रकारों में से हैं जिन्होंने अमूर्तन को भारत में स्थापित करने का सराहनीय प्रयास किया।

8. जहांगीर सवाबाला :—

जहांगीर सवाबाला एक प्रसिद्ध चित्रकार थे जिन्होंने अमूर्त कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जहांगीर सवाबाला धनवाद से प्रभावित हुए कार्य करते-करते उनका रुझान अमूर्त कला की ओर चला गया और अनेक अमूर्त चित्रों का सृजन किया जैसे **Noon Princess Unmoving Stand** आदि उन्होंने रेखाओं का प्रयोग न करके केवल रंगों के माध्यम से ही इस चित्र को पूरा किया है, जो एक अलग दुनिया का प्रतीत होता है। वे अपने अमूर्त कार्य के संबंध में कहते हैं कि — “मेरे विकास की जो परंपरा रही उसकी यह अनिवार्य मांग थी कि इसके बाद में अमूर्त चित्रण की ओर बढ़ूं। क्योंकि उसमें प्रभाववाद का तत्व क्यूबिज्म का विश्लेषण तत्व और बुद्धि कलाकार की आंतरिक भावनाओं को निर्वाध अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है”। उनके चित्रों में हमें अमूर्त कला के गुण देखने को मिलते हैं, सरलीकरण के जरिए वे दृश्यों और आकृतियों को उनके मूल रूप से तोड़ते हैं।

9. हरिपाल त्यागी :—

हरिपाल त्यागी का अमूर्त कला को भारत में स्थापित करने का सराहनीय प्रयास रहा है। उन्होंने अमूर्त चित्रों का निर्माण एक बहुत बड़ी संख्या में किया है। उनके अमूर्त चित्रों में उदासी झलकती है जो जीवन के कड़वे सत्य को उजागर करती है। उन्होंने अमूर्त चित्रों की एक से पांच तक श्रृंखला बनाई थी, जिसमें उन्होंने जीवन की उलझन, बिखराव को दिखाया है। वे अपने चित्रों में आड़ी-तिरछी रेखाओं एवं गर्म रंगों का प्रयोग करते थे जैसे उनका चित्र “पेंटिंग एक” में इस प्रकार की रेखाओं का प्रयोग किया है जो जीवन की उलझन को व्यक्त करती है। वे अपने अमूर्त चित्रों में अलग-अलग टेक्सचर का प्रयोग करते थे।

कुरुक्षेत्र का इतिहास

कुरुक्षेत्र भारत के इतिहास जितना ही पुराना है। कुरुक्षेत्र जिले के जिस क्षेत्र में स्थित है उसका इतिहास प्राचीन आर्य अतीत से जुड़ा हुआ है। हालांकि कभी-कभी यह अस्पष्ट रूप से भी पता चलता है। डॉ.आर.सी मजूमदार के अनुसार— “यह आर्यों के भारत में प्रवास से पहले भी एक धार्मिक संस्कृतिक केंद्र था”। यहीं पर महाभारत का महान युद्ध हुआ था और यह महाभारत की पुरानी कथाओं से जुड़ा हुआ है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत गीता के पहले श्लोक में मिलता है। यहीं पर श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। इसलिए इस क्षेत्र को धर्म का क्षेत्र कहा गया है। इसी धरती पर वेदों के महान ऋषियों ने ज्ञान प्राप्त किया और आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त किया। यहीं आदि पुरुष मनु द्वारा मनुस्मृति की रचना की गई थी। प्रसिद्ध सम्राट कुरु ने इसी स्थल पर कई वर्षों तक कठोर कृषि का कार्य करके भगवान विष्णु से इस भूमि को महाफलदाई बनाने का वरदान प्राप्त किया था। यहीं पर महाभारत के युद्ध की विशाल रणभूमि में मोहग्रस्त अर्जुन को भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद् भागवत गीता का संदेश दिया, जो सदियों तक मानवता को सही राह दिखाता रहेगा।

ऐसा कहा जाता है कि कुरुक्षेत्र का इतिहास हड़प्पा पूर्व और हड़प्पा युग से भी पुराना है। कुछ जगहों से पुरानी मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह 1700 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व के माने गए हैं। कहा जाता है कि यहां स्थित विशाल तालाब का निर्माण महाकाव्य महाभारत में वर्णित कौरवों और पांडवों के पूर्वज राजा कुरु ने करवाया था, इसलिए कुरुक्षेत्र को कौरवों का क्षेत्र भी कहा जाता है।

कुरुक्षेत्र शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख कृष्ण यजुर्वेद की मैत्राणी सखा में मिलता है। ऋग्वेद साक्ष्यों के अनुसार आर्यों की प्रमुख जातियां भरत एवं पुरु इस भूमि से संबंधित रही हैं। कुरुओं के इस स्थान को कुरुक्षेत्र के नाम से विख्यात किया गया है। प्रचलित मान्यताओं के अनुसार राजा कुरु ने 48 कोस कुरुक्षेत्र भूमि में ही सोने का हल चलाकर यहां आध्यात्मिक चिंतन का बीज बोया था।

वास्तव में कुरुक्षेत्र के क्षेत्रों में कितने परिवर्तन और क्रांतियां देखी हैं। इसी पवित्र स्थान पर सूर्य ग्रहण पर्व पर भगवान श्री कृष्ण गोकुल छोड़ने के बाद एक लंबी अवधि के पश्चात अपने बाबा नंद और माता यशोदा व गोपियों से दोबारा मिले। इसकी गोद में 18 अक्षहिणी सेना साई युद्ध का आकाश, महाराजा प्रभाकर वर्धन के यज्ञ से निकला काला धुआं, अंतिम चक्रवर्ती हिंदू सम्राट हर्षवर्धन के जय घोषों की बड़ी लड़ाईयां, जिसने भारतीय इतिहास को ऐतिहासिक मोड़ दिया है। कुरुक्षेत्र में ही भगवान बुद्ध ने लोगों को अहिंसा का प्रवचन दिया था, इसी धरती पर जगतगुरु शंकराचार्य ने बुद्ध पर तीखे

प्रहार किए। यही के मुसलमान, विद्वान, सुल्तान ने महाभारत का संस्कृत के फारसी भाषा में अनुवाद किया।

सातवीं शताब्दी में कुरुक्षेत्र अपने चरम पर था। सम्राट हर्षवर्धन के राज्य कवि बाणभट्ट ने उस समय के कुरुक्षेत्र का वर्णन इस प्रकार किया है कि मानो कुरुक्षेत्र पृथ्वी पर स्वर्ग की तरह था, जहां पुण्यशाली लोग रहते थे जैसे कि यहां पर सतयुग की व्याख्या हो गई है। यहां यज्ञ की अग्नियों से निकलने वाले धुएं के कारण आकाश से अचानक जल बरस गया, जैसे कि वर्षों से जमी हुई धूल और मैल धुल गई हो।

धर्मक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र भूमि का इतिहास भारतीय संस्कृति के इतिहास जितना ही पुराना है। धर्म क्षेत्र कहे जाने वाली इसी पावन भूमि पर समय-समय पर देवताओं और ऋषि मुनियों, महापुरुषों को सेवा करने का अवसर मिला है, परंतु भगवान श्री कृष्ण का इस धरती से विशेष नाता रहा है। चाहे वह महाभारत युद्ध से पहले सूर्य ग्रहण के अवसर पर उनका कुरुक्षेत्र सन्निहित सरोवर पर स्नान करने प्रसंग हो, या महाभारत युद्ध में अर्जुन के सारथी के रूप में 18 दिन तक इसी भूमि में यत्र-तत्र विचरण करना। उनकी विशिष्ट छवि कुरुक्षेत्र के जनमानस के हृदय में लोक कथाओं, कहानियों के रूप में आज भी जिंदा है। भगवान श्री कृष्ण के मुख से निकले श्रीमद् भागवत गीता के अमृत शब्द आज मानवता के इतिहास में एक उच्चतम दर्शन के रूप में स्थापित हो चुके हैं।

महाकवि बाणभट्ट ने कुरुक्षेत्र के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हुए अपनी अनोखी शैली में यहां के बहुआयामी जनजीवन का वर्णन करते हुए लिखा है कि मुनि लोग इसे तपोवन कहते हैं, सब इसे अपनी दृष्टि से अलग-अलग तरह से देखते हैं जैसे कलाकार इसे चिंतामणि की भूमि समझते हैं, सैनिक इसे वीर भूमि कहते हैं, विद्यार्थियों के लिए यह गुरुकुल है, गणचार्य इसे गन्वर्धन नगर समझते हैं, व्यापारी इसे धन कमाने की जगह समझते हैं, भिक्षु इसे बौद्ध विहार कहते हैं, चरणों के अनुसार यह महोत्सव का समाज है और धन का प्रवाह समझते हैं।

आज वस्तुतः एक नगर व जिले में सीमित हो चुका है। कुरुक्षेत्र कभी एक विस्तृत भूखंड था। वैदिक तैत्तिरीयअरण्य से पता चलता है कि इसकी उत्तरी सीमा तुर्ध्न और सुर्ध्न (जिला यमुनानगर से में सधु ग्राम), दक्षिणी सीमा खांडव (वर्तमान दिल्ली में प्राचीन इंद्रप्रस्थ) तथा पश्चिम में मरुदेश (मरुस्थल) थी। इससे पता चलता है कि कुरुक्षेत्र कहे जाने वाले इस विशाल क्षेत्र का आकार आज के हरियाणा प्रांत से भी बड़ा था। यदि इस प्रकार देखा जाए तो यह क्षेत्र उत्तर में शिवालिक की पहाड़ियों से लेकर दक्षिण में अरावली तक तथा पश्चिम में मरुस्थल से लेकर पूर्व में यमुना तक फैला रहा होगा।

कुरुक्षेत्र का पौराणिक महत्व अधिक माना जाता है। इसका ऋग्वेद और यजुर्वेद में अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है। यहां की पौराणिक नदी सरस्वती का भी अत्यंत महत्व है। इसके

अतिरिक्त अनेक पुराणों, स्मृतियों और महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। विशेष तथ्य यह है कि कुरुक्षेत्र की पौराणिक सीमा 48 कोस की मानी गई है। जिसमें कुरुक्षेत्र के अतिरिक्त कैथल, करनाल, पानीपत और जींद का क्षेत्र सम्मिलित है।

कुरुक्षेत्र भूमि में 5000 वर्ष से भी पुराने अनेक मुरुस्थल विराजमान है। इस भूमि के प्रमुख पुरास्थलों में कुणाल, बाणावली, बालू तथा अभी हाल में ही उत्खनित भिंडराना से पुरातत्विक अवशेष प्रकाश में आए हैं। परंतु इन स्थलों के कौन से काल में महाभारत का युद्ध हुआ था इस विषय के बारे में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं है, लेकिन भूमि से कई चित्रित मृदभाण्डीय संस्कृति के पुरास्थल जैसे जोगनखेड़ा, भगवानपुरा, कर्ण का टीला तथा समस्त हरियाणा में बहुत से ऐसे पुरास्थल मिले हैं जिनका संबंध महाभारत काल से जुड़ा हुआ है।

कनिधम् के अनुसार यह धरती 160 मिल के विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है जो महाभारत में वर्णित समंत पंचक (20 योजन भूमि का पूर्ण चक्र) से मेल खाती है। कनिधम ने जनश्रुति के आधार पर यहां 306 तीर्थ होने की चर्चा की है। ये सभी तीर्थ पौराणिक दृष्टि से सत् त्रेता व द्वापर युग, ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत पूर्ववर्ती व परवर्ती काल से संबंधित है। पूर्व में स्तूप यक्ष, पश्चिम में अरस्तु यश, दक्षिणी-पश्चिमी में रामहद यक्ष एवं दक्षिण-पूर्व में मच क्रुक यश का श्रेष्ठ वर्णन मिलता है। इन्हीं चार यक्षों के द्वारा ही रचित इस आयतोकार भूमि की परिधि 48 कोस मानी गई है। जिसमें 366 तीर्थ की उपस्थिति कही गई है। इन तीर्थ स्थलों का वर्णन पौराणिक घटनाओं एवं महाभारत की घटनाओं में लिखा गया है। जैसे महाभारत के आदि पर्व वामन पुराण, मतस्य एवं एकन्य पुराण आदि ग्रंथ।

वैदिक एवं परावर्ती साहित्य में कुरुक्षेत्र भूमि और उससे जुड़ी कथाओं एवं प्रसंगों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिसमें कुरुक्षेत्र में स्थित शर्यणावत सरोवर के पास इंद्र को महर्षि दधिचि से अस्थियों की प्राप्ति, पूरवा व उर्वशी का पुर्नमिलन, परशुराम द्वारा अत्याचारों से क्षत्रियों के रक्त से पांच कुंड भरने का प्रसंग एवं वामन अवतार जैसे कई आख्यान प्रसिद्ध है।

महाभारत के युद्ध का इतिहास आज हम यहां के मंदिरों की छतों पर, दीवारों पर और हवेलियों में बने भित्तिचित्रों में देखने को मिलता है। इस चित्रकला को देखकर ऐसा लगता है कि निरंतर संजीव की उपस्थिति की अनुभूति होती है। इसका उद्देश्य ऐसी कला पर प्रकाश डालना है जो हमारे इतिहास में मिलती है। जिस तरह एक चित्रकार अपनी कला व रचना को चित्रित करता है उसी प्रकार छतों और दीवारों पर महाभारत और रामायण से संबंधित देवी-देवताओं के सुंदर रूपों को चित्रित किया गया है। इन प्राचीन मंदिर, हवेलियों, अन्य जगहों पर भित्ति चित्र हैं। कुरुक्षेत्र भूमि में स्थित इन तीर्थों में ब्रह्म सरोवर, ज्योतिसर, सन्निहित सरोवर, पर्यटक तीर्थ, अतिथि तीर्थ, स्थानेश्वर महादेव मंदिर, भद्राकाली मंदिर, रामहद तीर्थ, सालवन तीर्थ, मुनि तीर्थ इत्यादि कई महत्वपूर्ण स्थल हैं।

कुरुक्षेत्र की पावन धरती पर श्री स्थानेश्वर महादेव मंदिर स्थित है। लोक मान्यता है कि महाभारत के युद्ध से पूर्व भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन समेत यहां भगवान शिव की उपासना कर आशीर्वाद प्राप्त किया था। यहां पर हजारों देशी-विदेशी पर्यटक दर्शन हेतु आते हैं।

कुरुक्षेत्र की इसी धरोहर में श्री कृष्ण संग्रहालय भी आता है। कुरुक्षेत्र की इसी महान धरोहर के कारण इस क्षेत्र की प्रसिद्ध धर्म क्षेत्र के रूप में हुई। इसका महत्व आज से लगभग 1500 वर्ष पहले लाओस में स्थापित है। लाओस से प्राप्त कुरुक्षेत्र महाम्य में इस भूमि की पूरी प्रशंसा की गई है।

इन तीर्थों से आज भी बहुत कीमती पुरातत्विक सामग्री जैसे वास्तु कला व चित्रकला, मूर्ति कला के नमूने मिलते हैं। इस क्षेत्र की भित्तिचित्र कला में महाभारत, कृष्ण तथा पौराणिक प्रसंगों पर आधारित चित्रों के दर्शन होते हैं।

द्वितीय अध्याय

- कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय का संक्षिप्त परिचय
- श्रीकृष्ण कथा व कथा पर आधारित चित्र

कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय का संक्षिप्त परिचय

श्री कृष्ण सभी आकर्षक और सुंदर चीजों में समाहित हैं। वह सौंदर्य, मोहक व शाश्वत का प्रतीक है। उन्हें एक महानायक माना जाता है जो धर्म और बुराई का नाश करते हैं। अपने हृदय और मन में कृष्ण की अनुभूति करो। वह शाश्वत, सर्व व्यापक और धर्म के गुणों की परिमूर्ति हैं। वह हमें संसार के रहस्य को समझने के लिए आवश्यक ज्ञान प्रदान करते हैं जिससे हमें पुरुष और प्रकृति के संबंधों का बोध होता है। श्री कृष्ण का प्रेम और आशा हमें परम सुख की ओर ले जाता है। वे ही सृष्टि के रचयिता, पालनकर्ता और विनाशक है। आइए, हम श्री कृष्ण को उनके चित्रों और कथाओं के माध्यम से समझने का प्रयास करें। इससे हमें निश्चित रूप में उस प्रकाश और शांति की ओर ले जाएगा, जहां प्रेम, शांति और निष्ठा का साम्राज्य है।

बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रकाश के अवतरण श्री कृष्ण देवत्व काल से ही लोगों की भक्ति और पूजा का केंद्र रहे हैं। प्रत्येक संग्रहालय की अपनी एक अनोखी पहचान और विशेषता है जो उनके चरित्र और मूल्यों को दर्शाती है। भगवान श्री कृष्ण के विचारों और आदर्शों से लोगों के नैतिक और सांस्कृतिक उत्थान को बढ़ावा देने के लिए श्री कृष्ण संग्रहालय की स्थापना की गई है।

श्री कृष्ण संग्रहालय कुरुक्षेत्र का एक ऐसा संग्रहालय है जिसमें भगवान श्री कृष्ण और महाभारत से जुड़ी कलाकृतियों और प्रदर्शनियों को प्रदर्शित किया गया है। यह संग्रहालय हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र में स्थित है जो भगवान श्री कृष्ण की जन्म भूमि और महाभारत का युद्ध स्थल है।

श्री कृष्ण संग्रहालय की स्थापना 13 अप्रैल 1987 में माननीय गुलजारीलाल नंदा जी जो कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के संस्थापक थे, उनके द्वारा की गई थी। उस समय केवल स्थापना हुई थी, परंतु संग्रहालय का विधिवत 28 जुलाई 1991 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री आर.वैकटारमन के द्वारा किया गया था।

श्री आर.वैकटारमन ने पहले भवन खंड का उद्घाटन किया था। जैसे-जैसे संग्रहालय में संग्रह बढ़ता गया। फिर 1995 में दूसरा भवन खंड बनाया गया, जिसका उद्घाटन हरियाणा के राज्यपाल द्वारा किया गया था। 2012 में तीसरा ब्लॉक जोड़ा गया जिसे मल्टीमीडिया महाभारत गैलरी के नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल जी के द्वारा की गई थी। वर्तमान में श्री कृष्ण संग्रहालय में तीन ब्लॉक हैं।

परंतु वर्तमान में चौथे ब्लॉक बनाने की योजना चल रही है। चौथे ब्लॉक के जरिए महाभारत कालीन भारत क्या था, इस ब्लॉक के माध्यम से बताया जाएगा। चौथे ब्लॉक में महाभारत की भूमि कुरुक्षेत्र उसका सांस्कृतिक परिदृश्य क्या है, उसका पुरातत्विक परिदृश्य क्या है, उससे लोगों को

13. haryanatourism.gov.in. 20 Jan 2025, 9:08

14. kurukshetra.gov.in/hi/tourist-place, 22 Jan 2025, 10:15

आवगत करवाएंगे। भगवान श्री कृष्ण से संबंधित उनकी यादगार में ऐतिहासिक से लेकर अभी तक कहां पर तीर्थ स्थल बनाए गए हैं, यह सब चौथे ब्लॉक में स्थापित किए जाएंगे।

इस संग्रहालय में प्राचीन मूर्तियां, नक्काशी और पेंटिंग, डायोरमा, विशाल मूर्तियां, अवास्तविक ध्वनियां और भूल भुलैया से होकर गुजरने वाली सैर सहित कई तरह की प्रदर्शनियां हैं। इस संग्रहालय में कई विशाल पेंटिंग और बड़ी स्क्रीन है जिन पर महाभारत के विभिन्न दृश्य दिखाए गए हैं। यह संग्रहालय भगवान श्री कृष्ण के पथ के रहस्य को उजागर करता है। यह संग्रहालय रचनात्मकता से भरा हुआ है और इसमें महाभारत और श्रीमद् भागवत गीता में वर्णित कृष्ण के बहुमुखी व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इस संग्रहालय में नौ गैलरी है, एक ब्लॉक में तीन गैलरी हैं, यानी की तीन ब्लॉक हैं, परंतु भविष्य में जब चौथा ब्लॉक बनकर तैयार हो जाएगा तो इस संग्रहालय में 12 गैलरी हो जाएगी।

हरियाणा के मुख्य वास्तुकार की देखरेख में श्री कृष्ण संग्रहालय का डिजाइन तैयार किया गया था। श्री कृष्ण संग्रहालय को बनाने में काफी समय लगा था। सबसे पहले सन 1985 से 1986 में बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई थी, इसके बीच में 1985 से 1987 तक संग्रह को प्रदर्शित किया गया, जिसमें दो साल का समय लगा था। जब तक पहला चरण पूरा हुआ था, तो दूसरी इमारत बनकर तैयार हो गई थी। फिर 4 साल बाद उस संग्रह को पहली इमारत में प्रदर्शित किया गया था। 1991 – 1995 के बीच के संग्रह को दूसरे भवन खंड में प्रदर्शित किया गया था और फिर 2008 से 2012 के बीच में मल्टीमीडिया महाभारत गैलरी की स्थापना हुई, जिसे बनाने में 4 साल का समय लगा था।

श्री कृष्ण संग्रहालय में कुल आठ कमरे हैं, जिसमें चार कमरे बड़े और चार कमरे छोटे हैं। छोटे कमरों में स्टोर और सोनीआर्ट शॉप का सामान रखा जाता है। इस संग्रहालय में एक पुस्तकालय भी बनाया गया है, जहां पर दर्शन, धर्म, संस्कृति, साहित्यिक, पुरातत्व, कला इन विषयों से संबंधित पुस्तकें हैं। आज के समय में वहां पर लगभग 3500 के करीब पुस्तकें हैं। श्री कृष्ण संग्रहालय में आज के समय में 15 से 14 वर्कर कार्य करते हैं, परंतु कोरोना काल की वजह से 13 से 14 वर्करों को हटाया गया था जिससे वर्तमान में वर्करों की संख्या कम है। इस संग्रहालय में प्रदर्शित की जाने वाली चीजें हैं :-

1. पत्थर की मूर्तियां
2. कांस्य ढलाई
3. पत्ती नक्काशी
4. लघु चित्रकारी
5. मिट्टी के बर्तन
6. टेराकोटा कलाकृतियां

7. आभूषण

यह संग्रहालय महाभारत के इतिहास को दर्शाता है। इस संग्रहालय में विभिन्न और अज्ञात भारतीय कलाकारों द्वारा बनाई गई बहुत ही सुंदर कलाकृतियां हैं। पूरे संग्रहालय में बहुत बड़े आकार के चित्र प्रदर्शित किए गए हैं, जो महाभारत की कहानी और भगवान श्री कृष्ण के जीवन के विभिन्न चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्री कृष्ण संग्रहालय में ज्यादातर चित्र पिछवाई के मौजूद हैं। यह चित्र श्री कृष्ण के लीलाओं पर आधारित है। इसमें मिनीएचर पेंटिंग भी प्रदर्शित है और कांगड़ा पेंटिंग का एक सेट प्रदर्शित है, जिसमें 26 पेंटिंग है। इसमें गीता के उपदेश देते हुए श्री कृष्ण को अलग-अलग चित्रों के माध्यम से बताया गया है।

श्री कृष्ण संग्रहालय कुरुक्षेत्र का मुख्य आकर्षण और पर्यटन स्थलों में से एक है। कला प्रेमियों के लिए यह एक बहुत ही सुंदर संग्रहालय है। इस संग्रहालय में विभिन्न भारतीय राज्यों की असंख्य पेंटिंग और मूर्तियां प्रदर्शित की गई हैं जैसे राजस्थानी पेंटिंग जयपुर से, मधुबनी पेंटिंग बिहार से और उड़ीसा के पट्ट चित्र संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इस संग्रहालय में दीवार पेंटिंग भी प्रदर्शित है जिन पर विभिन्न शैलियों में महाभारत कथा पर आधारित प्रसंगों का चित्रण किया है, जिन्हें 2002 में महाभारत उत्सव के दौरान भारत के अलग-अलग राज्यों से आए कलाकारों द्वारा बनाया गया था। संग्रहालय में लगभग 300 से 400 के करीब पेंटिंग प्रदर्शित हैं।

विभिन्न गैलरियों में चित्तरा, तालपत्र चित्र, वर्ली और मधुबनी पेंटिंग्स प्रदर्शित है। भगवान श्री कृष्ण की लकड़ी की मूर्तियां विभिन्न रूपों और विभिन्न आकारों में प्रदर्शित की गई हैं। इनमें से कुछ मूर्तियां तो बहुत बड़ी हैं। इस संग्रहालय में भगवान श्री कृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसंगों को दर्शाया गया है जैसे भारी बारिश के बीच वासुदेव द्वारा शिशु कृष्ण को टोकरी में रखकर नदी पार करना, कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को अपनी छोटी उंगली की नोक पर उठाना ताकि गांव के लोगों को हानिकारक बारिश से बचा सके आदि। इस संग्रहालय में ऐतिहासिक आभूषणों का भी खंड है जिसमें बनावली, कुणाल, फतेहाबाद, हरियाणा के आभूषण प्रदर्शित हैं।

इस संग्रहालय में भारतीय चित्रकार राजा रवि वर्मा के प्रिंट भी मौजूद हैं जैसे सरस्वती का प्रिंट जिसे वह शोभिनयार के तौर पर देते हैं। श्री कृष्ण संग्रहालय में स्कूल और कॉलेज के बच्चों को बुलाकर पेंटिंग और पोस्टर की प्रतियोगिता भी करवाते हैं, जिससे वह बच्चों के अंदर कला के प्रति भावनाओं को उत्पन्न कर सके और बच्चों के लिए इस संग्रहालय में फ्री समर कक्षाएं भी आयोजित की जाती हैं।

➤ पहला भवनखण्ड :-

पहले भवनखण्ड में तीन गैलरी बनाई गई है। पहली गैलरी में श्री कृष्ण कथा पर आधारित कलाकृतियां, धातु से बनी मूर्तियां, काष्ठ एवं हाथी दांत के उत्कीर्णन हैं। प्राचीन काल से ही काष्ठ का उपयोग भारत में भवन निर्माण में किया जा रहा है। इस गैलरी में उड़ीसा, तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश से प्राप्त काष्ठ मूर्ति शिल्प का एक बड़ा संग्रह प्रदर्शित है। यह प्रदर्शित काष्ठ कलाकृतियों में उड़ीसा से प्राप्त 18वीं-19वीं शती ईसवी की शैली में निर्मित चार काष्ठ फलक है, जिनमें भगवान विष्णु के दशावतारों तथा श्री कृष्ण की बाल लीलाओं को दिखाया गया है। उड़ीसा से प्राप्त दूसरे काष्ठ उत्कीर्णों एवं मूर्तियों में अरिष्ठावध, केसीवध, दधिमथन एवं पूतना वध आदि प्रसंगों का चित्रण है। तमिलनाडु से प्राप्त काष्ठ की मूर्तियों में एक विशेष शैली की स्थूलता दिखाई देती है। इनमें से एक वेणुगोपाल की काष्ठ मूर्ति है, जिसमें भगवान श्री कृष्ण के बांसुरी बजाने का सुंदर चित्रण है। दशावतार फलक, कालियामर्दन, गजेंद्र मोक्ष तथा दधिपात्र को उल्टते हुए बालकृष्ण का चित्रण है। उड़ीसा से प्राप्त हाथी दांत पर बनी कलाकृतियों में त्रिभंग मुद्रा में खड़े श्री कृष्ण व श्री कृष्ण लीला संबंधित प्रसंग सम्मिलित हैं।

दूसरी गैलरी में कुरुक्षेत्र भूमि तथा हरियाणा के आद्य ऐतिहासिक कला के पुरातात्विक स्थल से मृदभाण्ड, द्वारका से मिले पुरावशेष, विष्णु-कृष्ण कथा पर हरियाणा के अनेक भावों तथा मथुरा से मिली प्रस्तुत मूर्तियों का संग्रह प्रदर्शित है। कुरुक्षेत्र में प्राचीन काल से ही कला, वास्तु कला और संस्कृति की समृद्धि के दर्शन होते हैं। यहां पर प्रदर्शित मूर्तियों में संघेल से मिली प्रथम शती ईस्वी में निर्मित एकांशा की मूर्ति बालुका पत्थर से निर्मित है। समुद्र के नीचे तथा समुद्र तट दोनों के उत्खन्न एस.आर.राव के अनुसार द्वारका से प्राप्त उत्तर हड़प्पा कालीन मृदपात्रों, शंख शिल्प की वस्तुओं, मुद्राओं तथा एक मृदपात्र पर मिली।

तीसरी गैलरी में लघुचित्रों, ताड़पत्रों पर बने चित्रों तथा श्रीमद्भागवत गीता, महाभारत और भागवत की पांडुलिपियां प्रदर्शित हैं। इस गैलरी में राजस्थानी एवं पहाड़ी लघु चित्र प्रदर्शित हैं जो महाभारत के प्रसंग पर आधारित हैं। यहां पर पटचित्र भी प्रदर्शित हैं। इस गैलरी में कांगड़ा लघु चित्रों का एक समूह है जिसमें 26 चित्र प्रदर्शित हैं। इस गैलरी के मध्य भाग के ऊपर बनी अष्टकोणीय दीवार पर भागवत एवं महाभारत कथा के प्रसंगों पर आधारित 8 पटचित्र प्रदर्शित हैं। यहां दिखाए गए प्रसंगों में श्री कृष्ण द्वारा रुक्मणी हरण, शिशुपाल वध, श्री कृष्ण के पास सैनिक सहायता हेतु पहुंचे दुर्योधन एवं अर्जुन, परीक्षित को जीवन दान देते हुए श्री कृष्ण एवं यादव कुमारों को यदुवंश के विनाश का शाप देते हुए ऋषि मुनियों को दिखाया गया है।

➤ दूसरा भवनखण्ड :-

दूसरे भवनखण्ड में तीन गैलरी बनाई गई है। इसकी पहली गैलरी में श्री कृष्ण कथा पर आधारित झांकियां बनाई गई हैं जिसमें नवजात कृष्ण को यमुना पार ले जाते हुए वासुदेव, माखन चोरी प्रसंग, कृष्ण द्वारा बकासुर वध, गोवर्धन धारण करते हुए श्री कृष्ण, कालिया नाग का मान-मर्दन करते हुए श्री कृष्ण, रासलीला, कंस वध, सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में राधा मिलन तथा कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए अमर गीत संदेश का मनोहारी चित्रण है। यहां दिखाई गई मानव कृतियां कागज की लुगदी व महीन मिट्टी के मिश्रण से बनाई गई हैं, जिनका ढांचा लोहे की तारों से निर्मित है।

दूसरी गैलरी में दक्षिण भारत की तंजावुर चित्रण में चटक तेज रंगों तथा आभूषणों के लिए स्वर्ण पत्रों का प्रयोग किया जाता है। इस चित्रकला का मुख्य विषय वस्तु बालकृष्ण रहे हैं। संग्रहालय की इस गैलरी में बालकृष्ण को देखते हुए अनेक चित्र प्रदर्शित हैं। सन 2002 को कुरुक्षेत्र में वार्षिक 'गीता जयंती महोत्सव' को महाभारत उत्सव के रूप में मनाया गया था, जिसमें देश के अलग-अलग राज्यों से चित्रकार आए थे। उन चित्रकारों ने विभिन्न शैलियों में महाभारत कथा पर आधारित प्रसंगों का चित्रण किया, जिसका प्रदर्शन इस गैलरी में किया गया है। इस गैलरी में कागज पर बनी मधुबनी चित्रकला प्रदर्शित है जिसमें श्री कृष्ण जन्म से लेकर कंस वध तक के प्रमुख प्रसंग का चित्रण है।

इसकी तीसरी गैलरी मानव जीवन में नैतिक मूल्यों का महत्व प्रदर्शित करने के उद्देश्य से इस संग्रहालय में भीष्म शरशय्या के प्रसंग को दिखाया गया है। इस प्रसंग में महाभारत युद्ध के पश्चात भीष्म पितामह, युधिष्ठिर को राज धर्म एवं अनुशासन की शिक्षा देते हुए दिखाया गया है। इस गैलरी में 7 मानव कृतियों द्वारा प्रदर्शित बसंत रासलीला को दिखाया गया है।

➤ तीसरा भवनखण्ड :-

तीसरे भवन खंड में तीन गैलरी हैं। इसको मल्टीमीडिया महाभारत गैलरी कहा जाता है। मल्टीमीडिया, महाभारत एवं गीता गैलरी समेत इस संग्रहालय में कुल नौ गैलरी हैं। मल्टीमीडिया महाभारत गैलरी में महाभारत कथा की मुख्य घटनाओं को फाइबर ग्लास रिलीफ वर्क, कैनवास पर चित्रण के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। इस गैलरी का मुख्य आकर्षण 11 मिनट का गीता शो है जिसमें गीता को सरल भाषा में कृष्ण अर्जुन के संवाद के माध्यम से समझाया गया है। महाभारत भारतीय ज्ञान और बुद्धि का खजाना है।

महाकाव्य होने के अलावा महाभारत में नैतिकता, कानून, दर्शन, इतिहास, भूगोल, वंशावली और धर्म सहित मानव शिक्षा के व्यापक स्पेक्ट्रम पर लेखन का संग्रह है। इसमें कई किवदंतियां नैतिक

कहानियां और स्थानीय कहानियां भी हैं जो सभी विस्तृत कथा से बुनी गई हैं। संग्रहालय की मल्टीमीडिया महाभारत और गीता गैलरी राजा जनमेजय के नाग यज्ञ से लेकर अंत में पांडवों के हिमालय पर चढ़ने तक महाभारत की कहानी को एक रेखीय तरीके से प्रस्तुत करती है।

श्री कृष्ण कथा व कथा पर आधारित चित्र

➤ कालिया मर्दन :-

उस समय पृथ्वी, आकाश और प्राणी मात्र के शरीर में भयंकर उत्पात होने लगा। मानो, प्रकृति कुछ भयंकर घटित होने का संकेत दे रही हो। नंद और यशोदा ने सोचा इस अपशगुन का अर्थ है कि कोई ना कोई मुश्किल अवश्य आने वाली है। उन्होंने देखा कि आज कृष्ण बिना बलदाऊ के अकेला गया है और वह डर से व्याकुल हो गए। कृष्ण प्रेम में वह भूल गए कि उनका कन्हैया भगवान का अवतार है। उनके माता-पिता के मन में आ रहा था कि कन्हैया आज किसी विपत्ति में न पड़ जाए। वज्र के लोगों का स्वभाव गायों जैसा वात्सल्य पूर्ण था। नंद बाबा और यशोदा मैया के साथ ब्रजवासी भी व्याकुल हो गए। कृष्ण को देखने की लालसा से वे सब अपने-अपने घरों से निकल पड़े। बलराम भगवान श्री कृष्ण की शक्ति एवं स्वरूपों को जानते थे। दाऊ भी ब्रजवासियों के साथ कृष्ण को ढूँढने लगे। रास्ते में जहां-जहां कृष्ण के पैर के निशान दिखाई दे रहे थे और रास्ता ढूँढने में मदद मिल रही थी। वह उसी के जरिए यमुना तट पर पहुंच गए।

दूर से सब ने देखा कि श्री कृष्ण नागपाश में बंधे अचेत पड़े हुए हैं। यमुना के किनारे पर ग्वाल-बाल भी बेहोश हुए पड़े हैं। गाय, बछड़े आर्तस्वर से हंबर रहे हैं। यह देख ब्रजवासी व्याकुल हो गए। गोपियों की पीड़ा अपार थी, उनको उस काले नाग पर इतना गुस्सा आ रहा था कि उनके आसपास अचेतन भी नहीं फटक रही थी। यशोदा तो कृष्ण के पीछे यमुना में कूदने जा रही थी परंतु गोपियों ने उनको पकड़ लिया। कृष्ण वियोग में उनका विलाप नंद बाबा की कातरता मर्मभेदी थी। आखिर में बलदाऊ ने ही समझा बूझकर सबको सावतना दी। इधर कृष्ण ने सबको देखा तो नागपाश से निकलने का प्रयास किया। कृष्ण ने अपने शरीर को फुलाकर खूब मोटा किया। इससे नाग का शरीर टूटने लगा। वह फन ऊपर उठाकर अलग खड़ा हो गया और फुफकारे मारने लगा। नाग अपनी जीभ लपलपाकर अपने होठों के किनारे को चाटने लगा। वह अपनी आंखों से विष की आग उगलता जा रहा था। भगवान श्री कृष्ण भी उसकी ओर देखे जा रहे थे और पैतरा बदलकर उस पर वार करते जा रहे थे। नाग भी मौका देखकर कृष्ण पर वार करता जा रहा था। इस पैतरेबाजी में नाग की शक्ति खत्म होती जा रही थी। तब श्री कृष्ण ने नाग के फन को दबा लिया और उछलकर उस पर सवार हो गए। श्री कृष्ण नाचने में माहिर थे। उन्होंने वहां पर भी नाचना शुरू कर दिया।

नाग जो भी फन उठता, उसी पर श्री कृष्ण के पैर से दबाव पड़ता। आकाश से सिद्ध चारण, गंधर्वों ने भी कालिया मर्दन की इस लीला को देखा। नाचते हुए कृष्ण ने नाग के एक सौ सिरों को कुचल दिया और कालिया नाग शक्तिहीन हो गया। फिर भी थोड़ी शक्ति आने पर वह अपना विष

उगलता और फूँकार छोड़ने लगता था लेकिन वे सब उसकी अंतिम चेष्टाएं थी। कालिया नाग का अंग-अंग टूट गया था। वह मन ही मन भगवान श्री कृष्ण की शरण में गया। नाग पत्नियां अपने पति की हालत देखकर शोकतप्त हो गईं। उन्होंने भगवान के सामने हाथ जोड़े और प्रार्थना कि “आपने हमारे अपराधी पति को दंड दे दिया है, अब छोड़ दो।” आपने इसके पूर्व जन्म और इस जन्म के पापों का दंड दे दिया है, इसने कोई धर्म का काम किया होगा, जिससे आपके चरणों का कृपा प्रसाद इसको मिला है। हमारे ऊपर भी आपने बहुत अनुग्रह किया है।

श्री कृष्ण की ठोकरो से नाग का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। नाग-पत्नियों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर कृष्ण नाग को छोड़ देते हैं। धीरे-धीरे कालिया नाग में चेतना आने लगी। थोड़ी देर बाद उसे ज्ञात हुआ तो उसने हाथ जोड़कर कहा है – “हे परमात्मा! हम जन्म से ही दुष्ट हैं। हमारा स्वभाव ही क्रोधी है। हम जीवों के लिए अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत मुश्किल होता है। जन्मजात स्वभाव एवं आपकी माया के कारण हमने जो अपराध किया है, आप उसका दंड जैसे सही समझे दे”। तब श्री कृष्ण कहते हैं – नागदेव तुम अपने संपूर्ण कुटुंब को लेकर यहां से दूर समुद्र में चले जाओ, अब यमुना जी का यह जल केवल जीवों के लिए उपयोगी होगा। श्री कृष्ण की बात सुनकर कालिया नाग अपने पूरे वंश के साथ भगवान कृष्ण की परिक्रमा करके प्रणाम किया और वहां से रमणीक द्वीप के लिए चल दिया। यमुना का पानी केवल विषहीन ही नहीं बल्कि अमृत के समान मधुर हो गया। इस दृश्य का चित्र पेज न0. 95 पर है।

➤ गोवर्धन पूजा :—

इंद्र को अपने पद पर घमंड हो गया था। ऐश्वर्या और धन का घमंड मानव की बुद्धि का विनाश करने वाला होता है। कम से कम देवताओं में इस बात का घमंड नहीं होना चाहिए। इंद्र की बुद्धि विनाश की ओर बढ़ती जा रही थी। श्री हरि ने कृष्ण अवतार में इंद्र को शिक्षा देने का निश्चय किया। व्रज में वर्षा के स्वामी इंद्रदेव की पूजा करने की परिपाटी थी। वज्रवासी जोर-शोर से यज्ञ की तैयारी करने में लगे थे। खूब मिष्ठान, यज्ञ सामग्री और दान दक्षिणा का संग्रह को देखकर श्री कृष्ण ने नंद बाबा ने पूछा कि यह किस उत्सव की तैयारी हो रही है। तो नंद बाबा ने कहा— इंद्र की प्रसन्नता के लिए यह यज्ञ किया जा रहा है। इंद्र वर्षा के स्वामी है, उनकी कृपा से ही जल बरसता है, यह यज्ञ हमारी कुल परंपरा से चला आया है। श्री कृष्ण को इंद्र का घमंड भंग करना था। कृष्ण ने 7 वर्ष की छोटी उम्र में अपने बाबा को समझाया – “प्राणी अपने कर्म के अनुसार ही पैदा होता है, कर्म के द्वारा ही पाप-पुण्य का भागीदार बनता और मर जाता है। क्या इंद्र की पूजा के फल से उसके कर्म बदल जाते हैं? इंद्र की पूजा के बजाय हम व्रजवासी वन और पहाड़ों की पूजा क्यों ना करें, जो हमारे बाबा हैं। हम सब अपने गिरिराज की पूजा करेंगे और प्रदक्षिणा करेंगे। खूब बड़ा उत्सव मनाएंगे। सबने कृष्ण

की बात मानकर अपने-अपने छकड़ों में पूजा सामग्री अन्न एवं मिष्ठान आदि रखा और गिरिराज की पूजा करने चल पड़े। खूब धूम-धाम से हवन, पूजा, दान दक्षिणा सब हो रहा था।

इंद्र को बहुत गुस्सा आया, मेरी पूजा न करके वृजवासियों ने मुझ इंद्र की उपेक्षा की है। उन्होंने अपने बड़े बादलों को अनुमति दी व्रज में इतना पानी बरसाओ की सब कुछ बह जाए। सारे व्रजवासी डूब जाएं। पूजा के पूरे होते-होते वर्षा होने लगी। वर्षा का भयंकर रूप देखकर श्री कृष्ण समझ गए कि इंद्र की दुर्बुद्धि का कार्य है। नंद बाबा ने कहा – “अब कहां जाया जाए! कृष्ण अब तुम ही रास्ता ढूंढो, हम सबको बचाने का। श्री कृष्ण ने कहा मैं गिरिराज को उठता हूं। बाबा आप सब अपने रथ-छकड़े, गाय-बछड़े एवं सामग्री लेकर इस पर्वत के नीचे आ जाओ। सबको श्री कृष्ण पर विश्वास था। भगवान श्री कृष्ण ने सरलता से गोवर्धन पर्वत को उठा लिया और एक हाथ की सबसे छोटी उंगली पर पर्वत को स्थिर कर लिया। बलदाऊ तथा ग्वाल बाल सखाओं ने भी अपनी-अपनी छोटी-बड़ी लाठियों से सहारे लगा दिया था। श्री कृष्ण मुस्कुराते रहे। सभी व्रजवासी उस पर्वत के नीचे बड़ी मौज मस्ती से अपना सब सामान लेकर नृत्य गान से भगवान श्री कृष्ण की आराधना कर रहे थे। इंद्र ने लगातार वर्षा द्वारा सारे व्रजमंडल को जल मग्न करना चाहा, लेकिन भगवान श्री कृष्ण की कृपा से गोवर्धन पर्वत पर और उसके आसपास जल की एक बूंद भी नहीं आई। दिन-रात सात दिन भारी वर्षा होती रही, मेघों का जल खत्म हो गया और इंद्र का क्रोध निष्फल हो गया।

गोवर्धन पर्वत को एक छोटी उंगली पर धारण करने वाले श्री कृष्ण को देखकर इंद्र की आंखें खुल गई और इंद्र को ज्ञात होता है कि यह तो साक्षात् श्री हरि ही हैं। उन्हें अपने अभियान पर बहुत लज्जा आई। तत्पश्चात् स्वरूप अपने ऐरावत एवं कामधेनु को लेकर वह गोवर्धन पर्वत पर तुरंत पहुंचे। इंद्र का ऐरावत आकाशगंगा का जल अपने सूंड़ में भरकर लाया था। उसी जल से श्री कृष्ण का अभिषेक किया। कामधेनु ने अपनी अमृत दुग्ध धार की वर्षा भगवान के चरणों में की। इंद्र ने हाथ जोड़कर भगवान के चरणों में प्रणाम किया और प्रार्थना की प्रभु मेरे अपराध को क्षमा कर दें। श्री कृष्ण ने कहा तुम ऐश्वर्य के मद में मतवाले हो रहे थे, जो ऐसा मतवाला हो जाता है, वह यह नहीं देखता कि उस अपराध के लिए दंड लेकर कालरूप परमेश्वर के सामने खड़ा है। अब तुम कभी घमंड नहीं करना, अपने अधिकार के अनुसार उचित रीति से मर्यादा का पालन करना। इसी से तुम्हारा मंगल होगा। इंद्र ने भगवान श्री कृष्ण की पूजा की। इंद्र ने सभी व्रजवासियों से माफी मांगी और लोक की ओर चले गए। श्री कृष्ण ने सभी व्रजवासियों को गोवर्धन पर्वत के रूप में साक्षात् श्री हरि के दर्शन करवाएं। बलदाऊ, नंद बाबा तथा व्रजवासियों के साथ-साथ स्वयं श्री कृष्ण ने गोवर्धन भगवान की पूजा की। उत्साह से भरे वातावरण में गोविंद जय-जय की ध्वनि के साथ सभी ने गोवर्धन की परिक्रमा की। इस दृश्य का चित्र पेज न0. 96 पर है।

➤ रासलीला :-

शरदऋतु के आने की सूचना बेला, चमेली आदि पुष्पों से सुगंधित महकते हुए वातावरण ने दी थी। ब्रजबालाएं बार-बार श्री कृष्ण को याद करके रोमांचित हो रही थी। श्री कृष्ण ने भी योग माया का आश्रय लेकर गोपियों के साथ रहस्यमयी क्रीड़ा करने का संकल्प किया। श्री कृष्ण ने अपनी मोहिनी छवि का आभास देखकर सारे वातावरण को अनुराग मय बना दिया। वह रात्रि शरद पूर्णिमा की थी। सारा ब्रजमंडल प्रेम रंग में रंग गया। श्री कृष्ण ने अपनी प्रिय बांसुरी से ब्रजबालाओं के मन का हरण करने वाली तान छेड़ दी। गोपिया तो पहले से ही श्री कृष्ण रंग में हुई थी। बांसुरी धुन ने उन्हें बेसुध कर दिया। वे जहां जो भी काम कर रही थी वह सब छोड़कर भाग चली आई, किसी के घर में दूध उफन रहा था, कहीं गाय दुही जा रही थी, तो बछड़े को खुला छोड़कर और कहीं पति के पास अस्त-व्यस्त सी बैठी थी। सभी गोपिया कृष्ण के पास पहुंच गईं। अगर उन्हें रोका गया तो सुध-बुध खोकर वही कृष्ण की चिंतन से अपने प्रिय को प्राप्त कर मुग्धावस्था में चली गईं। उन्होंने तो अपना सब कुछ श्री कृष्ण को समर्पित कर दिया था। श्री कृष्ण ने गोपियों को स्वीकार किया। श्री कृष्ण ने गोपियों को अपने स्पर्श व प्यार से गोपी-कृष्णमय हो जाने का आभास कराया। सभी गोपियां अपने मन में सोचने लगी कृष्ण तो मेरे साथ ही विहार कर रहे हैं। वह मानवती हो गई। गोपियों का मान देखकर श्री कृष्ण उनका मान दूर करने के लिए सहसा अंतर्धान हो गए। अब कृष्ण को अपने पास न देखकर गोपिया विरह वेदना में दग्ध विलाप करने लगी और गोपियों अपनी पीड़ा को व्यक्त करने लगी। आपस में ही कोई कृष्ण बनकर उनके प्रेमालाप तथा विलासभरी चितवन की नकल करने लगी। कृष्ण विरह में गोपियों व्याकुल होकर कृष्ण को पुकारना शुरू किया। श्री कृष्ण ने जब बहुत देर तक गोपियों की व्याकुलता की आवाज सुनी तो वह सामने आ गए। श्री कृष्ण को देखते ही गोपियों के मानों प्राण वापस आ गए हो। वह अनेक प्रकार से अपना प्रेम प्रकट कर रही थी और माफी मांग रही थी और उनसे मिलने के लिए अनुरोध करने लगी।

श्री कृष्ण ने ज्ञान का उपदेश दिया। “मेरी प्रिय सखियों — भावना वंश तुम सब मेरे लिए लोक — मर्यादा, वेदमार्ग तथा अपने सगे संबंधियों को छोड़कर प्रेम के वशीभूत हो गई हो। मैं इसका ऋण चुकाना भी चाहूं तो नहीं चुका सकता। तुम सब मुझे बहुत प्रिय हो। तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्मल एवं निर्दोष है। श्री कृष्ण के प्रेममय मधुर वचन सुनकर गोपियों उत्साह से भर गईं। उनका मनोरथ पूर्ण हो गया। श्री कृष्ण ने सब की बाहों में बाहें डालें यमुना के पुलिन पर रस-क्रीड़ा प्रारंभ की। श्री कृष्ण ने अत्यंत प्रसन्न होकर दो-दो गोपियों के बीच में खड़े होकर अपने सहस्त्रो स्वरूपों में गोपियों के साथ शरद पूर्णिमा की शीतल चांदनी में ‘महारस’ उत्सव शुरू किया।

श्री कृष्ण की अनोखी छवि, जहां प्रत्येक गोपी के साथ अलग-अलग थी। वस्त्रादि से सुसज्जित श्री कृष्ण धीरे-धीरे नृत्य कर रहे थे। नृत्य में तेजी आती जा रही थी। थिकरन बढ़ने लगी। नृत्य में मग्न गोपियों में जैसे ही शिथिलता आती कृष्ण उन्हें सहारा देकर पुलकित करके नृत्य में तेजी ला देते थे। यह अद्भुत लीला जैसे अनंत काल तक चलती रही। अंत में रात बीती। ब्रह्ममूर्ति में कृष्ण ने गोपियों को लौटने की इच्छा न होते हुए भी उन्हें आज्ञा दी कि वह सांसारिक कर्म को नित्य नियम अनुसार करें। बस अपने प्रेम एवं संकल्प से ही भगवान की आराधना करते रहे। सभी गोपिया अपने-अपने घर आ गई। योग माया के कारण सभी गोप यही समझ रहे थे कि उनकी पत्नियों उन्हीं के पास थी। गोपियों के साथ कृष्ण का रमण सर्वथा दिव्य लीला है। इसे लौकिक कामक्रीड़ा नहीं माना गया। इस दृश्य का चित्र पेज न०. 97 पर है।

➤ अघासुर वध :-

एक दिन प्रायः काल कृष्ण ने सभी ग्वालों के साथ जंगल सैर करने की इच्छा प्रकट की। जहां सब एक होकर कलेवा कर सके। जैसे ही वे सोकर उठे तो उन्होंने महिष सींग बजाया और अपने मित्रों को बुलाया। वे बछड़ों को आगे करके चलने लगे। इस तरह कृष्ण ने एक हजार ग्वाल मित्र एकत्रित कर लिए। उनमें से हर एक के पास छड़ी, बांसुरी, कलेऊ का झोला था। उनमें से प्रत्येक एक हजार बछड़े की देखरेख कर रहा था। वह अपने-अपने बछड़ों के प्रति चौकना थे। बालक सभी तरह के सोने के आभूषणों से अलंकृत थे। जंगल में जाते हुए बालक एक दूसरे के कलेवा से खेल रहे थे। बालकों के बीच इस प्रकार का खेलवाड़ बाल-लीलाओं के रूप में चलता रहा।

जब श्री कृष्ण सुंदर दृश्य देखने के लिए सबसे दूर चले जाते हैं, तो पीछे से एक बालक भाग कर छूने के लिए प्रयत्नशील होता है। इस तरह भारी होड़ लग जाती है। एक कहता मैं कृष्ण को पहले छुऊंगा, दूसरा कहता मैं छुऊंगा। कुछ अपनी बंशी बजा रहे थे और कुछ महिष सींग द्वारा नाद उत्पन्न कर रहे थे। सब कुछ ना कुछ कर रहे थे। जब भगवान कृष्ण इस प्रकार अपने बाल सखों के साथ अपनी बाल लीलाओं का आनंद ले रहे थे, तो अघासुर नामक एक असुर अत्यंत उत्साही हो उठा। वह कृष्ण को खेलते हुए नहीं देख सका। अतः वह उन्हें मार डालने के लिए बालकों के सामने प्रकट हुआ। यह अघासुर इतना खतरनाक था कि इससे स्वर्ग के निवासी भी डरे हुए रहते थे, यद्यपि स्वर्ग के निवासी ही दीर्घायु बनने के लिए ही अमृत पान करते थे, किंतु वह इस अघासुर से कांपते रहते थे और सोचते रहते थे कि इस अघासुर का वध कब होगा। कृष्ण के साथ खेलने वाले ग्वालबालों को असुर का डर नहीं था। अघासुर, पुतना तथा बकासुर का छोटा भाई था। उसने विचार किया कि इस कृष्ण ने मेरे भाई और मेरी बहन का वध किया है। अब मैं इसके सभी साथियों और बछड़ों सहित मार डालूंगा। अघासुर कंस द्वारा प्रेरित किया गया था।

वह दृढ़ संकल्प करके आया था। अघासुर सोचता है जब वह अपने भाई की स्मृति में अन्न तथा जल की अंजलि (पिंडदान) देगा तो वह ग्वालबालों के साथ कृष्ण को मार दूंगा और सारे व्रजवासी भी मर जाएंगे। अघासुर ने 'महिमा नामक योग सिद्धि' से अपने शरीर का विस्तार करना शुरू कर दिया। अघासुर ने अपने आप को आठ मील तक फैलाकर मोटा सर्प का रूप धारण किया और कृष्ण तथा बलराम समेत सारे बालकों को तुरंत निकल जाने की इच्छा से रास्ते पर लेट गया। उसका निचला होंठ पृथ्वी पर था और ऊपरी होठ बादल को छू रहा था। उसका जबड़ा विशाल पर्वत की गुफा जैसा लग रहा था। उसकी जीभ राजमार्ग जैसी लग रही थी। पहले तो बालकों को लगा कि यह कोई मूर्ति है किंतु देखने पर पता लगा कि यह तो सर्प है, जो मुंह फैलाकर रास्ते पर लेटा हुआ है। उनमें से एक बोला तुम्हारा कहना सही है। इस जानवर का ऊपरी होठ सूर्य प्रकाश जैसा लग रहा है और निकला होठ भूमि पर लाल सूर्य प्रकाश के प्रतिबिंब जैसा लग रहा है। यह लंबा सा रास्ता उसकी जीभ है। इसके अंदर बहुत अंधकार है। फिर उन सब ने परस्पर मंत्रणा की यदि हम सभी इस विशाल सर्प के मुंह में एक साथ आ गए तो भला यह हम सबको कैसे निगल जाएगा और यदि हम सबको निगल भी जाए तो कृष्ण को कैसे निकल जाएगा। कृष्ण तो इसे तुरंत मार डालेगा। जैसे कि उन्होंने बकासुर का वध किया था। इस प्रकार की बातें करते हुए उन्होंने कृष्ण के कमल के समान सुंदर मुख को देखा और ताली बजाकर वह आगे बढ़े और भीमकाय सर्प के मुंह में घुस गए। इसी के बीच में कृष्ण समझ गए कि यह मूर्ति जैसी आकृति कोई असुर है। कृष्ण योजना बना ही रहे थे कि अपने मित्रों को विनाश से कैसे बचाया जाए, परंतु सारे बालक अपने बछड़ों के साथ सर्प के मुंह में चले गए। परंतु कृष्ण नहीं जा पाए।

वह असुर कृष्ण के अंदर आने का इंतजार कर रहा था। कृष्ण सोचने लगे कि इस असुर का वध किस प्रकार किया जाए। अतः कृष्ण भी असुर के मुंह में चले गए। तो सारे देवता तमाशा देखने के लिए बादलों के पीछे छुप गए थे। हाय-हाय करके अपने भाव प्रकट करने लगे। उसी समय कृष्ण ने देवताओं को हाय-हाय करते सुना, उन्होंने तुरंत ही असुर के गले के अंदर अपने आप को विस्तारित करना शुरू किया। यद्यपि असुर का शरीर विराट था किंतु कृष्ण के विस्तार के कारण उसका गला रुद्ध होने लगा। तुरंत ही उसका श्वास रुक गया उसकी प्राण वायु किसी तरह बाहर न आ सकी पर अंत में उसकी खोपड़ी में एक छेद से बाहर फुट निकली और उसके प्राण निकल गए। असुर के गिर जाने पर कृष्ण ने अपनी दिव्य दृष्टि से सभी बालकों को सचेत किया और सबको असुर के मुंह से बाहर निकला। जब कृष्ण अघासुर के मुंह में थे तभी असुर की आत्मा प्रज्ज्वलित प्रकाश की भांति बाहर आ गई। जिससे सभी दिशाएं दीप्त हो उठी। और वह आत्म आकाश में रुकी रही। जैसे ही कृष्ण ग्वालबालों तथा बछड़ों के सहित उस असुर के मुंह से बाहर आए तो वह प्रज्ज्वलित तुरंत ही देवताओं

को देखते-देखते कृष्ण के शरीर में मिल गई। देवताओं ने प्रसन्न होकर भगवान श्री कृष्ण पर फूलों की वर्षा की और पूजा की। इस दृश्य का चित्र पेज न०. 98 पर है।

➤ शिशुपाल वध :-

जरासंध का वध करने के पश्चात श्री कृष्ण, अर्जुन और भीम इंद्रप्रस्थ लौट आए। वापस आकर उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर से सारा वृत्तांत कहा जिसे सुनकर वह अत्यंत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की तैयारी शुरू करवा दी। उन्होंने सभी योग्य ब्राह्मणों एवं ऋषियों को हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने अत्यंत निपुण ब्रह्मणों एवं ऋषियों को आमंत्रित किया जिनके नाम इस प्रकार हैं — कृष्णद्वैपायन, व्यासदेव, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित वशिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेना तथा अकृतव्रण। इन सभी ब्राह्मणों तथा धृतराष्ट्र के अलावा उन्होंने द्रोणाचार्य, कुरुओं के पितामह भीष्म, कृपाचार्य तथा धृतराष्ट्र जैसे आदरणीय व्यक्तियों को भी आमंत्रित किया। इस यज्ञ संबंधी समारोह के अधिकारी ब्राह्मण, पुजारी एवं ऋषियों ने प्रथा के अनुसार स्वर्ण के हल से यज्ञ शाला का निर्माण किया। इस महायज्ञ में हिस्सा लेने के लिए ब्रह्म जी, शिवजी तथा स्वर्ग के राजा इंद्र जैसे उच्च देवता गण उपस्थित थे। उनके साथ सहयोगी भी थे। इसके अतिरिक्त गंधर्व लोक, सिद्ध लोक, जनलोक, तपोलोक, नागलोक, यक्षलोक, रक्षासलोक, पक्षीलोक तथा चारणलोक जैसे उच्च लोकों के श्रेष्ठ देवता गण तथा सुप्रसिद्ध राजा एवं उनकी रानियां सभी महाराज युधिष्ठिर के निमंत्रण पर उपस्थित थे।

अन्य महत्वपूर्ण विधि यह है कि ऐसे यज्ञ समारोह में उपस्थित सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति को अग्रपूजा अर्पित की जाती है जब यज्ञ की सभी व्यवस्था पूरी हो गई तब दूसरा विचारणीय विषय था कि समारोह में किसकी उपासना करनी चाहिए। यज्ञ सभा में सभी सदस्य श्रेष्ठ हैं। जब इस विषय का कोई हल नहीं निकला, तो श्री सहदेव ने भगवान श्री कृष्ण के पक्ष में कहा — इस सभा में यदुवंश के सदस्यों में सर्वश्रेष्ठ तथा अपने भक्तों के संरक्षक श्री कृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। मेरा विचार यह है कि बिना किसी आपत्ति के श्री कृष्ण की सर्वप्रथम पूजा करके उन्हें सम्मान देना चाहिए। श्री सहदेव को श्री कृष्ण की लीलाओं का ज्ञान होने का सौभाग्य प्राप्त था। सभी सदस्यों ने श्री सहदेव का अनुमोदन किया तथा उनके शब्दों की पुष्टि करते हुए कहा कि तुम्हारे कह गए प्रत्येक वाक्य सत्य है। सभी उपस्थित जनों विशेष कर ब्राह्मणों एवं गुणी ऋषियों द्वारा पुष्टि होने के पश्चात महाराज युधिष्ठिर ने वैदिक आदेशों के

सिद्धांतों के अनुसार श्री कृष्ण की पूजा की। सर्वप्रथम महाराज युधिष्ठिर, उनके भ्राताओं, पत्नियों, बच्चों अन्य संबंधियों एवं मंत्रियों ने भगवान श्री कृष्ण के चरण कमल को धोकर उस जल को अपने सिर पर छिड़का।

महाराज युधिष्ठिर के द्वारा श्री कृष्ण की पूजा की गई। उस समय सभा में उपस्थित सभी सज्जन हाथ जोड़कर खड़े हो गए और जय! जय! नमः नमः का उच्चारण करने लगे। उस सभा में राजा शिशुपाल भी उपस्थित था। अनेक कारणों से वह श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष शत्रु था। विशेषकर इसलिए कि श्री कृष्ण ने विवाह समारोह से रुक्मिणी देवी का अपहरण किया था, इसलिए वह श्री कृष्ण का इतना सम्मान सहन नहीं कर पाया। श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सुनकर प्रसन्न होने के बजाय वह बहुत गुस्सा हो गया। जब सभी ने उठकर श्री कृष्ण का सम्मान किया, वह अपनी गद्दी पर ही बैठा रहा।

परंतु जब श्री कृष्ण के सम्मानित किए जाने पर वह क्रोधित हो उठा तब वह अपनी गद्दी से उठा और भगवान श्री कृष्ण के विरुद्ध बोलने लगा। सभा में सर्वप्रथम पूजनीय व्यक्ति के रूप में ही श्री कृष्ण के चयन होने के कारण शिशुपाल पागल हो गया। वह इतनी गैर जिम्मेदारी से बोलने लगा कि ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह अपना सौभाग्य खो बैठा है। शिशुपाल श्री कृष्ण को पुनः अपमानित करने लगा। श्री कृष्ण बिना विरोध किए शान्ति से सुनते रहे। शिशुपाल द्वारा लगाए गए आरोप का श्री कृष्ण ने उत्तर नहीं दिया। परंतु सभा में उपस्थित जन क्रोधित हो उठे और शिशुपाल का वध करने के लिए अपने हाथ में तलवार और ढाल ले ली। सभा में उपस्थित राजागण उसे मारने के लिए तत्पर थे, परंतु शिशुपाल इतना मूर्ख था कि जरा सा भी नहीं घबराया। जब उसने देखा कि सभी राजागण मारने के लिए तत्पर हैं तो वह चुप होने के बजाय हाथ में तलवार लेकर लड़ने के लिए तत्पर हो गया। जब भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि शुभ राज सूय महायज्ञ के स्थान पर वे युद्ध आरंभ करने जा रहे हैं तो उन्होंने व्यक्तिगत रूप से उन्हें शांत किया और स्वयं ही शिशुपाल का वध करने का निश्चय किया। जब अपने ऊपर आक्रमण करने जा रहे राजाओं की शिशुपाल निंदा कर रहा था तब उन्होंने उस्तरे की धार वाला अपना चक्र उठाया और तुरंत शिशुपाल के सिर को उसके शरीर से अलग कर दिया।

इस प्रकार जब शिशुपाल का वध हुआ तब सभा की भीड़ से एक चिल्लाहट की ध्वनि निकली। परिस्थिति का फायदा उठाते हुए शिशुपाल के समर्थक अपने प्राणों को बचाने के लिए वहां से भाग गए। परंतु इस घटना के बाद सभी सदस्यों की उपस्थिति में शिशुपाल की आत्मा भगवान श्री कृष्ण के शरीर में विलीन हो गई। जिस प्रकार एक जलता हुआ उलका पृथ्वी की सतह पर गिरता है, शिशुपाल की

आत्मा का श्री कृष्ण के दिव्य शरीर में विलीन हो जाना हमें जय और विजय की गाथा का स्मरण कराता है। जैसे चार कुमारों के द्वारा श्राप दिए जाने पर वैकुंठ लोक से भौतिक जगत में गिर गए थे। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने राजसूय यज्ञ को सफलतापूर्वक संपन्न होने के योग्य बनाया। इस दृश्य का चित्र पेज न0. 99 पर है।

तृतीय अध्याय

- श्री कृष्ण संग्रहालय के चित्रों का विवरण
- श्री कृष्ण के चित्रों की शैली

श्री कृष्ण संग्रहालय के चित्रों का विवरण

1. कदम्ब के नीचे कृष्ण का बांसुरी वादन :-

यह चित्र 20वीं शती ई0. राजस्थान का है जो संभवत एक पिच्छवाई पेंटिंग है, जिसमें कृष्ण को केंद्र में रखकर गोपियों और गायों से घिरे हुए एक दृश्य को दर्शाया गया है। गोपिया श्री कृष्ण को निहार रही हैं और श्री कृष्ण एक पेड़ के नीचे खड़े हैं और पेड़ के ऊपर मोर को बैठे हुए दिखाया गया है। श्री कृष्ण बहुत प्रसन्न होकर बांसुरी को बजा रहे हैं। इस चित्र में पीले और नीले रंग का प्रयोग किया गया है।

2. शीर्षकहीन :-

इस चित्र में एक पट्टचित्र पेंटिंग दिखाई गई है। पेंटिंग के मध्य में भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी को भगतों से घिरे हुए दिखाया गया है, जो रामायण की कहानी के दिव्य पहलू को उजागर करता है। रामायण की मुख्य कथा केंद्रीय छवि के चारों ओर व्यवस्थित आयताकार पैनों में सामने आती है। जो महाकाव्य के प्रमुख प्रसंगों को प्रदर्शित करती है। यह पेंटिंग गोलाकार पदकों से घिरी हुई है जिसमें से प्रत्येक पदक अलग-अलग पात्रों या दृश्यों को दर्शाता है। जिससे कलाकृति की दृश्य समृद्धि और जटिलता बढ़ जाती है। इस चित्र में मोटी रेखाएँ, जटिल पैटर्न और जीवंत रंग प्रदर्शित होते हैं। जो इस परंपरा की आध्यत्मिक और भक्ति प्रकृति को दर्शाते हैं।

3. गोपाष्टमी :-

यह चित्र 20वीं शती ई0. नाथद्वारा राजस्थान से है। चित्र में कृष्ण को गायों के साथ चित्रित किया गया है। कृष्ण को शीर्ष पर केंद्र में रखा गया है। उन्हें गहरे रंग में दर्शाया गया है और कृष्ण को पारंपरिक पोशाक और आभूषणों से सजाया गया है। वह कई गायों से घिरे हुए हैं, जो उसके नीचे पंक्तियों में खड़ी हैं। प्रत्येक गाय का पैटर्न और रंग अद्वितीय है। पृष्ठभूमि में पहाड़ियों और पेड़ों के साथ एक परिदृश्य है। इस चित्र में भूरे, सफेद, क्रीम, नीला, लाल, नारंगी, पीले रंगों का प्रयोग किया गया है।

4. दान लीला :-

यह चित्र 20वीं शती ई0. पिच्छवाई, राजस्थान का है। यह चित्र भगवान कृष्ण के जीवन को दर्शाता है। इस चित्र में कृष्ण केंद्र में हैं, आभूषणों और माला से सजे हुए बांसुरी बजाते हुए दिखाया गया है। उनके चारों ओर गोपिया हैं जिसमें से प्रत्येक अपने सिर पर घड़े लिए हुए हैं। उनके नीचे चार गाय और एक कमल का तालाब है जो गायों और प्रकृति के साथ कृष्ण के घनिष्ठ संबंध का प्रतीक है। इसमें जीवत रंगों का उपयोग किया गया है। पेंटिंग की सीमाओं में एक ज्यामितीय पैटर्न है। इस चित्र में लाल, हरे, नीले, सफेद, भुरे आदि रंगों का प्रयोग किया गया है।

5. कदम्ब के नीचे वेणुगोपाल :-

यह चित्र 20वीं शती ई0. तमिलनाडु का है। चित्र में तंजौर पेंटिंग दिखाई गई है जिसमें कृष्ण को वृक्ष के नीचे दो महिलाओं के साथ दिखाया गया है, जो संभवतः उनकी पत्नियाँ रुक्मणी और सत्यभामा हैं। कृष्ण को कमल के आधार पर खड़े होकर बांसुरी बजाते हुए दिखाया गया है। उनके चारों ओर गाय हैं, जिसमें जीवत रंगों, जटिल विवरण और सोने की पत्ती का उपयोग शामिल है। इस चित्र में श्री कृष्ण को सुंदर वस्त्रों और आभूषणों से सजाया गया है। इस चित्र को अनोखे ढंग से बनाया गया है, जो लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। इसमें पीले, लाल, सफेद, सुनहरे, नीला, हल्का भूरा, ग्रे आदि रंगों का प्रयोग किया गया है।

6. बाल — कृष्ण :-

यह चित्र 20वीं शती ई0. तमिलनाडु का है। यह पेंटिंग तंजौर की पेंटिंग है। इस चित्र में कृष्ण को आभूषणों से सजे और एक मंच पर बैठे हुए दो महिला परिचारिकाओं के साथ केंद्र में दर्शाया गया है। पृष्ठभूमि में नीले और हरे रंग का पर्दा जैसा डिजाइन है। अग्रभूमि में मंच के सामने बैठी छोटी आकृतियां दिखाई देती हैं। इस पेंटिंग में सोने की पत्तियों का जटिल उपयोग किया गया है, जो तंजौर कला की एक पहचान है। इसका उपयोग आभूषणों, किनारों और अन्य सजावटी तत्वों को उजागर करने के लिए किया गया है। इस पेंटिंग में रंगों की एक समृद्ध श्रृंखला का उपयोग किया गया है, जिसमें नीले, हरे, लाल और सुनहरे रंगों का प्रभुत्व है।

7. वादकों के मध्य कृष्ण :-

यह चित्र 20वीं शती ई0. तमिलनाडु का है। इस चित्र में कृष्ण को उनकी पत्नियों सत्यभामा और रुक्मणी के साथ दर्शाया गया है। कृष्ण को नीली त्वचा, सुनहरे आभूषण और पीली धोती पहने हुए दर्शाया गया है। उनके मुकुट पर मोर पंख लगा हुआ है जो प्रायः उनके साथ जुड़ा हुआ प्रतीक है।

सत्यभामा और रुक्मणी कृष्ण के दोनों ओर हैं, दोनों ने कोई ना कोई वाद्य यंत्र पकड़ रखा है, संभवतः वीणा या तंबूरा। वे पारंपरिक पोशाक सोने के आभूषण और मुकुट पहने हुए हैं। पृष्ठभूमि लाल और हरे रंग का मिश्रण है, जिसमें सोने की पत्तियों का विवरण पेंटिंग की समृद्धि को बढ़ा रहा है। इस पेंटिंग में हरे, लाल रंगों का प्रयोग किया गया है।

8. शीर्षकहीन 1 :-

यह चित्र कांगड़ा शैली का लघु चित्र है, जिसमें बिहारी की सतसई का दृश्य दिखाया गया है जिसमें राधा और कृष्ण को चित्रित किया गया है। राधा को एक मटके की ओर हाथ बढ़ाते हुए दिखाया गया है, जिसमें संभवतः माखन है, जबकि कृष्ण पास में बैठे हुए उनकी ओर इशारा कर रहे हैं। यह दृश्य दिव्य दंपति के बीच बातचीत और स्नेह के क्षण को दर्शाता है, जो उनके शाश्वत प्रेम और भक्ति का प्रतीक है। इस चित्र में जीवंत रंगों का प्रयोग किया गया है। इसमें राधा की पोशाक हरे और लाल रंग की दिखाई गई है। श्री कृष्ण के वस्त्रों का रंग पीला है। इसमें लाल, हरे, भूरे, नीले, गुलाबी रंगों का प्रयोग किया गया है। यह चित्र मुकेश द्वारा चित्रित किया गया है।

9. शीर्षकहीन 2 :-

इस चित्र में श्री कृष्ण और अर्जुन के रथ को युद्ध भूमि में दिखाया गया है। इसमें कृष्ण और अर्जुन संवाद करते नजर आ रहे हैं। श्री कृष्ण और अर्जुन ने सिर पर बहुत सुंदर मुकुट पहने हुए हैं। रथ में चार घोड़े को दिखाया गया है, जो चलने की मुद्रा में प्रतीत हो रहे हैं। रथ के ऊपर बहुत सुंदर डिजाइन और रंगों का प्रयोग किया गया है। इसमें लाल, संतरी, काले, भूरे और सफेद रंगों का प्रयोग किया गया है। अर्जुन के पास एक तलवार और धनुष को रखा हुआ दिखाया गया है।

10. शीर्षकहीन 3 :-

यह चित्र राधा और श्री कृष्ण की कांगड़ा लघु पेंटिंग है। इसमें राधा और कृष्ण को वन में दिखाया गया है। इसमें कृष्ण को राधा के बालों को सजाते हुए दिखाया गया है जो प्रेम और बंधन का प्रतिनिधित्व करता है। राधा और कृष्ण को आभूषणों से सजाया गया है। यह दृश्य एक नदी के किनारे पेड़ का है, जिसकी छाया में कृष्ण राधा के बालों को सजा रहे हैं। इस चित्र में संतरी, हरे, काले, ग्रे, पीले, गुलाबी, सफेद रंगों का प्रयोग किया गया है। इसमें जैविक रंगों का प्रयोग किया गया है। यह चित्र सुशील द्वारा चित्रित किया गया है।

11. शीर्षकहीन 4 :-

इस चित्र में राधा और कृष्ण को दिखाया गया है। यह चित्र वन का है, इसमें कृष्ण को नृत्य करते हुए और राधा को ढोलकी वाद्य बजाते हुए दिखाया गया है। श्री कृष्ण के पैरों के पास फूलों को दिखाया गया है। यह चित्र संभवतः कांगड़ा लघु चित्र शैली से प्रभावित है जो अपनी नाजुक रेखा और जीवंत रंगों विषय पर जोर देने के लिए जानी जाती है। इस चित्र में बहुत सुंदर रंगों का प्रयोग किया गया है। जैसे हरा, नीला, संतरी, काला, सफेद, पीला, गुलाबी आदि। यह चित्र लाल सिंह द्वारा चित्रित किया गया है।

12. शीर्षकहीन 5 :-

इस चित्र में राधा और कृष्ण को दिखाया गया है। यह चित्र कांगड़ा लघु शैली का प्रतीक होता है। राधा और श्री कृष्ण केन्द्र में स्थित हैं। एक ऊंचे गोल मंच पर खड़े हैं। कृष्ण अपनी विशिष्ट त्वचा के साथ बांसुरी बजा रहे हैं, जबकि राधा लाल और सुनहरे रंग की साड़ी में सजी हुई भक्ति के साथ कृष्ण को देख रही है। उनके ऊपर रखा एक अलंकृत छाता दृश्य में एक शाही स्पर्श जोड़ता है। पृष्ठभूमि में हरे, भरे परिदृश्य के साथ शैलीगत पेड़ और मोर हैं। आसमान को हल्के भूरे रंग से गहरे रंग में बदला गया है जो संभवतः बादल या शाम के समय का संकेत देता है। साथ ही कुछ सफेद पक्षी दूरी पर उड़ते हुए दिखाए गए हैं। इस चित्र में लाल, पीले, गुलाबी, भूरे, काले, सफेद, हरे आदि रंगों का प्रयोग किया गया है।

13. शीर्षकहीन 6 :-

इस चित्र में राधा और कृष्ण को एक पेड़ के नीचे खड़े हुए दिखाया गया है जो संभवतः कांगड़ा लघु चित्रकला शैली से प्रेरित है। कृष्ण बाएं ओर बांसुरी बजा रहे हैं जबकि राधा उनके दाएं ओर खड़ी है और श्री कृष्ण को देख रही है। कृष्ण पीले रंग की धोती और माला पहने हुए हैं और राधा ने गुलाबी और नीले रंग की साड़ी पहनी हुई है। उनके पीछे एक पेड़ है जिसके तने के चारों ओर एक भूरे रंग की बेल लिपटी हुई है। पृष्ठभूमि में हल्के नीले आसमान के नीचे हरी भरी पहाड़ियों को दिखाया गया है। चित्र के निचले हिस्से में एक गहरे रंग की नदी बहती हुई दिखाई गई है। इसमें नाजुक रेखाओं और नरम रंगों का प्रयोग किया गया है। इस चित्र में राधा और कृष्ण के बीच प्रेम और भक्ति के दृश्य को दर्शाया गया है।

14. शीर्षकहीन 7 :-

इस चित्र में कृष्ण को नीली त्वचा, पीली धोती और मुकुट पहने बांसुरी को पकड़े हुए दिखाया गया है। राधा लाल रंग की साड़ी पहने कृष्ण के बगल में खड़ी है। इस चित्र में पेड़, नदी और मोर के साथ-साथ एक प्राकृतिक दृश्य दिखाया गया है। यह चित्र राधा और कृष्ण के बीच दिव्य प्रेम को दर्शाता है। यह चित्र कांगड़ा शैली से प्रेरित है। इस चित्र में विशेषता प्राकृतिक और जीवंत रंगों का प्रयोग किया गया है। जैसे नीला, पीला, भुरा, सफेद, काला, आदि। यह चित्र कमल द्वारा चित्रित किया गया है।

15. शीर्षकहीन 8 :-

इस चित्र में कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए दिखाया गया है जबकि राधा उनके बगल में एक थाल पकड़े खड़ी है। वह हरे भरे वन और सफेद फूलों वाले एक पेड़ की पृष्ठभूमि के सामने एक पत्थर पर खड़े हैं। कृष्ण पीले रंग की पोशाक और सुनहरे मुकुट से सजे हुए हैं, जबकि राधा पारंपरिक आभूषणों के साथ नारंगी और नीले रंग की पोशाक पहने हुए हैं। इस चित्र में बारीक ब्रश वर्क और प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया गया है। यह चित्र राधा और कृष्ण के बीच प्रेम और भक्ति के क्षण को दर्शाता है। इसमें पीले, हरे, काले, सफेद, गुलाबी आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। यह चित्र पूनम द्वारा चित्रित किया गया है।

16. शीर्षकहीन 9 :-

इस चित्र में कृष्ण और राधा को दर्शाया गया है, जिसमें अग्रभूमि में नीली त्वचा वाले कृष्ण घुटनों के बल बैठे हैं और एक कटोरा जैसी वस्तु पड़े हुए हैं जिसमें भोजन या प्रसाद जैसा कुछ दिखाई दे रहा है। राधा उनके सामने खड़ी है, उनका हाथ बढ़ता हुआ दिखाया गया है जैसे कि वह कुछ लेने वाली हैं। पृष्ठभूमि को दो रंगों में विभाजित किया गया है। इसमें कृष्ण के पीछे का एक खंड लाल है और राधा के पीछे का खंड हरा है। इस चित्र में प्रतीकात्मक रंगों का प्रयोग किया गया है। इस चित्र में लाल, हरे, नीले, सफेद, ग्रे आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। यह चित्र विजय शर्मा द्वारा चित्रित किया गया है।

17. शीर्षकहीन 10 :-

इस चित्र में राधा और कृष्ण को एक प्राकृतिक परिवेश में चित्रित किया गया है। संभवतः लघु चित्रकला की कांगड़ा शैली में बनाया गया है। चित्र में राधा और कृष्ण को एक पेड़ के नीचे एक साथ बैठे हुए दिखाया गया है, जिसकी पृष्ठभूमि में परिदृश्य के बीच में एक घुमावदार रास्ता है, रंग पैलेट में

नरम, ठंडे, स्वर शामिल है। इसमें श्री कृष्ण की नीली त्वचा पीले रंग की धोती और मुकुट पहने हुए दिखाया गया है, जबकि राधा को लाल साड़ी और सर ढके हुए दिखाया गया है। इस चित्र में लाल, नीले, पीले, भुरे, काले, ग्रे आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। यह चित्र राज द्वारा सन 2016 में चित्रित किया गया है।

18. शीर्षकहीन 11 :-

इस चित्र में श्री नाथ जी पिछवाई चित्रकला को दिखाया गया है जो श्री कृष्ण का रूप है जो भगतों और गायों से घिरा हुआ है। श्री नाथ जी को श्याम वर्ण में, मालाओं और आभूषणों से सुसज्जित, कमल के आधार पर खड़े हुए दर्शाया गया है। उनका उठा हुआ बायां हाथ उनके द्वारा गोवर्धन पर्वत उठाए जाने की किंवदन्ती का संदर्भ देता है। श्री नाथ जी के दोनों और अनेक आकृतियाँ हैं जिनमें से कुछ संगीत वाद्ययंत्र बजा रही हैं जो पूजा और उत्सव का दृश्य प्रतीत होता है, नीचे की ओर कई गायों को चित्रित किया गया है, जो त्यौहार और हिंदू परंपरा में गायों के महत्व पर जोर देते हैं। पृष्ठभूमि में पेड़, हंस और कमल के तालाब शामिल हैं। इस पेंटिंग को मोर की आकृति वाले सजावटी बॉर्डर से सजाया गया है जो इसके सौंदर्यात्मक आकर्षण को बढ़ाता है।

19. शीर्षकहीन 12 :-

इस चित्र में कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए दिखाया गया है जो एक शैलीगत प्राकृतिक पृष्ठभूमि के सामने स्थापित है। कृष्ण को लाल घेरे के बीच में दिखाया गया है जो पारंपरिक आभूषणों और कपड़ों से सजे हुए हैं। उनकी त्वचा का रंग आकर्षक नीला है। वह अपने होठों पर बांसुरी पकड़े हुए हैं, जो दिव्य संगीत की प्रतिष्ठित छवि को दर्शाता है। पृष्ठभूमि में गहरे हरे रंग के पेड़ हैं जिनमें बारी-बारी से हल्के और गहरे रंग की पत्तियां हैं जो एक जंगल या उपवन का संकेत देती हैं। पेड़ों के ऊपर एक अर्ध चंद्र के साथ रात के आकाश को दर्शाया गया है, जबकि नीचे एक पैटर्न वाली सीमा कलाकृति को एक सजावटी आधार देती है। इस चित्र में लाल, नीले, हरे, पीले आदि रंगों का प्रयोग किया गया है।

20. श्रीनाथजी :-

यह चित्र पिछवाई 20वीं शती ई0., नाथद्वारा, राजस्थान का है। चित्र में भगवान श्री कृष्ण के जीवन से संबंधित एक दृश्य को दर्शाया गया है। चित्र में भगवान श्री कृष्ण को एक छत्र के नीचे मध्य में स्थापित किया है जो संभवतः श्रीनाथजी का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो कृष्ण का एक रूप हैं, जो 7

वर्षीय बालक के रूप में प्रकट हुआ था। इस दृश्य में हरी-भरी हरियाली और पेड़ों को दर्शाया गया है। कृष्ण के दोनों ओर लोगों के समूह हैं, संभवतः गोपियाँ और अन्य परिचारिकाएँ दर्शाए गए हैं जिनमें से कुछ लोग को भेंट चढ़ते हुए दिखाया गया है। इस चित्र को सजावटी बॉर्डर से सजाया गया है, जिसमें गायों के पैटर्न को दोहराया गया है। यह चित्र भक्ति और उत्सव के क्षण को दर्शाता है।

21. विट्ठल :-

यह चित्र तंजावुर चित्र है जिसे तंजौर चित्रकला के नाम से जाना जाता है। इसमें देवता शिव को सिंहासन पर बैठे हुए दिखाया गया है। उनके दोनों ओर दो सेवक हैं। शिव आभूषणों से सजे हुए हैं और उनके दाहिने हाथ पर एक तोता बैठा हुआ है। इस चित्र में समृद्ध और चमकीले रंग सोने की पट्टी का उपयोग और जटिल विवरण है। इस चित्र में नीला, लाल और सुनहरे रंगों का प्रभुत्व है। यह चित्र 20वीं शती ई० तमिलनाडु का है।

22. ऋद्धि – सिद्धि के साथ गणेश :-

इस चित्र में भगवान गणेश को ऋद्धि और सिद्धि द्वारा सेवा करवाते हुए दिखाया गया है, जिन्हें अक्सर उनकी पत्नियाँ बताया जाता है। नारंगी-लाल रंग और हाथी के सिर वाले गणेश एक अलंकृत सिंहासन पर बैठे हैं जो आभूषणों और पीले वस्त्रों से सुसज्जित हैं। बाईं ओर ऋद्धि उन्हें अपने हाथ से कुछ भेंट कर रही है जबकि दाएं ओर सिद्धि सेवा के प्रतीक के रूप में गणेश के ऊपर एक सफेद कपड़ा या पंखा पड़े हुए हैं। सिंहासन के पास गणेश के वाहन एक चूहे को दर्शाया गया है। पृष्ठभूमि में पेड़ और नीला आकाश है और चित्र एक सजावटी पैटर्न से घिरी हुई है। इस चित्र में नारंगी, नीले, मैरून, भूरे, लाल आदि रंगों का प्रयोग किया गया है।

23. धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर राज दरबार में युद्ध का हाल सुनाते हुए संजय :-

चित्र का शीर्षक है – धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर राज दरबार में युद्ध का हाल सुनाते हुए संजय। यह दृश्य एक महल के अंदरूनी हिस्से में स्थापित है जिसके पीछे एक मेहराबदार द्वार है जो बाहरी दृश्य का सुझाव देता है। धृतराष्ट्र एक छोटे सिंहासन या मंच पर बैठे हैं। संजय उनके साथ हैं जो उन्हें युद्ध की घटनाओं का वर्णन बता रहे हैं। पृष्ठभूमि में अन्य आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं। संभवतः दरबारी या परिचालक, जो बालकनी या ऊँचे क्षेत्र से देख रहे हैं, रंग पैलेट जीवंत है जिसमें हरे, लाल, और नीले रंग हैं, जो भारतीय लघु चित्रकला परंपराओं के विशिष्ट हैं।

24. आमने-सामने खड़ी कौरव व पाण्डव सेनाएँ :-

यह चित्र महाभारत के दृश्य को दर्शाता है जब युद्ध के लिए कौरव और पाण्डव की सेनाएं आमने-सामने खड़ी थी। यह चित्र खास तौर पर कुरुक्षेत्र के युद्ध से पहले क्षण, जिसमें कृष्ण और अर्जुन के बीच संवाद दिखाया गया है। विष्णु के अवतार कृष्ण को युद्ध के मैदान में पाण्डव राजकुमार अर्जुन के सारथी के रूप में दर्शाया गया है। दोनों तरफ सेनाएं युद्ध के लिए तैयार दिखाई देती हैं। परिदृश्य को हरी-भरी पहाड़ियों और विरल पेड़ों के साथ शैलीबद्ध किया गया है और आकृतियों को विस्तृत अलंकरण और पारंपरिक पोशाक के साथ दर्शाया गया है। रंग जीवंत है जिसमें लाल, नीले और हरे रंग पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जो इस चित्र की खासियत है। यह चित्र युद्ध में पहले के क्षण के तनाव और नाटक को पकड़ती है जिसमें कृष्ण और अर्जुन की केंद्रीय आकृतियों और संघर्ष को उजागर किया गया है।

25. सत्य ग्रह इत्यादि आकाशीय पिंडों को भी अपनी विभूति बताते हुए श्री कृष्ण :-

यह चित्र हिंदू पौराणिक कथाओं, संभवतः महाभारत के एक दृश्य को दर्शाता है जिसमें कृष्ण और अर्जुन रथ पर सवार हैं। नीली त्वचा वाले कृष्ण गदा पकड़े हुए हैं और रथ को खींचने वाले चार घोड़ों का मार्गदर्शन कर रहे हैं, जबकि अर्जुन धनुष और बाण पकड़े हुए उनके पीछे बैठे हैं। रथ को अलंकृत रूप से सजाया गया है और उसके बड़े पहिए हैं। पृष्ठभूमि में पेड़ों के साथ एक हरा पहाड़ी दृश्य है। दाएं ओर आकृतियों का एक समूह, संभवतः देवता या दिव्य प्राणी खड़े हैं और नीचे दाएं ओर एक ऋषि ध्यान में बैठे हैं। चित्र में एक रंगीन दृश्य दर्शाया गया है। यह चित्र एक सजावटी पैटर्न के साथ काले फ्रेम में संलग्न है।

26. ज्ञान, काम, अहंकार, पाखंड की विवेचना करते हुए श्री कृष्ण :-

इस चित्र में केंद्र में एक नीली त्वचा वाले देवता कृष्ण को एक पेड़ पर बैठा हुआ दिखाया गया है। योद्धा की पोशाक पहने एक आकृति से बातचीत कर रहे हैं, संभवतः अर्जुन जो तलवार के साथ नीचे खड़ा है। बाईं ओर अलंकृत बनावट के साथ एक सफेद घोड़े को दर्शाया गया है। इस चित्र में जमीन पर कई आकृतियां बैठी हैं जो एक सभा या शिक्षक का संकेत देती हैं। पृष्ठभूमि में पहाड़ियों को दर्शाया गया है।

27. वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, शैव, एवं सौर्य भक्त :-

इस चित्र में कई आकृतियों और तत्वों के साथ एक दृश्य दर्शाया गया है। केंद्रीय आकृति एक नीली त्वचा वाले देवता की है। संभवतः विष्णु जो शेर जैसे प्राणी की सवारी कर रहे हैं। बाईं ओर अलंकृत पोशाक में एक आकृति शायद एक राजा या योद्धा, दो सफेद घोड़ा द्वारा खींचे गए रथ के पास खड़ा है। पृष्ठभूमि में छोटी आकृतियां हैं, कुछ मंचों पर खड़ी हैं। ऐसा लगता है कि पेड़ों और एक पहाड़ी के साथ एक परिदृश्य है। इस चित्र में मिट्टी और मौन रंगों की एक पैलेट है जिसमें चमकीले रंगों की झलक मिलती है। पृष्ठभूमि में घास का हरा मैदान और हल्का नीला आसमान है।

28. आत्मा और शरीर का संबंध पुराने वस्त्रों की जगह नए धारण करने सदृश हैं :-

इस चित्र में हिंदू पौराणिक कथाओं के एक दृश्य में भगवान वराह, विष्णु के अवतार को दर्शाया गया है। इस चित्र में नीली त्वचा वाले अनेक भुजाएं वाले जिनमें दिव्य गुण हैं, वह एक हरे पक्षी पर उड़ रहे हैं जो संभवतः भगवान विष्णु की सवारी गरुड़ है। वराह के नीचे कई आकृतियां बैठी हैं, संभवतः ऋषि या सेवक जो इस दिव्य घटना को देख रहे हैं। वे पारंपरिक पोशाक पहने हुए हैं तथा कुछ के हाथ में ऐसी वस्तुएं हैं जो धार्मिक संदर्भ का संकेत देती हैं। दाहिनी ओर एक राजा या कुलीन व्यक्ति को उसके साथ घोड़े और रथ सहित दिखाया गया है पृष्ठभूमि में पेड़ों से भरा पहाड़ी परिदृश्य और बादलों से भरा आकाश दिखाया गया है इस चित्र में नीले, पीले, लाल, भूरे, हरे रंगों का प्रयोग किया गया है।

29. अर्जुन को देवासुर सम्पदा विभाग योग का सार समझाते हुए श्री कृष्ण :-

यह चित्र हिंदू पौराणिक कथाओं के एक दृश्य को दर्शाता है। जिसमें संभवतः विष्णु के दसवें अवतार कल्कि को दिखाया गया है। कल्कि को एक छत्र के नीचे एक अलंकृत झूले या सिंहासन पर बैठे हुए दिखाया गया है, जो पीले वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित है और कमल का फूल पकड़े हुए। एक आकृति जो संभवतः स्वयं विष्णु का प्रतिनिधित्व करती है, बाईं ओर खड़ी है जबकि एक सफेद घोड़ा, जो संभवतः कल्कि के भविष्य के रूप का प्रतिनिधित्व करता है, दाईं ओर खड़ा है। दो आकृतियों संभवतः ऋषि या पवित्र पुरुष, हरे परिदृश्य पर पृष्ठभूमि में बैठे हैं। पेंटिंग को एक सजावटी बॉर्डर के साथ फ्रेम किया गया है।

30. सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलयुग आदि युगों एवं पंचभूतों की महता बताते हुए श्री कृष्ण :-

यह चित्र हिंदू पौराणिक कथाओं, संभवतः महाभारत, के एक दृश्य को दर्शाता है। बाघ पर सवार नीली त्वचा वाली एक आकृति जो संभवतः किसी देवता या विष्णु के किसी रूप का प्रतिनिधित्व करती, ध्यान मुद्रा में बैठी एक आकृति, संभवतः कोई ऋषि या देवता की है। पृष्ठभूमि में खड़ी आकृतियों का एक समूह, संभवतः दर्शक या दृश्य में भाग लेने वाले लोग कवच पहने एक आकृति संभवतः दर्शक: अर्जुन, दो सफेद घोड़ों द्वारा खींचे जा रहे रथ के पास खड़ी है। इस चित्र में एक हरे मैदान और एक भूरे रंग की पहाड़ी वाला परिदृश्य दिखाया गया है। चित्रकला शैली भारतीय लघु चित्रकला की प्रतीत होती है, जो संभवतः 18वीं या 19वीं शताब्दी की है।

31. शीर्षकहीन 13 :-

यह पेंटिंग थगका प्रतीत होती है जो एक पारंपरिक बौद्ध पेंटिंग है जिसमें संभवतः एक देवता को दर्शाया गया है। केंद्रीय आकृति हल्के नीले रंग की है जो एक कमल के फूल पर कलम की मुद्रा में बैठी है जिसके सिर के पीछे एक गुलाबी प्रभामंडल और एक बड़ा नीला गोलाकार पृष्ठभूमि है। इस आकृति की चार भुजाएँ हैं जिसमें से प्रत्येक हाथ में वस्तुएँ हैं। आकृति आभूषणों और मुकुट से सजी हुई है। पृष्ठभूमि ऊपर से नीले रंग से नीचे हरे रंग में परिवर्तित होती है।

32. धृतराष्ट्र दरबार में कौरव व पांडव :-

इस चित्र में शाही दरबार के दृश्य को दर्शाया गया है। इसमें धृतराष्ट्र को एक गद्देदार सिंहासन पर बैठा हुआ दिखाया गया है तथा उसके हाथ में कोई फूल या प्रतीकात्मक वस्तु दिखाई देती है। शासन के दोनों ओर कई आकृतियाँ हैं, कुछ खड़ी हैं और कुछ बैठी हैं या तो बातचीत में व्यस्त हैं। एक सजावटी छतरी एक केंद्र बिंदु प्रदान करती हैं तथा केंद्रीय आकृतियों को फ्रेम करती हैं। पृष्ठभूमि सादे नीले रंग की है जो विस्तृत आकृतियों और सिंहासन के नीचे बीचों बीच पैटर्न वाले कालीन के विपरीत हैं। इस चित्र में रंगों की एक समृद्ध श्रृंखला का प्रयोग किया गया है जिसमें हरा, लाल, नारंगी, और सुनहरे रंगों का प्रमुख प्रयोग किया गया है।

33. अर्जुन को देवासुर संपदा विभाग योग बताते हुए श्री कृष्ण :-

यह चित्र 19वीं शती ई0. अर्की हिमाचल प्रदेश का है जो कांगड़ा की लघु चित्रकला प्रतीत होती है। इसमें एक नीली त्वचा वाले देवता जो कृष्ण है वह एक विस्तृत पुष्प सिंहासन पर बैठे हैं। देवता आभूषणों से सुसज्जित है और पीले रंग की धोती पहने हुए हैं। कृष्ण के पास ही अर्जुन को खड़ा हुआ दिखाया गया है। केंद्रीय देवता के चारों ओर कई आकृतियाँ स्थापित हैं जिनमें से कुछ मुद्रा में बैठे हैं

ये अन्य देवताओं, ऋषियों या सेवकों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। विशेष रूप से पृष्ठभूमि में अनेक भुजाओं वाली एक आकृति दिखाई दे रही है जो संभवतः शिव या दुर्गा जैसी किसी शक्तिशाली देवता का प्रतिनिधित्व करती है। पृष्ठभूमि में एक हरे मैदान, एक छोटी पहाड़ी और बादलों से भरा आकाश वाला एक साधारण परिदृश्य दिखाया गया है। इससे यह पता चलता है कि यह एक बाहरी स्थान है। इस चित्र में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग और सावधानी पूर्वक ब्रश वर्क और पहाड़ी चित्रकला शैलियों की विशिष्टता है।

34. शीर्षकहीन 14 :-

इस चित्र में श्री नाथ जी की राजस्थानी लघु शैली को दर्शाया गया है जो हिंदू भगवान श्री कृष्ण का एक रूप है जिसमें वह 7 साल के बच्चे के रूप में हैं। श्री नाथ जी को गहरे रंग की त्वचा और आभूषणों से सुसज्जित दिखाया गया है जो शैलीगत केले के पत्तों और नीले आसमान की पृष्ठभूमि के सामने बीच में खड़े हैं। उनके दोनों ओर दो सेवक प्रसाद पकड़े हुए हैं। इस चित्र में नीले, हरे, लाल, और पीले रंगों का प्रयोग किया गया है।

श्री कृष्ण के चित्रों की शैली

श्री कृष्ण के चित्रों में विभिन्न शैलियों और विशेषताओं का वर्णन किया गया है जो उनकी लीलाओं और विभिन्न स्वरूपों को दर्शाते हैं। नाथद्वारा शैली, पिच्छवाई चित्रकला, रंग, अन्य शैलियाँ, उड़ीसा की पट्चित्र शैली, किशनगढ़ शैली, अलंकरण, प्रकृति, अन्य चित्रकला, मधुबनी चित्रकला आदि शैलियों का उल्लेख किया गया है।

➤ नाथद्वार शैली :-

यह मेवाड़ शैली की एक उपशैली है जो राजस्थान के नाथद्वार में विकसित हुई है। नाथद्वार चित्रों में कृष्ण की सुंदरता और आध्यात्मिक महत्व के लिए अत्यधिक महत्व दिया जाता है।

➤ पिच्छवाई चित्रकला :-

पिच्छवाई चित्रकला नाथद्वार की एक लोकप्रिय उपशैली है जिसमें भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं को दर्शाया जाता है जैसे गोवर्धन धारण, कंस का वध, रासलीला आदि श्री कृष्ण की लीलाएं हैं।

➤ रंग :-

श्री कृष्ण को ज्यादातर नीले या काले रंग की त्वचा के साथ चित्रित किया जाता है जो उनके दिव्य और अलौकिक स्वरूप को दर्शाता है। नीला रंग अक्सर आकाश और अनंतता का प्रतीक है जबकि काला रंग उनकी गहरी और रहस्य में प्रकृति को दर्शाता है।

➤ अन्य शैलियाँ :-

श्री कृष्ण के चित्रों में उड़ीसा की पट्चित्र शैली और किशनगढ़ शैली भी महत्वपूर्ण हैं जो कृष्ण के विभिन्न स्वरूपों और उनके जीवन की घटनाओं को दर्शाती हैं।

➤ उड़ीसा की पट्चित्र शैली :-

उड़ीसा के पटचित्र एक पारंपरिक और विशिष्ट कला शैली है। पटचित्र एक प्रकार की चित्रकला है इसमें कपड़े या कागज पर रंगीन चित्र बनाए जाते हैं। इन चित्रों में कृष्ण को विशेष रूप से भगवान जगन्नाथ के रूप में चित्रित किया जाता है।

➤ किशनगढ़ शैली :-

किशनगढ़ शैली एक पारंपरिक भारतीय चित्रकला है जो राजस्थान के किशनगढ़ क्षेत्र में विकसित हुई। यह शैली 18वीं शताब्दी में विकसित हुई और इसमें मुख्य रूप से भगवान श्री कृष्ण और राधा के जीवन और प्रेम को दर्शाया जाता है। इसमें प्रेम और भक्ति को मुख्य विषय रखा जाता है।

➤ अलंकरण :-

श्री कृष्ण के अलंकरण उनके दिव्य और आकर्षक स्वरूप को दर्शाते हैं। उन्हें मोर पंख वाले मुकुट, बांसुरी, कानों में कुंडल, गले में हार, पैरों में पायल अन्य प्रतीकों के साथ चित्रित किया जाता है। इन अलंकरणों के माध्यम से ही श्री कृष्ण के दिव्य और आकर्षक स्वरूप को दर्शाया जाता है जो उनकी सुंदरता और आकर्षक को बढ़ाते हैं।

➤ प्रकृति :-

श्री कृष्ण लीला के चित्रों में पृष्ठभूमि में प्रकृति को भाव समाजस्य स्थापित करते हुए दिखाया जाता है।

➤ अन्य चित्रकला :-

कृष्ण के चित्रों में, उन्हें उनेक सहयोगियों और मित्रों, माखन लेते हुए दिखाया जाता है।

➤ मधुबनी चित्रकला :-

मधुबनी चित्रकला एक पारंपरिक भारतीय चित्रकला शैली है जो बिहार के मधुबनी जिले में विकसित हुई थी। इस शैली में भगवान श्री कृष्ण के जीवन और कथाओं को दर्शाया जाता है।

चतुर्थ अध्याय

- श्री कृष्ण संग्रहालय का कला में योगदान

श्री कृष्ण संग्रहालय का कला में योगदान

श्री कृष्ण संग्रहालय का कला में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री कृष्ण संग्रहालय एक प्रमुख संग्रहालय है जो भगवान श्री कृष्ण के जीवन और महाभारत से जुड़ी कलाकृतियों को प्रदर्शित करता है। इस संग्रहालय का कला के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह संग्रहालय विभिन्न कलाकृतियों को संरक्षित और संवर्धन करने में मदद करता है। श्री कृष्ण कथा का भारतीय साहित्य एवं कला के उद्भव व विकास में अभूतपूर्ण पूर्ण योगदान रहा है। कला के विभिन्न रूपों जैसे कि पत्थर, काष्ठ, कांस्य, मृद, हाथी दांत, अस्थि, कागज, वस्त्र आदि में भगवान श्री कृष्ण के व्यक्तित्व से जुड़े विचारों, कथाओं, संदेशों और चमत्कारों का चित्रण है।

यह संग्रहालय कला के इतिहास और संस्कृति को प्रदर्शित करता है। इस संग्रहालय की कलाकृतियों में कुरुक्षेत्र की भूमि से प्राप्त मृदभाण्ड हमें प्राचीन संस्कृतियों के बारे में बहुत कुछ बताते हैं। ये मृदभाण्ड प्राचीन संस्कृतियों के आंकलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। द्वारिका से प्राप्त विभिन्न ऐतिहासिक काल के मृदभाण्ड व शंख से बनी वस्तुओं, उत्तर हड़प्पाकालीन मुद्रा इस संग्रहालय में प्रदर्शित है। मथुरा से प्राप्त प्रस्तर मूर्ति कला जो प्रथम शती ई० से पांचवी शती तक है और राजस्थानी चित्रकला का दसवीं शताब्दी ईस्वी से पहले से भारतीय चित्रकला का प्राचीन परंपरा का प्रतिनिधित्व भित्ति चित्रों में मिलता है। संग्रहालय में बसौली, मानकोट व कांगड़ा के लघु चित्रों का अच्छा संग्रह है। संग्रहालय में भागवत कथा पर आधारित 19वीं शती ईसवी के कांगड़ा के चित्रों का एक विशेष संग्रह है।

मधुबनी चित्रों व उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु व राजस्थान से प्राप्त काष्ठ पर उत्कीर्ण मूर्तियों व वस्तुओं का एक अच्छा संग्रह प्रदर्शित किया गया है। भारत में धातु शिल्प की एक प्राचीन परंपरा रही है। इसके उदाहरण हमें हड़प्पा संस्कृति के समय में मिलते हैं। दक्षिण भारत के धातुशिल्प में कृष्ण कथा को विशेष स्थान दिया गया है। कालिया मर्दन तथा बालकृष्ण, उड़ीसा के गजाम जिले की धातुशिल्प कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण इस संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। हाथी दांत से निर्मित कलाकृतियों का अच्छा संग्रह है, जिसमें हाथी दांत से निर्मित गोवर्धन धारी कृष्ण का चित्र उत्तर मुगल शैली का अत्यंत मनमोहक चित्र है। कागज की लुगदी तथा थरमोकोल से निर्मित आकृतियों में कृष्ण कथा व महाभारत के प्रसंगों की झांकियां भी प्रदर्शित हैं। ये कलाकृतियां भारत की अलग-अलग जगह से इस संग्रहालय में लाई गई हैं। इस संग्रहालय में प्रदर्शित कलाकृतियों के द्वारा लोगों में कला के प्रति भावनाएं उत्पन्न करने और कला को जानने में मदद मिलती है।

इस संग्रहालय में प्रदर्शनियां भी आयोजित की जाती हैं और इस संग्रहालय में प्रदर्शनियों के लिए स्थान भी दिया जाता है। मदरस डे, नवरात्रि के अवसर पर, गीता जयंती पर आदि अवसरों पर बच्चों को कलाकृतियां दिखाई जाती हैं। संग्रहालय दिवस और पर्यावरण दिवस जैसे दिवसों पर भाषण आयोजित करते हैं, ताकि कला के प्रति लोगों में भावनाएं उत्पन्न हो। गीता जयंती पर इस संग्रहालय में प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती है।

श्री कृष्ण संग्रहालय भगवान श्री कृष्ण के जीवन, शिक्षाओं और कलाकृतियों को प्रदर्शित करता है, जो कला और संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस संग्रहालय में श्री कृष्ण के जीवन से संबंधित चित्रों और शिलालेखों का संग्रह है, जो उस समय की कला और संस्कृति को दर्शाता है। संग्रहालय में लोगों को पेंटिंग और पोस्टर प्रतियोगिताओं के लिए आमंत्रित किया जाता है। इस संग्रहालय में बच्चों के लिए फ्री समर होबी कक्षाएं आयोजित करवाते हैं। इससे कई बच्चों के अंदर कला के प्रति भावनाएं उत्पन्न हुईं और उन्होंने कला को ही अपना जीवन का यापन बना लिया। इस संग्रहालय में बच्चों को कला के प्रति प्रोत्साहित किया जाता है और कला क्षेत्र को आगे बढ़ाने के लिए मदद करता है। यह संग्रहालय कला के कार्यों को प्रदर्शित करने और प्रचार करने का महत्वपूर्ण मंच प्रदान करता है, जिससे कला के प्रति लोगों की रुचि और ज्ञान बढ़ता है।

यह संग्रहालय कला की शिक्षा और अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन प्रदान करता है, जिससे कला के छात्रों और शोधकर्ताओं को अपने ज्ञान और कौशल को विकसित करने में मदद मिलती है। श्री कृष्ण संग्रहालय कला के कार्यों का एक विशाल संग्रह प्रदान करता है। इस संग्रहालय में विभिन्न कलाकृतियों और सांस्कृतिक वस्तुओं का संग्रह है, जिससे लोग कला के विभिन्न रूपों और शैलियों से परिचित हो सकें। जब इस संग्रहालय की कलाकृतियों का अध्ययन करते हैं, जिससे कला के बारे में नई जानकारी मिलती है।

श्री कृष्ण संग्रहालय कला को बढ़ावा देता है, जिससे कलाकारों को अपनी कला दिखाने और प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। यह संग्रहालय विभिन्न संस्कृतियों की कलाकृतियों को प्रदर्शित करते हैं, जिससे लोग विभिन्न संस्कृतियों के बारे में जान सकें और समझ सकें। यह संग्रहालय पर्यटन को बढ़ावा देता है जिससे कला और संस्कृति के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ता है।

पंचम अध्याय

- श्री राजेन्द्र राणा के साथ साक्षात्कार

श्री राजेन्द्र राणा के साथ साक्षात्कार

श्री राजेन्द्र राणा, श्री कृष्ण संग्रहालय कुरुक्षेत्र के पूर्व क्यूरेटर हैं जो अब एक समन्वयक (कोऑर्डिनेटर) के रूप में श्री कृष्ण संग्रहालय में कार्य कर रहे हैं।

प्र01. आप कितने समय से यहां कार्य कर रहे हो और आपका अनुभव कैसा रहा है ?

उत्तर:- मैंने सन 1991 से 2020 तक एक क्यूरेटर के रूप में कार्य किया है, परंतु 2020 के बाद एक समन्वयक (कोऑर्डिनेटर) के रूप में इसी संग्रहालय में कार्य कर रहा हूँ। मेरा अनुभव इस संग्रहालय में बहुत अच्छा रहा है क्योंकि बाहर से आने वाले लोगों के लिए मात्र यह एक ऐसा संग्रहालय है जो आकर्षण है, जैसे – पैनोरमा, शेखचिल्ली का मकबरा, भद्रकाली मंदिर, ज्योतिसर, विष्णु कुंडल का तारी। ये सभी दर्शनीय स्थल है। जैसे लोगों के अंदर इच्छाएं होती हैं कि कृष्ण, महाभारत और कुरुक्षेत्र के बारे में जानने की, जिन्हें हम प्रदर्शनियों द्वारा श्री कृष्ण कथा क्या है और कुरुक्षेत्र का पुरात्व क्या है। इन प्रदर्शनियों के माध्यम से लोगों की इच्छाओं का समन किया जाता है और मुझे इन प्रदर्शनियों और कलाकृतियों को देखने और उनके बारे में जानने का अवसर मिला है। यहां का माहौल बहुत अच्छा है।

प्र02. श्री कृष्ण संग्रहालय की स्थापना कब और किसके द्वारा की गई ?

उत्तर :- श्री कृष्ण संग्रहालय की स्थापना 13 अप्रैल 1987 में माननीय गुलजारीलाल नंदा जी जो कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के संस्थापक थे, उनके द्वारा की गई थी। उस समय केवल स्थापना हुई थी, परंतु संग्रहालय का विधिवत 28 जुलाई 1991 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री आर. वैंकाटरमन के द्वारा किया गया था। श्री आर वैंकाटरमन ने पहले भवनखण्ड का उद्घाटन किया था। 1995 में दूसरा भवनखण्ड बनाया गया, जिसका उद्घाटन हरियाणा के राज्यपाल द्वारा किया गया था। 2012 में तीसरा ब्लॉक जोड़ा गया, जिसे मल्टीमीडिया महाभारत गैलरी के नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल के द्वारा की गई थी।

वर्तमान में श्रीकृष्ण संग्रहालय में तीन ब्लॉक हैं, परंतु वर्तमान में चौथे ब्लॉक बनाने की योजना चल रही है। चौथे ब्लॉक के जरिए महाभारत कालीन भारत क्या है, इसके माध्यम से बताया जाएगा। चौथे ब्लॉक में महाभारत की भूमि कुरुक्षेत्र, उसका सांस्कृतिक परिदृश्य क्या है, उसका पुरातात्विक परिदृश्य क्या है, उसे लोगों को अवगत कराएंगे।

प्र03. श्री कृष्ण संग्रहालय में क्या-क्या चीजें प्रदर्शित हैं ?

उत्तर :- 1. पत्थर की मूर्तियां

2. काष्ठ की मूर्तियां

3. कांस्य ढलाई

4. पत्ती – नक्काशी

5. लघु चित्रकारी

6. टेराकोटा की कलाकृतियां

7. आभूषण

8. पांडुलिपियाँ

9. मिट्टी के बर्तन

प्र04. श्री कृष्ण संग्रहालय का डिजाइन किसके द्वारा तैयार किया गया था ?

उत्तर :- श्री कृष्ण संग्रहालय का डिजाइन हरियाणा के मुख्य वास्तुकार की देखरेख में डिजाइन तैयार किया गया था।

प्र05. श्री कृष्ण संग्रहालय को बनाने में कितना समय लगा था ?

उत्तर :- श्री कृष्ण संग्रहालय को बनाने में काफी समय लगा था। सबसे पहले सन 1985 से 1986 में बनाने की प्रक्रिया शुरू की गई थी। इसके बीच में 1985 से 1987 तक संग्रह को प्रदर्शित किया गया, जिसमें 2 साल का समय लगा था। जब पहला चरण पूरा हुआ था, तो दूसरी इमारत बनकर तैयार हो गई थी। फिर 4 साल बाद उस संग्रह को पहली इमारत में प्रदर्शित किया गया और सन 1991–1995 के बीच के संग्रह को दूसरे भवन खंड में प्रदर्शित किया गया था और फिर 2008 से 2012 के बीच में तीसरा ब्लॉक बनाया गया, जिसकी स्थापना 2012 में हुई थी। इसे मल्टीमीडिया महाभारत गैलरी के नाम से जाना जाता है। इसको बनाने में 4 साल का समय लगा था।

प्र06. श्री कृष्ण संग्रहालय में कितने कमरे हैं ?

उत्तर :- वैसे तो संग्रहालय में आठ कमरे हैं। चार बड़े कमरे और चार छोटे कमरे हैं। चार छोटे कमरों में स्टोर और सोनी आर्ट शॉप का सामान रखा जाता है।

प्र07. क्या श्री कृष्ण संग्रहालय में पुस्तकालय है ?

उत्तर :- हां, श्री कृष्ण संग्रहालय में पुस्तकालय है, जिसमें दर्शन, धर्म, संस्कृत, साहित्य, पुरातत्व कला, संग्रहालय से संबंधित आदि पुस्तकें हैं आज के समय में यहां लगभग 3500 के करीब पुस्तकें हैं।

प्र08. श्री कृष्ण संग्रहालय में कितनी गैलरी हैं और उन गैलरियों में क्या-क्या प्रदर्शित है ?

उत्तर :- श्री कृष्ण संग्रहालय में नौ गैलरी हैं, तीन भवन खंड है। एक भवन खंड में तीन गैलरी हैं, जिसमें पत्थर की मूर्तियां, काष्ठ की मूर्तियां, तंजौर चित्रकला, राजस्थानी लघु चित्रकला, पहाड़ी चित्रकला, मानव कृतियां आदि के चित्रण प्रदर्शित किए हैं।

प्र09. श्री कृष्ण संग्रहालय बनाने का क्या उद्देश्य था ?

उत्तर :- कुरुक्षेत्र एक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल रहा है। कहा जाता है – महाभारत काल में तीन तीर्थ जो बहुत प्रसिद्ध थे, जिसमें की नैमिष गोमती के किनारे, पुष्कर राजस्थान में, कुरुक्षेत्र हरियाणा में। इन तीन तीर्थों में कुरुक्षेत्र प्रमुख तीर्थ है। कुरुक्षेत्र का अस्तित्व बहुत बड़ा है। भारत भूमि से बाहर या भारत भूमि में हरियाणा के बारे में किसी को पता हो या न हो, लेकिन कुरुक्षेत्र का सबको पता है। कुरुक्षेत्र का व्यक्तित्व हरियाणा के व्यक्तित्व से भी बड़ा है।

आमतौर पर लोगों की जिज्ञासा होती है कि महाभारत का युद्ध कैसे हुआ और कृष्ण कथा क्या है, इसलिए भगवान कृष्ण के जीवन, महाभारत की महाकाव्य कथा और कुरुक्षेत्र के इतिहास से संबंधित कलाकृतियां, मूर्तियां, चित्रों को प्रदर्शित करना और लोगों की जिज्ञासा को दूर करना, इस संग्रहालय को बनाने का मुख्य उद्देश्य रहा है। कई लोग सोचते हैं महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र में ही लड़ा गया है, परंतु ऐसा नहीं है। यह 5 जिलों में फैली हुई भूमि है। कुरुक्षेत्र के गौरवशाली इतिहास को लोगों के सामने प्रकट करना, इस संग्रहालय का मुख्य उद्देश्य रहा है। कुरुक्षेत्र 48 कोस की भूमि में 366 तीर्थ स्थल हैं। उन धार्मिक इतिहास से भी अवगत कराने के उद्देश्य से कुरुक्षेत्र में बहुत सारे तीर्थ महाभारत के प्रसंगों और घटनाओं से संबंधित हैं। इन सब की जानकारी देना ही श्री कृष्ण संग्रहालय का मुख्य प्रयोजन रहा है।

प्र10. श्री कृष्ण संग्रहालय में कितने वर्कर कार्य करते हैं ?

उत्तर :- वर्तमान में बहुत कम वर्कर है, परंतु कभी 40 वर्कर कार्य करते थे। कोरोना काल में जितने वर्कर कार्य करते थे, उन वर्कों में से 13-14 वर्कर को कम कर दिया था जिसके कारण वर्तमान में 14-15 वर्कर ही इस संग्रहालय में कार्य करते हैं। सरकार ने अभी भर्ती नहीं की है, परंतु प्रयास किया जा रहा है। नए वर्कर आए, क्योंकि पहले हर एक गैलरी के लिए एक वर्कर होता था, परंतु अब ऐसा

नहीं है। सिक्योरिटी में मुश्किल होती है, परंतु प्रयास किया जा रहे हैं, इसको पहले जैसे रूप में लाने के।

प्र11. इस संग्रहालय में किस प्रकार के चित्र प्रदर्शित हैं ?

उत्तर :- इस संग्रहालय में ज्यादातर पिच्छवाई चित्रकला के चित्र प्रदर्शित हैं, जिन्हें कपड़े पर बनाया गया है। इसमें ज्यादातर कृष्ण की लीलाओं के चित्रण हैं, पटचित्र जो उड़ीसा की शैली है, जिसमें कृष्ण और महाभारत के दृश्य दिखाए गए हैं, मिनिऐचर पेंटिंग है – जो कांगड़ा शैली से है। इसका 26 पेंटिंग का सेट है, जिसमें गीता के उपदेश को देते हुए श्री कृष्ण को अलग-अलग चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

इस संग्रहालय में चित्रों का बहुत बड़ा संग्रह है। शायद ही आपको ऐसा संग्रह कहीं और देखने को मिले। इस संग्रहालय में तालपत्र चित्र, वर्ली और मधुबनी पेंटिंग के चित्र भी प्रदर्शित हैं। इस संग्रहालय में दीवार पेंटिंग भी प्रदर्शित है, जो विभिन्न शैलियों में महाभारत कथा पर आधारित प्रसंगों का चित्रण है।

प्र12. श्री कृष्ण संग्रहालय में कितने चित्र मौजूद हैं ?

उत्तर :- कुल चित्र बताना थोड़ा मुश्किल है, परंतु 300 से 400 के करीब इस संग्रहालय में चित्र प्रदर्शित हैं।

प्र13. श्री कृष्ण संग्रहालय में क्या-क्या प्रदर्शनियां और आयोजन किए जाते हैं ?

उत्तर :- इस संग्रहालय में प्रदर्शनियों के लिए लोगों को जगह दी जाती है। संग्रहालय के पीछे एक आर्ट कॉरिडोर बनने वाला है। इसको बनाने का मुख्य उद्देश्य यही है कि लोग आर्ट एंड क्राफ्ट, संस्कृति से संबंधित कोई भी प्रदर्शनी लगाना चाहते हैं तो यहां पर लगा सकते हैं। पहले तो अलग-अलग अवसरों जैसे मदर डे, नवरात्रि, गीता जयंती जैसे अवसरों पर बच्चों को पेंटिंग दिखाई जाती है और म्यूजियम डे और पर्यावरण दिवस, आदि दिवसों पर भाषण आयोजित किए जाते हैं, ताकि लोगों में कला के प्रति भावनाएं उत्पन्न की जा सकें।

इस संग्रहालय में स्कूलों और कॉलेज के बच्चों को बुलाकर प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती है। गीता पर व्याख्यान प्रतियोगिता का आयोजन करते हैं और गीता जयंती पर श्लोक उच्चारण प्रतियोगिता भी आयोजित करवाते हैं।

प्र14. यदि किसी खुदाई के दौरान पुरानी चीज मिले तो उसे संग्रहालय में लाने की क्या प्रक्रिया होती है ?

उत्तर :- अगर पुरानी चीज मिलती है तो उसे सीधा संग्रहालय में नहीं लाया जाता। पहले उसे रीजनल रेस्टिंग ऑफिसर के कार्यालय में उस चीज का रजिस्ट्रेशन करवाना पड़ता है। जब वह संग्रहालय में चीज आएगी तो वह रजिस्टर्ड एनटीक्यूटी कहलाएगी, ताकि अगर वह चीज गुम हो जाएगी आपको ही उसकी एक एफ.आई.आर पुलिस में जमा करवानी पड़ती है।

प्र15. पैनोरमा और श्री कृष्ण संग्रहालय का आपस में क्या लिंक है ?

उत्तर :- पैनोरमा और श्री कृष्ण संग्रहालय का आपस में कोई लिंक नहीं है, क्योंकि पैनोरमा एक साइंस सेंटर है। उसकी प्रदर्श योजना बहुत अलग है। पैनोरमा का यहां स्थापित करने का उद्देश्य भारत की जो विज्ञान उपलब्धिया थी, उसको दिखाने का माध्यम है। पैनोरमा में सारी चीज आधुनिक हैं परंतु श्री कृष्ण संग्रहालय में इतिहास और संस्कृति से संबंधित चीजे प्रदर्शित हैं।

प्र16. अगर कोई पेंटिंग खराब हालत में मिलती है, उसको कैसे संरक्षित किया जाता है ?

उत्तर :- अगर पेंटिंग की हालत कम खराब है, तो उसे संग्रहालय में जो क्यूरेटर है, वह अपने ज्ञान के जरिए उसको पेपर या टिशू पेपर से ठीक कर सकते हैं। अगर पेंटिंग ज्यादा खराब है तो उसे लैब में ठीक करवाने के लिए भेजा जाता है। परंतु हर संग्रहालय में लैब नहीं होती है, तो उसे बड़े संग्रहालय जहां लैब की सुविधा होती है, जहां पर तकनीकी विशेषज्ञ और संरक्षक होते हैं, वहां पर खराब पेंटिंग्स को उनके असली रूप में लाया जाता है।

प्र17. श्री कृष्ण संग्रहालय का काल में क्या योगदान रहा है ?

उत्तर :- श्री कृष्ण संग्रहालय भगवान श्री कृष्ण के जीवन, शिक्षाओं और कलाकृतियों को प्रदर्शित करता है, जो कला और संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस संग्रहालय में श्री कृष्ण के जीवन से संबंधित चित्रों और शिलालेखों का संग्रह है जो उस समय की कला और संस्कृति को दर्शाता है। संग्रहालय में लोगों को पेंटिंग और पोस्टर प्रतियोगिता के लिए आमंत्रित करते हैं। बच्चों के लिए फ्री समर होबी कक्षाएं आयोजित करवाते हैं और बच्चों के अंदर कला के प्रति भावनाएं उत्पन्न हुई और उन्होंने कला को ही अपने जीवन यापन बना लिया।

प्र18. श्री कृष्ण संग्रहालय के चित्रों को किन-किन जगहों से लाया गया है ?

उत्तर :- इस संग्रहालय में चित्रों को भारत की अलग-अलग जगहों से लाया गया जैसे – पिच्छवाई, राजस्थान से है, राजस्थानी लघु चित्रकला जयपुर से है, नाकवार से है, उड़ीसा से पटचित्र है, बिहार से मधुबनी पेंटिंग है, तंजौर चित्रकला तमिलनाडु से है और कांगड़ा हिमाचल प्रदेश से है। इस संग्रहालय में दीवार पेंटिंग भी है।

सन 2002 में कुरुक्षेत्र वार्षिक गीता जयंती महोत्सव को महाभारत उत्सव के रूप में मनाया गया जिसमें देश के विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों से आए चित्रकारों ने विभिन्न शैलियों में महाभारत कथा पर आधारित प्रसंगों का चित्रण किया।

प्र19. क्या इस संग्रहालय में राजा रवि वर्मा की पेंटिंग भी प्रदर्शित है, तो उन पेंटिंग्स का क्या नाम है?

उत्तर :- इस संग्रहालय में राजा रवि वर्मा की पेंटिंग नहीं है, परंतु यहां पर उनके प्रिंट प्रदर्शित हैं जैसे – सरस्वती प्रिंट। सरस्वती के प्रिंट को सोभीनायर के तौर पर देते हैं, क्योंकि सरस्वती का दो रूपों नदी रूप और देवी रूप में भारतीय सभ्यता और संस्कृत में चित्रण हुआ। ऋग्वेद तो कहता है की माताओं में और देवियों में, नदियों में, सरस्वती ही सबसे श्रेष्ठ है।

उपसंहार

कुरुक्षेत्र में स्थित श्री कृष्ण संग्रहालय का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वास्तव में प्रत्येक संग्रहालय का अपना एक विशिष्ट स्वरूप होता है जिसमें उसकी पहचान एवं चरित्रगत विशेषता निहित रहती है। भगवान श्री कृष्ण के विचारों एवं आदर्शों से लोगों के नैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान तथा स्थानीय इतिहास से उन्हें अवगत कराने के उद्देश्य से ही सन 1987 में श्री कृष्ण संग्रहालय की स्थापना की गई।

संग्रहालय में प्रदर्शित कृतियों में श्री कृष्ण को एक देवता, विष्णु के अवतार, एक महान दार्शनिक महाकाव्य के नायक, एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। श्री कृष्ण का व्यक्तित्व एवं उनकी शिक्षाएं राष्ट्रीय गौरव के विषय हैं। उनकी लोक – लुभावनी एवं विस्मयकारी लीलाएं संपूर्ण देश के कला एवं शिल्प जगत के लिए सतत प्रेरणा स्रोत रही है। इस विषय को ध्यान में रखकर कलाकारों ने पारंपरिक लोक एवं शास्त्रीय शैली में विभिन्न माध्यमों का अवलंबन होकर कृष्ण कथा चित्रण किया।

यह संग्रहालय आकर्षण का केंद्र है। इस लघु शोध के दौरान मैंने पाया कि श्री कृष्ण संग्रहालय की चित्रकला इतनी सुंदर और आकर्षित है कि लगता है जितना देखो उतना ही कम है।

प्राचीन काल के प्रारम्भ से ही यह कला मनुष्यों के लिए उपयोगी साबित हुई है। जैसे लोग अपने घरों को सजाने के लिए चित्रकला का प्रयोग करते हैं। श्री कृष्ण संग्रहालय के चित्रकला में विभिन्न शैलियों और तकनीकों का उपयोग किया गया है जैसे कि पारंपरिक भारतीय चित्रकला, राजस्थानी चित्रकला, मधुबनी चित्रकला, पिछवाई चित्रकला। चित्रकला में भगवान श्री कृष्ण के जीवन और कथाओं को दर्शाया गया है जैसा कि उनका जन्म, बाल्यावस्था और उनकी कथाओं को दर्शाया गया है। चित्रकला में विभिन्न रंगों और विस्तार का उपयोग किया गया है जो दर्शकों को आकर्षित करते हैं। वर्तमान समय में लोग अपनी अमूल्य धरोहर का महत्व समझने लगे हैं तथा चित्रकला की ओर आकर्षित हो रहे हैं। वर्तमान समय में बनाए जा रहे मंदिरों में, घरों में चित्रकला का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

इस लघु शोध का उद्देश्य इतिहास में तथा आधुनिक समय में हुई कला पर प्रकाश डालना है। यदि हम विरासत में मिली इस चित्रकला को अपना नैतिक कर्तव्य समझकर इनका रखरखाव करके नई पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखें तो हम अपनी प्राचीन संस्कृति को नष्ट होने से बचा सकेंगे।

अतः हमें अपनी संस्कृति व इतिहास से जुड़े रहना चाहिए क्योंकि यही संस्कृति ही हमारी पहचान है।

सदरुु ग्रंथ सूची

- 1 डॉ०. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण : 2009, पृ०. सं०. 3, 4, 5, 6
- 2 डॉ०. प्रकाश वीरेश्वर, डॉ०. नुपूर शर्मा, कला दर्शन, कृष्ण प्रकाश मीडिया (प्रा०.) लि०. कृष्ण हाउस 11, शिवाजी मार्ग मेरठ – 250001, संस्करण : 2012, पृ०. सं०. 4, 5
- 3 डॉ०. आर. के. सिंह, आधुनिक भारतीय चित्रकला का इतिहास (सन् 1947 से 20वीं सदी तक), अनु बुक्स शिवाजी रोड मेरठ, संस्करण : 2012, पृ०. सं०. 84, 85, 88, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96
- 4 महन्त रामदास जी महाराज, नरकातारी बाणगंगा, पृ०. सं०. 3, 5
- 5 मनुहरि पाठक, भागवत की कथाएँ, ज्ञान गंगा दिल्ली, संस्करण : 2002, पृ०. सं०. 158, 160, 161, 164, 165
- 6 कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ, भगवान श्री कृष्ण, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, पृ०. सं०. 84, 85, 86, 560, 561
- 7 en.m.wikipedia.org/wiki/Indian_painting, 2 Jan 2025, 10:30
- 8 kurukshetra.gov.in/history, 16 Jan 2025, 12:15
- 9 haryana-tourism.gov.in. 20 Jan 2025, 9:08
- 10 kurukshetra.gov.in/hi/tourist-place, 22 Jan 2025, 10:15
- 11 kkrinfo.com, 1 Feb 2025, 1:40

चित्र संग्रह सूची

क्र.न०.	—	विषय
01	—	कदम्ब के नीचे कृष्ण का बांसुरी वादन
02	—	शीर्षकहीन
03	—	गोपाष्टमी
04	—	दान लीला
05	—	कदम्ब के नीचे वेणुगोपाल
06	—	बाल — कृष्ण
07	—	वादकों के मध्य कृष्ण
08	—	शीर्षकहीन 1
09	—	शीर्षकहीन 2
10	—	शीर्षकहीन 3
11	—	शीर्षकहीन 4
12	—	शीर्षकहीन 5
13	—	शीर्षकहीन 6
14	—	शीर्षकहीन 7
15	—	शीर्षकहीन 8
16	—	शीर्षकहीन 9
17	—	शीर्षकहीन 10
18	—	शीर्षकहीन 11
19	—	शीर्षकहीन 12
20	—	श्री नाथजी
21	—	विट्ठल
22	—	ऋद्धी सिद्धी के साथ गणेश
23	—	धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर राज दरबार में युद्ध का हाल सुनाते हुए संजय
24	—	आमने—सामने खड़ी कौरव व पांडव सेनाएं
25	—	सत्य ग्रह इत्यादि आकाशीय पिंडों को भी अपनी विभूति बताते हुए श्री कृष्ण
26	—	ज्ञान, काम, अहंकार, पाखंड की विवेचना करते हुए श्री कृष्ण

- 27 — वैष्णव, शाक्त, गणापत्य, शैव एवं सौर्य भक्त
- 28 — आत्मा और शरीर का संबंध पुराने वस्त्रों की जगह नए धारण करने सदृश हैं
- 29 — अर्जुन को देवासुर सम्पदा विभाग योग का सार बताते हुए श्री कृष्ण
- 30 — सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलयुग आदि युगों एवं पंचभूतों की महत्ता बताते हुए श्री कृष्ण
- 31 — शीर्षकहीन 13
- 32 — धृतराष्ट्र दरबार में कौरव व पांडव
- 33 — अर्जुन को देवासुर संपदा विभाग योग बताते हुए कृष्ण
- 34 — शीर्षकहीन 14
- 35 — कालिया मर्दन
- 36 — गोवर्धन पर्वत
- 37 — रासलीला
- 38 — अघासुर वध
- 39 — शिशुपाल वध

चित्र सूची



कदम्ब के नीचे कृष्ण का बांसुरी वादन



शीर्षकहीन



गोपाष्टमी



दान लीला



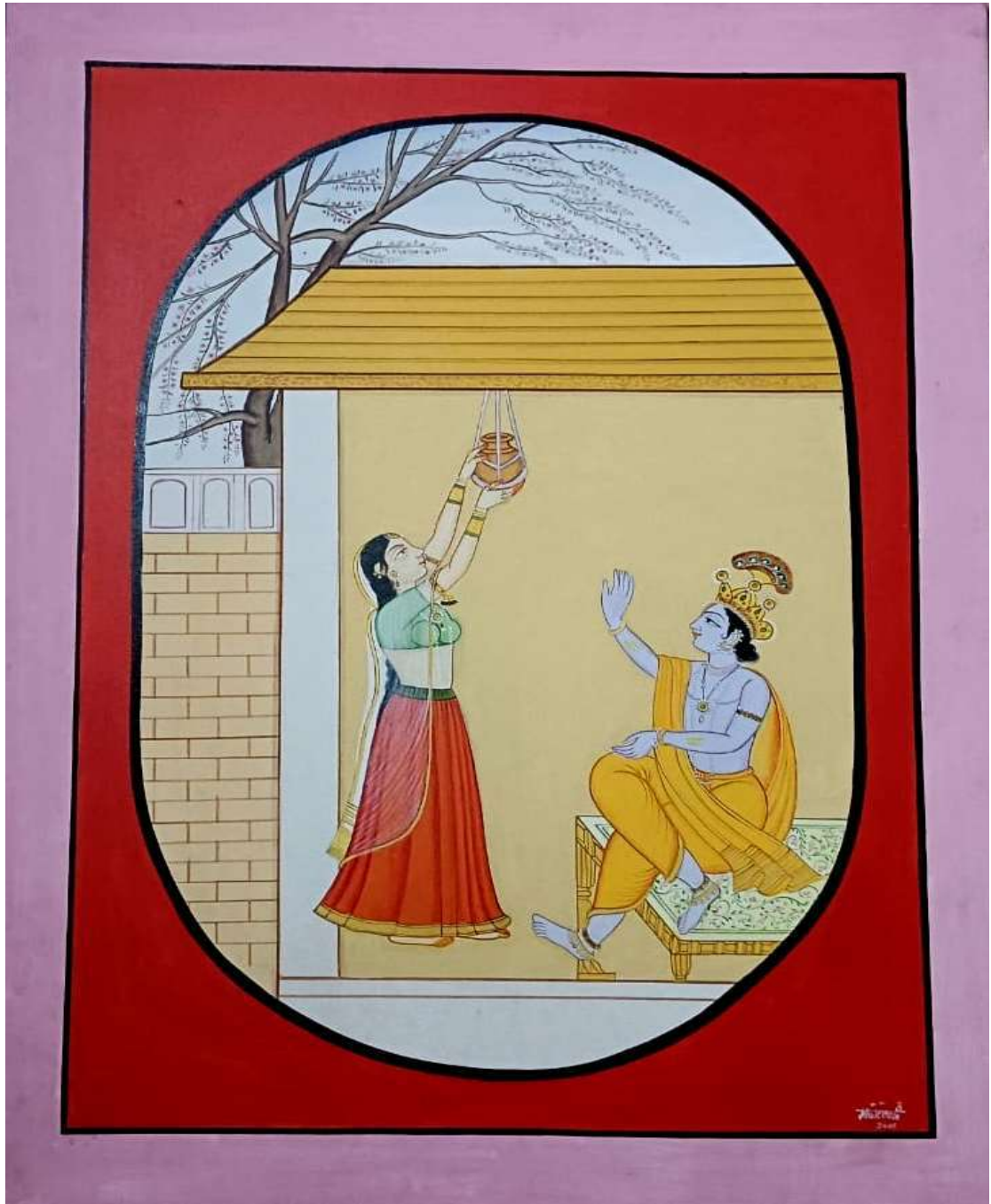
कदम्ब के नीचे वेणुगोपाल



बाल – कृष्ण



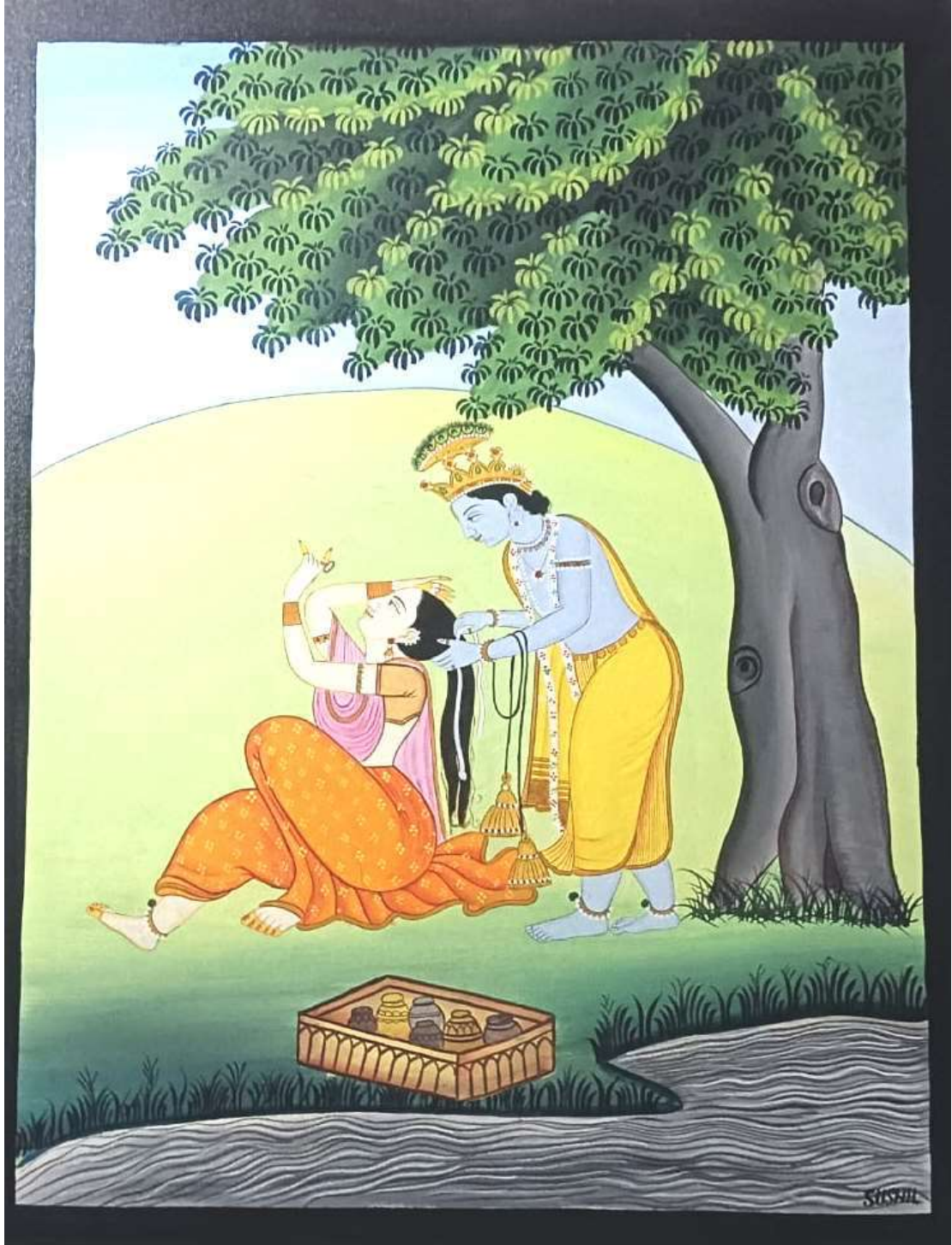
वादकों के मध्य कृष्ण



शीर्षकहीन 1



शीर्षकहीन 2



शीर्षकहीन 3



शीर्षकहीन 4



शीर्षकहीन 5



शीर्षकहीन 6



शीर्षकहीन 7



शीर्षकहीन 8



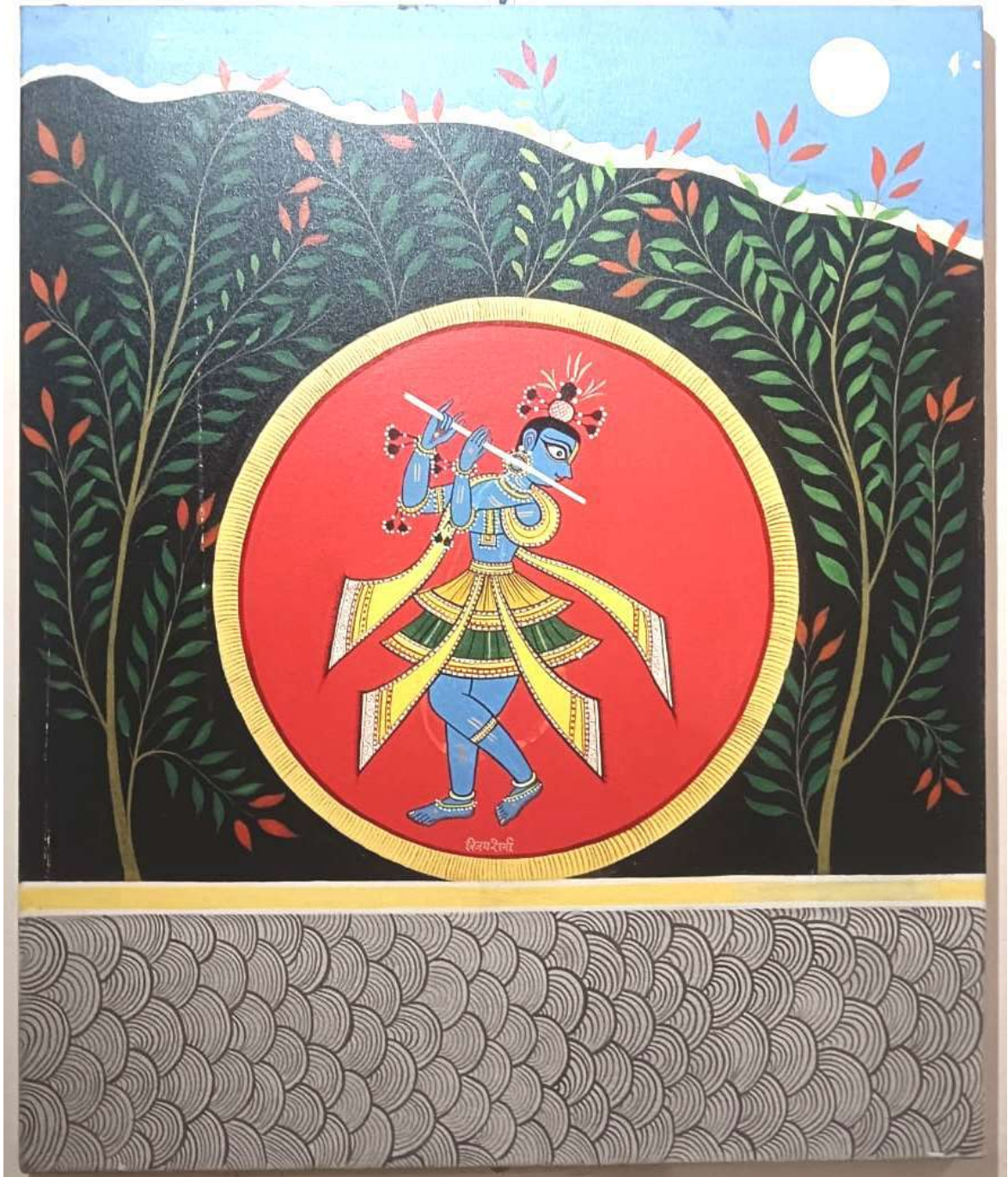
शीर्षकहीन 9



शीर्षकहीन 10



शीर्षकहीन 11



शीर्षकहीन 12



श्री नाथजी



विह्वल



ऋद्धी सिद्धी के साथ गणेश



धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर राज दरबार में युद्ध का हाल सुनाते हुए संजय



आमने-सामने खड़ी कौरव व पांडव सेनाएं



सत्य ग्रह इत्यादि आकाशीय पिंडों को भी अपनी विभूति बताते हुए श्री कृष्ण



ज्ञान, काम, अहंकार, पाखंड की विवेचना करते हुए श्री कृष्ण



वैष्णव, शाक्त, गणापत्य, शैव एवं सौर्य भक्त



आत्मा और शरीर का संबंध पुराने वस्त्रों की जगह नए धारण करने सदृश हैं



अर्जुन को देवासुर सम्पदा विभाग योग का सार बताते हुए श्री कृष्ण



सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलयुग आदि युगों एवं पंचभूतों की महत्ता बताते हुए श्री कृष्ण



शीर्षकहीन 13



धृतराष्ट्र दरबार में कौरव व पांडव



अर्जुन को देवासुर संपदा विभाग योग बताते हुए कृष्ण



शीर्षकहीन 14



कालिया मर्दन



गोवर्धन पर्वत



रासलीला



अघासुर वध



शिशुपाल वध

“हरियाणा की विभिन्न लोक कलाओं का कलात्मक
अध्ययन – अंजनथली, अकलीमपुर व अग्रोहा गांवों के संदर्भ में”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
की
ललित कला स्नातकोत्तर
उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा
श्रीमती संतोष
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री
स्वाति
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा०)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **स्वाति**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “हरियाणा की विभिन्न लोक कलाओं का कलात्मक अध्ययन – अंजनथली, अकलीमपुर व अग्रोहा गांवों के संदर्भ में” शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लगन से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं स्वाति, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध “ हरियाणा की विभिन्न लोक कलाओं का कलात्मक अध्ययन – अंजनथली, अकलीमपुर व अग्रोहा गांवों के संदर्भ में ” विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है, उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिक

महेश धीमान

शोधकर्त्री

स्वाति

आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)
कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि स्वाति, अनुक्रमांक न0. 130249907, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “ हरियाणा की विभिन्न लोक कलाओं का कलात्मक अध्ययन – अंजनथली, अकलीमपुर व अग्रोहा गांवों के संदर्भ में ” शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक:

प्राचार्या
डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

लोक कला का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। मनुष्य का जीवन इसके बिना अधूरा है। लोककला की सशक्त प्रणाली मानव संस्कृति के प्रारम्भ से चली आ रही है। प्रत्येक क्षेत्र की लोक कला अपने-अपने ढंग की होती है तथा इसमें ग्रामीण या मनुष्य जीवन की अभिव्यक्ति बड़े ही सशक्त ढंग से होती है। लोक कला का मानव जीवन के उद्भव और विकास में बहुत महत्व है। यदि देखा जाए तो विभिन्न युगों पर उसकी छाप का एक जैसा प्रभाव नहीं रहा। उनमें जो आदर्श, उद्देश्य, वैदिक युग में था, बाद के युगों में उसका सामाजिक नहीं बैठता। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि लोक कला अपने अतीत से किस प्रकार भिन्न है। परंतु इसका यह कारण नहीं है कि लोक कला के विकास और परंपरा और परिस्थिति में कोई अंतर ही नहीं।

लोक कला का विकास अपने आप होता आ रहा है। परंतु आज के युग में मनुष्य लोक कला से विमुख होते जा रहे हैं। हरियाणा क्षेत्र की लोक कला बहुत महत्वपूर्ण कला है। गांव के लोग अपने मन की अभिव्यक्ति अपनी कला द्वारा ही करते हैं। परंतु समय के साथ लोगों का कला के प्रति लगाव कम होता जा रहा है। इसलिए लोककला के महत्व को समझते हुए, मैंने इस विषय को लघु शोध के रूप में चुना, ताकि लोग लोककला को अपनी संस्कृति के रूप में ले और इसे नष्ट होने से बचाया जा सके।

यह विषय मेरी रुचि व स्वभाव के अनुकूल है। मैं एक ग्रामीण निवासी हूँ और हमारे गांव तथा आसपास के गांव में स्त्रियां तथा लड़कियां अब भी इस कला को अपनाए हुए हैं। अतः उनकी कला को देखने से मेरी इस विषय के प्रति रुचि बढ़ी है। मैंने अत्यधिक परिश्रम और मन से इस विषय का गहन अध्ययन किया है। इसमें विषयों को सरल भाषा में समझाने का प्रयास किया है। इस लघु शोध के लिए सामग्री एकत्रित करना मेरे लिए उत्साह का कार्य रहा है। मेरी कल्पना इसी से सजग हुई है।

इस लघु शोध को मैंने पांच अध्यायों में विभक्त किया है।

- ➔ प्रथम अध्याय में – कला का अर्थ, लोक कला का अर्थ, हरियाणा का परिचय, हरियाणा के लोक चित्रों का इतिहास बताया है।
- ➔ द्वितीय अध्याय में – हरियाणा की विविध प्रकार की लोक कलाओं का वर्णन किया है।
- ➔ तृतीय अध्याय में – लोक जीवन में लोक कला का क्या योगदान रहा, उसके बारे में बताया गया है।

- ➔ चतुर्थ अध्याय में – ग्रामीण लोक कला का महत्व और हरियाणा के पूर्वी गांव की लोक कला का वर्णन किया है।
- ➔ पंचम अध्याय में – लोक चित्रों के बारे में, समाज की अलग-अलग अवधारणाएं, विलुप्त होती लोक कलाएँ पर प्रकाश डाला है।

इस लघु शोध का प्रबंध के माध्यम से मैंने लोक कला की महत्वता को समझने का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध को सावधानी पूर्वक करने की कोशिश की गई है, अगर फिर भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। इस शोध प्रबंध में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उसके लिए मैं दोषी हूँ, इसलिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

शोधकर्त्री

स्वाति

आभार

कला एक ऐसा विषय है जिसके द्वारा हम अपनी भावनाओं व विचारों को प्रकट कर सकते हैं और हमारे अंदर छिपी हुई भावनाओं को नया आकर दे सकते हैं। इसलिए शुरु से ही मेरी कला के प्रति विशेष रुचि रही है।

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है, उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, जिनके सहयोग से सिर्फ मैं इस कार्य को कर पाई। सर्वप्रथम में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा, के ललित कला विभाग की अध्यक्ष श्रीमती संतोष के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने पूरे शोध कार्य के चलते मेरा सहयोग किया।

मैं डॉ०. राम विरंजन विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र की धन्यवादी हूँ कि विषय को सुचारु पूर्वक चलाने में आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा की सहायता की।

इसके दौरान मैं अपनी दोस्त शिल्पा, रूपा एवं आस-पड़ोस में रहती महिलाओं का भी हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सफल हो पाई हूँ।

मैं अपने आदरणीय गुरु श्री महेश धीमान जी के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं को सुलझाया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं आदरणीय प्राचार्य महोदया डॉ०. श्रीमती आरती त्रेहन का आभार व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने ललित कला विषय में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रारंभ कर हमारे चिरलंबित स्वपन को नया रूप दिया।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह लघु शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध में पाठक वर्ग को कुछ भी लाभ पहुंचा तो इसे मैं अपना सफल प्रयास मानूंगी।

शोधकर्त्री

स्वाति

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आभार	
प्रथम अध्याय:	01 — 19
— कला का अर्थ एवं परिभाषा	
— लोक कला का अर्थ एवं परिभाषा	
— हरियाणा का परिचय	
— हरियाणा के लोकचित्रों का इतिहास	
द्वितीय अध्याय :	20 — 33
— हरियाणा की विविध प्रकार की लोक कलाएँ	
तृतीय अध्याय:	34 — 49
— लोक जीवन में लोककला का योगदान	
चतुर्थ अध्याय:	50 — 57
— ग्रामीण लोककला का महत्व	
— हरियाणा के पूर्वी गांव की लोककला	
पंचम अध्याय :	58 — 68
— लोकचित्रों के बारे में समाज की अलग-अलग अवधारणाएँ	
— विलुप्त होती लोक कलाएँ	
— उपसंहार	69 — 69
— संदर्भ ग्रंथ सूची	70 — 70
— चित्र संग्रह सूची	71 — 71
— चित्र सूची	72 — 96

प्रथम अध्याय

- कला का अर्थ एवं परिभाषा
- लोक कला का अर्थ एवं परिभाषा
- हरियाणा का परिचय
- हरियाणा के लोकचित्रों का इतिहास

कला का अर्थ एवं परिभाषा

कला मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है। 'कला' कल्याण की जननी है। कल्पना की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति का नाम ही कला है। कल्पना की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से एवं विभिन्न माध्यमों द्वारा हो सकती है। यह अभिव्यक्ति जिस भी मध्यम एवं जिस भी प्रकार से हो, वही कला के अंतर्गत स्थान रखती है। श्रेष्ठ कलाकृति का जन्म अन्तः मन व चेतन मन दोनों के परस्पर सहयोग से ही होता है। ऐसी कला कभी अनैतिक नहीं हो सकती, क्योंकि उस कला में समाज के कल्याण व परोपकार की भावना निहित मिली रहती है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह परिभाषायें इस प्रकार हैं :-

भारतीय मनीषियों की राय :-

- रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में - "जो सत् है, जो सुन्दर है, वही कला है।"
- मैथिली शरण गुप्त के अनुसार - "कला अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति है।"
- असित कुमार हाल्दार कहते हैं - "कला मानव का सात्विक गुण है। एक सरल भाषा है जो मानव जीवन के सत्यों को सौन्दर्यात्मक एवं कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत करती है।"
- डॉक्टर श्यामसुन्दर दास के अनुसार - "जिस अभिव्यंजना में आंतरिक भावों का प्रकाशन और कल्पना का योग रहता है, वही कला है।"

पाश्चात्य विद्वानों की राय :-

- कवि "शैले" के शब्दों में - "कला", कल्पना की अभिव्यक्ति है।
- फ्राइड कहते हैं, - दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप ही कला है।
- प्लेटो के अनुसार - "कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है।"
- अरस्तु कहते हैं - कला प्रकृति के सौंदर्यमय अनुभवों का अनुकरण है।
- प्रसिद्ध फ्रेंच समालोचक "फागुए" के अनुसार - "कला भावों की उस अभिव्यक्ति को कहते हैं जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके।"
- टॉल्स्टॉय के अनुसार - कला एक मानवीय चेष्टा है, जिसमें एक मनुष्य अपनी अनुभूतियों को स्वेच्छापूर्वक कुछ संकेतों के द्वारा दूसरों पर प्रकट करता है।

कला के प्रति टॉल्स्टॉय का यह दृष्टिकोण धार्मिक और नैतिक है। उन्होंने कला की “शिलर”, “डार्विन” तथा “स्पेन्सर” द्वारा दी गई उस काम-मूलक परिभाषा का खण्डन किया है, जिसके अनुसार कला मानव जगत में ही नहीं बल्कि पशु जगत में भी कामवासना से पैदा होती है।”

टॉल्स्टॉय के अनुसार — “कला की महत्ता का ज्ञान भावों की सफल अभिव्यक्ति और कलाकार के मन पर पड़े हुए प्रभावों का सफलतापूर्वक संप्रेषण है।

प्रसिद्ध समालोचक “हर्बर्ट रीड” कहते हैं — एक साधारण सा शब्द कला साधारणतया उन कलाओं से जुड़ा होता है, जिन्हें हम ‘रूपप्रद’ या ‘दृश्य’ कलाओं के रूप में जानते हैं। वस्तुतः इसके अंतर्गत साहित्य व संगीत कलाओं को भी शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि सभी कलाओं में कुछ तत्व एक समान होते हैं। भारत में कला को “योग साधना” माना गया है। कला हमारे विचारों का एक दृश्य रूप है। वह हमारी “कल्पना शक्ति”, “आदर्श प्रियता” एवं “सृजन शक्ति” से युक्त है। सौंदर्य व तीव्रतम अनुभूति से प्रभावित होकर ही कलाकार सृजन करता है। इस प्रकार की कला ही वास्तव में “भाव-पूर्ण” व “रसपूर्ण” होती है। अतः कल्पना की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति का नाम ही कला है।

प्राचीन गुहावासियों से लेकर आज तक मानव की इस कला का विकास क्रम रुक नहीं है। बल्कि देश काल की परिस्थितियों के आधार पर वह आगे ही बढ़ता गया है। ताड़ पत्र, छाल, कपड़ा, गुफाएं, दीवारें, चट्टानें आदि जो भी मिला उसने उसे ही सृजन का माध्यम बना लिया।

वस्तुतः कला की अनेक परिभाषाओं ने कला के स्वरूप को अस्पष्ट कर दिया है। व्यावहारिक दृष्टि से कला के बारे में यही बात कही जा सकती है कि — कला का अर्थ उसके प्रभाव में निहित रहता है। एक सद्बुद्धि जिस कलाकृति से प्रभावित नहीं होता, वह कलाकृति उसके लिए अर्थहीन होती है। प्राचीन दृष्टिकोण से अगर देखे तो यह प्रभाव ‘चमत्कार’ के कारण पैदा होता है। अतः परम्परावादी विचारक ‘चमत्कारविरहित’ कला को कला नहीं मानते।

कला का अर्थ :—

कला का संपूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए हमें कला शब्द के अर्थ-विकास को समझना होगा। यह अर्थ — विकास हम इसके पाश्चात्य पर्याय “आर्ट” के माध्यम से जान सकते हैं जो की लैटिन भाषा के “आर्स” शब्द से बना है और जिसका ग्रीक रूपान्तर है — “TEXVEN” (तैक्ने) इस शब्द का प्राचीन अर्थ “शिल्प” अथवा “(नैपुण्य — विशेष) है। जैसे — स्वर्णकारी, दस्तकारी आदि। प्राचीन भारतीय मान्यताओं में भी कला के लिए “शिल्प” और कलाकार के लिए “शिल्पी” शब्द का ही अधिक प्रयोग होता था।

प्राचीन काल में इस प्रकार का कोई भी विभाजन नहीं था। प्राचीन ग्रीक और रोमन भाषा शब्द का “आर्ट” शब्द भी केवल शिल्प के लिए ही प्रयुक्त किया जाता था। उसमें “कला” शब्द की सौंदर्य – गरिमा पृथक् रूप से समाविष्ट नहीं थी। 18वीं शताब्दी में सौंदर्य – शास्त्रियों ने “शिल्प” और “कला” का विभाजन “उपयोगी एवं ललित कला” के रूप में किया और 19वीं शताब्दी के आते-आते “कला” शब्द में छिपा हुआ “सौंदर्य बोध” इतना प्रबल हो उठा कि अपने पुराने विशेषण “ललित” को हटा देने पर भी वह अपने अपेक्षित अर्थ को पूर्ण रूप से ध्वनित करने लगी और सामान्य व्यवहार में ललित कला के लिए केवल मात्र “कला” शब्द का ही प्रयोग किया जाने लगा।

प्राचीन भारतीय साहित्य में कला के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – प्राचीन भारतीय साहित्यों में कला को “महामाया का चिन्मय – विलास” कहा गया है। उन्होंने कला को महाशिव की आदिशक्ति से संबंध माना है। “ललिता – स्तवराज” से ज्ञात होता है कि जब-जब शिव को लीला के प्रयोजन की अनुभूति होती है, तब तब महाशक्ति रूपी महामाया जगत की सृष्टि करती है।

अतः शिव की लीला सखि होने के कारण महामाया को “ललिता” कहा गया है और यह माना जाता है कि इन्हीं ललिता के लालित्य से ही ललित कलाओं की ललित कलाओं की सृष्टि हुई है।” अतः जहां कहीं भी सौंदर्य प्रवृत्ति विद्यमान है, वही महामाया का यह लीला ललित रूप भी विद्यमान है। अतः प्राचीन मत के अनुसार ललित कलाएं आनंद की निधि है। माया के पंच कुंचुकों – काल, नियति, राग, विद्या और कला में कला भी एक है।

➤ कलाओं का वर्गीकरण :-

कलाओं की संख्या की भांति ही उनके वर्गीकरण को लेकर भी विद्वान एक मत नहीं है। कुछ विद्वानों का मानना है कि – कलाओं में श्रेणी विभाजन तो किया जा सकता है, परंतु वर्गीकरण नहीं, क्योंकि एक कला को दूसरी कला से पृथक् नहीं किया जा सकता है।

“उपयोगिता” और “सौन्दर्य” के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसके दो विभाजन किये हैं – “उपयोगी कला” और “ललित कला”।

“महर्षि पाणिनि” ने इन्हें “चारु व कारु” के नामों से सम्बोधित किया है। उपयोगी कलाओं का सम्बन्ध हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से है। जबकि ललित कलाओं का संबंध हमारी “मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति।” “सौंदर्य बोध” और “आध्यात्मिक चेतना” से है। अतः आनंद और सौन्दर्य होने के कारण ललित कलायें, उपयोगी कलाओं की अपेक्षा अधिक महत्वमयी है। उपयोगी कलाओं के

अन्तर्गत उपयोग आता है। ये कलायें पूर्णतया व्यावसायिक होती हैं। जैसे – काष्ठकला, स्वर्णकारी, दस्तकारी इत्यादि।

ये कलायें हमारे जीवन को सजाती, संवारती और जीवित रखती हैं। ललित कलायें सौन्दर्यात्मक होती हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने ललित कलाओं के अन्तर्गत पांच प्रकार की कलायें मानी है – काव्य कला, संगीत कला, चित्रकला, मूर्ति कला और स्थापत्य कला। इस तथ्य से प्रायः सभी विद्वान सहमत हैं कि कलाओं का श्रेणी विभाजन किया जा सकता है और जिस कला में जितने कम मूर्त और स्थूल पदार्थ प्रयोग में आते हैं, वहीं सर्वोत्कृष्ट कला है। अतः इस दृष्टिकोण से काव्य कला को सर्वोत्कृष्ट व “स्थापत्य कला” को निम्न श्रेणी में रखा गया है।

कुछ आधुनिक विद्वानों ने कलाओं का वर्गीकरण “मेजर आर्ट” और “माइनर आर्ट” के आधार पर किया है। मूल रूप से “मेजर आर्ट” ललित कलाओं के लिये और “माइनर आर्ट” उपयोगी कलाओं के लिये प्रयुक्त किया जाता है। मेजर आर्ट (ललित कलायें) सौंदर्य की अभिव्यक्ति से संबंधित हैं, जिससे “सत्यं शिवम् सुंदरम्” की अभिव्यक्ति होती है। “माइनर आर्ट” (उपयोगी कलायें) में “उपयोगिता” सर्वोपरि रहती है।

हीगेल ने कलाओं का वर्गीकरण इंद्रियों के आधार पर किया है। उन्होंने ये विभाजन “दृश्य” और “श्रव्य” दो प्रकार से किया है। इसमें नृत्य, चित्र, मूर्ति व वास्तु, कला को “दृश्य” कलाओं और संगीत व काव्य कलाओं को “श्रव्य” कलाओं के अन्तर्गत रखा गया है। दृश्य कलायें दिखाई देने के कारण ‘मूर्त’ कहलाती हैं। संगीत व काव्य कलायें, नेत्रों का विषय न होने के कारण ‘अमूर्त’ कहलाती हैं। इसलिए ये उच्च कलाओं की श्रेणी में आती हैं और शेष कलाओं की श्रेणी में आते हैं। उपरोक्त अनेक वर्गीकरण के पश्चात भी कलाएं मोटे रूप से दो भागों में ही विभाजित हैं – “ललित व उपयोगी।”

ललित कलाओं व उपयोगी कलाओं में असमानताएं :-

➤ असमानताएं (ललित कलायें) :-

- ललित कलाओं का सम्बन्ध मनुष्य के सांस्कृतिक विकास, भावों की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति व लोकोत्तर जीवन से है।
- ललित कलाएं हमारी मानसिक आवश्यकताओं की संपूर्ति करती हैं।
- ललित कलाएं मनुष्य के जीवन को आत्मिक आनंद व सुख से भर देती हैं।

→ ललित कलाएं मनुष्य को ऐसी स्थिति से मिलाती हैं, जिसे परम सत्य या परमानंद की स्थिति कहा जा सकता है।

➤ उपयोगी कलायें :-

- उपयोगी कलाओं का संबंध सभ्यता के क्रमिक विकास व लौकिक जीवन से है।
- उपयोगी कलायें हमारे दैनिक जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। उपयोगी कलायें मनुष्य के भौतिक जीवन के अभावों की पूर्ति करती हैं।
- उपयोगी कलाओं का व्यवहार पूर्णतया व्यावसायिक व्यावसायिक है व केवल भौतिक जगत से ही संबंधित है।
- उपयोगी कलायें मनुष्य के भौतिक जीवन को सजाती, संवारती व जीवित रखती हैं।
- उपयोगी कलाओं का मूल उद्देश्य उपभोक्ता के मध्य सेतु का कार्य करता है। व्यवसाय, उत्पादक एवं बिक्री से संबंधित हैं।

➤ समानतायें :-

- दोनों ही प्रकार की कलाओं को "सौन्दर्य" व "कल्पना" के तत्व समान रूप से प्रभावित करते हैं।
- इन दोनों कलाओं में ही "रुचि" का विशेष महत्व है।
- कला रूप का सृजन करती है और "अरूप" को रूप प्रदान करती है। अतः रूप निर्माण के सभी तत्व दोनों को समान रूप से प्रभावित करते हैं।
- विशुद्ध कला – सृजन का रूपांतरण आज के युग की आवश्यकता है। "कला, कला के लिये" का नारा आज अपनी प्रासंगिकता को खो चुका है। अब ललित कलाओं ने भी व्यावसायिक गुणों को अपनाना प्रारंभ कर दिया है।
- आज सर्वत्र प्रचार व प्रसार माध्यमों की धूम है, जिसके फलस्वरूप आधुनिक जीवन में भौतिकतावादी दृष्टिकोण तथा "उपभोक्ता संस्कृति" का जन्म हुआ है, जिसे प्राचीन मान्यताओं और परंपराओं का खंडन हुआ है। अतः दोनों ही प्रकार की कलायें इन तत्वों से समान रूप से प्रभावित हुई हैं। आज विश्वविद्यालयों के ललित कला संकायों में "व्यावसायिक कला" की शिक्षा दी जा रही है।

- दोनों ही प्रकार के कलाओं में “भोग-तत्त्व”, “रूप-तत्त्व” व “प्रतिपाद्य – तत्त्व” की उपस्थिति विद्यमान रहती है।

➤ कला का महत्व :-

प्राचीन काल से ही आधुनिक वैज्ञानिक युग तक कला का महत्व पूर्ण रूप से सत्य है। कला मानव जीवन के हर एक क्षेत्र में रच बस गई है। कलाओं के द्वारा ही मनुष्य शांति व सुख का अनुभव करता है। और उसकी सहायता से हम अपने जीवन को सजाते, संवारते और कलामय बनाते हैं। ललित कलाओं के साथ सौन्दर्य आवश्यक रूप से जुड़ा हुआ है। किसी अच्छी कलाकृति को देखते ही मनुष्य स्वयं ही भाव-विभोर हो उठता है और उसे कलाकृति के मोह में लीन हो जाता है। यह परमानंद की चरम स्थिति होती है, जहां मनुष्य अपने आप को भूलकर केवल आनंद में डूब जाता है।

जैसे – ‘लीयते परमानन्दे ययाऽत्तमा सा पराकला’।

उपरोक्त आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि जो कला परम आनंद प्रदान करती है, वही सच्ची व श्रेष्ठ कला है। ऐसी कला ही कल्याणकारी भी होती है। कला मानवता के स्वरूप को ही बदल देती है। वह मनुष्य की नई प्रतिमा बना लेती है। इसलिए शिक्षा में भी कला का स्थान अनिवार्य रूप से मान लिया गया है और बाल्यकाल से ही कला की शिक्षा दी जाती है। अतः कला का मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

डॉक्टर कुमार बिमल कहते हैं कि – “मेरा दृढ़ विश्वास है कि कला की आधुनिक युग में सांस्कृतिक स्वर्णोदय को ला सकती है और आधुनिक युग में बिगड़े हुए ‘आध्यात्मिक स्वास्थ्य’ को सुधार सकती है, क्योंकि कला में एक मांगलिक शक्ति रहती है।”

लोक कला का अर्थ एवं परिभाषा

“ जन-जन की, जन-जन द्वारा, व जन-जन हेतु निसृत कला लोककला है।”

संस्कृत भाषा में “लोक” शब्द का अर्थ देखने वाला जिसे “लोक दर्शने” कहा गया है। जब-जन समुदाय इस कार्य को करता है तो उन्हें “लोक” कहा जाता है।

“लोक व कला” दोनों शब्दों की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के “लोक” व “कला” से हुई है। लोक का अर्थ है – देखना व कला का अर्थ है – कोमल व मधुर अर्थात् लोक कला का अर्थ हुआ कोमल व मधुर को देखना। पाश्चात्य शब्दकोश में लोक को “Folk” स्वीकार किया गया है। इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है – “A Race of People a Nation a Community”.

लैटिन भाषा के “आर्स” या “आर्टम” शब्द में आर्ट शब्द की उत्पत्ति मानी गयी है, जिसका अर्थ है – बनाना, ठीक से करना। इसका अर्थ हुआ एक समुदाय एक राष्ट्र द्वारा ठीक से बनाना। इसमें महत्वपूर्ण “लोक” ही है।

हिंदी शब्दकोश में वर्णित ‘लोक’ – लोग, मानव, यश, कीर्ति आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। डॉ. वी. एस. ऑम्टे ने “लोक” को मानव जाति, प्रजा, समूह, प्रांत, कुछ सात और चौदह की संख्या संसार आदि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। लोक कला में लोक ही आनंदकर्ता होता है। सच्चे अर्थों में लोक कला में ऐसा प्रेक्षक नहीं होता, जो उसमें भाग लेकर उसे न भोगे।

➤ लोक कला की परिभाषा :-

लोक कला किसी परिभाषा के बंधन में नहीं बंधी है, यह तो उन्मुक्त व स्वच्छंद है। लोक कलाकार बिना किसी स्वार्थ के “स्वान्त सुखाय” के लिए साधन करता है। ये लोक कलाकार किसी भी जटिलता में नहीं पड़ता अपितु सरलता वह हृदय की सुबोधता से चित्रण करता है। अतः लोक कला जन के द्वारा आत्मा की अनुभूति के लिए चित्रण करता है। इसे इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं – “जन-जन को जन-जन द्वारा व जन-जन हेतु निसृत कला लोककला है”। कुछ अन्य विद्वानों की परिभाषाएं इस प्रकार हैं :-

डॉक्टर श्याम परमार के अनुसार :- लोक का अर्थ लोक, मन अथवा जनजीवन की सहज अभिव्यक्ति से है। लोक कलाओं से मेरा मतलब उन कलाओं से है जो कस्बों, रीति रिवाज से सीधी जुड़ी हैं।

ए.के. हल्दार ने लिखा है कि – “लोक कला, कला का वह स्वरूप है जिसका सीधा संबंध आनंद की भावनाओं से सीधा जुड़ा है।”

शैलेन्द्र नाथ डे के अनुसार – “लोक कला जन सामान्य विशेषतः ग्रामीण जनों की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है।”

“श्री शैलेन्द्र नाथ” सामंत के अनुसार – जन, कला, सामान्य जन समुदाय की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है”।

“कवि भवभूति” – जो लोग हमारी अवहेलना करते हैं, वे जान लें कि यह रचना हम उनकी खुशी के लिए नहीं रच रहे हैं। लोक कलाकार तो बिना किसी स्वार्थ के स्वान्तः सुखाय साधना करता है।

लोक कला मानस से प्रेरणा और पोषण पाती है और उसकी प्रतिबिम्बित भी करती है।

अतः लोक कला की सामान्य रूप से परिभाषा की जा सकती है कि – “जन-साधारण ने परंपरागत रीति से स्थानीय सामग्री द्वारा देसी औजारों की सहायता से अपने खुद के हाथों से जो सुंदर वस्तुएं और सामग्रियां बनाई हैं, उन सब का समावेश भी लोक कलाओं में होता है।” लोक कला मानव जीवन के साथ गहरे संबंध जोड़ती हुई आगे बढ़ती जाती है। वह मानव मूल्यों के प्रति संवेदनशील होकर उसके कल्याण और आनंद के हेतु पूरी तरह से समर्पित रही हैं। यही कारण है कि यह समाप्त न होकर फली फूली है और लोक कला के उद्भव एवं विकास की कहानी बहुत प्राचीन है।

आदिम काल से लोक कला का अभ्युदय माना जाता है। यदि हम युग दृष्टि पर विचार करें तो विभिन्न युगों के आदर्श, उद्देश्य और प्रयोगों का प्रभाव लोक कला पर पड़ा। परंतु दीर्घकालीन परंपरा और परिस्थितियों में संबंध है। इसी कारण आदिकाल के चित्रों से वर्तमान लोक चित्र प्रभावित हुए हैं। लोक कलाओं का आदिमानव से घनिष्ठ संबंध है। लोक कला की उत्पत्ति आदिम काल से ही मानी जाती है। जिस समय मानव खेती करने लगा, उसकी कलाओं में स्थिरता आयी। उसी समय उनमें लोक भावना का जन्म हुआ, बहुत समय तक आदिम व लोक कला साथ-साथ चलती रही।

कालांतर में लोक कला की उत्पत्ति के संबंध में अनेक अवधारणायें विकसित हुई हैं। संघर्ष तथा भय की भावना से खींची गई आड़ी-तिरछी रेखाएँ कला का उद्गम है। मानव के द्वारा उदरपूर्ति के लिए किए गये श्रम को सहज बनाने हेतु उसके अकन से कला का जन्म हुआ। अतः श्रम उत्पादन, शांति व्यवस्था, भय और आतंक लोक कला के उदय की प्रारंभिक सीढ़ियां हैं। आदिमानव ने प्रकृति की शक्तियों से प्रेरित होकर सरल भाव से देवी शक्तियों का पूजन किया। उसने अपने दैनिक जीवन में काल्पनिक शक्तियों का आश्रय लेकर उन्हें किसी रूप या आकार में रचा।

आश्चर्य है कि आदिमानव वन चारी पशुपालक व कितना जबरदस्त कलाकार था। अपने हथियारों और प्राकृतिक रंगों को लेकर अंधेरी गुफाओं में लीप-पोत कर रेखाओं के माध्यम से ऐसे जीवन के दृश्य उसने उकेरे हैं, जो अभी भी आधुनिक चित्तेरों के लिए दुर्लभ आदर्श बने हुए हैं।

ये प्राचीन चित्र आज भी लोक कला में परंपरागत रूप से प्रचलित हैं। इन चित्रों का जन्म कब और कैसे हुआ, यह निश्चय कर पाना आज कठिन है, परंतु निश्चित रूप से आज की लोक कला आदिकाल की कला का परंपरागत विकसित रूप है। मानव गिरी – कदराओं को छोड़कर हस्तनिर्मित घरों में रहने लगा और शैल तथा प्रतिष्ठित हुई जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया लोक कलाएं भी विकसित होती गई। ये विकसित आकृतियां यद्यपि प्रतीकात्मक होती हैं, फिर भी इनमें अत्यधिक अलंकारिकता की गई है, क्योंकि लोक कला की आत्मा में लोकतत्व होता है। जनजीवन द्वारा स्वीकृत परंपरागत तत्वों को लोक कला कहा जाता है। ये लोकतत्व लोक के रहन-सहन, आचार विचार, उत्सव, आयोजन, विश्वास, अंधविश्वास, टोने टोटके, मानवीय विषाद आदि से संबंधित होते हैं। सत्य तो यह है कि लोक चित्रण धर्म की अभिव्यक्ति है जिसके पीछे मानवीय धार्मिक भावनाओं की एक लंबी कहानी छिपी हुई है। लोक चित्रण में धर्म कूट-कूट कर भरा हुआ है। श्री बी.डे. ने लिखा है कि—
“Folk Art religious ideals of the Traditions.”

हरियाणा का परिचय

भारतीय गणतंत्र में एक अलग राज्य के रूप में हरियाणा की स्थापना यद्यपि 1 नवंबर 1966 को हुई, किंतु एक विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में हरियाणा का अस्तित्व प्राचीन काल से मान्य रहा है। यह राज्य आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति और सभ्यता का केंद्र रहा है। इस प्रदेश का अस्तित्व देवताओं से हुआ था, इसलिए इसे ब्रह्मावर्त का नाम दिया गया था।

हरियाणा के विषय में वैदिक साहित्य में अनेक उल्लेख मिलते हैं। इस प्रदेश में की गई खुदाईयों से यह ज्ञात होता है कि सिंधु घाटी सभ्यता और मोहनजोदड़ो संस्कृति का विकास यहीं पर हुआ था। इस राज्य को ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मषि प्रदेश के अतिरिक्त 'ब्रह्म की उत्तरवेदी' के नाम से भी पुकारा गया। इस राज्य को आदि सृष्टि का जन्म स्थान भी माना जाता है। यह भी मान्यता है कि मानव जाति की उत्पत्ति जिन वैवस्तु मनु से हुई, वे इसी प्रदेश के राजा थे। इन्हें षवन्ति सुंदरी कथा में स्थाण्शेश्वर निवासी कहा गया है। पुरातत्वेत्ताओं के अनुसार आद्यैतिहासिक कालीन — हड़प्पा, परवर्ती हड़प्पा आदि अनेक संस्कृतियों के अनेक प्रमाण हरियाणा के वणावली, सीसवाल, कुणाल, मिर्जापुर, दौलतपुर और भगवानपुर आदि स्थानों के उत्खननों से प्राप्त हुए हैं।

प्रोफेसर एच. ए. फड़के के अनुसार, "विभिन्न लोगों और जातियों के बीच मिलकर, समग्र भारतीय संस्कृति के निर्माण में हरियाणा का योगदान अपने तरीके से उल्लेखनीय रहा है। महत्वपूर्ण रूप से इस क्षेत्र को सृजन के मेट्रिक्स और पृथ्वी पर स्वर्ग के रूप में सम्मानित किया गया है। इसके अन्य नाम बहुधन्याका और हरियंका खाद्य आपूर्ति और वनस्पति की बहुतायत का सुझाव देते हैं।

रोहतक जिले के बोहर गांव से मिले शिलालेख के अनुसार, इस क्षेत्र को हरियंक के नाम से जाना जाता था। 1337 विक्रम संवत् के दौरान बलबन की अवधि से शिलालेख संबंधित है। बाद में सुल्तान मोहम्मद-बिन-तुगलक के शासनकाल में पाए गए पत्थर पर 'हरियाणा' शब्द अंकित किया गया था। धरणिधर अपने कार्य अखंड प्रकाश में कहते हैं कि — यह शब्द हरिबंका से आता है और हरि की पूजा व भगवान इंद्र से जुड़ा हुआ है, सूखा भू-भाग है, इसके लोग हमेशा इंद्र (हरि) की बारिश के लिए पूजा करते हैं। एक अन्य विचारक, गिरीश चंद्र अवस्थी ऋग्वेद से इसकी उत्पत्ति का सुराग लगाते हैं कि — जहां हरियाणा नाम को योग्यता के लिए राजा (वासुराजा) विशेषण के रूप में प्रयोग किया जाता है। उन्होंने कहा है कि राजा ने इस क्षेत्र पर शासन किया और इस तरह से इस क्षेत्र को उसके बाद हरियाणा के नाम से जाना जाने लगा।

मानववैज्ञानिकों का मानना है कि हरियाणा को इस नाम से जाना जाता था क्योंकि महाभारत के बाद के काल में आभीर यहां रहते थे, जिन्होंने कृषि कला में विशेष कौशल विकसित किया।

प्राणनाथ चोपड़ा के अनुसार हरियाणा का नाम अभिरायण – अहिरायण – हिरायणा – हरियाणा से लिया गया है। हरियाणा के तथ्यों को माने तो कहते हैं यहां श्री हरि का आना हुआ है, यहां महाभारत का युद्ध हुआ जिसमें श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया। हरि के आने से इसका नाम हरियाणा पड़ा।
हरि + आना – हरियाणा।

➤ हरियाणा की भौगोलिक स्थिति :-

हरियाणा भारत का भू-आवेष्टित राज्य है, जिसका क्षेत्रफल 44,212 वर्ग किलोमीटर है। इसकी जनसंख्या लगभग 2,10,82,989 है। हरियाणा राज्य भारत के उत्तरी – पश्चिमी भाग में स्थित है। हरियाणा की स्थिति 27° 39' उत्तरी अक्षांश से 30° 55'5' उत्तरी अक्षांश तथा 74° 28' से पूर्व देशांतर से 77° 36' पूर्वी देशांतर के बीच है। हरियाणा का अक्षांश व देशांतर विस्तार 30 X 30 का है। हरियाणा प्रदेश की आकृति विषमबाहु चतुर्भुज जैसी है। क्षेत्रफल की दृष्टि से हरियाणा भारत में 21वें स्थान पर है। यहां की जनसंख्या का 71 प्रतिशत भाग गांवों में रहता है और 29 प्रतिशत शहरों और कस्बों में रहते हैं।

एफ.एस.आई की रिपोर्ट के अनुसार राज्य में 1,584 वर्ग किलोमीटर भाग पर वन है जो की भौगोलिक क्षेत्र का कुल 16 प्रतिशत है और हरियाणा प्रदेश गंगा – सिंधु मैदानों का उत्तर-पश्चिमी भाग है। हरियाणा के लगभग 76 प्रतिशत भाग समतल एवं तरंगित मैदान है, जिसे सामान्यतः घग्गर के नाम से जाना जाता है। इसकी ऊंचाई लगभग 300 मीटर के करीब है। समतल मैदान 21 प्रतिशत जबकि 25.55 प्रतिशत भाग तरंगित तथा ऊर्मिल है, जिसके बीच में पहाड़ियों के टूठ और रेत के टिले सम्मिलित हैं।

राज्य का 0.9 प्रतिशत भाग पहाड़ी एवं चट्टानी है। यह अरावली पर्वत श्रेणी का हिस्सा है। समुद्र तल से इस भाग की ऊंचाई 300 मीटर से अधिक की है। राज्य के 67 प्रतिशत भाग पर शिवालिक पर्वत श्रेणी है, जिसकी ऊंचाई लगभग 300 से 400 मीटर तक है। इस क्षेत्र को गिरीपाद मैदान भी कहते हैं। यह भाग पंचकुला, अंबाला और यमुनानगर जिले में शामिल है।

➤ हरियाणा की भौगोलिक सीमा और भौगोलिक क्षेत्र :-

हरियाणा के उत्तर में पंजाब और हिमाचल प्रदेश है, और उत्तर-पश्चिम में राजधानी चंडीगढ़ है। इसके पूर्व में उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और दिल्ली है। हरियाणा, दिल्ली के उत्तरी – पश्चिमी और दक्षिणी सीमाओं का निर्माण करते हुए तीन तरफ दिल्ली से घिरा हुआ है। नतीजा हरियाणा का एक बड़ा क्षेत्र राष्ट्रीय राजधानी एन.सी.आर में शामिल है। हरियाणा के दक्षिण – पश्चिम में राजस्थान है।

हरियाणा का भौगोलिक क्षेत्र – हरियाणा को भौगोलिक दृष्टि से तीन इकाइयों में बांटा जा सकता है।
कुरुक्षेत्र, हरियाणा और भटियाना।

- कुरुक्षेत्र – यह क्षेत्र $28^{\circ} 30'$ से 30° उत्तरी अक्षांशों तथा $28^{\circ} 30'$ से 30° पूर्वी देशांतरों के बीच विस्तृत है। इसमें करनाल का पूर्वी भाग व जींद क्षेत्र शामिल है।
- हरियाणा – $29^{\circ} 30'$ उत्तरी अक्षांशों में बीच में स्थित है, जिसमें हांसी, फतेहाबाद, हिसार, भिवानी, चरखी दादरी और रोहतक जिलों के भाग शामिल हैं। जाटों की अधिकता के कारण इसे जटियात क्षेत्र कहा जाता है।
- भटियाना – यह क्षेत्र फतेहाबाद वह भाटू तहसीलों की मध्य स्थित है। प्राचीन समय में यहां भाटी राजपूतों का अधिकार था।

➤ भू आकृति के आधार पर हरियाणा :-

शिवालिक का क्षेत्र – राज्य के उत्तर-पूर्वी भाग में शिवालिक पहाड़ियों का विस्तार है। इस क्षेत्र में पंचकुला, अंबाला और यमुनानगर जिला शामिल है। इन पहाड़ियों की ऊंचाई 900 मीटर से लेकर 2300 मीटर तक है। ऊंचाई के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा गया है – उच्च शिवालिक श्रेणियां व निम्न श्रेणियां।

उच्च शिवालिक श्रेणियां (600 मीटर से ऊंची) निम्न श्रेणियां (400 से 600 मीटर ऊंची) हरियाणा की सबसे ऊंची पहाड़ी “मोरनी हिल्स” पंचकूला से 30 किलोमीटर दूर है, जिसकी ऊंचाई समुद्र तल से 1220 मीटर है। मोरनी की पहाड़ियां हरियाणा में सबसे ऊंची पहाड़ी है, जिसकी सर्वोच्च चोटी “करोह” है, जिसकी ऊंचाई 1514 मीटर है।

इन पहाड़ियों की संरचना रेत, चीका, बजरी तथा कोंग्लोमिरेट से हुई है। घग्गर नदी, मारकंडा नदी, टांगरी नदी तथा सरस्वती नदी इन्हीं पहाड़ियों से निकलती हैं।

➤ गिरीपाद के मैदान :-

इस पर्वतीय मैदान को स्थानीय भाषा में ‘घर’ कहा जाता है। गिरीपाद मैदान शिवालिक श्रेणियां के दक्षिण में 25 किलोमीटर चौड़ी पट्टी के रूप में स्थित है, जो यमुना नदी से घग्गर नदी तक यमुनानगर, अंबाला और पंचकूला जिलों में विस्तृत है। इस क्षेत्र की प्रमुख नदियां घग्गर और मारकंडा हैं। समुद्र तल से इस मैदान की ऊंचाई 300 से 375 मीटर तक है। यह मैदान अपेक्षाकृत कम उपजाऊ वाले हैं। इसका ढाल उत्तर प्रदेश दक्षिण पश्चिम की तरफ है।

➤ जलोढ़ मैदान :-

यह मैदान शिवालिक के गिरीपाद क्षेत्र से अरावली तक व यमुना और घग्गर नदियों के मध्य उच्च भूमि के जलोढ़ मैदान फैले हुए हैं। इन्हें बागर के नाम से भी जाना जाता है। समुद्र तल से इन मैदानों की ऊंचाई लगभग 220 से 280 मीटर तक है। इन मैदानों में मारकंडा, सरस्वती और चौटांग नदियां बहती हैं।

➤ हरियाणा की मिट्टी एवं खनिज :-

हरियाणा की मिट्टी एवं खनिज लाल शाहबलूत मिट्टी, यह मिट्टी हरियाणा के शिवालिक क्षेत्र में पाई जाती है और 1000 से 1500 एम.एम की वार्षिक वर्षा सीमा के साथ अभिक्रिया में तटस्थ से हल्की अम्लीय होती है। यह मिट्टी जिसे पीडमोंट मिट्टी के रूप में भी जाना जाता है।

➤ जल संसाधन :-

हरियाणा के जल संसाधन कृषि उद्योग और घरेलू जरूरतों सहित विभिन्न क्षेत्रों के समर्थन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि सीमित वर्षा और उच्च पानी की मांग के कारण राज्य को पानी की भारी कमी का सामना करना पड़ता है। प्रभावी प्रबंधन रणनीतियों को तैयार करने के लिए जल संसाधनों की उपलब्धता, गुणवत्ता और स्थिरता को समझना महत्वपूर्ण है।

➤ वन संसाधन :-

हरियाणा एक क्षितिज विविध परिदृश्य वाला एक स्थलरुढ़ राज्य है, जिसमें अरावली पहाड़ियों, नदी घाटियों और अर्ध - शुष्क मैदानों सहित कई पारिस्थितिक क्षेत्र शामिल हैं। ये क्षेत्र वनस्पतियों और जीवों की समृद्ध विविधता का समर्थन करते हैं, जिससे वे महत्वपूर्ण वन संसाधन बन जाते हैं। हालांकि शहरीकरण कृषि और औद्योगीकरण सहित विभिन्न कारकों के कारण पिछले कुछ वर्षों में राज्य के वन आवरण में काफी कमी आई है।

रेगिस्तानी मिट्टी :-

300 मि.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मिट्टी प्रचलित है, और इस मिट्टी के साथ हवा का क्षरण एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। मिट्टी में कृषि के लिए आवश्यक अधिकांश पोषक तत्वों की कमी होती है,

उर्वरक और पानी के साथ पर्याप्त उपयोग की आवश्यकता होती है। इसका पी.एच. 8.5 से 9 के बीच होता है। ये मिट्टी सिरसा, हिसार, भिवानी, महेंद्रगढ़ और रेवाड़ी के दक्षिण क्षेत्रों में पाई जाती है। इस मिट्टी में उगाई जाने वाली प्रमुख फसले ज्वार, बाजरा और चना है।

➤ हरियाणा में खनिज :-

हरियाणा भारत के उत्तरी क्षेत्र में स्थित एक राज्य है, और यह देश के सबसे धनी आबादी वाले राज्यों में से एक है। राज्य खनिजों सहित प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है, और खनन गतिविधियों का एक लंबा हरियाणा के केवल सात जिलों में खनिजों की पहुंच है – पानीपत, फरीदाबाद, महेंद्रगढ़, अंबाला, गुरुग्राम, रेवाड़ी और भिवानी।

चीनी मिट्टी, चूना पत्थर, डोलोमाइट, क्वार्टज। सिलिका बालू और अन्य खनिज जैसे बेराइट्स, कैल्साइट, फेल्डस्पार, तांबा, टिन और टंगस्टन उल्लेखनीय हैं जो इस राज्य में पाए जाते हैं।

- चरखी दादरी का कलियाना जिला मुड़ने योग्य बलुआ पत्थर के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है।
- उसी खदान (एक बड़ा गड्ढा) में कठोर बलुआ पत्थर भी पाया जाता है।
- फरीदाबाद, गुरुग्राम और रेवाड़ी जिलों में चीन की मिट्टी है।
- गुरुग्राम जिले के सोहना में शिवकुंड और शीला कुंड में मिनरल वाटर उपलब्ध है।
- चूना पत्थर और भवन निर्माण में प्रयुक्त सामग्री हरियाणा के कुछ प्रमुख खनिज हैं, साथ ही ग्रेनाइट, स्लेट, संगमरमर, क्वार्टजाइट और बलुआ पत्थर, जो वहां निर्माण सामग्री के रूप में भी पाया जाते हैं।

हरियाणा के प्रमुख खनिज नीचे दिए गए हैं :-

- बिल्डिंग स्टोन
- चूना पत्थर
- लोहा अयस्क
- केनाइट
- ऐस्बेटस
- मैंगनीज

हरियाणा के लोक चित्रों का इतिहास

किसी भी देश की संस्कृति उसकी अपनी आत्मा होती है जो उसकी संपूर्ण मानसिक निधि को सूचित करती है। यह किसी एक व्यक्ति के सुकृत्यों का परिणाम मात्र नहीं होती है, अपितु अनगिनत ज्ञान एवम् अज्ञात व्यक्तियों के निरंतर चिंतन एवं दर्शन का परिणाम होती है। मानव जीवन के विकास के साथ ही कला का विकास भी हुआ।

“एम. सी. वकेंट ने” ने अपनी पुस्तक ‘मोस्ट प्रीमिटिव आर्ट’ में कहा है कि – किसी राष्ट्र अथवा जाति की सभ्यता के विकास में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के हेतु कला से सहायता प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। कला अध्ययन के माध्यम से ही रीति-रिवाज तथा रहन-सहन के ढंग आदि को भी भली भांति जाना जा सकता है।

प्रत्येक युग में उसे समय की कला की छाप अंकित होती है, लोक जीवन में लोक चित्रों का उतना ही महत्व है जितना शरीर के लिए प्राणों का। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लोक कलाओं से सरोबार हो जाता है। ये कहीं शब्दों में गूंजती है, कहीं अभिनय में दृश्यमान होती है और कहीं नृत्य की थिरकन में हमारा मन मोह लेती है। लोक चित्र लोकमन का कलात्मक अंकन है। यह गतिमान रहने वाली ऐसी परंपरा है जिसके लिए किसी प्रलोभन, लाभ, आश्रय या यश की आवश्यकता नहीं है। यह तो वह परंपरा है जो पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपी मत मान्यताओं तथा रीति-रिवाजों का मूल्यों सहित हस्तांतरण है, जिसमें मूल्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके लिए किसी प्रशिक्षण केंद्र की आवश्यकता नहीं होती है। इसमें पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपी गई विरासत का निर्वाह निष्ठा और आस्था की गरिमा के साथ किया जाता है। लोक चित्र रंग और रेखाओं की भाषा में मन का व्यक्तित्व है। रंग का रिश्ता प्रकृति से है और रेखाओं का सरोकार संस्कृति से होता है।

लोक चित्र प्रकृति और संस्कृति की सांझी स्वीकृति है। कलाओं की उन्नति एवं विकास में लोक कला का बहुत महत्व है। यह लोक कला न जाने अतीत की किस स्वर्णिम बेला से हमारे उल्लासमय संबंधों से जुड़कर हमारे साथ चली आ रही है। क्योंकि वह हमारे आंगन की वस्तु रही है। असाक्षर परिवारों, ग्रामांचलों, अशिक्षित जनजातियों के घरों में बिना किसी प्रश्रय या प्रसिद्धि के सरल, शांत स्वाभाविक रूप से धार्मिक तथा सांस्कृतिक व पारिवारिक रूढ़ियों एवं परंपराओं के साथ हमारे साथ चली आ रही है।

लोक चित्रों में कृत्रिमता का कोई स्थान नहीं। इस कला में मौलिकता है, जिसका सृजन समतल सतह (आंगन), दीवारों, कागज या स्थानीय सामग्री से बनी वस्तुओं आदि पर गेरु, खड़िया, रंगों

व कोयले आदि से किया जाता है। यह कला घर — आंगन तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि कशीदाकारी, खिलौने, नकाशी, वस्त्रों एवं भित्ति चित्रों एवं पट चित्रों में भी इसका प्रयोग होता रहा है।

लोक के कला कृतित्व संपूर्ण मानव के अभ्युदय के लिए होता है। लोकचित्र का मूल लोक है। 'डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में' लोक शब्द का अर्थ — "जनपद व ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गांव में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसमें व्यावहारिकता का आधार पोथियां नहीं है।" ये लोक अकृत्रिम और सरल जीवन व्यतीत करते हैं।"

हमारे जीवन का महासमुद्र उसमें भूत, भविष्य तथा वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक से ही लोककला पुष्पित, पल्लवित और विकसित हुई है। लोक चित्र किसी भी सूत्र एवं नियम में बंधे नहीं होते। इसी कारण इनमें आस्वादन और सृजन के लिए अधिक स्वतंत्रता रहती है। यदि कला का प्रयोजन सौंदर्य अनुभूति के माध्यम से मन को मुक्त करना है तो लोक चित्र में यह शक्ति सर्वाधिक होती है। कलाविद इस गुण को "तकनीकी बारीकियों और उलझन से मुक्ति" (Freedom From Technical Swagger) कहते हैं।

लोक चित्र वह लोच है जिसमें जीवन की लय, सहज, स्वस्थ और मुक्त हो उठती है। कला मन को स्वतंत्रता सुंदर और मधुर के लिए समर्पित हो जाने के लिए प्रेरणा देती है। मन किसी स्वतंत्रता का लाभ उठाकर सौंदर्य निमंत्रण को स्वीकार करता है और उसमें रम जाता है, परंतु 'लोक चित्र' में यह स्वतंत्रता, निमंत्रण और आकर्षक अभिजात शास्त्रीय तथा उच्च स्तरीय कला की अपेक्षा अधिक होती है।

कलाओं की अपेक्षा लोक चित्र स्पष्ट जीवन को प्राणों के रस से सींचते हैं, जो विकास की गति और इतिहास की नित नयी चुनौतियों के दबाव में दुर्बल हो जाती है। लोकचित्र ही संस्कृति का सहज श्रृंगार करती हैं। अतः जब लोक को जब कला के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तो उसका अर्थ उस कला से होता है, जो एक निश्चित भौगोलिक सीमा में रहते हुए, इस भौगोलिक क्षेत्र के भौतिक उपदानों, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों, धार्मिक विश्वासों, पारंपरिक प्रचलनों के आधार पर मूर्तवत् रूप से प्रकट की जाती हैं। इस प्रकार लोक कला का अर्थ — "भौगोलिक क्षेत्र विशेष के उपादानों और उसके मूल्यों, पारंपरिक प्रयत्नों, धार्मिक विश्वास, पौराणिक कथाओं तथा पुनीत प्रतीकों के सुन्दर संयोग का विभिन्न माध्यमों की सहायता से भूत एवं स्थाई निरूपण ही लोक चित्र के अंतर्गत ही आता है। संक्षेप में लोक चित्र प्रत्येक क्षेत्र के धार्मिक विश्वास, कथाओं तथा पुनीत प्रतीकों का सुंदर रूप में विभिन्न माध्यमों द्वारा ही प्रदर्शित करना है।

अतः लोक चित्र के उद्भव एवं विकास की कहानी बहुत प्राचीन है। यदि हम विचार करके देखे देखे तो विभिन्न युगों आदर्श प्रतिमान का प्रभाव लोक चित्रों पर पड़ा। परंतु दीर्घकालीन परंपरा और परिस्थितियों में संबंधता है। इसी कारण आदिकाल के चित्रों से वर्तमान लोकचित्र प्रभावित हुए हैं।

लेखकों के अनुसार — लोकचित्रों का आदिमानव से घनिष्ठ संबंध रहा है। पुरानी गुफाओं में प्राप्त स्वास्तिक आदि चित्रलोक परंपरागत रूप से आज भी बनाए जाते हैं और उसे समय की परिस्थितियों में इसे लोक चित्र नहीं माना गया, क्योंकि तब तक समाज का संगठन नहीं हुआ था। अन्यथा लोक चित्रकल्पना का सहारा लेकर अपने नियमों का उल्लंघन करते हुए स्वतंत्र पथ को अपना प्रदर्शक मानती है।

लोकचित्र एवं पृथक वातावरण को प्राचीन परंपराओं को अक्षुण्ण रखने वाली कला है। इस पर वातावरण का प्रभाव आकृतियों, शैली, उपकरणों, धार्मिक क्रियाओं, मनोरंजन के साधनों, जन्म विवाह एवं मृत्यु आदि संस्कारों तथा फसल के उत्सव आदि में विकसित होता दिखाई देता है। हरियाणा में तो ऐसा कहा जाता है लोक चित्रों का जन्म और विकास मानव जीवन के साथ-साथ माना जाता है। अतीत के सभी युगों पर उसके अस्तित्व की छाप विभिन्न रूपों में बनी रही। यह सदा से ही मानव की सहचरी के रूप में रही है।

विद्वानों ने तो कहा है कि — किसी देश अथवा जाति की सभ्यता के विषय में पूर्ण ज्ञान ज्ञात करना ही तो उनकी, कला की सहायता आवश्यक लेनी होगी। वैदिक काल में दो प्रकार की भाषाएं थी, एक संस्कृत, दूसरी लोक भाषा। लोक भाषा जो सभी के मध्य समान रूप से बोली जाती थी। लोक भाषा में अनुसंधान कार्य जब से आरंभ हुआ तो इसका स्वरूप बढ़ता गया। भारतीय कला का अस्तित्व प्रागवैदिक काल में मोहन जोदड़ो की खुदाई से मन स्रोतों से उल्लेखित होता है कि — लोकप्रिय तत्वों को आरंभ आयों के आगमन से पूर्व ही हो गया था।

वैदिक काल में बहुत से देवी देवताओं का उल्लेख तात्कालिक साहित्य में प्राप्त होता है कि तब मंत्रों द्वारा ही इनके रूपों की परिकल्पना की गई और इनकी प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। इन प्रतीकात्मक रूप में देवी देवताओं के रूप हुई। इन मूर्तियों का विभिन्न सांसारिक संज्ञाओं के साथ विकास होता हुआ इसका उपयोग भारत के विभिन्न भागों में भारतीय नारी, विभिन्न समारोह एवं तीज त्यौहार पर करती हैं। जिसे लोकचित्रों का ही नाम दिया है।

आदिकाल से सामाजिक एवं वैवाहिक से संबंधित कुछ विश्वास एवं संस्कार बाद में लोक में घुल मिलकर जिनको आज की भारतीय नारी अपने कर्तव्य के रूप में संरक्षित किए हुए हैं। एक हिंदू का जीवन संस्कारों से परिपूर्ण होता है, परंतु उसमें संस्कृतिक रूप की विभिन्नता लक्षित हाती है। इसलिए लोकचित्रों के नामों में भी विभिन्नता है। इन सभी के पीछे गहरी भक्ति एवं धार्मिक भावनाएं विद्यमान है। लोक चित्र प्राचीन काल में घरेलू कला के रूप में ही प्रयोग किया जाता था। इसकी शिक्षा परिवार में मां अपने पुत्री को प्रदान करती थी और पुत्री इस परंपरा को आगे बढ़ती थी। इस प्रकार यह कला एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक चली जाती है।

➤ लोक चित्रों के विषय में महत्वपूर्ण बिंदु :-

- यह हृदय की सीधी नैसर्गिक छवि को प्रदर्शित करती हैं।
- इसकी प्रविधि व संसाधनों में कृत्रिमता व जटिलता नहीं होती है।
- अभ्यास की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है।
- पूरी कथा को एक ही चित्र में प्रतीकात्मक रूपों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है।
- इसमें विषय-वस्तु, धार्मिक उत्सवों पर्वों संस्कारों व लोकानुरंजनों से जुड़ी होती है।
- उसका रचयिता अज्ञात व अनाम होता है।
- साधारण जन स्वयं ही इस कला का आश्रयदाता होती है।
- लोक चित्र शाश्वत हैं, उसकी परंपरा का कभी लोप नहीं होता। वर्तमान समय में लोक चित्रों को उसके स्वरूप के आधार पर प्रो.सी.एल.आ. के अनुसार हम निम्न भागों विभागों में बांट सकते हैं :-
- धार्मिक भावनाओं पर आधारित लोक चित्र
- व्यक्तिवादी सांस्कृतिक भावनाओं पर आधारित लोक चित्र आदि।

द्वितीय अध्याय

- हरियाणा की विविध प्रकार की लोक कलाएँ

हरियाणा की विविध प्रकार की लोक कलाएँ

भारत विभिन्न धर्मों व सास्कृतियों का देश है। समस्त विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ पर्व एवं त्योहार का क्रम वर्ष भर चलता रहता है। लोक जीवन में इन धार्मिक उत्सवों और हर्षोन्मुख त्योहारों की इतनी बहुलता है की संपूर्ण जीवन मानव इनसे आनन्दित रहता है। विवाह आदि संस्कारों के उपलक्ष्य में बनने वाली कलाकृतियों के अतिरिक्त प्रकृति संबंधी, सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों पर अनेक लोक चित्र कलाएं बनाई जाती हैं। प्रकृति के तट पर अंकित होने वाली नित्य कई ऋतुओं में आनंद की अनुभूति के साथ-साथ नवीन कलाकृतियों का जन्म होता है। प्राकृतिक प्रकोप के भय की आशंका से उत्पन्न धार्मिक भावना भी व्यक्ति और समाज के शुभ और समृद्धि कामना के हित से अनेक धार्मिक लोक चित्रकलाओं का जन्म होता है।

प्रत्येक मास के उत्सव में ऋतु पर्वों पर एवं दैनिक जीवन से संबंधित पूजा व धार्मिक कृत्यों में लोक चित्रकलाओं का महत्व है। इस प्रकार लोकजीवन में त्योहारों का संबंध धर्म के साथ-साथ ऋतु परिवर्तन और कृषि से भी होता है।

हरियाणा में अनेक त्यौहार प्रचलित हैं जो सभी जातियों में समान रूप से मनाए जाते हैं। परंतु इन त्योहारों एवं उत्सवों पर बनने वाली लोक चित्रकलाएं जातीय स्तर पर कुछ भिन्न देखी जा सकती हैं। परंतु अंतर बहुत कम होता है। ऋतुओं से संबंधित त्योहारों पर संबंधित आकृतियां बनाई जाती हैं जैसे – बसंत पंचमी पर पीले वस्त्र धारण किए जाते हैं, क्योंकि खेतों में सरसों के पीले-पीले फूलों की बहार, इस ऋतु में दृष्टिगत होती है। दीपावली पर्व पर संपूर्ण फसल पक कर तैयार हो जाती है। अन्न भंडार धन-धान्य से भर जाते हैं। इस कारण इस त्यौहार पर लक्ष्मी पूजन होता है। मानव अपने हृदय उल्लास से दीपमालिका जला-सजाकर व्यक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पर्व ऐसे भी हैं जो न तो कृषि से संबंधित हैं और न ऋतु परिवर्तन से ही वरन् आदि वैदिक शक्तियों को प्रभावित करने की दृष्टि से मनाए जाते हैं।

प्राचीन काल से आदिमानव नाग, नदियों, पहाड़ों, वृक्षों आदि को दैविक शक्ति मानता था। इससे उसको अपने जीवन का भय था। अतः इसने उसको आदि वैदिक शक्तियां मानकर उनकी उपासना प्रारंभ कर दी थी। अतः इस प्रकार लोक पर्व के मूल में कोई न कोई कारण अवश्य होता है, चाहे वह ऋतु से संबंधित हो अथवा कृषि से या आदि दैविक शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए किया गया हो।

आज भी जो उत्सव लोक वर्ग में बनाए जाते हैं, उनकी ऐतिहासिक परंपरा तथा उनके पीछे जुड़े हुए आदिमानव मनोविज्ञान का निश्चित इतिहास प्राप्त न हो सकने के कारण यह नहीं कहा जा

सकता कि इन लोकोत्सव के मूल रूप आज भी विश्व की आदिम संस्कृतियों में कहीं न कहीं सुरक्षित है।

हरियाणा में जो लोकोत्सव एवं लोकपर्व मनाये जाते हैं, वह मूल रूप में तथा उन पर बनने वाली लोक चित्रकलाएं आदि का विवरण निम्न प्रकार से है :-

➤ सांझी :-

उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब तथा राजस्थान में सांझी का उत्सव बड़े उल्लास से कई दिनों तक मनाया जाता है। इस पर गोबर की पतली-पतली बत्ती या मैढ़ से दीवार पर एक बड़ी देवी की प्रतिमा बनाई जाती है। फिर उसे आभूषणों से सुशोभित किया जाता है। यह नवरात्रि की देवी का रूप है और अश्विन नवरात्रों में ही मनाया जाता है, जिसकी पूजा परंपरागत ढंग से की जाती है। मान्यता है कि इससे परिवार या गृहस्थी का शक्तियों का स्मरण एवं आवाहन किया जाता है। इस अवसर पर स्त्रियां मंगल गीत गाती हैं, बच्चे आस पड़ोस के घरों में जाकर सांझी या टेसू गाते हैं। लड़कियां सांझी गाती हैं, व लड़के टेसू गाते हैं। बड़े-बूढ़े उन्हें आशीर्वाद स्वरूप पैसे भी देते हैं। प्रमुखता: यह पंक्तियां सुनने में आती हैं :-

“ आलता री आलता सांझी माई का आलता ”

देहात में सांझी को झांसी भी कहते हैं। उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में उच्च वर्ग में भी इसका प्रचलन है। व पितृ पक्ष के दिनों में इसको पूजा जाता है। इन परिवारों में पीतल, चांदी व सोने की सांझी मिलती है। सांयकाल में दीपक जलाकर लड़कियां इसकी आरती करती हैं।

1. सांझी चित्रण की प्रक्रिया :-

सांझी चित्रण करने के लिए नवरात्र प्रारंभ होने पर देवी देवताओं का आह्वान करके चौक पूरते हैं व दीवार पर गोबर से जितने भाग पर सांझी बनानी होती है, उसे लीपकर पवित्र कर लेते हैं। फिर गोबर की पतली-पतली बतिया बनाकर देवी आकृति बनाते हैं। फिर उसे सुनहरी व रूपहली व पन्नियों से सजाकर वस्त्राभूषण बनाए जाते हैं। आजकल तो सांझी का मुख बाजार में मिट्टी से बना हुआ व रंगा हुआ आसानी से उपलब्ध हो जाता है, जिससे सांझी और भी अधिक आकर्षक लगती है। तत्पश्चात उसके सुनहरे पन्नियों से उसको अलंकृत करते हैं, जिसे गोबर से ही चिपकाए जाता है। इसमें उभार होने के कारण जीवन्त प्रतीत होती है। इसमें मानव के मांगल्य आह्वान किया जाता है।

➤ नाग पंचमी :-

नाग पंचमी का पर्व श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। इस दिन नाग देवता की पूजा की जाती हैं। नाग देवता की उपासना आदि मानव ने भय के वशीभूत होकर की नागों की उपासना के उदाहरण किसी एक देश विशेष में नहीं है, वरन् विश्व की अनेक संस्कृतियों में मिलते हैं। नाग पंचमी पर लोक वर्ग में नाग देवता का विशेष पूजन होता है। इस संदर्भ में मानव शास्त्रियों का कहना है कि आदिमानव ने जब देखा कि सर्प से मानव जीवन का भी भय हो सकता है, तो उसने सर्पों की आराधना प्रारंभ कर दी, जिसका अवशेष आज भी नाग पंचमी के पर्व के रूप में लोक वर्ग में विद्यमान है।

भारतीयों ने नाग देवता की शक्ति को शेषनाग के रूप में चित्रित करके देव रूप दिया है। संपूर्ण भूमंडल को भगवान शेषनाग अपने सिर पर उठाए हुए हैं। इस दिन स्त्रियां घर की दीवारों के दोनों कोलों पर नागों के चित्र बनाती हैं। इन चित्रों की यथाविधि पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त यह विश्वास प्रचलित है कि नाग पंचमी के दिन सांपों को दूध पिलाने से सर्प दश का भय नहीं रहता। अतः इस दिन सांपों को दूध पिलाने का विशेष महत्व है।

नाग पंचमी के दिन नागों की आकृतियों को बनाने का तरीका विभिन्न जातियों में अलग-अलग है। नागों की आकृतियां बनाने के तीन रूप देखे गए। उनमें से कुछ लोग तीन सांपों की आकृति बनाते हैं, कुछ पांच सर्पों की आकृति व कुछ साथ सांपों की आकृतियां बनाते हैं। परंतु एक बात विशेष है कि सांपों की आकृतियों में सांपों की संख्या हमेशा विषम होती है। सांपों की आकृति बनाने की प्रक्रिया में सबसे पहले दीवार को पानी से धोया जाता है। फिर उस पर गोबर को पानी में घोलकर लेप किया जाता है। यह लेप दरवाजों के दोनों कोलों पर वर्ग के आकार में किया जाता है। इस लेप के सूखने के पश्चात कच्चे दूध में कोयला घोलकर इस आकार के चारों ओर हाशिया बनाया जाता है। फिर उसके अंदर इसी घोल से सांपों की आकृतियां बनाई जाती हैं। इस प्रकार की आकृतियां घरों के दोनों कोलों पर ही बनाई जाती हैं, परंतु सांपों की एक आकृति पूजनीय स्थान पर घर की किसी भी दीवार पर बनाते हैं, परंतु यह आकृति कोलों पर बनाई गई आकृति से भिन्न व उससे आकार में बड़ी होती है।

इस प्रकार की आकृति को बनाने से पूर्व दीवार को पानी से धोया जाता है। फिर उस पर गोबर का लेप किया जाता है। हिंदू धर्म की मान्यताओं के अनुसार ऐसा करने से दीवार पवित्र हो जाती है। गोबर के लेप के सूखने के पश्चात गेरू को पानी में घोलकर एक लेप किया जाता है। यह लेप इस आकार में किया जाता है, इसके सूखने के पश्चात कच्चे दूध में कोयला घोलकर इस आकार के चारों ओर हाशिया खींचते हैं। फिर इसके अंदर कोयले के घोल से ही 3, 5, 7 या फिर 9 सर्पों की आकृतियां बनाते हैं।

आकृति अंकित करने के पश्चात इसका पूजन किया जाता है। जिसमें घर के सभी लोग एकत्रित होते हैं। पूजन में सर्वप्रथम इस आकृति पर देसी घी के थापे लगाते हैं। फिर सभी लोगों को हल्दी का टीका लगाया जाता है और इस आकृति पर चावल की छत डालते हैं।

सांपों की मुख्य आकृति का पूजन करने के पश्चात दीवारों की दोनों कोलों पर बनी सांपों की आकृतियों पर भी तिलक किया जाता है।

सांपों की पूजा नाग पंचमी के दिन ही की जाती है और उनकी उपासना पूरे श्रद्धा एवं पवित्र भावना से की जाती है

➤ रक्षाबंधन का त्योहार :-

रक्षाबंधन का त्योहार श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को मनाते हैं। इस दिन बहनें अपने भाई को राखी बांधती हैं और उनकी दीर्घायु की कामना करती हैं और भाई बहन की आजीवन रक्षा का संकल्प लेते हैं। परंतु ग्रामीण क्षेत्र में रक्षाबंधन को सलूमण भी कहा जाता है। यह वैदिक पर्व है जिसे विशेष रूप से ब्राह्मण वर्ग से संबंधित माना गया है, परंतु आजकल सभी वर्गों के लोग इसे उत्साह के साथ मनाते हैं।

रक्षाबंधन की परंपरा वामन बलि के प्राचीन उपारव्यान के आधार पर प्रचलित हुई थी। वामन भगवान ने राजा बलि को अपने लिए भूमि दान करने के लिए वचनबद्ध कर लिया था। बलि के गुरु शंकराचार्य ने राजा के हित में इसका विरोध किया था, किंतु बलि ने अपने राज्य को खोकर भी वचन का परिपालन किया था। ब्राह्मण लोग रक्षा सूत्र बांधते समय इसी घटना का स्मरण करते हैं। इसी दिन भगवान श्री राम ने लंका विजय के लिए रामेश्वरम में पुल का निर्माण कार्य प्रारंभ किया था। इसके ऐतिहासिक दृष्टटव्य भी इस दिन को दर्शाते हैं। इस त्यौहार को भारत के अन्य क्षेत्रों में अलग-अलग रूपों में मनाया जाता है।

हरियाणा में रक्षाबंधन का पर्व अत्यंत उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस दिन बहनों द्वारा भाई की कलाई पर रखी या रक्षा सूत्र बांधने की प्रथा प्रचलित है। इसे पूरी तन्मयता एवं उत्साह से पूर्ण किया जाता है और भाइयों से बहने बड़े स्नेह के साथ उपहार प्रदान करती हैं। हरियाणा की स्त्रियां व कन्याएं रक्षाबंधन के दिन अपने घरों की भित्ति अथवा दरवाजा के दोनों कोलों पर आकृतियों को चित्रित करती हैं, जिसे यहां की स्थानीय भाषा में 'सोन रखना' कहा जाता है। इन सोनों की सजावट भाई बहन की मंगल कामना हेतु एवं उनके स्वागतार्थ की जाती है। इसे 'सोन रखना' कहा जाता है। यह सोन विभिन्न आकार एवं प्रकार के बनाए जाते हैं तथा इनके चित्रण विधान में पर्याप्त विभिन्नता पाई गई है। जिनमें प्रमुख इस प्रकार है – सोन लिखते समय सबसे पहले दीवार को गोबर से लीपते हैं,

फिर उस पर खड़िया का लेप किया जाता है। सूखने के पश्चात उस पर गेरू के घोल से चित्रण कार्य किया जाता है, परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ लोग सफेद चिकनी मिट्टी (पोपना) से लिपकर खड़िये के घोल से आकृतियों को चित्रित किया करते हैं तथा कुछ सुनार परिवारों में दरवाजों के कोलों पर गोबर लीपकर उस पर चावल के ऐंपन से पतला लेप करते हैं। तत्पश्चात उस पर गेरू से आकृतियां अंकित की जाती हैं।

यहां पर कच्चे आटे के जवें बनाकर उससे कलवा भी इन सोनों पर चिपकाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सोन ज्यामितिय आकारों में बनाए जाते हैं। कहीं-कहीं पर इन सोनों में मानव आकृतियां भी बनाई जाती हैं। हरियाणा में बनाई जाने वाली आकृतियों के चित्रण के आकार प्रकार निम्न है।

इन आकृतियों के चित्रण के साथ-साथ इनके अंदर विभिन्न देवी देवताओं के नाम भी लिखे जाते हैं। जैसे ओम नमः शिवाय, सीताराम, जय श्री राम, हरे रामा हरे कृष्ण आदि।

परंतु इनके साथ-साथ कहीं-कहीं पर रक्षाबंधन, भाई बहन का बंधन शुभ-लाभ आदि भी लिखा गया है। इन आकृतियों के साथ-साथ स्वास्तिक का चित्रण भी मिलता है। स्त्रियों के द्वारा बनाई गई आकृतियों को इन अलंकरण द्वारा सजाया भी जाता है और फिर इन आकृतियों के चित्रण के पश्चात इनकी पूजा की जाती है। और सबसे पहले रोली का तिलक करने के बाद जल का छिंटा दिया जाता है परंतु कुछ लोग तो सोन की दूब (हरी घास) व जवें भी अर्पित करते हैं। वर्ष के इसी दिन पहली बार नए जवें बनाए जाते हैं, जिन्हें पूजन करने के पश्चात प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है।

➤ विजयदशमी (दशहरा):-

“दशहरा या विजयदशमी” का त्योहार अश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। यह महिषासुर आदि प्रबल दैत्यों पर विजय अथवा दशाक्ष रावण पर भगवान श्री राम की विजय या असत्य पर सत्य की जीत (विजय) के रूप में मनाया जाता है। यह शक्ति पूजा अथवा वीर पूजा का पर्व है। इसे विशेष रूप से क्षत्रिय वर्ग से संबंधित माना जाता है, परंतु अब अनेक रूपों में सभी वर्णों व जातियों द्वारा इसे बड़ी धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

मध्यकालीन रियासतों में यह उत्सव बड़ी ही धूमधाम से मनाया जाता था। इस दिन समस्त अस्त्रों – शस्त्रों की सफाई करके इनकी विधिवत पूजा की जाती थी। उनका भव्य प्रदर्शन किया जाता था। राजगण बड़ी तैयारी से जुलूस निकालते थे।

दशहरा भारत का एक अति प्राचीन सांस्कृतिक लोकोत्सव है। कुछ विद्वानों के अनुसार इस उत्सव का संबंध कृषि से है। इस समय श्रावणी फसल कट चुकी होती है। कृषकों के पास अन्न व धन होता है। दूसरी फसल की बुवाई अभी देर से होनी है। अतः बीच के फसल में कृषक लोग अनेक

उत्सव मनाते हैं। पहले यह लोकोत्सव था। बाद में इसका ध्यान आर्मिकीकरण होकर यह धार्मिक उत्सव बन गया।

जनसाधारण में दशहरा एक प्रसिद्ध लोकोत्सव तथा जनप्रिय त्योहार के रूप में मनाया जाता है। दशहरे के पूर्व नवरात्रों में स्थान स्थान पर रामलीलाएँ होती हैं, जिनके आधार तुलसीकृत रामचरितमानस होता है।

दशहरा त्योहार भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न रंगों एवं रूपों में मनाया जाता है। उत्तर भारत में दशहरा सामाजिक सांस्कृतिक उत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसका सबसे लोकप्रिय तत्व रामलीला का उदय से माना जाता है। रामलीला अपनी अलग शैली के लिए विख्यात है। इसमें लीला का मंचन एक जगह न होकर नगर के विभिन्न स्थानों पर होता है जो एक माह तक चलता है। विजयदशमी पर राम दरबार की डोली निकाली जाती है। उसके पीछे रावण, कुंभकरण, मेघनाथ, ताड़का, खर-दूषण के पुतले निकाले जाते हैं। बाद में इनका दहन कर दिया जाता है।

दशहरे के दिन राम ने रावण को मारा था, जिसे बुराई पर अच्छाई की विजय के रूप में मनाते हैं। विजयदशमी अर्थात् दशहरे को राम का भूमि पर चित्र बनाकर उसे पूजा जाता है। हरियाणा में भी विजयदशमी के दिन आटे से राम बनाने की प्रथा प्रचलित है, जिसे स्थानीय भाषा में दशहरा बोलते हैं। दशहरे को घर के आंगन में खुले में बिछाना जाता है। पूजन करने के पश्चात् दोपहर बाद भोजन के उपरांत इसे उठा दिया जाता है। दशहरे को सभी जातियों में पूजा जाता है। दशहरे को बिछाने में सर्वप्रथम आटे से लंबा आयात खिंचा जाता है जिसके अंदर दो तरफ गोबर से बने 10 पिंड रखे जाते हैं, जो दशहरे का प्रतीक है। इसमें ऊपर की ओर सिर दाई व बाई और हाथ तथा नीचे की ओर आटे से पैर बना दिए जाते हैं।

दशहरे की आकृति के साथ थोड़े छोटे आकार में राम व लक्ष्मण बनाए जाते हैं। गोबर के इन पिंडों के ऊपर दूब (हरी घास) भी रखी जाती है। दशहरा मनाने के पश्चात् आकृति के मध्य में बहुत सा सामान रखा जाता है जैसे – लाठी, दूध बिलोने की रई, चाकू, बैत आदि परंतु इन वस्तुओं के साथ ही स्थानीय लोग अपने-अपने व्यवसाय से जुड़ी वस्तुएं भी इसके मध्य में रखते हैं जैसे – व्यापारी लोग बहीं, (लेखा-जोखा की पुस्तक), किसान – हल व विद्यार्थी – पुस्तक आदि को रखते हैं। इस दिन कुछ विशेष जातियों में तराजू में चांदी को तोला जाता है, जिसमें चांदी अधिक भार व बाट कम भार का होता है, जो इस बात का प्रतीक है कि व्यापार में मन हमेशा साफ रहे। साथ ही साथ कहीं-कहीं रावण को विद्वान मानते हुए उसकी पूजा भी की जाती है और उसे जलते हुए नहीं देखते हैं।

दशहरा बिछाने एवं सभी सामान रखने के पश्चात् पूजा प्रारंभ की जाती है। दीपक व धूप जलाकर आटा, गेहूं, चीनी रखकर हाथों में नौरते लेकर राम के चारों ओर निम्न पंक्तियां उच्चारित करते

हुए चक्कर लगाते हैं। सब प्रक्रिया के पूर्ण होने के पश्चात बहनें अपने भाई के कानों पर नौरते भी रखती हैं तथा उनके भविष्य की मंगल कामना करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बहनें भाई के कानों पर नौरते रखने से पूर्व कुछ नहीं खाती हैं।

दशहरे के दिन ही रामलीला का समापन एक खुले मैदान में होता है, जिसमें श्री राम द्वारा रावण के अंत को दिखाया जाता है। तत्पश्चात रावण, कुंभकरण तथा मेघनाथ के विशालकाय पुतलों को जलाया जाता है, जो असत्य पर सत्य की विजय का प्रतीक है।

➤ करवाचौथ :-

यह लोकोत्सव कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को मनाया जाता है। इस दिन समस्त सौभाग्यवती हिंदू महिलाएं उपवास करती हैं। इस उपवास पर महिलाएं निर्जल रहकर उपवास करती हैं। इसमें मिट्टी का एक टोंटीदार बर्तन जिसे करवा कहते हैं। खाण्ड के बर्तन के साथ मिनसा जाता है। इस बर्तन 'करवा' के नाम पर ही कदाचित इस लोकोत्सव का नाम करवाचौथ रखा गया है। यह व्रत हिंदू महिलाओं के चिर सौभाग्यवती बने रहने हेतु किया जाता है। इस व्रत को सुहागिन महिलाएं निर्जल रहकर अपने पतियों की दीर्घायु होने की कामना करती हैं। हिंदू स्त्रियां इसे सुहाग का पर्व समझती हैं। इस व्रत में सुहागिन खूब श्रंगार करके, अच्छे वस्त्र एवं सौभाग्य सूचक अलंकरण धारण करके स्त्रियां दीवार पर चित्रित देवी मां की पूजा अर्चना करती हैं तथा रात्रि को चंद्रमा को अर्घ्य देकर उपवास खोलती हैं और इस उपलब्ध में महिलाएं संबंधित कहानी एक दूसरे को सुनती हैं।

करवा चौथ का पर्व पार्वती देवी की आराधना का पर्व है। पार्वती जी को स्त्रियों के अक्षत सुहाग का प्रतीक माना गया है। मां पार्वती ने एक बार भगवान शंकर जी से प्रश्न किया कि वह कौन सा व्रत है जो स्त्रियों के सुहाग की रक्षा करता है। शंकर जी ने माता पार्वती को करवा चौथ वृतांत सुना दिया। शंकर जी से मां पार्वती का सीधा प्रश्न यह था कि मैंने सती जीवन में बहुत कष्ट सहे आपको फिर से पाने के लिए तप किये और तब जाकर प्राप्ति हुई। इसलिए वह व्रत कहिए जो आपने किसी से न कहा हो और उस व्रत को करने से न पश्चाताप करने पड़े और न तप आदि ही करना पड़े आदि ही करना पड़े। तब शंकर जी ने कहा करवा चौथ का व्रत करने से मन सात्विक होता है।

“मैं पत्नी के लिए और पत्नी मेरे लिए” का संकल्प लिया जाता है। इस संकल्प से दोनों में श्रद्धा और विश्वास की भावना बनती है और परिवार सुखमय बना रहता है। मूलतः करवा चौथ की प्रासंगिकता सीता से भी जुड़ी है, क्योंकि सीता जी का जन्म कुंभ से हुआ था। सीता जी को प्रकृति की देवी अथवा पुत्री कहा जाता है। कुछ लोगों का मानना है की कुंभ से सीता जी का प्रादुर्भाव होने के

कारण चतुर्थी को करवा चौथ का पूजन किया जाता है। सीता जी नारी धर्म एवं पति धर्म की प्रतीक है।

सीता जी राम जी की शक्ति हैं। श्री राम की मर्यादा सीता जी में निहित थी और सीता जी का पति धर्म श्री राम में निहित था। इसी ने करवा चौथ पर्व की नींव डाली, और सीता जी की कुंभ से उत्पत्ति के कारण करवा पूजन से यह व्रत जुड़ गया। सीता जी को आराध्या शक्ति मानकर इस दिन स्त्रियां करवा चौथ का व्रत करती हैं। इस दिन महालक्ष्मी एवं महागौरी की भी पूजा की जाती है।

कहीं-कहीं लोक मानस में यह भी विश्वास किया जाता है कि स्त्रियां पानी से भरे करुओं के रूप में सौभाग्य सूचक अपने पतियों की पूजा करती हैं, जिसमें मिट्टी के करवे को मानव शरीर माना जाता है तथा करवे में भरा पानी जीव आत्मा का सूचक है और उस पर रखें आम्र पत्र सौभाग्य देने वाले हैं।

वैदिक कथाओं के अतिरिक्त हरियाणा में स्थानीय लोक कथा भी प्रचलित है जो करवा चौथ के महत्व को दर्शाती है। यथा सात भाइयों की एक ही बहन थी। विवाह पश्चात करवा चौथ का पहला व्रत रखने वाली मायके आई है तथा अपनी सातों भाभियों के साथ वह व्रत रखती है। परंतु वह भूख सहन नहीं कर पाती। उसकी व्याकुलता देख उसके भाई परेशान हो उठते हैं। इसलिए उसके भाई पेड़ पर चढ़कर व दीया हाथ में लेकर उसके आगे छलनी कर देते हैं। एक भाई बहन को जाकर बताता है कि चांद निकल आया है। बहन अपनी सभी भाभियों से कहती है कि चलो पूजा करते हैं, परंतु भाभी कहती है कि अभी उनका चांद नहीं निकला। अतः वह अकेले ही पूजा कर ले।

बहन जब पूजा करके व्रत खोलने बैठती है, तभी उसकी ससुराल से संदेश आता है कि उसका पति बहुत बीमार है। वह खाना छोड़कर भागी हुई ससुराल चली जाती है और वहां पहुंच कर देखती है कि उसके पति का देहांत हो चुका है और उसे शमशान ले जा रहे हैं। सारे साल वह पति का सिर गोद में लेकर बैठी रहती है। वह उसकी सेवा करती रहती है। अगले साल जब करवा चौथ का व्रत आता है, तो वह व्रत रखती है। उसी समय जब कुम्हारिन करवा बेचने आती है, तब वह प्रार्थना करती है कि उसे एक करवा दे दे, परंतु कुम्हारिन कहती है कि तेरा करवा लेकर तो मेरी सातवीं बहन आएगी।

उसकी सातवीं बहन बहुत भयानक रूप में आती है, परंतु वह उसके पैर पड़कर नहीं छोड़ती और प्रार्थना करती है उसको करवा दे दे। कुम्हारिन उससे प्रसन्न होकर अपनी उंगली चटाकर उसके पति पर खून का छींटा देती है, जिससे उसका पति जीवित होता हो जाता है। यह कुम्हारिन देवी का रूप मानी जाती है जिससे उसका पति जीवित हो जाता है।

हरियाणा में करवा चौथ के दिन दीवार पर देवी की आकृति बनाकर पूजा की जाती है। ये आकृतियां विभिन्न प्रकार की होती हैं। इन आकृतियों को अंकित करने के लिए पहले दीवार को तैयार किया जाता है। दीवार को धोकर उस पर गोबर का पतला लेप किया जाता है। लेप के सूखने के पश्चात भीगे चावलों को पीसकर घोल बनाते हैं। वह इसी घोल से सारा चित्रण कार्य किया जाता है। करवा चौथ की आकृतियां बनाते समय एक वर्गाकार आकृति के अंदर चांद, सूरज, तारे, करवा, डोला, खिड़की, तक्ती, दवात, पैन, चांद को अर्क देती हुई स्त्री, सात भाई, करवा बेचने वाली कुम्हारिन, चूड़ियां पहनने वाली मनिहारिन, गोरा, पार्वती आदि को अंकित किया जाता है।

इसमें आकृति के अंदर या बाहर करवा चौथ लिखा जाता है। कहीं-कहीं पर देखा गया है की आकृतियों के अंदर तुलसी को स्त्रियों द्वारा जल देते हुए अंकित किया गया है। इन आकृतियों को चारों ओर से अलंकृत किया जाता है। आकृतियों को चित्रित करने के पश्चात पूजा का कार्य प्रारंभ किया जाता है, जिसमें स्त्रियां दोपहर को बायना (बाणा) निकलती हैं।

करवा चौथ के त्यौहार को अब मानने में कुछ अत्यधिक गुणों का समावेश हो गया है। पति की आयु के लिए रखे जाने वाले व्रत ने अपना स्वरूप बदल दिया हैं। अब बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार कहने लगी कि पति की ही पूजा क्यों की जाए और अब पकवान भी बाहर से मंगवाए जाने लगे। पहले निर्जल उपवास रखा जाता था। अब दूध, जूस, चाय का सेवन करते हैं। पहले सास ससुर के पैर छूने का रिवाज था, जो अब समाप्त होता जा रहा है। यह देखा गया है कि मुस्लिम स्त्रियां भी इस व्रत को बहुत श्रद्धा भाव से करने लगी हैं। आजकल पति भी पत्नी के लिए उपवास करने लगे हैं।

➤ अहोई अष्टमी :-

यह त्यौहार कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन मनाया जाता है, जो कि लोक जीवन में इस पर्व को अति उल्लास के साथ मनाया जाता है। इस दिन महिलाएं अहोई का अंकन करती हैं तथा समस्त दिन उपवास रखकर रात्रि को अहोई देवी की पूजा करती है। यह व्रत संतान की दीर्घायु होने की कामना के लिए किया जाता है। जिस दीवार पर अहोई देवी का अंकन किया जाता है उसी के पास जल की भरी हुई मिट्टी की दो घट रखी जाती हैं। यह पर्व माता पार्वती की आराधना का पर्व है। पार्वती जी की महिमा से ही माता को गौरवशाली स्थान मिला है। माता पार्वती ने ही देवताओं का घमंड तोड़ा था। देवी भगवती पार्वती के चरित्र के दो रूप सामने आते हैं। एक जब वह गर्भ से उत्पन्न कार्तिकेय जी की माता है, दूसरी ओर मानस पुत्र (गणेश) की।

पार्वती जी के रक्षापाल गणेश जी हैं। यह पर्व माता पार्वती की महिमा एवं उनके पुत्र गणेश कार्तिकेय के विभिन्न परिपेक्ष में माता का पुत्र की रक्षा से संबंधित माना जाता है।

इससे जुड़ी एक कथा शिव पुराण में आती है। देवताओं का अहंकार चूर करने के लिए देवी ने देवताओं को प्रसूता कर दिया था। देवता परेशान हो गए और वे शंकर जी के पास गए और शंकर जी ने देवताओं को पार्वती जी के पास भेज दिया। पार्वती की स्तुति करने के पश्चात देवता बोले — हे! देवी यह कार्य हम नहीं कर सकते। हमने अहंकारवश कह दिया था कि वह कौन सा कार्य है जो हम नहीं कर सकते हैं। यह कार्य केवल स्त्री ही कर सकती है।

अहोई अष्टमी के संदर्भ में एक लोक कथा भी प्रचलित है — कहा जाता है कि ननद भावजों ने धरती खोदकर मिट्टी निकलते समय स्याऊ के बच्चों को मार डाला। जिससे स्याऊ (बेमाता) रुष्ट हो गई और उसने भावज के सभी बच्चों को मार डाला। अंततः स्याऊ के कहने पर ही अहोई माता की पूजा अर्चना से भावज को अपने बच्चों की पुनः प्राप्ति हो गई। तभी से अहोई अष्टमी का व्रत प्रारंभ हो गया।

इस लोक कथा में स्याऊ का क्या अभिप्राय है, यह स्पष्ट नहीं होता है। महा पंडित राहुल सांकृत्यायन का मत है की “स्याऊ” से सर्पिणी का अभिप्राय है — जो आदिम युग की सर्प पूजा का सूचक है। कुछ विद्वान इस पर्व को सेनापति स्कंद (कार्तिकेय) की पूजा से संबंधित कर स्याऊ को मोरनी का वाचन मानते हैं। स्कंद का वाहन मोर है, अहोई आटे के अंकन में मोर—मोरनी जैसी आकृति भी बनाई जाती है। यह लोक त्यौहार हरियाणा, उत्तर प्रदेश व ब्रज में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है।

बौद्धों की जातक कथा में मथुरा की एक यक्षिणी का उल्लेख है, जो यहां के निवासियों के बच्चों को उठाकर ले जाती थी। भगवान बुद्ध जब मथुरा आए थे तब उनसे उस यक्षिणी की शिकायत की गई और भगवान बुद्ध ने उसके बच्चों को छिपा दिया, जिससे वह व्याकुल होकर इधर-उधर घूम रही थी। अंत भगवान बुद्ध ने उसके बच्चों को लौटा दिया तथा उसे उपदेश दिया कि ऐसा करना पाप है। इससे यक्षिणी अपने क्रूर कर्म को छोड़कर बच्चों की संरक्षिका बन गई थी।

एक बार चरती हुई गाय को शेर ने पकड़ लिया। गाय ने अनुनय विनय किया कि अपने बछड़े को समझा बुझाकर लौट आएगी। सिंह उसकी प्रतीक्षा करें। सत्य ही गाय बछड़े को समझा कर वापस लौट आई और सिंह ने गाय की सत्य निष्ठा को देखकर उसे छोड़ दिया। इस लोक कथा के कारण सिंह और बछड़े की पूजा होती है तथा बछड़े के रूप में पुत्र की पूजा होती है, जिसके कारण मां को जीवन दान मिला।

अहोई अष्टमी के दिन लोक कलाकृतियों का चित्रण किया जाता है। ये आकृतियां मुख्यतः आयताकार अथवा वर्गाकार रूप में बनाई जाती हैं जिसमें नीचे की ओर पैर, दाएं व बाईं और हाथ व ऊपर सर बनाया जाता है। अहोई अष्टमी का अंकन करते समय सर्वप्रथम दीवार धोते हैं, फिर उस पर

गोबर का लेप करते हैं। इसके सूखने के पश्चात चूने का लेप किया जाता है। तत्पश्चात गेरू को घोलकर सींख की कुंची द्वारा अहोई माता की आकृति चित्रण की जाती है, जो पूरी बारीक लाइनों से बनाई जाती है। इन आकृतियों के अंदर भी विभिन्न प्रकार के अंकन किए जाते हैं, जिनमें बच्चों का स्कूल, चौपड़, तक्ती, डोला, चिड़ियां, मोर, कान्हा, दिए, मोमबत्ती, श्री गणेश, पार्वती, सूरज, तारे, चांद, ॐ आदि को चित्रित किया जाता है।

अहोई माता को गहने भी पहनाये जाते हैं तथा उनकी आकृति के चारों ओर बहुत सुंदर अलंकरण किया जाता है जो ज्यामितीय व सरल होते हैं, तथा कुछ स्थानों पर अहोई माता की आकृति के चारों ओर चूने से स्याऊ के दाने भी बनाए जाते हैं।

अहोई माता की आकृतियां बनाने व सजाने के पश्चात पूजा अर्चना का कार्य प्रारंभ किया जाता है। इसमें आकृति के सामने दो घट रखी जाती हैं, जिन पर स्याऊ की माता लगाते हैं। सबसे ऊपर कटोरी में मीठा पकवान रखा जाता है। इस दिन बहुओं द्वारा बायना निकालकर सास को देने की मान्यता है। इसी आकृति के सामने सांयकाल में स्त्रियां हाथ में दूब व चावल लेकर अहोई माता की कथा सुनती व सुनाती हैं। रात्रि को तारों के निकलने पर पूजन करती हैं, जिसमें एक घट से तारों को अर्क दिया जाता है, व दूसरे घट के जल से धन धनतेरस के दिन बच्चों को स्नान कराया जाता है।

पूजन समाप्त करने के पश्चात ही स्त्रियां अपना व्रत खोलती हैं। अहोई अष्टमी के दिन स्याऊ की माला (चांदी या सोने के टिकड़े के साथ गोल दाने) का विशेष महत्व है। यह माला पुत्र की प्राप्ति पर सास द्वारा बहू को प्रदान की जाती है तथा पुत्रों की संख्या बढ़ाने के साथ-साथ माला में दानों की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है। माताएं अपने पुत्रों की दीर्घायु की मंगल कामना के लिए व्रत करती हैं और इस माल को पहनती हैं। इस लोक कला पर भी आधुनिकता का प्रभाव देखा जा सकता है।

आजकल स्त्रियां अहोई माता की आकृति बनाने के स्थान पर बाजार से लाकर अहोई माता का कैलेंडर लगा देती हैं और कहीं-कहीं हाथ के द्वारा बनाई हुई तस्वीर को भी लगा देती हैं। एक प्रमुख परिवर्तन तो यह देखा गया है की लकड़ी व लड़के को समान मानने के रूप में लड़कियों के लिए भी मातायें यह व्रत भी करने लगी हैं।

➤ गोवर्धन पूजा :-

गोवर्धन पूजा का उत्सव कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाया जाता है। प्राचीन काल से ही गोवर्धन की पूजा का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम श्री कृष्ण ने ब्रजभूमि में प्रचलित इंद्र पूजा का विरोध करके गोवर्धन पूजा का महत्व प्रतिष्ठित किया था। कुछ क्षेत्रों में गोवर्धन पूजा को गोधन पूजा के नाम

से भी जाना जाता है। इसका संबंध गौ से माना गया है। चाहे यह गोबर रूपी धन की महत्वता सिद्ध करने के लिए था या गाय को धन के रूप में मनाने के कारण हो।

प्राचीन काल से भारत में गायों का विशेष महत्व था तथा परिवार और वंश की संपन्नता भी गायों से ही समझी जाती है। गोवर्धन उत्सव का संबंध बाद में गोवर्धन पर्वत से भी जुड़ा। इसका यही कारण रहा होगा कि एक विशिष्ट पर्वत के आसपास गायों का आधिक्य रहा होगा और गोवर्धन उत्सव उस पर्वत के आसपास स्थान पर मनाया जाता रहा होगा। इसलिए बाद में गोवर्धन उत्सव का संबंध उस पर्वत विशेष से जोड़ दिया गया तथा यह पर्वत गोवर्धन पर्वत के नाम से संबोधित किया गया।

गोवर्धन महोत्सव एक अति प्राचीन लोकोत्सव है। इस दिन घर-घर में गायों की पूजा की जाती है। गोबर से बनाई गई गोवर्धन पर्वत की आकृति को पूजा जाता है तथा नाना प्रकार के व्यंजनों से अन्न कुट का आयोजित किया जाता है। इस पूजा के लिए घर के आंगन के बीच में गोबर से गोवर्धन की एक आकृति बनाई जाती है। हरियाणा में गोवर्धन को बड़े हर्ष उल्लास के साथ मनाया जाता है। गोवर्धन की पूजा सभी जातियों में की जाती है, परंतु गोवर्धन की आकृति उन्हीं घरों में बनाई जाती है जिनके घरों में गाय या भैंसें होती हैं।

हरियाणा में गाय व भैंसों की भगवान के रूप में माना जाता है, जिनके घरों में जितनी अधिक गाय व भैंस होती हैं, वह उतना ही संपन्न समझा जाता है। गोवर्धन की विभिन्न आकृतियां इस क्षेत्र में प्रचलित हैं जिनमें आयताकार, वर्गाकार, गोल, व पान के आकार में बनाई जाती हैं। इन आकृतियों को बनाने के लिए दिन भर के ताजा गोबर का प्रयोग किया जाता है।

गोवर्धन की आकृतियां घर के खुले आंगन में दोपहर को बनाई जाती हैं। ये आकृतियां घर की स्त्रियां या कन्याएं बनाती हैं। इन आकृतियों को गोबर से बनाने के पश्चात रूई, आटे, व हल्दी से सजाया जाता है। गोवर्धन बनाने के लिए सर्वप्रथम गोबर से उसकी आकृति बना ली जाती है। ऊपर सिर दाएं व बाएं और हाथ तथा नीचे पैर बनाए जाते हैं। फिर आकृति में चारों ओर उपले रखे जाते हैं। इनमें से एक सिर बनाया जाता है तथा दाएं व बाएं छः छः उपले रखे जाते हैं, परंतु जब इन्हें गिनते हैं तो दोनों ओर से सात-सात गिना जाता है, जिसमें प्रत्येक बार सिर को भी गिना जाता है। परंतु कुछ लोगों के यहां 5, 6 से लेकर 19 तक उपलों की संख्या देखी गई है।

गोवर्धन की आकृति के बीच में अन्य कृतियों का चित्रण भी किया जाता है, इनमें श्री कृष्णा, दूध बिलौती, स्त्री, खाना बनाती हुई स्त्री, उपले बनाती स्त्री दूध की हांडी आदि बनाते हैं। पैरों की तरफ के दोनों उपलों पर एक हांडी पर कपड़ा लपेटकर लगाते हैं, जिसे हाली (हल चलाने वाला) व वाल्दी (पशु चराने वाला) कहते हैं। इन उपलों के अंदर अलंकरण स्वरूप रूई, सरकंडे तथा सिर को नौरतो से सजाया जाता है। गोवर्धन की आकृति बनाने के पश्चात पूजा करते समय जो सामान रखा जाता है

उसमें लोहे की जंजीर, गान्ना, चाबी, पैन, चाकू, डंडा, दराती, दूध, दूध बिलोने वाली रई आदि रखते हैं। उन पर कलावा बांधते हैं तथा इस प्रकार गोवर्धन का पर्व मनाया जाता है।

➤ देव उठनी एकादशी :-

कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष एकादशी को देव उठनी एकादशी त्यौहार मनाया जाता है। हरियाणा का यह प्रसिद्ध लोक पर्व है। हरियाणा का यह मानना है की वर्षा ऋतु के चतुर्मास में सोये हुए देवगण इस दिन से जागृत हो जाते हैं। इसलिए विवाह आदि मांगलिक कार्य जो पिछले चार माह से बंद थे, वे प्रबोधिनी एकादशी के दिन देवताओं के उठने के पश्चात पुन प्रारंभ कर दिए जाते हैं। इस दिन को देवउठनी एकादशी भी कहते हैं।

हरियाणा में लोकजीवन में यह भी प्रचलित है कि यह अपने साथ सारे त्योहारों को ले जाती है। इस दिन लोकजीवन में घरों को लिप-पोतकर उन्हें खड़िया, गेरू और मिट्टी से चित्रित करते हैं। घर के आंगन और फर्श पर खड़िया व गेरू से चौकों का चित्रण किया जाता है। यह लोकोत्सव लोक चित्रकला का प्रदर्शन करते हैं। इस लोक उत्सव को मनाते समय सांयकाल में जमीन को गोबर से लीपते हैं। गोबर के लेप के सूखने के पश्चात चावल को भिगोकर, पीसकर, घोलकर जमीन पर चित्र अंकित किए जाते हैं। इन चित्रों की आकृतियां कहीं गोल व कहीं कहीं पर चौकोर बनाई जाती हैं। संध्या काल के समय इस आकृति के बीच में सिंघाड़े, गेहूं, खील व शकरकन्द रखे जाते हैं तथा उन्हें थाली से ढक दिया जाता है। तत्पश्चात पूजा की जाती है और घर परिवार में सुख शांति व स्मृति की कामना की जाती है।

पूजन के पश्चात थाली को उठाकर हाथ से थाली को बजाया जाता है। थाली को बजाने के साथ ही इस क्षेत्र में कुछ लोकगीत भी इस अवसर पर गाए जाते हैं और परिवार के हर एक सदस्य का नाम लिया जाता है जैसे –

उठ नारायण बैठ नारायण, चल चने के खेत नारायण ।।

मैं बोऊँ, तू सींच नारायण, मैं जोतू, तू काट नारायण ।।

तू पिछोड़ें, मैं नैलू नारायण, मैं नैलू, तू बांट नारायण ।।

मैं बांटू तू डोहू नारायण ।।

अतः इस प्रकार लोकगीत गाए जाते हैं। जो आकृति बनाते हैं, उसे चावल में दूध व चीनी मिलाकर भोग लगाया जाता है। इस दिन दरवाजों की दहलीज पर भी चावल के घोल से ज्यामितीय व पारंपरिक अलंकरण के द्वारा घर को सजाया जाता है ।

तृतीया अध्याय

- लोक जीवन में लोक कला का योगदान

लोक जीवन में लोक कला का योगदान

लोक जीवन में लोक कला का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण बताया गया है क्योंकि यह न केवल कला को समृद्ध करती है, बल्कि समाज की संस्कृति, परंपरा और जीवन शैली को भी दर्शाती है और लोक कला तो किसी क्षेत्र, या समुदाय की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक भी होती है। यह कला तो समाज में भी विभिन्न मुद्दों, मान्यताओं और मूल्यों को भी दर्शाती है। लोक कला विभिन्न शैलियों और तकनीकों का एक अनूठा मिश्रण है, जो कला को अधिक समृद्ध बनाती है।

लोक कला जो लोग जुड़े हुए हैं, उन्हें आर्थिक लाभ भी होता है, क्योंकि यह कला अब और विदेश में भी लोकप्रिय हो रही है। लोक कला को तो कला की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी माना जाता है, क्योंकि यह कला को जनसाधारण से भी जोड़ती है। हरियाणा की लोक कलाएं तो ग्रामीण और आदिवासी समुदायों जिनकी कला और संस्कृति की एक लंबी और समृद्ध परंपरा रही है। इनकी विशेषताओं में प्राकृतिक रंगों, सरल रूपों, ज्यामितीय पैटर्न के उपयोग के साथ पौराणिक कथाओं, धर्म और प्रकृति से प्रेरित होना शामिल है। कई लोग तो धार्मिक और पौराणिक विषयों से गहराई से प्रेरित हैं, जो विभिन्न समुदायों की आध्यात्मिक मान्यताओं को दर्शाते हैं।

कुछ चित्रकला तो प्रकृति की सुंदरता और रोजमर्रा की जिंदगी की सादगी को दर्शाती है। लोक चित्रकला को अपने जीवंत रंग योजनाओं के लिए भी जाना जाता है, जिसमें कलाकार स्थानीय स्रोतों से प्राप्त प्राकृतिक रंगों का उपयोग करते हैं। अक्सर इसमें पूरा समुदाय शामिल होता है। यह कला समुदाय और सांझा सांस्कृतिक पहचान की भावना को बढ़ावा देती है। लोक कहानी प्रदर्शित करने हेतु एक दृश्य माध्यम के रूप में कार्य करती है। प्रतीकों, रूपांकनों और रचनाओं के माध्यम से कलाकार नैतिक, सामाजिक या सांस्कृतिक संदेश देते हैं। कला भी मनुष्य की सुंदरता के प्रति भावनाओं की सूचक होती है और यह मनुष्य की संस्कृति की ही उपज है।

भारत एक प्राचीन देश है जहां कला एवं संस्कृति में अनूठा समन्वय दिखाई देता है। संस्कृति और रचनात्मक दोनों ही समाज और संस्कृति के सभी पहलुओं को प्रभावित करती है। भारतीय कलाओं के विभिन्न रूपों का एक लंबा इतिहास है, जो हजारों पीढ़ियों से चली आ रही है। यह शोध पत्र भारत की विभिन्न कलाओं की एक झलक है। भारत के पास एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है जो इसकी कला और शिल्प के माध्यम से प्रकट होती है। भारत में प्रत्येक क्षेत्र की एक विशिष्ट कला है। भारत के कई कला रूपों को विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त हुई है और कला प्रेमिकाओं ने प्रशंसा की है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के तरीके और साधन खोजे हैं और अपने परिवेश, प्रकृति, वनस्पति और जीवों को भी सरहाया है, और विभिन्न कला रूपों को सम्मान

दिया है। किसी ने ठीक ही कहा है कि – “सुंदर शरीर नष्ट हो जाता है, लेकिन कला कभी नहीं मरती”।

कला वास्तव में एक सार्वदेशिक भाषा है, यह अभिव्यक्ति का वह रूप है जिसके लिए बोलने की जरूरत नहीं होती। भारत शुरू से ही एक कला का एक संरक्षक रहा है। भारतीय कलाकार अपनी विशिष्ट और रचनात्मक कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध है। भले ही कला के मामले में दुनिया आगे बढ़ गई है, लेकिन भारतीय लोक शैली अभी भी भारत में प्रचलित है। भले ही फूल की कलियों की तरह ये खिलने वाली ये कलाएं व्यापक रूप से विदित नहीं हैं, लेकिन यह आंखों को शांति और सुख पहुंचाती हैं।

आधुनिक भारतीय लोक वर्तमान की वह विद्या है, जिसमें प्राचीन परंपरा का विरोध और नवीनता का आकर्षण पाया जाता है, क्योंकि हमें नवीनता की ओर जाते हुए भी हमें अपनी संस्कृति की जड़ों से एकदम अलग न होकर, अपनी इस धरोहर से भी बहुत कुछ सीखना आवश्यक है। श्यामचरण दुबे जी जैसे विद्वान संस्कृति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखते हुए कहते हैं कि – भारत को, भारत के रूप में रखने के लिए यह जरूरी है कि हम अपनी सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करें। लोक संस्कृतियों को प्रदर्शन की वस्तु हमें नहीं समझना चाहिए और अपने नजरिए में बदलाव लाने की कोशिश करें।

संस्कृति के बारे में जब हम भी सोचें, तो यह जरूर सोचें कि संस्कृति जड़ नहीं है, गतिहीन नहीं है, अपरिवर्तनशील नहीं है। यदि हमें कल से आज और आज से कल की ओर जाना है तो हम अपनी सांस्कृतिक विरासत से बहुत कुछ लेंगे। यही बात लोकचित्रों अभिप्रायों पर भी लागू होती है। कला में नवीनता लाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम अपनी लोक कलाओं से दूर हो जायें, वे लोग कलाएं जिनकी जड़े प्रागैतिहासिक काल तक पहुंची हुई हैं। हमें इन लोक कलाओं का सम्मान करते हुए इनमें व्याप्त भिन्न अभिप्रायों को ग्रहण कर आधुनिक कला की ओर बढ़ना चाहिए।

भारत में कलाओं की सदियों पुरानी परंपरा है। अनेक रूपों में कला ने इस धरती पर अपनी छाप छोड़ी और निरंतरता में वह सदैव जन-जन को तृप्त करती रही है। कला की इस दीर्घ परंपरा में हमारा आज का समय भी शामिल है, जिसमें एक क्षण के लिए यह आशंका भी निहित है कि कहीं उसके स्वरूप के जीवन शक्ति की क्षति तो नहीं हो रही। युग के प्रत्येक चरण में परिवर्तन आता है और अपने साथ सांस्कृतिक प्रक्रियाएं भी लाता है। देखने भर से बहुत बार कला इन परिवर्तनों से बदलती हुई दिखाई दे सकती है, पर आश्चर्य की बात तो यह है कि वह अपनी मूल चेतना में वही रहती है जो उसकी प्रकृति होती है।

आधुनिक भारतीय चित्रकला का भविष्य अंधकारपूर्ण मान अनेकों आधुनिक चित्रकारों ने भारतीय चित्रकला के मूल रूप की और पुनः लौटने का प्रयास किया। आधुनिक भारतीय चित्रकला में कलाओं लोक कलाओं की प्रेरणाओं का शुभारंभ करने का श्रेय यामिनी रंजन राय को है।

यामिनी राय ने लोक कलाओं को आधार बनाकर भारतीय कलाओं को नवीन जीवन प्रदान किया। लोक कलाओं से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए उन्होंने अनेक गांव का भ्रमण किया और वहां के लोक कलाकारों द्वारा निर्मित विभिन्न रूपकारों को देखने व समझने के पश्चात रेखांकित किया। उन्होंने महसूस किया कि इन परंपरागत ग्रामीण कलाकारों ने अनायास ही रंगों, आकारों तथा छन्द के रहस्य को पा लिया है। इसी से प्रभावित हो यामिनी राय ने अपने चित्रों में लोक कला के अभिप्रायों तथा प्रतीकों को नवीन सुव्यवस्था में संसोया, अनेक प्रयोग किया और निरंतर साधना करते हुए वे इस कला को आधुनिक कला समीक्षकों की दृष्टि में महत्वपूर्ण सिद्ध करने में सफल हुए हैं। सर्वप्रथम उन्हीं के द्वारा किए गए परंपरागत भारतीय लोक कलाओं में प्रयोग के फलस्वरूप अनेक युवा कलाकार इस भारतीय धारा की ओर मुड़े।

मैंने भारतीय संस्कृति के प्राचीन मनोरंजक रूपों का पता लगाने का प्रयास किया है। ये पारंपरिक कला रूप भारतीय संस्कृति में गहराई से निहित है और इनमें संगीत, नृत्य, कठपुतली और कहानी कहने जैसे विभिन्न अभिव्यक्तियाँ शामिल हैं।

कला के विभिन्न रूप लोकजीवन और संस्कृति के पहलू को दर्शाते हैं, जिसमें लोक कला इस समृद्ध संस्कृतिक ताने-बाने का प्रतीक है। लोक जीवन में गीत, संगीत, नृत्य, मंच प्रदर्शन, लोक परंपराएं, प्रदर्शन कलाएं, अनुष्ठान और समारोहों का सबसे बड़ा संग्रह है। भारतीय लोक कलाएं जो मधुबनी, बिहार, वारली, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश जैसे अधिक क्षेत्रों में विकसित हुई हैं, देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक हैं। ये लोककलाएं सदियों से सामंजस्यपूर्ण रूप से सह-अस्तित्व में हैं जो भारतीय संस्कृति के भीतर सामाजिक विकास के विशेष पहलुओं को सामने लाती हैं, भारत में स्थानीय जीवन और परंपराओं को रेखांकित करते हैं। इसके अलावा शैक्षिक क्षेत्र में लोक कलाओं की संभावना भी महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति के संवर्धन में उनके योगदान को स्वीकार करते हुए लोक कलाओं के संरक्षण और संवर्धन के महत्व पर बल दिया है।

हालांकि, मैं, हरियाणा में जन्मी और ग्रामीण परिवेश में पली-बढ़ी जिससे बचपन से लेकर अब तक के सफर में धार्मिक पूजा पाठ में हवन कुंड की अलंकृत वेदी व आटे की बनी अल्पना (चौक पूरना) से स्वतः ही संबंध गहरा था। उस वक्त लोक कलाओं से अनभिज्ञ होते हुए भी शादी विवाह में बनने वाले कोहबर, दीवार पर बनने वाले हाथ के छापे जैसी कलात्मक गतिविधियों में मेरी सक्रिय भागीदारी रही। मुख्यतः यह कार्य घर की बड़ी महिलाओं के हुआ करते थे, फिर भी मेरी स्वाभाविक ललक व

जन्मजात से कला के बीज (जो मेरे अंदर उस परमात्मा ने बोए थे) समय के साथ उन्मेषित होने लगे थे। हरियाणा प्रदेश की परंपराओं में चौक पूरना, अहोई, सांझी व दिवाली बहुत प्रिय लोक कलाएं रही हैं।

कला चाहे आदिकाल की हो, या आधुनिक वह सदैव मानव जीवन को ऊपर उठाती है। लोक कलाओं की अगर बात की जाए तो ये कुछ सभ्यता प्रागैतिहासिक कला से रखती हैं। सामान्य अर्थों में किसी विशिष्ट क्षेत्र के लोगों से जुड़ी हुई कला ही लोक कला कहलाती हैं। लोक कलाओं में समाहित बिम्म, अभिप्राय तथा आम लोगों की निजी अभिव्यक्ति होती है, जो उनके सादे, सरल एवं सादगी भरे जीवन को प्रतिबिंब करती हैं। आडंबर, उलझन, तनाव और औपचारिकता से सर्वथा दूर जो हमारी आज की सभ्यता को बुरी तरह ग्रसित किए हुए हैं। लोगों के अन्तः मन से अंकुरित हुई कला उनकी जीवन शैली, उनके विश्वास, उनके अनुष्ठान, उनकी विशिष्ट संस्कृति के प्रमाण चिन्ह हैं।

लोक कलाएं कभी भी तकनीक, वाद या कला के रूप की मुश्किलों में नहीं फंसी। यहां तक कि लोक कलाएं प्रेरणा स्रोत बनकर एक मार्गदर्शक की भूमिका निभा रही है। यह कहना गलत न होगा कि लोक कलाओं से आधुनिक कलाएं प्रेरणा लेती रही हैं और आज उसी प्रेरणाओं से सफलता हासिल कर नए मुकाम तक जा पहुंची है।

लोक कलाएं बुद्धिवादी नहीं, बल्कि स्वाभाविक हैं और सीधे हृदय को आकर्षित करती हैं। कलाकार अपने मानस पटल में लोक कलाओं को जन्म नहीं देता, अपितु हृदय में उसका सृजन करता है। उसका सारा सृजन जैसे प्रकृति द्वारा अपनाया गया हो। वह अपने भावों को सरल और सुगमता से रेखाओं द्वारा उकेरता है, लोक कलाकारों की स्वाभानुभूति, चिंतन एवं सरल अभिव्यक्ति ने उनकी कला को पूर्ण पवित्र और विशुद्ध रूप प्रदान किया है।

कलाओं के विकास का पहला चरण लोक भावना और सामुदायिक चेतना से अनुप्राणित रहा। कला सृजन और उपयोग दोनों में सामुदायिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता था, समूह में निवास करते थे, समूह में मिलजुल कर नाचते गाते थे, उत्सव मनाते थे। भित्ति चित्र व साधारण आकृतियां समुदाय का कोई भी व्यक्ति प्रायः सामान्य योग्यता से बना लेता था। ये अपने रोजमर्रा की जिंदगी में उपयोग आने वाली वस्तुओं को भी कलात्मक ढंग से सजाया – संवारा करते थे। समुदाय में कोई विशिष्ट व्यक्ति कलाकार नहीं होता था, तनिक भी अंतर न था कि कौन सा व्यक्ति नर्तक है, कौन सा दर्शक है, और कौन श्रोता, अक्सर भूमिकाएं मिली जुली होती थीं एक ही व्यक्ति कभी गायक या नर्तक होता था, तो कभी वह दर्शक बन जाता था। अंतर था तो उनके व्यक्तिगत विशिष्ट क्षमताओं का जिसके हिसाब से वह कभी नर्तक, सर्जक, गायक हुआ करते थे।

अभी इन क्षेत्रों में विशेषज्ञता का आविष्कार नहीं हुआ था। विभिन्न कला रूपों के संबंध में प्रत्येक व्यक्ति को जानकारी होती थी और वह थोड़े बहुत अंतर से उनमें सहयोगी बन सकते थे। सामाजिक संरचना में जटिलता आने के बाद कलाओं में भी विशेषीकरण आरंभ हुआ, किंतु लंबे समय तक उनमें सामूहिकता के तत्व बने रहे और थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आज भी बने हुए हैं।

मानव की आत्मिक अभिव्यक्ति का सहज व सरल रूप होने के कारण लोक कला संस्कृति को लोकप्रिय संस्कृति कहना गलत न होगा, क्योंकि यह संस्कृति वह सभ्यता को समेटे हुए उसके विहंगम वातावरण की प्रस्तुति करती है। आदिम युग से लेकर आधुनिक युग तक सभ्यता ने जो भी मोड़ लिए हैं लोकसंस्कृति अपने स्वाभाविक प्रवाह में उनके इतिहास को समेटे हुए चली। प्रत्येक युग, काल में मानव किसी विशेष क्षेत्र में निवास करता था और जो भी कलात्मक गतिविधियों करता था, वह उस क्षेत्र की कला संस्कृति के रूप में जानी जाने लगी, जिसका प्रचलित नाम लोक कला है और हरियाणा के ग्रामीण इलाकों में मिट्टी की दीवारों पर उत्कीर्ण, सांझी, अहोई, दिवाली संबंधित प्रचलित है। लोक कलाओं में निहित सच्ची अभिव्यक्ति, सरल रेखा, प्राकृतिक रंग कला की सहजता की वकालत करते हैं। विषय के संदर्भ में बात करें तो पशु पक्षियों तथा मानव जीवन के विविध पक्षों का अंकन बड़ी सहजता से हुआ है और जिंदगी जीने का सही अर्थ बतलाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संपूर्ण ग्रामीण भारत में सृजनात्मक प्रवृत्ति का जोश के साथ पुनः प्रचलन बढ़ा। कला की दुनिया में एक हलचल हुई, भारतीय जीवन मूल्यों का संस्कृति का गुणगान परिचय में शुरू हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय कलाकारों में अपनी परंपरा, अपने प्रवेश के लोगों से जुड़ी कलाओं से प्रेरणा लेने का उत्साह बढ़ा। लोक कलाएं भारत की विशिष्ट परंपराओं का वृहद संसार है और जीवन में भी उतना ही महत्व है, और जो अपनी शैलीगत विभिन्नता, रूप सैण्ठव, सृजनात्मक और निजता लिए हुए अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं। लोक कला में विषय वस्तु, धार्मिक उत्सवों, पर्वों, संस्कारों व लोकानुरंजनों से जुड़ी होती है। लोक कलाकार जो कुछ भी परिवेश में घटित होते देखा है चाहे संस्कृतिक या सामाजिक, सबका स्फूर्ति के साथ अंकन करता है। इनकी कलाओं में उपयोगिता तथा सौंदर्य के तत्व शामिल होते हैं। कला इनकी आत्मा में रची बसी होती है, उन्हें कृतियों के निर्माण में अभ्यास की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रहती। ये कला जीते ही नहीं अपितु पूजते भी हैं।

जनजाति कलाएं एवं केवल धरोहर ही नहीं अपितु भारतवर्ष की समृद्ध परंपरा, संपन्न सभ्यता एवं लोक जीवन की कहानी है। ये कलाएं असल में किसी भी समाज के जनमानस का आईना होती हैं। सदियों से हाथों से रचित होती हुई एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तांतरित होती रही हैं परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समय बदला तो नए मुहावरे आए। नई परिभाषाओं का दौर आया, नए परिवेश में

कलाओं का दाखिला हुआ, जिससे कला की जातीय चेतना के स्तर में बदलाव आया। देश के आजाद होने के बाद लोक कलाओं ने कुछ तरक्की अवश्य की परंतु बहुत कुछ दांव पर लग जाने के बाद। चाहे वह उत्तर प्रदेश की सांझी या हरियाणा की अहोई अष्टमी, दीपावली, इन 50 वर्षों में उनकी आत्मा पर कृत्रिमता का प्रहार हुआ है। इस प्रहार ने कुछ कलाओं को अच्छी खासी ख्याति दिलाई, लेकिन कुछ लोक कला बहुत पीछे छूट गई। कहीं कलाएं तो लुप्त हो गई।

समकालीन भारतीय कलाकारों की लोक कला तथा संस्कृत में बढ़ती दिलचस्पी का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि काफी हद तक यह प्रवृत्ति राष्ट्रवादी रुझान के कारण देशज स्रोतों की तरफ लौटना भी है। भारतवर्ष हमेशा से सामाजिक, नैतिक व कलात्मक परंपराओं का परिरक्षक रहा है। भारतीय संस्कृति की जो अपनी विशिष्टता रही है उसका प्रमाणचिन्ह एवं प्रेरक लोक कलाएं रही हैं जो आध्यात्मिकता, एकता तथा निरंतरता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

आज लगभग हर एक क्षेत्र में कला का प्रभाव दिखता है। चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो या साहित्य। वर्तमान परिदृश्य में कला सूक्ष्म मानवीय व्यापार बन गई है जो मनुष्य को उनके मानस सहित बदलती है। अतः यह क्रिया है जो धीरे-धीरे अपना प्रभाव बढ़ाती है। यह प्रभाव लोक कलाओं पर भी दिखाई दिखाई पड़ रहा है जो लोक कलाओं में बढ़ती व्यवसायिकता की ओर संकेत करता है। समकालीन कला जगत के अधिकांश कलाकार लोक कलाओं से प्रेरणा लेकर सृजनरत है। सही अर्थों में लोक कलाओं को आधार बनाकर अपनी अभिव्यक्ति कर रहे हैं, नहीं मालूम की लोक कलाओं को अचानक इतनी इज्जत देने के पीछे की मंशा क्या है। दरअसल इसलिए मैं ऐसा कह रही हूँ, क्योंकि काफी लंबे अर्से के बाद लोक कलाओं से समकालीन कलाकारों का सरोकार बढ़ रहा है, वो भी देखा – देखी।

भूमण्डलीकरण के जनघोष ने कलाकारों की सृजनात्मक दृष्टि, निजी अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति को अवरुद्ध कर दिया है। बड़े शहरों में रोजगार के अवसर एवं आधुनिकता के ललक में लोक कलाकारों को अपने ग्रामीण परिवेश से दूर महानगरों की ओर खींचा है जिससे यह सबसे ज्यादा प्रभावित हुई है। लोककलाओं के मूलस्वरूप में निरूपण कर लोक कला की मौलिकता के स्थान पर प्रचलन को महत्व मिल रहा है। व्यवसायिकता की चकाचौंध ने रातों-रात लोकप्रियता की आपाधापी पैदा की है, जिससे लोककला की जीवंतता, सृजनशीलता एवं स्वाभाविकता का हास हो रहा है। उदाहरण स्वरूप हम मधुबनी लोक चित्रकला और संधाल परगना की भित्ति चित्रकला को देखें तो इन दोनों कलाओं को बचाने के लिए बचाने के लिए काफी प्रयत्न किए गए। कुछ एक कलाकारों ने विश्व ख्याति प्राप्त की।

लेकिन इस ख्याति ने दोनों कलाओं को परंपरा से जुदा कर दिया। मधुबनी चित्रकला जो शुरू में अपनी सहजता और नैसर्गिकता के लिए जानी जाती थी, धीरे-धीरे दूरुहता और कृत्रिमता का आभार देने लगी। कला महिलाओं के आय का स्रोत तो अवश्य बनी लेकिन जहां पहले प्राकृतिक रंगों एवं बांस

की करची और कपड़े का प्रयोग होता था। वहां अब नये रासायनिक रंग, कागज पर चित्रित होने के कारण उनकी स्वाभाविकता नष्ट हो गई, साथ ही कला संसाधनों में भी बदलाव हुआ। हल्दी, गोमूत्र व गोबर की जगह रासायनिक रंग आ गये।

उत्तर प्रदेश में मथुरा और वृंदावन के मंदिरों तथा आसपास के घरों में सांझी चित्रांकन के लिए अब मिट्टी की ऊंची वेदी प्रायः निर्मित नहीं होती। अब यहां समतल पर ही स्टेंशिल या मुक्त हस्त से बुरादों से चित्रांकन किए जाते हैं। कंप्यूटर की सहायता से बनाए गए स्टेंशिल का उपयोग भी किया जा रहा है। बाजार की जरूरतों के चलते श्रमसाध्य कार्य में कमी आई है। अगर इस बात पर गौर करें कि लोक कलाओं में कृत्रिमता आने के पीछे उत्तरदाई कौन है, तो बाजार सर्वप्रथम तत्पश्चात सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीक बदलाव।

प्रत्येक वर्ष कला जगत में अनगिनत लेख कला पत्रिकाओं में छपते हैं। उनमें इक्कर-दुक्का ही लोक कलाओं के बाजारी हस्तक्षेप पर केंद्रित होते हैं। आखिर कलाओं की उन्नति की बात करें ही कौन, जो उसके संरक्षक हैं, वही उसके भक्षक भी। रही बात कला गैलरीयों व संग्रहालयों की तो उनकी आमदनी का प्रमुख स्रोत आज कलाएं ही बनी हुई है। मेरा ये कहना नहीं कि कलाओं का सरोकार आमजन या अंतरराष्ट्रीय स्तर तक न हो, मेरा इशारा सिर्फ और सिर्फ कलाओं को उपभोग्य बनने से सचेत करना है क्योंकि आज स्थिति ऐसी बन गई है कि लोककला की धरा पर बाजार रूपी, धारा प्रवाहित होने से लोक कलाओं में जीवन के प्रति जो रागात्मकता थी। वह निरंतर घटती प्रतीत हो रही है।

अगर 1980 के दशक की बात करें, तो यह वह दौर था, जब लोककला भारतीय कलाकारों के आकर्षण का केंद्र बनी क्योंकि भारतीयता को अपनी कृतियों में समाहित करना था, भारतीय कला संस्कृति की निजता व अस्मिता को जीवित रखना था। वस्तुतः कलाकृतियों में लोककला के तत्वों का समावेश तथा समकालीन कला शैलियों में लोक जनजातीय और पूजा के अभिप्राय को शामिल करना एक फैशन बनने लगा और वह प्रवृत्ति इस हद तक जोर पकड़ी कि कब लोक कला व्यवसायिकता के प्रांगण में आकर खड़ी हो गई पता ही नहीं चला। इस तेजी से बदलते समय में उपभोक्तावाद में तब्दील होती लोक संस्कृति की शुद्धता की पहचान दुश्कर हो गई है।

लोक कलाओं की लोकप्रियता इस कदर रही कि सभी तरह और सभी युगों की लोक कलाओं को प्रशंसा मिली, बिना किसी बात की परवाह किए कि सृजनकर्ता किस बौद्धिक मंशा से निरूपित कर रहा है और आखिर उनका प्रयोजन क्या है। समकालीन भारतीय कलाकार अपनी लोक कलाओं का महत्व अच्छी तरह समझता है, फिर भी आज ज्यादातर ऐसी कलाकृतियां निर्माण कर रहा है जो पूरी तरह सर्जनात्मक या मौलिक नहीं कहीं जा सकती। ऐसी पुक्तियां मौलिकता का ढोंग कही जाएगी

क्योंकि किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के लिए ऐसी कृतियां बहुत बड़ी निराशा के सिवा कुछ नहीं। इस व्यवसायिकता के चलते सिर्फ प्रदर्शनधर्मिता बढ़ रही है।

आज लोक कलाकार बदलते कला प्रवेश के अनुरूप नए माध्यम, रंगो, अकारों में बदलाव कर रहा है। उसे डर है कि नए परिवर्तन के प्रति अगर वह सजग न हुआ तो कहीं पीछे न छूट जाए। सर्वविदित है, जीवित वही है जो गतिमान है। लोक कलाकारों ने समय के साथ तालमेल स्थापित करने के हेर-फेर में अपनी लोकप्रिय संस्कृति की निजी अस्मिता को ही दांव पर लगा दिया।

आज कलाकारों द्वारा लोक रूपों को अपनी कलाकृतियों में समाहित करने या अपनाने के पीछे ऐसी कोई भावना नहीं है कि खुद को कलाकार उन सृजनकर्ताओं के परिवेश से जुड़ा पाते हैं, बल्कि आज व्यवसायिकता के चलते उसकी बढ़ती प्रासंगिकता ने इसे बढ़ावा दिया है।

वर्तमान समय में लोक कला संस्कृति की कला दीर्घाओं में अठखेलियाँ करते हुई नजर आ रही है। यह सर्वविदित है कि — हर तरह के समाज में धार्मिक, सामन्ती, समाजवादी कलाकार को संरक्षण की जरूरत रही है। कलाओं के संरक्षण परंपरा का स्थान प्रतिस्पर्धी मांगने ले लिया है और इसके चलते प्राइवेट गैलरियों की भरमार दिखाई दे रही है। भले ही कला से उनका सरोकार न हो या वो इन कलाओं से जुड़ाव भी न महसूस करते हो, फिर भी कला में बने हुए हैं। ये एक तरफ कला के संरक्षक होने का दिखावा करते हैं, तो दूसरी तरफ खरीद — फरोख्त को बढ़ावा देते हैं। अब ऐसी स्थिति आ गई है कि बाजारी जकड़ के चलते कला के मूलभूत तत्वों के लिए न तो कलाकार का आग्रह दिखाई देता है और न संरक्षक का।

हालांकि इस बात से मैं इनकार नहीं कर रही कि बड़ी हुई इन्हीं कल गैलरियों से आज लोक व जनजाति कलाओं के विकास में योगदान मिल रहा है, अंतरराष्ट्रीय आयाम तक पहुंच गई है। इन कलाओं के लिए कई सकारात्मक कदम उठाए गए हैं। गुमनामी में जी रहे कई जनजाति, लोक कलाकारों ने ख्याति पाई, वाजिब सम्मान पाया। पर वह कहते हैं न कि खोने का दुख पाने की खुशी से ज्यादा होता है। साथ ही जिंदगी भर का मलाल रहता है और जब वर्षों पुरानी बात किसी राष्ट्र की कहानी कहती कलाओं की हो तब बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

हाल ही के कुछ वर्षों में सरकारी और गैर सरकारी कला संस्थाओं द्वारा इन कलाओं के संरक्षण और संवर्धन के उपाय किए जा रहे हैं, जिससे जनजाति एवं लोक कलाओं के पारंपरिक स्कूल और व्याकरण लड़खड़ाये हैं। कला दर्घाओं द्वारा आज आयोजित किये जा रहे लोक कला संबंधी कला विमर्श का चिंतन से कम और व्यवसायिकता से अधिक गहरा नाता होता है। कला संरक्षण के नाम पर किए जा रहे लोक कला संबंधी कला विमर्श का चिंतन से कम और व्यवसायिकता से अधिक गहरा नाता होता है। कला संरक्षण के नाम पर किए जा रहे कर्म इन कलाओं के प्रदूषण का कारण बन रहे हैं।

समकालीन कला जगत में लोक कला को लोकप्रिय कला का टैग मिल गया है। लोकप्रिय कला का संबंध यहां शहरी भीड़ तथा आचरण वाले अर्धशिक्षित समुदाय की मांगों पर गाढ़ी गई कला से है, जिन्हें अर्थकलात्मक उत्पादन समझना चाहिए। “लोक कला में उत्पादक और उपभोक्ता मुश्किल से अलगाए जा सकते हैं, और उनके बीच सीमा रेखा हमेशा तरल रहती है”।

लोकप्रिय कला के मामले में इसके बरखिलाफ हम कलात्मक सृजन शक्ति से हीन पूर्णतः निष्क्रिय जन समुदाय को देखते हैं, जिसकी मांग को पूरा करने के लिए कलात्मक सामग्री का व्यावसायिक उत्पादन होता है। लोक कला की धारा पर बाजार की धारा का प्रवाह तेज होने से सब कुछ (सभ्यता, संस्कृति, परंपरा) बह जाने का खतरा है। लोक कलाकार की स्वतंत्रता एवं उसकी वैयक्तिक अभिव्यक्ति बाजार के अनुरूप चलने को बाध्य होती जा रही है, क्योंकि अगर वो बाजार के अनुरूप नहीं ढलेंगे तो वो ही ढल जाएंगे।

लोककला में अक्सर, लोकजीवन, पौराणिक कथाओं, आध्यात्मिकता एवं प्राकृतिक वातावरण के तत्व शामिल होते हैं। यह एक विशेष समुदाय की सामूहिक रचनात्मकता और विरासत का प्रतिबिंब है। लोक कला के उदाहरण में मधुबनी पेंटिंग, रंगोली आदि शामिल हैं। इस प्रकार लोक जीवन में लोक कला का योगदान बढ़ ही रहा है जो की देखने को मिलता भी है।

लोक जीवन में लोक कला का योगदान बहुआयामी भी बताया गया है और यह सिर्फ सजावट या मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि समुदाय की पहचान, इतिहास और ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। इसके कुछ प्रमुख पहलू इस प्रकार हैं :-

➔ सांस्कृतिक पहचान और विरासत का संरक्षण :-

- लोक कलाएं किसी क्षेत्र की अनूठी परंपराओं, रीति रिवाजों और जीवन शैली को दर्शाती हैं।
- यह समुदाय के सामूहिक समृद्धि और इतिहास को जीवंत रखती हैं, जिससे लोगों को अपनी जड़ों से जुड़े रहने की भावना मिलती है।
- विभिन्न लोक कला रूपों जैसे की लोक, संगीत, नृत्य, चित्रकला और शिल्प के माध्यम से सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और अगली पीढ़ी तक पहुंचाया जाता है।

➔ सामाजिक और सामुदायिक बंधन :-

- कई लोक कलाएं सामुदायिक भागीदारी और सहयोग पर आधारित होती हैं। त्योहारों, मेलों और अन्य सामाजिक आयोजनों में इनका प्रदर्शन लोगों को एक साथ लाता है, जिससे सामाजिक सौहार्द और एकता बढ़ती है।
- यह सामूहिक अभिव्यक्ति का एक मंच प्रदान करती है, जहां लोग अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को सांझा करते हैं।

➔ ज्ञान और कौशल का हस्तांतरण :-

- पारंपरिक लोक कलाएं अक्सर पीढ़ी दर पीढ़ी सीखी और सिखाई जाती हैं। यह न केवल कलात्मक कौशल को बनाए रखती हैं बल्कि पारंपरिक ज्ञान सामग्री के उपयोग और तकनीक को भी जीवित रखती हैं।
- यह अनौपचारिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण रूप है जो युवाओं को अपने समुदाय की सांस्कृतिक विरासत और व्यावहारिक कौशल से परिचित कराता है।

➔ मनोरंजन और भावनात्मक अभिव्यक्ति :-

- लोक कलाएं लोगों के लिए मनोरंजन का एक सहज और सुलभ साधन है। लोक संगीत और नृत्य उदासी और खुशी के पलों में लोगों के साथ होते हैं।
- यह भावनाओं को व्यक्त करने और सांझा करने का एक शक्तिशाली माध्यम है जो व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण में योगदान देता है।

➔ आर्थिक महत्व :-

- कई लोक कलाएं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। हस्तशिल्प और लोक कला उत्पादों का निर्माण और बिक्री स्थानीय लोगों के लिए आय का स्रोत प्रदान करती हैं।
- पर्यटन के माध्यम से भी लोक कलाओं को बढ़ावा मिलता है जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को लाभ होता है।

➔ प्रकृति और पर्यावरण से जुड़ाव :-

- अक्सर लोक कलाओं में प्रकृति पशु, पक्षी और स्थानीय पर्यावरण के तहत तत्व प्रमुखता से दर्शाए जाते हैं। यह लोगों को अपने आसपास की दुनिया के प्रति संवेदनशील और जागरूक बनाते हैं।
- कई लोक कलाएं प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग करती हैं, जो टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल होती हैं।

आधुनिक भारतीय चित्रकला वर्तमान की एक विद्या है, जिसमें प्राचीन परंपरा का विरोध और नवीनता का आकर्षण पाया जाता है। किन्तु नवीनता की ओर जाते हुए हमें अपनी संस्कृति की जड़ों तथा इस धरोहर से बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है। यदि हमें कल से आज और आज से कल की ओर जाना है तो हम अपनी सांस्कृतिक विरासत से बहुत कुछ ले सकते हैं। यह बात लोक कला अभिप्रायों पर भी लागू होती है। कला में नवीनता लाने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी लोक कलाओं से जुड़े रहे। हमें इन लोक कलाओं का सम्मान हुए इनमें व्याप्त भिन्न अभिप्राय को ग्रहण कर आधुनिक कला की ओर बढ़ना चाहिए।

भारत के अनेक कलाकारों ने समृद्ध एवं विस्तृत लोक कला परंपराओं से प्रेरणा ली है। लोक कला की परंपरा में रेखा तथा रंग की निरंतरता प्रतिबिंबित होती है, जो भारत की अपनी विशिष्टता है। यह एकता तथा निरंतरता आध्यात्मिक आंतरिक का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय कलाकारों की रुचि ऐसे अनुभव में रहती है जो जीवन तथा आत्मा को जोड़े रहे। शायद इसलिए लोक कला भारतीय कलाकारों के आकर्षण का केंद्र बन गया। अनेक आधुनिक चित्रकारों ने भारतीय चित्रकला के मूल तत्व की ओर पुनः लौटने का प्रयास किया और यह श्रेय यामिनी रंजन राय को जाता है।

यामिनी राय ने लोक कलाओं को आधार बनाकर भारतीय कलाओं को नवीन जीवन प्रदान किया। लोक कला से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए उन्होंने गांवों का भ्रमण किया और निर्मित रूपाकारों को देखा व समझने के पश्चात ही उन्होंने रेखांकन आरंभ किया। लोक कला के अभिप्रायों तथा प्रतिकों का नवीन संयोजन कर अनेक प्रयोग किये। इन्होंने ही सर्वप्रथम परंपरागत भारतीय लोक कलाओं का प्रयोग कर युवा कलाकारों को भारतीय धारा से जोड़ने का प्रयास किया है। उन्होंने ही भारतीय कलाकारों के समक्ष लोक कला को एक सशक्त एवं उपयुक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया।

अपनी परंपरागत लोक कलाओं की समृद्धि का अनुकरण करने में बंगाल के बाद, आंध्र प्रदेश के कलाकारों का नाम आता है। लोक जीवन के प्रिया रंग, सरल रेखांकन तथा सुकोमल भावनाओं का चित्रण भी पी.एल. नरसिंहमूर्ति की विशेषता है।

यद्यपि मकबूल फिदा हुसैन के अनेक चित्रों में लोक कला की सहजता, भावुकता तथा सादगी दिखाई देती है। साथ ही सान्याल आदि अनेक कलाकारों की कृतियों में रेखा की प्रमुखता दिखाई देती है। के.सी. पणिक्कर, जिनकी कला मूलतः अमूर्त है। ये रैखिक डिजाइन से जुड़े हुए थे और अपनी कृतियों के रंग-खंडों में हस्तलिपि, प्रतिकों व ज्यामिति का प्रयोग करते हैं। बद्री नारायण मोटी रेखाओं के प्रयोग के कारण वशिष्ठ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के अनेक आधुनिक कलाकार लोक कला से प्रेरणा लेकर उनका प्रयोग अपने कला में कर रहे हैं। आज लोक कला से प्राप्त अभिप्राय को सांस्कृतिक कला रूपों में समाविष्ट करने का चलन सा हो गया था।

बांस शिल्प अब अत्यधिक प्रचलित व विकसित हो गया है। अपनी परंपरिकता से थोड़ा हटकर बांस कला ने एक नया कीर्तिमान स्थापित कर लिया है। बांस द्वारा उपयोगी एवं प्रदर्शनिय वस्तुओं का निर्माण किया जा रहा है। आज बांस की सीकों से विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुयें निर्मित की जाती हैं जैसे – पेन स्टैंड, पर्स, सामान रखने का स्टैंड, बैग, पंखा, लैंप शैड, मयूर, ट्रे, फूलदान पाइपों आदि सामान की साज-सज्जा में जनजातीय जीवन की झांकियां की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। उपयोगिता के साथ सौंदर्य का ऐसा समन्वय शायद ही किसी अन्य शिल्प में दिखाई देता हो।

गुदना, महिलाओं का प्रमुख श्रृंगार है। आधुनिक समय में गोदने का स्थान टैटू के रूप में प्रचलित हो गया है। समय उत्सव के अनुरूप ही टैटू को बनवाया जाता है। आज टैटू आधुनिकता की पहचान बन गया है। टैटू के ये अभिप्राय गुदना अलंकरणों के समान ही प्रकृति, पक्षी तथा ज्यामितीय रूपकार लिए हुए हैं। आज कल बाजार में तैयार टैटू भी मिलते हैं। महानगरों से अनेक अत्याधुनिक टैटू पार्लर भी खुल गये हैं। जहां फिल्म स्टारों से लेकर आज जनता भी टैटू बनवा सकती है। यह कार्य प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। ग्राहक द्वारा पसंद किए गये डिजाइन की सर्वप्रथम बाहरी रेखाएं बनायी जाती हैं। तत्पश्चात इसके भीतर रंग भरे जाते हैं तथा छाया प्रकाश का प्रभाव भी दर्शाया जाता है।

मेहंदी का प्रचलन आधुनिक समाज में अनेक पूर्ववत् तथा नवीनीकृत दोनों ही रूपों में आज भी उतना ही प्रिय है। लोक कला की इस विद्या ने व्यावसायिक रूप अधिग्रहण कर लिया है। अगर आजकल मेहंदी का प्रचलन भी बढ़ गया है। आज हाथों की इस सज्जा को अनोखा रूप प्रदान कराने के लिए महिलाएं ऊंचे से ऊंचा दाम भी देने को तत्पर हो जाती हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोक कला अभिप्रायों का न सिर्फ चित्रकार वरन् व्यावसायिक लोक से जुड़े विभिन्न कलाकार भी कर रहे हैं। आज आधुनिक से आधुनिक मनुष्य भी बाजार में बिक

रहे। इन कला रूपों से आकर्षित हो, इन्हें खरीद लेते हैं। देखा जाए तो लोक कला रूपों का नवीनीकरण उचित ही है, क्योंकि यह परिवर्तन इन लोक रूपों के प्रति आकर्षण समाप्त नहीं होने देते।

लोक कला तो जन सामान्य की वह कला है जिसे विभिन्न अवसरों पर चित्रित किया जाता है। धर्म भारतीय जीवन का एक अभिन्न अंग है, एवं इसकी प्रबलता लोक संस्कृति की आत्मा है। लोकजीवन में धार्मिक जीवन प्रदान होता है। इसलिए इनमें अधिकांशतः धार्मिक अभिप्रायों की बहुलता देखने को मिलती है। भारत उत्सवों और पर्वों का देश है। यहां धार्मिक उत्सवों, त्योहारों, विवाह जन्मोत्सव आदि अवसरों पर घर की दीवारों एवं भूमि पर मांगलिक चिह्न प्रतीक एवं भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतीक स्वरूप है।

भारत में प्राचीन काल से ही रंगोली या चौक पूरने की परंपरा रही है। यह आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है। भारत के विभिन्न प्रांतों में ये किसी न किसी रूप में बनाई जाती है। हर प्रांत की लोक कला को हम अलग-अलग नाम से जानते हैं। कई प्रांतों में प्रातः काल की ऐश्वरीय वंदना का आरंभ रंगोली से किया जाता है। ये अनेक रूपाकार विविध रीति रिवाज और धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार बनाये जाते हैं जिसके विशेष अर्थ और महत्व होते हैं। लोक में यह मानता है कि इन कृतियों के रूप में घर में देवी देवताओं का वास रहता है। इसलिए इन लोक कलाओं में धार्मिकता परिलक्षित होती है।

हरियाणा के लोक कलाओं में सर्वप्रथम यहां के लोकचित्र हैं। यह लोक कला घर की दीवारों की सुंदरता को भी बढ़ती है। यह कला हरियाणा के गांव में सैकड़ों वर्षों की संचित अभिव्यक्ति है। इन चित्रों में अलंकरण, पशु-पक्षी, किस्से, कहानियों के साथ-साथ हिंदू देवी-देवताओं के चित्र, पौराणिक आख्यान तथा लोक जीवन के विभिन्न प्रसंगों की रचना होती है। मछली, कुंडलिनी और कमल, मधुबनी कला के कुछ प्रचलित और लोकप्रिय प्रतीक और बिम्ब है। दीवारों के साथ-साथ पूजा, विवाह, यज्ञोपवीत आदि पर्व त्योहार पर घर आंगन को अरिपन या अल्पना से सजाने का प्रचलन है।

लोक कला में चित्रित आकृतियां प्रागैतिहासिक चित्रों की आकृतियों से साभ्य रखती हैं। इस शैली की मानवाकृतियाँ व पशु आकृतियां ज्यामितीय आलेखन जैसी त्रिकोणीय बनी होती हैं। प्राकृतिक दृश्य, जीव जंतुओं के अंकन के साथ-साथ देवी देवताओं को भी चित्रित किया गया है, जो कि ईश्वरीय आस्था व विश्वास के परिचायक हैं। तीज – त्यौहार व विवाह सभी धार्मिक अवसरों पर स्त्रियों द्वारा सुंदर व कलात्मक अभिप्रायों से घर को अलंकृत किया जाता है। कोई भी मांगलिक कार्य इस कला के अभाव में अधूरा है।

भारत में विभिन्न त्योहारों पर भित्ति व फर्श को सज्जा करने की प्रथा है। रक्षाबंधन, दशहरा, करवाचौथ आदि पर इससे जुड़ी आकृतियों का प्रतीकात्मक रूपाकार भी विविध रीति रिवाज और धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार बनाए जाते हैं। दीपावली पर लक्ष्मी – गणेश की पारंपरिक या मानवीय

रूपाकृतियों के साथ-साथ भिन्न प्रकार के कमल, हाथी, कलश, स्वस्तिक आदि प्रतीक चिन्ह भी अंकित किए जाते हैं। फर्श पर लक्ष्मी जी के चरण को भी चित्रित किया जाता है। पूजा ग्रह की बरामदा, मुख्य द्वार आदि सभी जगह अल्पना बनाई जाती है।

लोक कलाएं हमारी संस्कृति की सच्ची अभिव्यक्ति है और प्रत्येक व्रत त्योहारों आदि सभी मांगलिक कार्यक्रमों पर लोक कलाओं के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों से घर की सुंदरता में चार चांद लग जाते हैं तथा साथ ही यह सुख समृद्धि, सौभाग्य में संपन्नता भी लाते हैं। इन लोक अभिप्रायों को बनाने का उद्देश्य मात्र सौंदर्य नहीं है, अपितु अनुष्ठानिक भी होते हैं। इस प्रकार लोक कलाओं में कलाकार की धार्मिक आस्था उसके प्रत्येक कला अभिप्रायों में दृष्टिगोचर होती है।

लोक देवी-देवता का भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। लोककला का रूप हमें अपने जीवन में भी देखने को मिलता है, जिसके द्वारा लोक मानस का मांगलिक भावना से ओत-प्रोत होना सिद्ध करता है। लोक जीवन की जैसी सरलता, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोक कला में मिलता है, वैसा अन्यथा दुर्लभ है। लोक जीवन में पग-पग पर धार्मिक संस्कारों के दर्शन होते हैं। भारतीय लोक कला संस्कृति में धर्म के योगदान पर प्रकाश डालना है जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता की दौड़ में हम अपनी परंपराओं की अवहेलना करते हुए भारतीय लोक कला संस्कृति तथा धार्मिक संस्कारों से दूर होते जा रहे हैं। यह सत्य है कि आज हम पूर्णरूपेण उन संस्कारों का अनुपालन नहीं कर सकते, किंतु उनमें छिपी भावनाओं को अपनाकर संक्षेप में ही सही अपनी लोक कला संस्कृति के धार्मिक अनुष्ठानों संस्कारों को विलुप्त होने से बचा सकते हैं।

हमारा ग्रामीण समाज लोक का महाप्राण है और ग्रामीण संस्कृति लोक का प्रतिनिधित्व करती है। लोक कला उस नदी की धारा के समान है, जो ग्रामीण संस्कृति के गर्भ से निकलकर न केवल ग्रामीण समाज को पल्लवित करती रही है, वरन् यह अपने शीतल रूप से समग्र मानव समाज को सफलता प्रदान करती है। इन कलाओं के द्वारा ग्रामीण जन अपने जीवन की कठिनाइयों और दुख को भूलकर कुछ समय के लिए इसमें खो जाते हैं। ये लोक कलाएं आज भी निरंतर न जाने कब से एक से दूसरे हाथों में निहित होती हुई निर्विघ्न, निर्विकार रूप में अपने सहज रूप में बह रही हैं। वास्तव में यह लोक कला ग्रामीण संस्कृति में चलचित्र के समान है, जिन्हें देखकर ग्रामीण रीति-रिवाज, उनकी दिनचर्या, उनकी आर्थिक विषमता, उनके उल्लास सभी कुछ दर्शक के सामने एक के बाद एक करके आने लगते हैं। यह बात और है कि अब यह कला शहरी सभ्यता से भी प्रभावित होने लगी है, परंतु इनमें ग्रामीणता ज्यों की त्यों विद्यमान है।

लोक कला संस्कृति के चित्र ग्रामीण लोगों द्वारा अपने घर की सजावट, अपने आराध्य और रीति रिवाज के लिए और स्थानीय लोगों के उपयोग के लिए बनाए जाते थे। इनमें तीर्थ स्थानों पर

पारंपरिक पेशेवर चित्रकारों द्वारा बनाए चित्र भी समाहित हैं। ये सब चित्र विभिन्न विषयों एवं शैलियों में बनाए जाते थे। हर क्षेत्र के चित्रों में स्थानीय प्रभाव को बढ़ावा दिया। एक दूरी तक उनकी शैली और गुणवत्ता स्थानीय तौर पर मिलने वाली सामग्री पर आश्रित होती थी। इन सब गुणों से ही हमें उन्हें क्षेत्रवार लोक कला संस्कृति को पहचानने में मदद मिली है। इनमें इतनी विभिन्नताएं होते हुए भी विश्व स्तर पर भारतीय लोक संस्कृति की पहचान बनाए रखी है।

लोक कला का इतिहास मानव जाति के अभ्युदय और विकास से संबंधित है। वैदिक काल से वर्तमान युग तक की सांस्कृतिक भावना, धारणा, परंपरा, आस्था और विचार क्रमबद्ध रूप से लोक कला के अंतर्गत प्राप्त होता है। लोक कला मानव जाति की सौंदर्यात्मक, अनुभूति को प्रकट करता है। इस कला में स्वाभाविकता अधिक है जिससे मानव की धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक अभिव्यक्ति को बल मिलता है। आधुनिक कृतमता और प्राविधिक प्रयोगों से लोक कला पूर्णता मुक्त है, उसका एक अपना निजी संसार होता है।

लोक कलाओं को अपनी प्रविधि के ज्ञान के लिए किसी कला विद्यालय की आवश्यकता नहीं होती। स्थानीय भावना से ओतप्रोत इस कला में शंक, स्वास्तिक, चक्र, कलश आदि चिन्हों का प्रयोग मंगल कामना के लिए किया जाता है। इनमें कोयला, गेरू, गोंद, वनस्पति आदि रंगों का निर्माण कलाकार स्वयं करता है और वह इन रंगों से मकान की भित्तियां, कपड़ों या कागज जाती पर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। यह चित्र मानव जाति के सुख समृद्धि, कल्याण एवं आनंद की प्राप्ति हेतु चित्रित किए जाते हैं। यह संसार रूप में मनुष्य को जन्म से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हमारे जीवन में लोक कलाओं का विशेष महत्व है जिसे हमें समझना और समझाना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय

- ग्रामीण लोक कला का महत्व
- हरियाणा के पूर्वी गांव की लोककला

ग्रामीण लोक कला का महत्व

लोककलाएं भारतीय संस्कृति की प्रतीक हैं। लोककलाओं के इस भण्डार को समृद्ध करने में नारी जाति का विशेष योगदान है। नारियों को ही लोक कला का विकास करने का श्रेय प्राप्त है। इन कलाओं में तो दिव्य आकर्षक रंग होते हैं, जो कि एक निश्चित क्रम में होते हैं। यदि पृष्ठभूमि गहरी अर्थात् गेरु या गोबर से बनी हो तो उस पर खड़िया से या काजल से रेखाएं बनाई जाती हैं और पृष्ठभूमि हल्की हो तो गेरु से चित्रांकन किया जाता है।

इन चित्रों में प्रवाह व गति दर्शनीय है, जो दर्शकों के मन को आनन्दित व आकर्षित कर लेती है। लोक कला सामान और धर्म के संरक्षण में लोकमानस को अनुरंजन और कलानन्द देने का माध्यम बनी, जिन्हें सीखने के लिए अशिक्षित नारियां न कभी स्कूल गईं और न कभी कॉलेज, अपितु अपने घर रूपी कला मंदिर में रहकर कलात्मक दृष्टिकोण का परिचय देती रही है। इस कला को देखकर आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक है, क्योंकि इसके कण-कण में तो माटी की सुगंध रहती है।

इन लोककलाओं में तो रंगों और रेखाओं की अपनी मौलिकता है। प्रायः आटा, हल्दी, चावल, खड़िया आदि सर्वसुलभ सहज वस्तुओं से रंग तैयार किए जाते हैं।

जहां तक रेखाओं का संबंध है, उनकी मादकता देखने वालों को देर से ही आकर्षित कर लेती है। उनमें बारीकी ओर लय की अपेक्षा भावात्मक अनुभूति की प्रधानता होती है। उनकी एक तो विशेषता उनका सादापन और पवित्रता भी हैं।

लोक कला से चित्रकारों में बड़ी प्रेरणा मिली है। लोक कला पर आधारित नये प्रयोग आज के कलाकारों को अपूर्व सफलता की ओर ले जा रहे हैं। लोक कला स्वतः ही अपने सहज और निर्मल रूप से हमारे जीवन का अंग बन गई है। विवाह आदि शुभावसरों पर लोक कला का विशिष्ट महत्व है। इस लोक कला का प्रभाव स्वतः ही हमारे मानस — पटल पर स्थाई होता है, क्योंकि इसमें आत्मीयता और निकटता है। सार्वभौमिकता सुख — समृद्धि और उन्नति लोक कला का आधार है। भारतीय संस्कृति की आत्मा व भावात्मक एकता को संजो अतीत की महानतम् परंपराओं को अक्षुण्ण रूप से कला प्रस्तुत करती है।

लोक कला की ये भावमयी तथा मोहक आकृतियाँ आज उपयोगी कला के रूप में दिनों दिन अधिक लोकप्रिय होती जा रही है। वे साड़ी, लहंगा, सलमा, सितारे, ऊनी — रेशमी वस्त्रों, बच्चों की गुड़ियों, मिट्टी के खिलौने, झलियों, टोकरियों, काष्ठ धातु प्रस्तुत और यहां तक कि पुस्तकों, पत्र — पत्रिकाओं के मुख्य पृष्ठों पर अंकित होकर अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त कर रही है।

11. ममता सिंह, दृश्यकला और लोककला के मूल तत्व एवं सिद्धांत, पृ० सं०. 225, 226, 227

वेशभूषा में आज हम देखते हैं कि बड़े-बड़े ब्लाउज लोकजीवन में प्रचलित अंगिया (चोली) को रूप लेते जा रहे हैं। साड़ियाँ भी आदिवासियों की तरह (नाभि) से बाँधने का प्रचलन है। मिनी साड़ी ढाई हजार वर्ष पुरानी अजंता के चित्रों में दर्शित वेशभूषा को ही नकल रहे हैं। यह सब लोक कला की समाज में पुनरावृत्ति तथा जागृति का घोटक है, जिसमें आकाशवाणी द्वारा लोकगीतों को जन सामान्य तक पहुंचाया गया। मण्डलियाँ बुलाई जाने लगी। लोक कला पर आधारित तथा हर क्षेत्र में लोक कला का आदर हुआ। इस प्रकार परिमार्जित होकर पनप रही है।

इस प्रकार हमारी यह लोक कला आज अपने गौरवशाली अतीत के कारण ही अपनी वर्तमान लोकप्रियता एवं उपयोगिता के कारण उपादेय तथा महत्वपूर्ण है। हमारे जीवन में इसका जितना अधिक प्रचार प्रसार हो, उतना ही राष्ट्रीय सुख, समृद्धि और संस्कृतिक चेतना के जागरण में उसके द्वारा सहायता हो सकती है।

→ प्रो जैन — “लोक कला मानवीय भावनाओं के साथ-साथ चली आ रही है, जो अति प्राचीन है”।

→ आचार्य रामचंद्र शुक्ल — “लोक कला प्रतीकवादी अभ्यास है जो अति प्राचीन काल में जन समुदाय के द्वारा उपयोग में लाया गया था, पर यह सत्य है कि लोकचित्रकला धर्म से अवश्य ही प्रभावित रहती है”।

लोक कला तो समुदायों को अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को रचनात्मक रूप से व्यक्त करने का एक मंच प्रदान करती है। यह उनके सामूहिक जीवन, त्योहारों और धार्मिक विश्वासों को दर्शाती है। पारंपरिक रूप से लोकचित्रकला का उपयोग महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों, स्वास्थ्य संबंधित चिंताओं और अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। यह लोक कला तो संवाद को बढ़ावा देती है और लोगों को शिक्षित करती है।

लोक कला अक्सर स्थानीय सामग्रियों और तकनीक का उपयोग करती है, जिससे प्रत्येक कलाकृति अद्वितीय और प्रमाणिक होती है। यह आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति की एकरूपता के विपरीत है और रचनात्मकता का उत्सव मनाती है।

लोक कला तो कलाकारों और शिल्पकारों के लिए आय का स्रोत हो सकती है, खासकर यदि इसे बढ़ावा दिया जाए और उचित बाजार उपलब्ध कराया जाए। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूत कर सकती है। यह लोगों को भी एक साथ लाती है और साझा उद्देश्य और पहचान की भावना पैदा करती है। यह विभिन्न कला समूहों के बीच समझ और प्रशंसा को बढ़ावा देती है। कई लोक कला

रूपों में प्रकृति जीव – जंतु और वनस्पतियों से प्रेरणा ली जाती है, जो हमारे पर्यावरण के प्रति भी सम्मान और जागरूकता को बढ़ावा देती है।

ग्रामीण लोक कला न केवल कला का रूप है, बल्कि यह हमारी संस्कृतिक विरासत का एक जीवंत हिस्सा है जो सामाजिक, आर्थिक और शिक्षित रूप से महत्वपूर्ण है। इसका संरक्षण और संवर्धन करना हमें आवश्यक है। यह ग्रामीण लोक कला तो भारत की आत्मा है। यह सिर्फ रंग और रेखाओं का संयोजन नहीं, बल्कि यह उन समुदायों की जीवन शैली, विश्वासों और परंपराओं का जीवंत चित्रण है जिसमें यह उत्पन्न होती है।

भारत के हर एक क्षेत्र की अपनी विशिष्ट लोक कला शैली है जो स्थानीय संस्कृति, भूगोल और उपलब्ध संसाधनों से प्रभावित होती है। कुछ प्रसिद्ध शैलियों में हरियाणा में सांझी, अहोई अष्टमी, गोवर्धन पूजा आदि और बिहार की मधुबनी, महाराष्ट्र की वारली, राजस्थान की फड़ और मांडना, उड़ीसा की पटचित्र, और आंध्र प्रदेश की कलमकारी शामिल है। हर शैली की अपनी पहचान है, चाहे वह रंगों का उपयोग हो, रूपांकन हो या बनाने की तकनीक।

ग्रामीण लोक कलाओं के विषय अक्सर प्रकृति, देवी – देवताओं, प्रौराणिक कथाओं, स्थानीय लोककथाओं और रोजमर्रा की जिंदगी के दृश्य के इर्द-गिर्द घूमते हैं। यह कला समुदायों के सामाजिक और धार्मिक जीवन का दर्पण है। त्योहारों, शादियों और अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर विशेष चित्र बनाए जाते हैं। जबकि लोक कला सदियों से चली आ रही परंपराओं पर आधारित है, इससे समय के साथ नवाचार भी देखा गया है। कलाकार अपनी रचनात्मकता और बदलते सामाजिक संदर्भों के अनुसार नए पहलू खोजता रहता है और लोक कला कई ग्रामीण लोगों के लिए आय का स्रोत है, विशेष कर महिलाओं के लिए।

हस्तशिल्प और चित्रित वस्तुओं की मांग स्थानीय और बाहरी बाजारों में बनी रहती है, जिससे आर्थिक आत्मनिर्भरता भी बढ़ती है। लोक कला तो ग्रामीण परिवेश में रंग और सौंदर्य भरती है। घरों की दीवारों और आंगनों पर बने रंगीन चित्र वातावरण को खुशनुमा बनाते हैं, और लोगों के जीवन में आनंद लाते हैं। और यह ग्रामीण समुदायों को अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखने और व्यक्त करने में मदद करती है। यह सामुदायिक आयोजनों में लोगों को एक साथ लाती है और सामाजिक बंधनों को मजबूत करती है।

यह कई ग्रामीण कारीगरों, खासकर महिलाओं के लिए आय का स्रोत प्रदान करती है। और पीढ़ी दर पीढ़ी सांस्कृतिक ज्ञान, परंपराओं और मूल्यों को हस्तांतरित करने का एक माध्यम है। यह ग्रामीण लोगों को अपनी रचनात्मकता और भावनाओं को व्यक्त करने का एक मंच प्रदान करती है। यह तो ग्रामीण परिवेश में सौंदर्य और सकारात्मकता लाती है, जिससे लोगों को मानसिक शांति मिलती है।

अतएव स्पष्ट है कि यह सब धर्म और अनुष्ठानों की घोटक है जिसे प्राचीन काल से स्त्रियाँ ही करती आ रही है। ऐसा माना जाता है कि पुरुषों का तो कार्य बाह्य जगत परिवार के लिए साधन जुटाना था तथा अपने और परिवार के लिये भोजन आदि का प्रबन्ध करना रहा है अथवा आक्रामक शत्रुओं से लड़ना रहा है। उनकी विजय के लिये एवं उनकी मंगल कामना के लिए नारियां घर में रहकर विभिन्न दैविक शक्तियों को विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों से अर्चना करती रहती थी। इस अर्चना पूजन के लिए देवी शक्ति की कल्पना की गई। ये आकृतियां ही लोक कला के रूप में आज हमारे सामने हैं। इसे लोक याती बनाये रखने में नारी को ही श्रेय जाता है, जो की विस्तारपूर्वक बताया गया है।

हरियाणा के पूर्वी गांव की लोक कला

हरियाणा में लोक कला पुराने समय से ही व्यापक रही हैं। आज के समय में भी गांव में लोककला हमारी संस्कृति व वेशभूषा में देखी जा सकती है। यह माना जाता है कि जो व्यक्ति जिस क्षेत्र में होता है, उसके बारे में उसे ज्यादा सूझबूझ होती है और वह व्यक्ति उसे देश में चल रही दिनचर्या के अनुसार ही चलते हैं। गांव में तो लोक कला का विशेष महत्व माना जाता है। गांव के लोगों को तो कला परंपरा के रूप में मिली हुई है।

लोक कला पहले समय में हमारे बड़ों के द्वारा ही बनाई जाती थी। लेकिन हमारे पूर्वजों ने लोककला अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दी है। अब तक के समय में लोक कला का प्रचलन गांव में देखने को मिलता है। बढ़ते हुए समय की गति के कारण लोककला गांव में अधिक देखने को मिलती है शहरों की अपेक्षा। गांव की लोक कला में अहोई अष्टमी, सांझी, गैस पूजा अन्य लोक कलाएं भी आती हैं। कई स्थानों पर तो सांझी को हाथ से बनाकर बेचा भी जाता है, लेकिन गांव में तो ऐसा करने से लोग कतराते हैं। लेकिन इसे तो हमारी संस्कृति के रूप में माना जाता है। हमारे समय में माताएं अपनी बेटियों को विवाह या अन्य अवसरों पर हाथ द्वारा निर्मित वस्तुएं देती हैं। हमारी कला पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती हुई नजर आ रही है। कला की रूपरेखा अलग ही तरीके से की जाती है, जो की देखने पर अत्यंत मनमोहक व प्रिय लगती है।

कला जो कि मनुष्य की अनुभूति का सजग रही है। पहले की अपेक्षा हमारे वर्तमान में सदा ही नजर आती हुई दिखाई दे रही है। सांझी माता को तैयार करने के लिए गांव के लोग बहुत दिनों से ही तैयारी करना शुरू कर देते हैं। दीवारों को साफ पानी से धोकर, गोबर में लीपा जाता है। सूरज, चांद, तारे, शेर, बत्तखे, टिकड़ी बनाकर चिपकाई जाती हैं। और सच्चे मन से तैयारी करने में लग जाते हैं। और श्याम के समय सांझी माता की पूजा, तैयारीयों में लग जाते हैं। और शांति माता को सुबह-शाम घर में बना हुआ बिना लहसुन प्याज के भोजन का भोग लगाया जाता है, और गांव के लोग की पर्याप्त श्रद्धा व्याप्त है। गांव में तो मिट्टी से अन्य वस्तुओं से भी बनाई जाती है — चूल्हे, हारे, गिढ़ी, प्यान आदि।

इन सबको बनाने के लिए मिट्टी के घास — फूस पानी डालकर गूथा या (सानी) जाता है। इन सब में अलग-अलग ही विधि होती है। चूल्हे की पटडी बनाकर उसे सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है, फिर उसे आकार व उसमें डिजाइन बनाए जाते हैं। इस तरह से मिट्टी से वस्तुएं बनाई जाती है।

हरियाणा के पूर्वी क्षेत्र में कई गांव भी स्थित है, जिनमें कुछ प्रमुख है – यमुनानगर जिला, अंजनथली, अकलीमपुर, अग्रोहा, अभिमन्युपुर, अमादलपुर, अलावलपुर, अलेवा, अस्थल बोहर, अहली सदर और पथरेड़ी।

यहां की लोक कलाएं विभिन्न रूपों से जानी जा सकती हैं :-

❖ फुलकारी :-

यह भी हरियाणा की सबसे प्रसिद्ध लोक कलाओं में से एक है। फुलकारी का अर्थ है – “फूलों का काम”। यह कढ़ाई मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा ओढ़नी, शॉल और अन्य कपड़ों पर की जाती है। इसमें चमकीले रंगों के धागों का उपयोग करके विभिन्न प्रकार के फूल, पत्तियां और ज्यामितीय आकृतियां बनाई जाती हैं। पूर्वी हरियाणा के गांव में तो फुलकारी का प्रचलन है और यह महिलाओं के बीच बहुत लोकप्रिय है।

❖ जरी जूती :-

यह पारंपरिक प्रकार की जूती है जिस पर जरी का काम किया जाता है। पूर्वी हरियाणा के कुछ क्षेत्रों में, जैसे कि – फरमान (सोनीपत जिला), जरी की जूतियां बनाई जाती है। यह जूतियां विशेष अवसरों पर पहनी जाती हैं और इनका अपना सांस्कृतिक महत्व है।

❖ मिट्टी के बर्तन :-

हरियाणा के गांव में मिट्टी के बर्तन बनाना एक पारंपरिक शिल्प है। पूर्वी हरियाणा के गांव में भी कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते हैं जिसमें घड़े, सुराही, खिलौने और अन्य घरेलू उपयोग की वस्तुएं शामिल हैं। इन बर्तनों को अक्सर चमकीले रंगों और आकर्षक डिजाइनों से सजाया जाता है।

❖ पीढ़ा बनाना :-

पीढ़ा एक प्रकार का छोटा स्टूल होता है जो कि आमतौर पर गांव में इस्तेमाल किया जाता है। पूर्वी हरियाणा के गांवों, में खासकर सोनीपत जिले के फरमान इलाके में, पीढ़े बनाए जाते हैं। इन्हें बनाने के लिए सरकंडा या अन्य स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया जाता है।

❖ बांस और सरकंडा शिल्प :-

पूर्वी हरियाणा में बांस और सरकंडा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसलिए इन सामग्रियों का उपयोग करके विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती हैं। जिनमें टोकरीयाँ, चटाइयाँ और सजावटी सामान शामिल हैं। सरकंडे से 'मूँड़ा' नामक स्टूल भी बनाया जाता है, जो गांव में आम उपयोग की वस्तु है।

❖ कढ़ाई और बुनाई :-

हरियाणा में कढ़ाई और बुनाई का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्वी हरियाणा की महिलाएं कपड़ों पर विभिन्न प्रकार की कढ़ाई करती हैं। इसके अलावा यहां दरियां और अन्य वस्त्र भी बुने जाते हैं।

❖ सांग :-

यह हरियाणा का एक पारंपरिक लोक नृत्य है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय है। सांग में संगीत, नृत्य और कथावाचन का मिश्रण होता है। यह धार्मिक, पौराणिक और सामाजिक विषयों पर आधारित होता है। पूर्वी हरियाणा के गांव में भी सांग का आयोजन किया जाता है।

गांव के लोग तो काम करने में अधिक सजग होते हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हरियाणा के अलग-अलग हिस्सों में लोक कला के विभिन्न रूप प्रचलित हो सकते हैं और समय के साथ इनमें बदलाव भी आ सकता है, फिर भी हरियाणा के गांव में यह लोग कलाएं आज भी सांस्कृतिक परंपरा का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

पंचम् अध्याय

- लोकचित्रों के बारे में समाज की अलग-अलग अवधारणाएँ
- विलुप्त होती लोक कलाएँ

लोकचित्रों के बारे में समाज की अलग-अलग अवधारणाएँ

हरियाणा में लोक चित्रों के बारे में समाज की अलग-अलग धारणाएं मौजूद हैं, जो इस क्षेत्र की सांसारिक विरासत और कलात्मक परंपराओं को दर्शाती हैं। कुछ प्रमुख धारणाएं इस प्रकार हैं :-

❖ ग्रामीण जीवन और परंपरा का प्रतिनिधित्व :-

हरियाणा में लोक चित्रों को अक्सर ग्रामीण जीवन, कृषि, और पारंपरिक रीति-रिवाजों का प्रतिनिधित्व माना जाता है। ये चित्र लोककथाओं, त्योहारों और दैनिक जीवन के दृश्यों को दर्शाते हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हैं।

❖ रंगोली :-

रंगोली बहुत लोकप्रिय है और यहां के जीवन का एक अंग है। विवाह तथा त्योहारों के अवसर पर रंगोली की रचना भूमि पर करके धरती को सजाया जाता है। कक्षों के फर्श पर तरह-तरह के आलेखों का निर्माण किया जाता है। आलेखन को बनाने के लिए उनके प्रकार के रंगों के चूर्ण को धरती पर बिखर जाता है। इस रंगों से अनेक प्रकार के अलंकरण जैसे - पुष्प, पत्तियों, बेल - बूटे आदि की रचना करके मंगल कामना की जाती है। इसके अतिरिक्त आजकल गणेश, मयूर, नारी, आकृति, स्वास्थ्य आदि का भी प्रचलन बहुतायत से होता है।

इन आकृतियों को बनाने में अनेक प्रकार के रंगों व विधियों का प्रयोग होने लगा है। दीपावली आदि त्योहारों पर जलते दीप रखकर सजाया जाता है।

रंगोली जैसे नाम से ही विदित हो रहा है - "रंगों की अवली या बल्ली"। अर्थात् रंगों की लड़ी। इनके रंगों का समावेश रंगोली में किया जाता है।

→ रंग प्रक्रिया एवं स्वरूप :-

रंगोली में मुख्यतः प्रयोग होने वाले रंग साधारण होते हैं। परंतु वर्तमान में चावल, गुलाल, लकड़ी के बारीक बुरादे में रंग मिलाकर आटा, हल्दी, कुमकुम, नील आदि में भी रंगोली तैयार की जाती है। इसमें सर्वप्रथम खड़िया से जमीन पर मुख्य आकृति बनाकर उसमें इच्छानुसार रंग भरे जाते हैं। आकार व स्थान में बनाना है, उसके बाद ही मुख्य रूप से आकृति को बाहरी रेखा बनाकर अन्य रंगों

को भर जाता है। रंगों को भरते समय भी विशेष सावधानी रखी जाती है, अन्यथा रंगों के बिखराव रूप नष्ट न हो जाए व रंगों से आकर्षण भी बना रहना चाहिए।

❖ लीला गुदवाना :-

इस लोक चित्रकला में चित्रण कार्य शरीर के अंगों पर किया जाता है। शरीर के अंगों पर लीला गुदवाने की प्रथा बहुत प्राचीन है। लीला गोदने के लिए शरीर की खाल पर एक सुई जैसे नुकीले यंत्र द्वारा चित्रण किया जाता है, जो शरीर पर जीवन के अंत तक बना रहता है, अर्थात् यह मशीन के द्वारा शरीर पर चित्रांकन करने की कला है। स्त्रियों में यह परंपरा पुण्य मोर का अंकन देखने को मिलता है। यह चित्रण खासकर हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में अधिक प्रसिद्ध है। कुछ लोग ऊँ, राम, शिव आदि धार्मिक नाम भी लिखवाते हैं। इसमें मनोरंजन के अतिरिक्त अपने प्रियकों की स्मृति बनाए रखने की भावना भी निहित होती है। अनेक पौराणिक कथाओं में भी लीला गुदवाने का वर्णन प्राप्त होता है।

भगवान कृष्ण ने भी एक लिलहरी अर्थात् लीला गोदनेवाले का रूप बनाया था। इन चित्रों की विषयवस्तु में रेखा की चित्रण की परंपरा इतनी प्रचलित नहीं है कि जितने की उभारदार चित्रण की परंपरा। यह कला अमिट है। बदलते समय के साथ लोगों की सोच शरीर पर "टैटू" आदि को भी बनवाते हैं। दशहरे के मेले, चैती के मेले, बूढ़े बाबू आदि अनेक मेलों में ये कलाकार मिल जाते हैं। यह लोग चित्रकला परंपरागत कला है व गुरु द्वारा शिष्य को प्रदान की जाती है।

→ चित्रण प्रक्रिया एवं स्वरूप :-

लीला गुदवाने में प्रयोग नहीं किया जाता, अपितु एक नुकीली सई जैसे यंत्र की सहायता से चित्रण किया जाता है, जो जीवनपर्यन्त रहता है। इस विधि में एक मशीन जिसे कलाकार स्वयं एक काईल लगाकर बनाता है, नोक को नीली या काली इंक स्याही में डुबोकर शरीर की खाल के अंदर डाला जाता है व एक हफ्ते तक विशेष रूप से महिलाओं को आटा न छानने के लिए कहा जाता है, अन्यथा स्याही से जो आकार दिया गया है, उसका स्वरूप बिगड़ जाएगा। यह कुछ जाति व जनजातियों का पहचान चिह्न भी बन जाता है। बच्चों में अंकन करवाने पर यह बड़े होने पर हल्का हो जाता है और इसका आकार भी बढ़ जाता है। इन कलाकारों के पास स्वयं के बने हुए चित्र भी होते हैं जिनमें सांप, शिव, राम, ऊँ आदि बहुत सारी आकृतियां बनी होती हैं।

इस वैज्ञानिक युग में इस कला को स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक माने जाने लगा है। सेना में प्रवेश पाने वाले युवकों के लिए इस कला को निविद्ध माना है। सैनिक छावनी कोटा के भर्ती प्रकोष्ठ

के निदेशक कर्नल विजय सामंत के अनुसार लीला गुदवाने में जिस सुई का प्रयोग होता है, इससे एड्स या हेपेटाइटिस – बी के वायरस से संक्रमण होने का खतरा रहता है, परंतु जनसामान्य में इसका आज भी विशेष महत्व है।

❖ महिलाओं की रचनात्मक अभिव्यक्ति :-

हरियाणा में लोक चित्रों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दीवारों और आंगन में बनाए जाने वाले कई पारंपरिक चित्र महिलाओं द्वारा ही बनाए जाते हैं जो उनकी रचनात्मकता और कलात्मक कौशल का प्रदर्शन करते हैं। इन्हें अक्सर पारिवारिक, सामाजिक अवसरों पर बनाया जाता है।

❖ गोवर्धन पूजा से संबंधित चित्र :-

गोवर्धन पूजा एक त्यौहार है, जो दिवाली के अगले दिन मनाया जाता है। इस दिन गोवर्धन पर्वत और गायों की पूजा की जाती है। इस अवसर पर घरों और आंगन में गोबर से गोवर्धन पर्वत की आकृति बनाई जाती है और उसे फूलों आदि से सजाया जाता है। इसे भी एक प्रकार की लोक चित्रकला माना जाता है, जो फर्श कला के अंतर्गत आ सकती है।

❖ धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व :-

कुछ लोक चित्र धार्मिक मान्यताओं और देवी देवताओं से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए सांझी के चित्र जो आश्विन मास में बनाए जाते हैं, देवी माँ की आराधना का एक रूप है। इन चित्रों का उद्देश्य धार्मिक आशीर्वाद और सुरक्षा प्रदान करना होता है।

❖ अहोई अष्टमी पर बनने वाला अहोई माता का चित्र :-

अहोई माता का चित्र पीढ़ी दर पीढ़ी माताओं द्वारा बनाया जाता है और यह त्यौहार की गहरी जड़ों वाली लोक संस्कृति और परंपरा का हिस्सा है। इस चित्र को बनाने के लिए अक्सर स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री जैसे कि गेरू (लाल मिट्टी) का उपयोग किया जाता है। बनाने की तकनीक भी पारंपरिक और सरल होती है। यह चित्र केवल सजावटी नहीं होता, बल्कि इसका धार्मिक महत्व होता है और यह माता और बच्चों के बीच के स्नेह और परिवार की मंगल कामना से जुड़ा होता है। आमतौर पर यह चित्र घर की महिलाओं द्वारा ही बनाया जाता है, न की किसी पेशेवर या प्रशिक्षित कलाकार द्वारा। इसलिए अहोई अष्टमी पर दीवार पर बनाए जाने वाला अहोई माता का चित्र निश्चित रूप से

लोक चित्रकला के अंतर्गत आता है, जो धार्मिक आस्था, परंपरा और घरेलू कलात्मक अभिव्यक्ति को दर्शाता है।

चित्र एवं मूर्तियों में ही नहीं बल्कि लोकचित्रकला, लोक संगीत, लोक नृत्य एवं लोक साहित्य ने क्रमशः संगीत, नृत्य एवं साहित्य के विकास में स्थापित मान्यताओं या शास्त्रीयता के साथ घुलमिल कर जनमानस को प्रभावित किया तथा उसे अधिक स्वाद युक्त बना दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बहुत से कलाकार भारतीय ग्रामीण कला निधियों के प्रति संवेदनशील एवं जागरूक हुए। क्योंकि पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय कला में जीवन एवं सौंदर्य के प्रति घुसपैठ आर्थिक दिखाई देती है। तभी तो लोकचित्रकार यहां पर संस्कार एवं परंपराओं के साथ अपना सामजस्य बनाकर अपना विकास कर पाई।

हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में सांझी, अहोई तथा दीपावली के समय में बनाए जाने वाले मिट्टी की दीवारों पर 'मोटिफ' बनाने की परंपरा बिहार में मधुबनी के लोक चित्र, महाराष्ट्र में वर्ली के चित्र, हैदराबाद में कमलकारी, राजस्थान में पिच्छवई, फड़, पश्चिम बंगाल की कथा 'एम्ब्रोइडरी' पंजाब की फुलकारी एवं चम्बा के रुमाल, कला के अमूल्य धरोहर हैं जिनसे भारतीय कलाकारों ने निःसंदेह प्रेरणा प्राप्त की।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के टेराकोटा, बस्तर के धातु शिल्प तथा पश्चिमी बंगाल, असम, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं हिमाचल प्रदेश में लकड़ी की खुदाई, मिट्टी के खिलौने, फर्श पर अलंकरण एवं धातु शिल्प की समृद्ध परंपराओं ने भी कलाकारों के लिए नए द्वार खोले। इसी प्रकार पूरे भारत में अलंकरण से लेकर संस्कारों के माध्यम से बनने वाली अनेकों कलस शैलियां हैं, जिनसे कलाकारों के लिए 80 के दशक में सर्वाधिक प्रेरणास्पद प्रयोग किए गए।

हरियाणा के चित्रों में तो ग्रामीण भारत की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। चाहे वह चित्र विषय हों या चित्र पद्धति जैसे रेखा एवं रंगों का प्रयोग। भारतीय लोक चित्रकला में वह तत्व है जो मात्र बाह्य आंखों द्वारा नहीं देखा जा सकता, बल्कि उसे अन्तरतम प्रक्रिया से अनुभव किया जा सकता है। बंगाल के अनेक कलाकारों ने इस अनुभव को प्राप्त किया। तत्पश्चात ही उनके कला संसार में परंपरागत भारतीय लोक चित्रकला का प्रभाव सिर चढ़कर बोलता रहा।

भारत में दृश्य कला की भी समृद्ध परंपरा है, जिसकी अपनी भाषा है। आधुनिक कलाकार अपनी निजी भाषा का विकास करते हैं, किंतु लोक चित्रकला में शाश्वत रहने का अनोखा गुण है जो कलाकार के हाथ से कार्य शुरू करते समय से ही सार्वभौमिकता एवं जन-जन तक पहुंचने का गुण लिए हुए आती है।

लोक चित्रकला के सीधे-साधे आकार, लोक लुभावन रंग योजना, मस्तिष्क में सीधा तीर की तरह प्रभाव छोड़ते हैं। उनका संयोजन सपाट है, जो कहीं ऊपर तथा कहीं नीचे से आकारों के देखते

हुए बनाते हैं। उनके आकार एक दूसरे के ऊपर चढ़े हुए किंतु लयात्मक होते हैं। एक ही चित्र में कई क्षितिज या 'आई लेवल' हो सकते हैं या एक ही चित्र में घर के आंतरिक एवं बाह्य परिपेक्ष्य को बड़े अनोखे किंतु लयात्मक ढंग से बनाया जाता है।

रंग अधिकतर प्राथमिक या उनके मेल से ही प्रयुक्त किए जाते हैं। आकार बिखरे हुए भी एकता का बोध कराते हैं। लोकचित्रकला का जादुई संसार कहीं-कहीं एक तपस्या के समान होता है। दृष्टान्त के लिए गुजरात एवं मध्य प्रदेश में जनजातियों में पिथोरा बाबा के चित्र बनाते समय 10 से 12 कलाकार पृष्ठभूमि में बजते संगीत के साथ ही चित्रण करते हैं। कलाकार दीवार को बड़ी पवित्रता के साथ चित्रित करते हैं। एक चाकू से चित्रण आरंभ किया जाता है। उनके अपने ब्रश होते हैं। रंग घोलने के लिए पत्तियों से बने बर्तनों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार कलाकर्म एक प्रकार के संस्कारों के रूप में उपक्रमित किए जाते हैं, तथा साधना की तरह चित्रण कार्य किया जाता है।

लोक चित्रकला के रंग, रेखाएं, धरातल सभी कुछ नजर आता है। वे पूरी तरह से लोकचित्रकला पर सम्मोहित हो गए।

1980 के दशक में तो भारतीय कलाकार लोकचित्रकला से अधिक जुड़े क्योंकि लोकचित्रकला में भारतीयता की महक अधिक रहती है। कलाकारों ने अपनी रचनात्मकता में लोकचित्रकला एवं जनजातीय कला को बड़े फैशन के रूप में स्थान दिया। यह स्थिति केवल हमें चित्र एवं मूर्ति में ही नहीं मिलती बल्कि संगीत जैसी कलाओं में भी है। लोकचित्रकला के आकारों को उसकी डिजाइन, सौंदर्य और गुण के कारण कलाकारों ने उसे अपनाया और समाज में लोकचित्रकला सिर्फ एक कला रूप नहीं है, बल्कि यह हमारी संस्कृति, सामाजिक संरचना, ज्ञान परंपरा और इतिहास का एक अभिन्न हिस्सा है। इसका संरक्षण न केवल हमारी सांस्कृतिक विरासत को बचाए रखने के लिए जरूरी है, बल्कि यह सामाजिक विकास और सामुदायिक सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विलुप्त होती लोक चित्रकला

लोकतंत्र की दृष्टि से हरियाणा प्राचीन से ही समृद्ध रहा है। इस प्रदेश में हुए उत्खनन और प्राचीन साहित्य से उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भित्ति चित्रांकन की परंपरा उत्तर वैदिक काल से शुरू होकर महाभारत काल तक जारी रही तत्पश्चात मौर्य शक और गुप्त शासकों के लगभग 400 वर्षों के दौरान यह कला उत्कर्ष पर पहुंची।

11वीं शताब्दी में विदेशी आक्रमणकारियों ने इस कला को भारी नुकसान पहुंचाया। इन हमलावरों ने सेठ – साहूकारों की हवेलियों को नुकसान पहुंचा कर भित्ति चित्रों पर सफेदी पूतवा कर उन्हें नष्ट कर दिया। मध्यकाल में जब भक्ति आंदोलन ने जोर पकड़ा तो भित्ति चित्रकारों ने फिर अपनी कमर कस ली और मंदिरों, नाथों के डेरे, चौपाल की दीवारों पर पुनः चित्रांकन आरंभ कर दिया। यहां से चलकर यह लोक कला सामंती सेठ साहूकारों की हवेलियों में पहुंची और देखते-देखते समस्त जगह पर फैल गई।

लेकिन इसके बाद 16वीं सदी से लेकर 20वीं सदी के मध्य तक भित्ति चित्रांकन की इस कला का लोक मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा, यदि इस युग को भित्ति चित्रों का स्वर्ण युग कहे तो इसे हम बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कह सकते, क्योंकि इस युग में हरियाणा के प्रायः हर गांव, कस्बे और गांव में भित्ति चित्र की जो परंपरा थी वह खूब फली फूली। इस प्रदेश के बांगड़, बांगर, नरदक, खादर, आहिरवाल, मेवात आदि अंचलों के भित्ति चित्रों को विषय वस्तु में भिन्नता देखने को मिलती है। लेकिन चित्रांकन की लोक भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

हवेलियों, चौपाल को बावड़ियों, सरोवरों की बारहदरियों, धर्मशालाओं, ठाकुरद्वारा, शिवालों, मंदिरों, साधुओं के धाम, छतरियों और चौपालों की दीवारों पर बने भित्ति चित्रों को देखकर पता चलता है कि यह चित्र जीवन जगत के हर पक्ष को दर्शाते हैं। इनमें केवल धर्म, पुराण धर्म और अध्यात्म का चित्रांकन नहीं हुआ है, बल्कि राजश्री वैभव एवं पढ़ने के लिए भी चित्र उतारे गए हैं, यही नहीं हरियाणवी लोक जीवन और लोक परंपराओं को भी हर कोण, हर दृष्टि से चित्रित किया गया है।

कुल देवताओं एवं अन्य सभी देवताओं को इन भित्ति चित्रों में सबसे ज्यादा महत्व दिया गया है। शिव, नंदी, गणेश, पार्वती, कार्तिकेय आदि के भित्ति चित्र इसकी गवाही देते हैं। पौराणिक संदर्भों की कहानीयाँ, लोक कथाओं आदि से जुड़े भित्ति चित्र भी खूब मिलते हैं। लोक जीवन से जुड़े भित्ति चित्रों का काफी महत्व है। हल चलाता किसान, चरखा कातती महिला, खेत में जाता किसान, दूध बिलौती महिला, पनघट पर पानी भरती महिलाएं, चूड़ी पहनती महिलाएं और मनिहारी, चरस खींचते बैल, गायन

करते लोग, फाग खेलती महिलाएं, शंकर बन बजना कनपड़ा साधु, सपेरा, नाटक, मदारी, मोर, सांप की लड़ाई जाने कितने जीवन से जुड़े कितने विषयों का चित्रांकन हुआ है।

अब भी हरियाणा के अनेक गांव कस्बे और शहरों में भित्ति चित्र देखे जा सकते हैं। भित्ति चित्रों के ऊपर लेखन एवं छायांकन में आधा जीवन लगा चुके जाने-माने विद्वान भाई रणवीर सिंह ने लगभग 300 गांवों, कस्बों और नगरों में भित्ति चित्र अभी मौजूद होने की पुष्टि की है। उनके अनुसार अकेले भिवानी शहर में लगभग 20,000 भित्ति चित्र देखे जा सकते हैं। रोहतक, भिवानी, झज्जर, कैथल, महेंद्रगढ़, कुरुक्षेत्र, रेवाड़ी, गुड़गांव, फरीदाबाद, पानीपत, यमुनानगर, हिसार, सिरसा आदि जिलों के विभिन्न गांव, कस्बा और शहरों की हवेलियों, चौपालों आदि दीवारों पर बने भित्ति चित्र समय पर नष्ट होते जा रहे हैं। अतः इन्हें हमें सुरक्षित करने की आवश्यकता है।

राजा हर्ष के शासनकाल के दौरान कुछ समय के लिए कला और चित्रकला पर विशेष ध्यान दिया गया, क्योंकि राजा स्वयं एक चित्रकार और कला के दर्शक थे। हर्ष की मृत्यु के बाद राजपूतों के अधीन कुछ समय के लिए चित्रकला का विकास हुआ, लेकिन दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने इस पर रोक लगा दी और जिसके कारण कला को कभी संरक्षण नहीं मिला और कहा जाता है कि — मुगल साम्राज्य के शासनकाल के दौरान कला अपने चरम पर पहुंच गई। जहांगीर कला का संरक्षक था और उसके शासन के दौरान फारसी चित्रकला शैली का प्रभाव भारतीय शैली से खुशी-खुशी प्रभावित था। और बड़े पैमाने पर प्लास्टिक, फाइबर व अन्य मिश्रित धातुओं से निर्मित वस्तुओं का उत्पादन और घर-घर तक उनकी पहुंच से जहां एक और कुम्हार समुदाय के पुश्तैनी कारोबार को पिछले कुछ वर्षों से भारी क्षति का सामना करना पड़ा है, वहीं दूसरी ओर चीन निर्मित वस्तुओं का आयात और बड़े पैमाने पर भारत के बाजारों में उनका व्यवसाय भी उनके आर्थिक पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण रहा है।

गरीबी, शिक्षा, आर्थिक पिछड़ेपन और सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर अपेक्षित जीवन, रूग्ण मानसिकता, माटी कला बोर्ड की स्थापना का न होना, काम के प्रति अनिच्छा, महंगाई, हाथ निर्मित वस्तुओं की मांग में भारी कमी, उन्नत शिल्प का अभाव और तकनीकी शिक्षा की कमी उन्हें उनके पुश्तैनी पैसे से दूर करता रहा है।

पहले जिस तरह कुम्हार समुदायों को दुर्गापूजा, दीपावली और छठ जैसे व्रतों में मिट्टी से निर्मित वस्तुओं के निर्माण की जो तत्परता और खुशी दिखाई पड़ती थी, अब उसमें आसमान-जमीन का अंतर हो चुका है। सामान बनाने के अनुकूल मिट्टी की कमी, कच्ची मिट्टी की वस्तुओं को पकाने के लिए उत्तम कोयला तथा बाजार तक वस्तुओं की पहुंच बनाने के लिए संसाधनों का घोर अभाव इस व्यवसाय के विरुद्ध एक बड़ा संक्रमण काल रहा है।

यह बात अलग है की पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आ रही इस व्यवस्था से जुड़ी प्रजापति समाज की अधिकांश आबादी आज भी अपने पुश्तैनी पैसे से ही जुड़ी है। तथापि रोटी की व्यवस्था के अलावा उनके समक्ष और भी ऐसी व्यवस्था नहीं जिससे उनके घर — परिवार का पेट भर सके। पिछले वर्षों से पर्व, त्यौहार, जन्म — मृत्यु, शादी — विवाह जैसे अवसरों पर कुम्हार द्वारा निर्मित मिट्टी की सामग्रियों की भरपूर मांग हुआ करती थी। दीपावली जैसे महत्वपूर्ण पर्व पर गणेश, लक्ष्मी सहित अन्य देवी देवताओं की मूर्तियों को बनाने से लेकर शादी — ब्याह में सरपोस, ढक्कन, हाथी, घोड़ा, गुल्लक, गमला, कुल्हड़ (चाय की प्याली), प्याला (पानी पीने का बर्तन), तसली, बाटी, दीपक, ईंट, खपड़ा, नाद, दही कोहिया और अन्य सामग्रियों की खरीद के लिए दूर-दूर से लोग कुम्हारों के घरों पर पहुंच जाया करते थे।

दुर्गा पूजा, दीपावली व छठ जैसे पर्वों का तो महीनों पूर्व से इंतजार रहा करता था, लेकिन अब परिस्थितियों बिल्कुल बदल चुकी हैं। न तो कुम्हार पेशेवर रह गए हैं और न ही उनके पेशे में वह पैनापन रह गया है, जिसकी बदौलत वह अपने व्यवसाय को जीवित रख सके। वह कारीगरी भी लुप्त होती जा रही है जो बाप — दादा के समय से चली आ रही थी। इस व्यवसाय को बनाए रखने के लिए धन का अभाव और व्यवसाय के अनुसार मूनाखों का न होना भी उनके लिए परेशानी का सबब बनता गया।

पहले का जमाना काफी अच्छा था। मिट्टी के सामानों की व हाथ से बनाए हुए लोक चित्रों की काफी मांग रहती थी। छोटी-छोटी चीजों के लिए महीनों पहले लोग ऑर्डर दे दिया करते थे। कभी-कभार मुँहमांगी कीमत भी मिल जाया करती थी। सीमेंट की छोटी बोरी भरा कोयला मात्र पांच रुपये में उपलब्ध हो जाया करता था, जबकि अभी उसी एक सीमेंट की बोरी कोयला के लिए इन दिनों भारी कीमत चुकानी पड़ती है। इसी तरह एक ट्रेलर मिट्टी के लिए अभी हजार से पन्द्रह सौ रुपये का भुगतान करना पड़ता है। मिट्टी मिलने से लेकर कच्चे माल को पकाने तक की मेहनत अलग से। एक ट्रेलर मिट्टी में कितने कुल्हड़ अथवा दीपक बनाए जा सकते हैं। पचास रुपये सैकड़ा छोटा प्याला व सौ रुपये सैकड़ा बड़ा प्यारा बाजार में बेचते हैं।

यह व्यवसाय बुरा नहीं है। किंतु इस पेशे से जुड़े रहने के लिए तन, मन, धन से तैयार रहने की जरूरत है। यह अलग बात है कि आज की युवा पीढ़ी अपने व्यवसाय और अपने लोक कलाओं से दूर होती जा रही है। कहा जाता है कि शहरी क्षेत्र में कुम्हारों की संख्या करीबन दो से तीन हजार के बीच है। कुल दस खण्डों वाले इस जिले में उनकी जनसंख्या 15 से 17 हजार है। अधिकांश लोग पुश्तैनी कारोबार से ही रोजी-रोटी चला रहे हैं।

झारखंड के 12 विधानसभा सीटों में लोकसभा सीटों पर अपने प्रतिनिधित्व को लेकर लगातार यह समाज संघर्षरत है। अपुष्ट आंकड़ों के मुताबिक झारखंड में प्रजापति (कुम्हारों) की कुल आबादी 17 से 22 लाख है। इस समाज के लोगों का कहना है कि – मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग काफी पुराना है। मिट्टी के बर्तन से ही जीवन सुरक्षित रह सकता है। कुम्हार के बर्तन उपयोग से 50 फीसदी बीमारी स्वतः ही समाप्त हो जाती है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों से मिले सभ्यता के अवशेष में मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग स्पष्ट इस बात की ओर इंगित करता है कि ईसा पूर्व इस कला को पहचान मिल चुकी थी। इस समाज के बड़े बुजुर्गों का कहना है कि कुम्हार ही सृष्टि के प्रथम राजा हैं, किंतु वर्तमान में स्थिति यह है कि दूसरों के घरों को रोशन करने वाला यह समाज आज खुद अंधेरे में जीवन जीने को तैयार है।

जिस देश में 18 करोड़ की जनसंख्या सिर्फ कुम्हारों की हो, उस देश में रोजी-रोटी के लिए इन्हें संघर्ष करना पड़े तो यह गंभीर मंथन का विषय है। मटखानों की व्यवस्था, ईंट भट्टों की बंदोबस्ती, राष्ट्रीय माटी कला बोर्ड की स्थापना, मिट्टी की व्यवस्था, सरकारी कार्यालयों, बस स्टॉप और रेलवे प्लेटफार्म पर मिट्टी के कुल्हड़, प्यालों व अन्य बर्तनों की अनिवार्यता ही सरकार से इनकी प्रमुख मांगें हैं।

चीन निर्मित सामानों के प्रतिबंध के बाद इस समाज में अपने कारोबार के प्रति एक नई चेतना देखने को मिल रही है। एक नए सफर के श्री गणेश के साथ वोकल फॉर लोकल के लिए यह समाज लगातार प्रयत्नशील भी दिख रहा है।

कहा जाता है कि – हर एक लोकचित्रकला शैली, अपनी एक अलग पहचान और कहानी रखती है। इनमें इस्तेमाल होने वाले रंग, आकृतियाँ और विषय सब कुछ प्रतीकात्मक होता था और एक खास अर्थ रखता था। ये लोकचित्रकलाएं कभी हमारे घरों की दीवारों, कपड़ों और त्योहारों का अभिन्न हिस्सा हुआ करती थी। लेकिन आज, आधुनिकता की दौड़ में ये धीरे-धीरे पीछे छूटती जा रही हैं। शहरीकरण, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव और इन कलाओं के सीखने और आये बढ़ाने के अवसरों की कमी ने इन्हें हाशिए पर धकेल दिया है।

जो कलाकार इन कलाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ते हुए आए थे, उनमें से कई अब नहीं रहे, और नई पीढ़ी के पास इसे सीखने का न तो समय है और न ही प्रोत्साहन।

यह सिर्फ कला का नुकसान नहीं है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत का भी नुकसान है। जब ये कलाएं विलुप्त होती हैं, तो हम अपनी जड़ों से कट जाते हैं और अपनी पहचान खो देते हैं। शहरीकरण और पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण लोगों की रुचि पारंपरिक कलाओं से हट रही है। घरों की दीवारों पर मिट्टी से बनी चित्रकला की जगह अब आधुनिक पेंटिंग्स और वॉलपेपर ने

ले ली है। बेहतर अवसरों की तलाश में ग्रामीण कलाकार शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, जिससे गांव में इन कलाओं को आगे बढ़ाने वाले लोगों की कमी हो रही है।

नई पीढ़ी के पास तो इन पारंपरिक कलाओं को सीखने के लिए पर्याप्त अवसर और प्रोत्साहन नहीं है। गुरुओं और संरक्षकों की कमी के कारण यह ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होने में बाधा आ रही है। हरियाणा की कुछ प्रमुख लोकचित्रकला शैलियों जो अब कम देखने को मिलती हैं या विलुप्त होने के करीब हैं।

❖ सांझी :-

यह हरियाणा की एक पारंपरिक लोक चित्रकला है जिसमें आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवरात्रि तक युवा लड़कियां और गांव की महिलाएं घर की दीवारों पर गोबर और मिट्टी से देवी शांति की आकृति बनाती हैं। इसे विभिन्न रंगों और आभूषणों से सजाया जाता है और रात में दीपक जलाकर सांझी के गीत गाए जाते हैं। लेकिन अब यह बहुत कम देखने को मिलती है।

❖ देवउठनी एकादशी :-

यह दीवार और जमीन पर बनाई जाने वाली एक प्रकार की लोक चित्रकला थी, जिसके बारे में हमें बहुत ही कम देखने को मिलता है, लेकिन यह हरियाणा की पारंपरिक कला का हिस्सा रही है। हालांकि हरियाणा की कुछ अन्य पारंपरिक कलाएं जैसे की फूलकारी (एक प्रकार की कढ़ाई) और मिट्टी के बर्तन अभी भी कुछ हद तक जीवित हैं। लेकिन उन्हें भी अब आधुनिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

हरियाणा की लोक चित्रकला जो पुनर्जीवित करने के लिए जागरूकता बढ़ाना, कलाकारों को आर्थिक सहायता और प्रशिक्षण प्रदान करना, और इन कलाओं को बढ़ावा देने के लिए मंच उपलब्ध कराना महत्वपूर्ण है। यदि इन कलाओं को संरक्षित नहीं किया गया तो हरियाणा की सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हमेशा के लिए खो जाएगा।

उपसंहार

लोक कला का हमारे जीवन में विशेष महत्व है और इसका हमारे जीवन से अटूट संबंध है। हर एक क्षेत्र की लोक कला अपने-अपने ढंग की होती है। लोक कला को किसी कलाकार की ही कला नहीं माना जाता, बल्कि उसका हमारे जैसे लोगों से भी गहरा संबंध है। लोक कला तो हमारी परंपरा का भी महत्वपूर्ण अंग है लोक कला की कहानी तो बहुत पुरानी है जो हमारे जीवन की चित्र कहानी से जुड़ी है, जोकि मानव जीवन के कार्य स्वरूप में देखी जा सकती है।

यह हमारे रोजाना जीवन में सम्मिलित है, जिसे हम अपने घरों में, त्योहारों में व उत्सवों, शादी, विवाह आदि पर अपने हाथों से बनाते हैं। इन्हें हम विवाह आदि प्रयोजनों पर समय के अनुसार प्रयोग में लाते हैं, जिस कारण से लोगों की दिनचर्या, त्यौहार अपने-अपने ढंग के होती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि लोक कला हमारी संस्कृति के प्रारंभ से चली आ रही है। गांव के लोग तो हर एक त्योहारों में विश्वास रखते हैं। गांव में त्योहारों के अनुसार घरों में चित्र बनाते हैं। अहोई अष्टमी पर अहोई माता का चित्र, देवउठनी ग्यास पर ग्यास का चित्र, नवरात्रों में सांझी का चित्र आदि। ये सब घर की महिलाएं व बेटियां संपन्न करती हैं।

इस शोध का उद्देश्य गांव में जो त्यौहार व अवसरों पर लोक कलाएं बनाई जाती हैं, उन पर प्रकाश डाला गया है। समय के परिवर्तन के कारण ये लोक कलाएं धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। परंतु गांव में कहीं-कहीं अब भी लोक कला का अस्तित्व मौजूद है।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह है कि लोक कला को लुप्त होने से बचाया जाए और लोक कला इसी तरह प्रचलित रहे। हाथों के द्वारा ही लोक कलाओं को बनाया जाए। बाजारों में मिलने वाले कैलेण्डर का प्रयोग न करें, क्योंकि बिना कला के तो हमारा देश व समाज उन्नति नहीं कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मीनाक्षी कासलीवाल "भारती", ललितकला के आधारभूत सिद्धांत, पृ०.सं०. — 4, 5, 8, 10
2. ममता सिंह, दृश्यकला और लोककला के मूल तत्व एवं सिद्धांत, पृ०. सं०. — 208, 210, 212, 214
3. वन्दना वर्मा, भारतीय लोक कला एवं हस्तशिल्प वैभव, पृ०.सं०. 52, 55
4. राम विरंजन, समकालीन भारतीय कला, पृ०. सं०. 45, 47
5. ममता सिंह, दृश्यकला और लोककला के मूल तत्व एवं सिद्धांत, पृ०. सं०. 225, 227, 222, 226

Websites :-

1. <https://sukrajclasses.com> 17 January 2025, 01:01 p.m.
2. <https://webarchive.org> 1 January 2025, 11:14 p.m.

चित्र संग्रह सूची

क्र०. सं०.	चित्र
1	सांझी का चित्र
2	सांझी के लिए मिट्टी लाती हुई महिला
3	सांझी के टुकड़ों को हल्दी से सजाती हुई महिला
4	शेर पर विराजित सांझी माता का चित्र
5	सांझी के आसपास लगाने वाली टिकड़ीयाँ
6	सांझी के आसपास बनाए गए चित्र
7	अहोई अष्टमी का चित्र
8	अहोई अष्टमी पर लगाया हुआ कैलेण्डर
9	होली की पूजा पर बनाया हुआ चित्र
10	रक्षाबंधन पर घर के मुख्य द्वार पर बनाया हुआ चित्र
11	दशहरे का चित्र
12	करवाचौथ पर महिलाओं द्वारा बनाया हुआ चित्र
13	दीपावली पर रंगोली बनाई हुई
14	दीपावली पर हटठी रखी हुई
15	गोवर्धन चित्र
16	देवउठानी एकादशी पर महिलाओं द्वारा बनाया गया चित्र
17	देव उठानी एकादशी पर मिट्टी के हारे को सजाती हुई महिला
18	चुल्हे को सजाती हुई महिला
19	महिला द्वारा मिट्टी से बनाया हुआ चुल्हा
20	पण्डितों द्वारा हवन करने से पूर्व का चित्र
21	घर की प्रतिष्ठा करने से पूर्व पण्डितों द्वारा चावल से बनाया हुआ चित्र
22	शादियों में फेरों से पूर्व का चित्र
23	शादियों में थापे का चित्र
24	बाण-हल्दात पर बनाया हुआ चित्र
25	मेहंदी का चित्र

चित्र सूची



सांझी का चित्र



सांझी के लिए मिट्टी लाती हुई महिला



सांझी के टुकड़ों को हल्दी से सजाती हुई महिला



शेर पर विराजित सांझी माता का चित्र



सांझी के आसपास लगाने वाली टिकड़ीयाँ



सांझी के आसपास बनाए गए चित्र



अहोई अष्टमी का चित्र



अहोई अष्टमी पर लगाया हुआ कैलेण्डर



रक्षाबंधन पर घर के मुख्य द्वार पर बनाया हुआ चित्र



दशहरे का चित्र



करवाचौथ पर महिलाओं द्वारा बनाया हुआ चित्र



दीपावली पर रंगोली बनाई हुई



दीपावली पर हटती रखी हुई



गोवर्धन चित्र



देवउठानी एकादशी पर महिलाओं द्वारा बनाया गया चित्र



देव उठानी एकादशी पर मिट्टी के हारे को सजाती हुई महिला



चुल्हे को सजाती हुई महिला



महिला द्वारा मिट्टी से बनाया हुआ चुल्हा



पण्डितों द्वारा हवन करने से पूर्व का चित्र



घर की प्रतिष्ठा करने से पूर्व पण्डितों द्वारा चावल से बनाया हुआ चित्र



शादियों में फेरों से पूर्व का चित्र



शादियों में थापे का चित्र



बाण-हल्दात पर बनाया हुआ चित्र



मेहंदी का चित्र

“कला में सिरेमिक कला का योगदान”

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्षा एवं निर्देशिका

श्रीमती संतोष

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय

शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री

अनीता रानी

स्नातकोत्तर

(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्डा)

2024–2025

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **अनीता रानी**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **कला में सिरेमिक कला का योगदान** " शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक :

एसो. प्रोफेसर
श्रीमती, संतोष

प्रमाण पत्र

मैं अनीता रानी, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध “कला में सिरेमिक कला का योगदान” विषय मेरे स्वयं के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है। जो सामग्री प्रयोग की गई है, उनको दिखाने का प्रयास किया गया है।

निर्देशिक

महेश धीमान

शोधकर्त्री

अनीता रानी

आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)
कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **अनीता रानी**, अनुक्रमांक न0. **130249910**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिंग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने “ **कला में सिरेमिक कला का योगदान** ” शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु-शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक:

प्राचार्या
डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

कला हमारे जीवन में तरह – तरह रंगत लेकर आती है। इसे हर किसी के जीवन में कला होना बहुत जरूरी माना गया है। जब मैंने कुम्हार को मिट्टी से विभिन्न तरह, की कलाव आकृति को बनाते देखा था। तब से मैंने कला को अपने मन में बसा लिया है। कला में सिरेमिक कला के एक खास हिस्से को दर्शाती है। मैंने मिट्टी से बनते बर्तनों में कुम्हार के स्नेह पूर्ण व्यवहार को देखा है। किस तरह, से कुम्हार मिट्टी के बर्तनों को बनाता है और उनको सुखा कर फिर पकाता है।

भारत में विभिन्न राज्य में मिट्टी की कला को देखा जा सकता है और उन में से एक हरियाणा भी है और जहां पर मैंने मिट्टी के बर्तनों को बनते देखा तो उनको नए रूप में देखा और मिट्टी के बर्तनों के साथ मैंने यूट्यूब पर व अन्य जगह पर सिरेमिक के बर्तनों को बनते देखा है। सिरेमिक की मूर्तियों को बनते व बाजार में बिकते देखा है।

अतः मैंने अपने इस लघु को मैंने छह अध्यायों में विभाजित किया है। जो इस प्रकार है :-

- ➔ प्रथम अध्याय – इस अध्याय में कला, व लोक कला का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।
- ➔ द्वितीय अध्याय – इस अध्याय में कला और लोककला में सम्बन्ध को दिखाया गया है।
- ➔ तृतीय अध्याय – इस अध्याय में सिरेमिक कला के बारे में बताया गया है।
- ➔ चतुर्थ अध्याय – इस अध्याय में सिरेमिक कला के इतिहास को दिखाया गया है।
- ➔ पंचम अध्याय – इस अध्याय में सिरेमिक बनाने के तकनीक (प्रक्रिया) के बारे में बताया गया है।
- ➔ षष्ठम अध्याय – इस अध्याय में भारत में विभिन्न स्थानों पर सिरेमिक का प्रयोग को दिखाया गया है। और साथ में चित्र परिचय के बारे में बताया गया है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि विद्वान समीक्षक उन्हें अलक्ष्य करने की कृपा करें।

इस शोध पत्र में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उसके लिए केवल मैं दोषी हूँ। अंत में इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

अनीता रानी

शोधकर्त्री

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उल्लेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहबाद मारकंडा, के ललित कला विभाग, की अध्यक्ष आदरणीय श्रीमति संतोष जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर लघुशोध कार्य करने में सहयोग और प्रेरणा दी।

इसके साथ-साथ मैं अपने परिवार जनों का भी हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई।

मैं अपने गुरु आदरणीय एसि प्रौ० श्री महेश धीमान व आदरणीय मैडम सिमरन कौर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे।

मैं प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ० श्रीमती आरती त्रेहन जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पूरे शोध कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया व ललित कला विषय में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रारंभ कर हमारे चिरलंघित स्वप्न को साकार करने का मौका प्रदान किया।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मानूंगी।

अनीता रानी

शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
आभार	
प्रथम अध्याय:	01 – 08
– कला	
– लोक कला	
द्वितीय अध्याय :	09 – 12
– कला और लोककला में सम्बन्ध	
तृतीय अध्याय:	13 – 17
– सिरेमिक की कला	
चतुर्थ अध्याय:	18 – 31
– सिरेमिक कला का इतिहास	
– चीनी मिट्टी के बर्तनों का इतिहास	
पंचम अध्याय :	32 – 39
– सिरेमिक बनाने की प्रक्रिया	
षष्ठम अध्याय :	40 – 44
– भारत में विभिन्न स्थानों पर सिरेमिक का प्रयोग	
– चित्र परिचय	
– उपसंहार	45 – 45
– संदर्भ ग्रंथ सूची	46 – 46
– चित्र संग्रह सूची	47 – 48
– चित्र सूची	49 – 71

प्रथम अध्याय

- कला
- लोक कला

कला

कला और लोक कला क्या है !!

“कला एक प्रकार का नशा है जिससे जीवन की कठोरता से आराम मिलता है”।

मनुष्य एक सभ्य प्राणी है। बहू समाज में रहता है। वह ऐसी ऐसी कलाएं करता है, जिससे उसका मन प्रसन्न होता है। महात्मा गांधी के अनुसार “एक अनुभूति को दूसरे तक पहुंचाना ही कला है।”

कुछ विद्वानों के अनुसार कला शब्द की उत्पत्ति ‘संस्कृत’ भाषा से हुई है। संस्कृत में कला शब्द का अर्थ है “प्रेरित करना”। कला मानव संस्कृति की उपज है। कला का शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु का छोटा अंश। कुछ विद्वान कला की उत्पत्ति कथातु में मानते हैं। कला के माध्यम से अदृश्य वस्तु को दृश्य की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

कला का इतिहास बहुत पुराना है। समय के साथ-साथ जैसे मानव ने विकास किया उसी प्रकार कला का भी विकास होता चला आया है। भारतीय चित्रकला की प्रधानता को अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है।

कला क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर पर बड़े-बड़े विद्वानों में बहुत मतभेद पाया जाता है। कला एक ऐसी वस्तु है जो हवा और मिट्टी की तरह हनारे चाओं और सर्वत्र व्यापक है। कुछ सुप्रसिद्ध विद्वानों के अनुसार कला का परिभाषा :-

- कला नशा है जिससे जीवन की कठोरताओं का आराम मिलता है।
- नंद लाल बसु के अनुसार, “कला का उद्देश्य एक ऐसे कलाकार निर्माण करना ही नहीं है बल्कि कला बोध और कलात्मक व्यवहार को विकसित करना है।”
- कला एक ऐसी शक्ति है जिससे कला कार किसी भी वस्तु को एक सुन्दर आकार प्रदान कर सकता है।
- आचार्य राम शुक्ल के अनुसार, “एक ही अनुभूतियों को दूसरे तक पहुंचा देना ही कला है”।
- वाचस्पति गौरोला के अनुसार, “अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही कला है”।
- महात्मा गांधी जी कहते हैं कि— “एक अनुभूति को दूसरी तक पहुंचाना ही कला है।”

इन सब परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि कला सत्य की सुंदर अभिव्यक्ति है। इसका सामान्य अर्थ सौंदर्य रूप की रचना करना है। किसी भी कला में रूप और रचना दोनों एक साथ कार्य करते हैं, तो कलात्मक अभिव्यक्ति उजागर हो पाती है।

कला हमारी भावनाओं को प्रकट करती है तथा उन भावनाओं को दूसरों तक पहुंचाती है। हर एक सभ्यता में भावनाओं को प्रकट करने की इच्छा ही कला को जन्म दिया। धार्मिक भावनाओं के कारण मंदिर, मस्जिद, और गुरुद्वारे बने, मनोरंजन के लिए सिनेमाघर बने, दुख के लिए यादगार ताजमहल बने। कला के माध्यम से ही हमें इन सब विषयों से संबंधित जानकारी मिली।

कला के माध्यम से ही हम उन युग के लोगों के विषय में जान सकते हैं, जैसे— बर्तन, खिलौने, कपड़े आदि। गांधी जी ने कहा है कि सच्ची कला वही है, जो आत्मा का शीशा है। कला का सबसे आसान और सरल अर्थ है कि कोई भी हाथ से अच्छे ढंग से किया जाने वाला काम। इस अर्थ के आगे जाकर दो हिस्से हो जाते हैं।

प्रथम एक तो यह काम जो हमारे प्रतिदिन के लिए जैसे :— मिट्टी का काम, लकड़ी का काम, चखे का काम आदि। दूसरे वे काम हैं जो हमारे प्रतिदिन के कार्यों में तो सहायक नहीं होते परंतु उनका हमारे मानसिक विकास और सौंदर्य चिंतन पर गहरा प्रभाव मिलता है। इस प्रकार के नामों में चित्रकला, संगीत, कविता, महाकवि या आदि आ जाती हैं।

हम हाथ से कला का काम करके अपने विचारों के अनुसार किसी भी वस्तु का निर्माण कर सकते हैं। कला हमें आंतरिक आनंद देती है। कला हमारे मन को संतुष्टि मिलती है। कला के द्वारा हमारे मस्तिष्क का निर्माण होता है, जीवन रोचक बनता है।

कला मनुष्य के मन को हल्का कर देती है। कला के बिना ना तो चित्रकारी होती है, ना फिल्में बनती और ना ही सजावट की वस्तुएं होती।

कला हमें उन्नति की ओर ले जा रही हैं। कला हमारे जीवन का अटूट अंग बन चुकी हैं। दूसरे शब्दों में हम ऐसा कह सकते हैं कि “जीवन की अस्त — व्यवस्था को व्यवस्थित रूप देना ही कला है।

➤ शिक्षा में कला का स्थान :—

नंदलाल बसु :-

कला शिक्षा का उद्देश्य कलाकार का निर्माण नहीं बल्कि कला बोध और कलात्मक व्यवहार को विकसित करना है। इसके लिए अलग से कला का विषय जरूरी नहीं है, बल्कि हर विषय के शिक्षण में शाला की साज-सज्जा में और दैनिक व वार्षिक गतिविधियों में कलात्मक का पुट समाहित करना अधिक उपयोगी है। नंदलाल बसु के यह विचार आज भी उतने मौजूद हैं जितने वे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद थे।

आधुनिक भारतीय कला के सूत्रधारों में नंदलाल बसु अग्रणी थे। उनके अनुसार स्कूलों में कला शिक्षा का उद्देश्य कला के संबंध में एक पारखी नजर विकसित करना और जीवन के हर पहलू में कला बोध का अंत करण करना है। चाहे टेबल पर अपना समान सजाना हो या कपड़े सुखाने के लिए टांगना हो या उपयोगी सामान बनाना या उसका रंग रोगन हो।

➤ कला शिक्षण की जरूरत और प्राथमिक उद्देश्य:-

कला शिक्षण के अभाव में न केवल हमारी वर्तमान जीवन यात्रा सुंदर हो गई बल्कि हमारे अतीत की रस सृष्टि द्वारा निर्मित रचनाओं की सौंदर्य विधि से भी हम वंचित किए जा रहे हैं। हम लोगों की परखने की दृष्टि तैयार नहीं हो सकी। फलस्वरूप, देश में चारों ओर बिखरी चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापना के सौंदर्य को समझने के लिए विदेशियों की आवश्यकता पड़ी। आधुनिक कलाकृतियों का भी जब तक विदेशी बाजारों में मूल्यांकन नहीं हो जाता तब तक हमारे यहां उनका आदर नहीं होता।

कला शिक्षण की पहली मांग है कि प्रकृति को एवं अच्छी कलात्मक वस्तुओं को श्रद्धा सहित देखा जाए, उनके निकट रखा जाए और जिन व्यक्तियों का सौंदर्य बोध जागृत है, उनसे कुछ संबंध में चर्चा करते कलाकृति के सौंदर्य को समझा जाए। विश्वविद्यालयों का यह कर्तव्य है कि अन्य विषयों के साथ-साथ वे कला के विषयों को भी पाठ्यक्रम में रखें। इससे विद्यार्थियों की अवलोकन शक्ति का विकास होगा।

लोक कला

➤ लोक कला का अर्थ :-

लोक कला दो शब्दों से मिलकर बना है। लोक, कला। लोक कला का अभिप्राय देश के संपूर्ण समाज से है। जर्मनी में यह 'अवसा' के रूप में प्रचलित है। ऋग्वेद में लोक कला शब्द का अर्थ स्थान मिलता है। संस्कृत में लोक शब्द का अर्थ है देखने वाला। अतः समस्त जन समुदाय जो कार्य को करता हो उसे लोक कहलाएगा। लोक का अभिप्राय देश के संपूर्ण समाज से है। इस प्रकार संपूर्ण समाज में व्याप्त कला को ही लोक कला कहा जाता है। लोक कला को कहानी मानव जीवन की सचित्र कहानी है, जो जन्म से मृत्यु तथा सुबह से शाम तक किए जाने वाले मनुष्य के हर कार्य में देखी जा सकती है।

लोक कला हमारे जीवन पर एक अभिन्न अंग है। यह हमारे प्रतिदिन के जीवन में सम्मिलित है, जिसका हम अपने घरों में अपने त्योहारों में अवसरों पर अपने रस में तथा अनुष्ठानों में और अपने अभिव्यक्ति के साधनों में प्रयोग करते हैं। लोक कला साधारण जीवन में पाई जाने वाली कला है। कई बार अनजाने में लोग ऐसी वस्तुओं का निर्माण कर देते हैं जो लोक कला के अंतर्गत आते हैं। उनकी रचना के लिए हमें तरह-तरह की कला विधाओं की खोज नहीं करनी पड़ती। लोक कलाकार कला का ज्ञान पुरानी पीढ़ी से दिन प्रतिदिन बनाने वाले घर आंगन के चित्रों को देखकर करता है।

लोक कला का मानव जीवन से गहरा सहज एवं स्वभाविक संबंध है तो लोक कला की प्रणाली मानव संस्कृति के प्रारंभ से ही चली आ रही है। प्रत्येक क्षेत्र की लोक कला अपने ही ढंग की होती है। इसमें ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति बड़े सशक्त रूप से होती है इसका विकास किसी आयोजित प्रयास से अपने आप होता है।

➤ परिभाषा:-

किसी देश की अनेक जातियों और जनजातियों में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही पारंपरिक कला को लोक कला कहा जाता है।

उदाहरण :- कलमकारी, कांगडा, डोंग, चित्र, यमुना घाट तथा बरली, तजावुर भारत की प्रमुख लोक कलाएं हैं।

मूल :- लोक कला के काम ज्यादातर गुमनाम मूल के हैं। उनके

निर्माताओं ने संकरण अर्थों में सौंदर्य या कलात्मक प्रशिक्षण नहीं लिया है। 19वीं सदी के अंत में कला के विज्ञान द्वारा लोक कला की खोज ऐतिहासिक और संस्कृति के सौंदर्य के रूप में मूल्यांकन भाग के रूप में हुई थी, जो कि औद्योगिक वाले यूरोपीय समाजों में इस घटना के बढ़ते लुप्त होने के साधन था। मध्य और पश्चिमी यूरोप में 19वीं शताब्दी के अंत में शिल्प पर परंपराओं के बढ़ती छवि वह उनके काम के आधार पर लोक कला से वंचित किया।

आदिमानव ने सिद्धांतों के बाद लोक कला के साथ-साथ गैर पूरी यूरोपीय देशों की तथाकथित आदि कला उस समय विशेष रूप से आधुनिक कलाकारों द्वारा विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती थी।

➤ विशेषताएं :-

लोक कला की विशेषता यह है कि यह अकादमिक कला या ललित कला से प्रभावित नहीं है और कई मामलों में पेशेवर के रूप में कलाकार द्वारा संभाला उच्च श्रेणी की कला या कला का काम के रूप में कुल आत्मक का संरक्षण की खरीद शामिल नहीं है। लोक कला एक उपयोगितावादी और सौंदर्य चरित्र के साथ कला है जो एक निश्चित लोक परंपरा के भीतर उत्पन्न हुई। यह सामान्य लोगों द्वारा की जाने वाली कला है जो एक छोटे समूह के लिए है और बिना महान कलात्मक दिखावा के है। लोक कलाएं संस्कृति का श्रृंगार करती हैं वे मानव के जीवन को प्राणों के रस से ओतप्रोत करती हैं। चुनौतियों से जूझते हुए समाज में उर्जा व चेतना प्रदान करती हैं। लोक कला का जन्म भावनाओं और परंपराओं पर आधारित है क्योंकि यह जन समाज के अनुभूति की अभिव्यक्ति हैं। लोक कलाओं को कर्म से तीन भागों में विभक्त किया जा किया गया है।

1. धार्मिक कला

2. अनुष्ठानिक कला

3. अलंकारिक कला

3. डॉ०. सन्तराम देशवाल, हरियाणा संस्कृति एवं कला, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, पृ०. सं०. 39

4. डॉ०. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ०. सं०. 8, 21

लोक कला शब्द का प्रयोग पूर्व गृह या संदर्भ के अनुसार भिन्न अर्थों में किया जाता है जिसे कला लोक कला का सच्चा स्वरूप कहा है। यह समझना मुश्किल पड़ता है देखा जाए तो लोक कला का अर्थ होता है लोक।

यानी मानव जाति की कला और इस विचार से अधिक कला के लेकर आधुनिक कला तक की सभी कलाओं को कभी ऐसी कलाकृतियां दिखाई देती हैं। ग्रामीण जीवन की धार्मिक एवं सौन्दर्यात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लोक कलाएं प्रचलित हुईं। कुछ महान विद्वानों के अनुसार लोक कला का आरंभ आदिकाल से है।

लोक कला के केवल कलाकार की कला ही नहीं है। शारीरिक जरूरतों की भान्ति मनुष्य की कुछ मानसिक जरूरत भी होती है। जिन की पूर्ति सौंदर्य रूप से होती है।

सुंदरता का आनंद उठाने की इच्छा ने ही कला को जन्म दिया है। वह कला जिसे आदि कला से ही अनेक विद्वानों ने तराश कर निकाला जो आगे चलकर हमारी परंपरा का अंग बनकर विकसित हुई, वह लोक कला कहलाई।

लोक कला किसी निश्चित सिद्धांत वह निश्चित नियमों पर आधारित नहीं है। लोक कला सदैव लोकमानस से प्रेरणा और पोषण प्राप्त करती रही हैं। यह कला बिना किसी प्रलोभन संकेत अथवा शिक्षा के निरंतर आगे बढ़ती रही है।

लोक कला को लोकगीतों के माध्यम से भी बहुत सरलता पूर्वक समझा जा सकता है, क्योंकि लोकगीतों में लोक विश्वास रीति-रिवाजों एवं परंपराओं के बहुत ही स्पष्ट विवरण प्रपत्र प्राप्त होते हैं। सन 1846 ईस्वी में विलियम जॉन थॉमस ने इस साहित्य को फोक लो नाम दिया। लोक कला के कुछ उदाहरण हैं जैसे:—मिट्टी के बर्तन, पात्र, वस्त्र, नाव, मधुमक्खी पालने का संदूक, तंगी, पतंग, वाद यंत्र, क्षत्रिय खिलौने आदि।

➤ लोक कला का स्वरूप:—

जन साधारण के जीवन का स्वभाव व रुचियां एवं प्राकृतिक होती हैं, ये ही लोग कला के कल्पना विस्तार में अभिव्यक्ति होती है। अतः कहा जा सकता है कि हृदय की सहजता, सरलता लोक कला के प्राण हैं। जन्मजात कौशल पर आधारित लोक कला के लिए उपयुक्त कला सामग्री कहीं बाहर से नहीं लानी पड़ती बल्कि हर आंगन में मिल जाती है। इसी सहज सुलभसामग्री से लोक कलाकार

अपने सीधे साधे लोगों के लिए चित्रांकन करता है। लोक कला को किसी समीक्षक के प्रवाह होती है और ना ही किसी प्रकार की आवश्यकता, वह तो बिना किसी स्वार्थ भावना के स्वान्तः, सुखय, साधना करता है। यह अलग बात है कि घर की सुख समृद्धि उसे लोक कला के पुरस्कार स्वरूप मिलती है।

द्वितीय अध्याय

➤ कला और लोककला में सम्बन्ध

कला और लोक कला में संबंध

निःसंदेह कला एवं लोक कला का घनिष्ठ संबंध है। कुछ लोगों ने तो सभी कलाओं को कौशल की एकाग्रता आत्मा विसर्जन आदि के धरातल पर सम्मान मानते हुए कहा है “विभिन्न कला व्यापार अनुभूत है। एक भाव से उत्पादन सामग्री के रूप अलग-अलग हैं, पर कौशल की एकाग्रता के धरातल पर आराम विसर्जन के धरातल पर कला को चित्र संज्ञा के रूप में देखने के धरातल पर, और कलाकृतियों को जीवन के उत्पादन के रूप में प्रयोग जीत मानने के धरातल पर सभी एक हैं।”

लोगों का मानना है कि चित्र संज्ञास अन्यथाकरण और रूपांतरण के सिद्धांत देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि कला और लोक कला में कोई अंतर नहीं है। आधुनिक संदर्भों में जब हम कला-चिंतन करते हैं तो इसके दो प्रकार हमारे सामने आते हैं।

1. कला
2. लोक कला

यहां कला का अभिप्राय अभिजात्य कला है। इस संदर्भों में कला और लोक कला के बीच एक विभाजक रेखा साफ दिखाई देती है। कला की प्रविधि और तत्वों में संयोजन जटिलता होती है इसके लिए निरंतर अभ्यास करना पड़ता है। लोक कला एक पूरी कथा को लेकर चलती है। इस कथा को एक ही चित्र में एक ही स्थान पर प्रतीकात्मक रूपों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है और दूसरी ओर कला में प्रेम कथा की एक ही घटना का चित्रांकन होता है। लोक कला का आश्रम दाता स्वयं लोकमानस होता है और यह साधारण जन्म के संरक्षण में पलती-बढ़ती है। मगर अभिजस्य कला के संरक्षण एवं आश्रयदाता राजा नवाब या धाविक होते हैं।

✓ विभिन्न तरह की लोक कलाएं :-

1. कुंभ कलाएं :-

नव पाषाण युग में जब से हरियाणा में खेती-बाड़ी आरंभ हुई, तभी से मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का भी जन्म हुआ। मीताथल, खीसवाल और बालू से उत्पन्न में मिले कच्चे व पक्के मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों से पता चलता है कि सैधवों से पहले भी यहां के लोगों को द्वारा मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग किया जाता था। इन बर्तनों का एक समान रंग इस बात का सबूत है कि पकाते समय आग पर कुमार का पूरा नियंत्रण रहा होगा। लाल गैरु में गोंद जैसा पदार्थ मिलाकर रंगे गए इन मोटे व भारी बर्तनों पर काली स्याही से आड़ी-टेडी रेखाओं की चित्रकारी के साथ-साथ पीपल, केला, शमी आदि पशुओं तथा मछली, बर्तन आदि जलचरों के सुंदर चित्र उकेरे गए हैं।

2. मृण्मूर्तियां :-

हरियाणा के विभिन्न स्थानों पर हुए उत्खन्न से अनेक मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई। उत्तर वैदिक, सुंग, कुषाण और हर्षकालीन, इन मूर्तियों के कई प्रकार मिलते हैं। प्रथम प्रकार की मूर्तियों में देवी-देवताओं की मूर्तियां आती हैं। देवी की मूर्तियों में लक्ष्मी, चामुंडा, सिंह वाहिनी दुर्गा प्रमुख हैं।

3. बंदनवार :-

अन्य लोक कलाओं में पहले महिलाओं के का द्वारा बनाई जाने वाली उन कलाओं को लेते हैं जो कढ़ाई बुनाई के साथ-साथ चलती रही हैं।

इनमें से कुछ कलाएं तो अब भी अस्तित्व में हैं। बिंदरवाला या बंदनवार इनमें से एक है, जिसे कलात्मक रूप देकर घर के मुख्य द्वार पर बांधा जाता है।

4. रंगीन दरी :-

गांव के 'बुनकर' सदियों ठेठ देसी यंत्रों के बीच सफेद और किनारों पर रंगदार सूत की दरियां बनाई जाती रही है। गांव की महिलाएं बिना किसी खास औजारों के ही रंगीन दरियां व आसन आदि बनाने में माहिर हैं। जब दर्जी सिलाई के लिए कपड़े की कटाई-छटाई करता है तो काफी कतरे बच जाती हैं।

5. पलंग निर्माण कला :-

पुरुष भी एक कुशल कारीगर होने का परिचय देते हैं, जब भी समय मिलता है वह अपने हाथों से पटसन, सनी, मंजू, सूत, सीमेंट व खाली कट्टे के रस्से आदि का बाण बांटकर बड़े कलात्मक पलंग, खाट, पीड़ा-पीढ़ी आदि भरते हैं। हरियाणा के कई गांव में ऐसे कलावंत अब भी हैं जो उत्कृष्ट श्रेणी के पलंग चाट आदि भरते हैं।

6. थापे :-

पुत्र जन्म के अवसर पर भाई-बिरादरी के घरों में मुख्य दरवाजों के दोनों और कोलों पर गेरू से दो-दो थापे लगाए जाते हैं। शादी के अवसर पर भी ऐसा ही किया जाता है। कई स्थानों पर मुख्य मुख्य त्योहारों पर भी थापे लगाने का प्रचलन है। विवाह के अवसर पर फेरों के बाद कन्या पक्ष की महिलाएं अपने दालान में गेरू की सुंदर चित्रकारी करके इसके बीच दुल्हे के दाएं और दुल्हन के बाएं हाथ से एक-2 मेंहदी और एक-एक देसी घी के थापे लगवाए जाते हैं।

7. सांझी :-

आश्विन मास में बनाई जाने वाली सांझी लोक कला का उत्कृष्ट नमूना है। सांझी बनाने के लिए जोहड़ की चिकनी मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। अश्विन मास आरंभ होते ही लोक-बालाएं किसी वृद्धा की देखरेख में मिट्टी में से सांझी देवी का सुंदर मुख-मंडल, हाथ-पैर, शरीर पर सजाई जाने वाले सितारे, नाक, कान, मस्तक, बाला छाती, पैरों में धारण किए जाने वाले आभूषण बनाकर धूप में सुखा लेती हैं।

8. रस्सी निर्माण कला :-

बाण बाटकर विभिन्न प्रकार के रस्सियां बनाना बांधना, रज्जू, रास, मोहरा आदि कलात्मक चीजों का निर्माण किया जाता है। पशुओं के गले में बांधी जाने वाली गल पट्टी-पट्टा केविन्यास के समय महिलाओं के उतरे हुए बालों से 'जतनी' मोर पंखों की चरों आदि को बनाने में यहां के पुरुष कलावंत हैं।

तृतीय अध्याय

➤ सिरेमिक की कला

सिरेमिक की कला

➤ भूमिका :-

सिरेमिक मनुष्य की समाजिक संस्कृति तथा धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोगी वस्तुओं के निर्माण का प्राचीनतम प्राकृतिक साधन है। सिरेमिक से निर्मित भारतीय कलाकृतियों की मुख्य विशेषता इसमें विविधता है। यह अनेकरूपता मृणपत्रों में अधिक पाई जाती है, क्योंकि यह सर्वत्र सरलता से उपलब्ध रही।

निजी उपयोग के लिए निर्मित वस्तुओं तक की सज्जा विभिन्न रंगों अथवा एक ही कलाकृति पर तीन रंगों से की जाती है। इसके अतिरिक्त इन कलाकृतियों को पशु-पक्षी, मानव अथवा विभिन्न जेमिति आकृतियों द्वारा सुसज्जित किया जाता था, जो आज भी आधुनिक का रूप के लिए लोक शैली के रूप में प्रचलित हैं। भारतीय शिल्प परंपरा की निरंतरता का यह एक उत्तेजक तथ्य है। सच में इसे कलांकित नहीं किया जा सकता। इसकी महत्ता सर्व कालीन है, क्योंकि इसमें असत्य का वह मूल निहित है, जिसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य सदियों से प्रयत्नशील रहा है।

उत्पादकता के उद्देश्य से किया गया चाक का आविष्कार ही मानवता का प्रथम चलायमान यंत्र प्रतीत होता है। बाद में अग्नि का प्रयोग आरंभ हुआ। परिणाम स्वरूप मिट्टी के बर्तनों को भट्टी में पकाया जाने लगा। जिससे 'टेराकोटा' कला की उत्पत्ति हुई। तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्वी हड़प्पा वासियों ने मुखाकृति के निर्माण के लिए सांचों का प्रयोग किया। बाद में शुंगु काल में यह लगभग दोगुने आकार में बनाए जाने लगे।

युगकालीन लघु मूर्तियां भी अत्यंत मोहक हैं। जो सिरेमिक के पारदर्शी वस्त्रों से ढकी हुई अनेक आभूषणों से अलंकृत होने पर भी शारीरिक संरचना को दर्शाती हैं। अत्यधिक सावधनी एवं कोमलता से बनाई गई कुषाण-कालीन शंलभजिकाएं अत्यधिक आकर्षक हैं इन्हें आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में मन्त्र के चढ़ावे के रूप में स्थानीय देवताओं पर चढ़ाई जाती हैं। घरेलू आवश्यकताओं की प्रमुख मांग के अतिरिक्त सिरेमिक ने धार्मिक मूर्तियों के निर्माण क्षेत्र में भी प्रतिष्ठा अर्जित की।

➤ सिरेमिक क्या है ::-

मिट्टी के पात्रों को अकार्बनिक और छवदउमजंसपब सामग्री के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, जो हमारे दैनिक जीवन शैली के लिए आवश्यक है। सिरामिक और सामग्री की इंजीनियरों वे लोग हैं जो इन उत्पादों को तैयार कर सकते हैं। इन उत्पादों को बनाया जा सकता है। नए प्रकार के सिरामिक तो उत्पादों का प्रयोग कर सकते हैं और रोजमर्रा की जिंदगी में सिरामिक उत्पादों के लिए विभिन्न उपयोग ढूंढ सकते हैं।

सिरामिक घड़ियों जैसे उत्पादों (क्वार्टर्स ट्यूनिंग कांटे घड़ियों में समय रखने वाले उपकरणों) बर्फ आसमान (पाईजोइलेक्ट्रिक सिरामिक जो तनाव पर वोल्टेज लागू होते हैं) में पाया जा सकता है। ऑटोमोबाइल्स (स्पार्कप्लस और रेसकार्य में पाया जाने वाला सिरामिक इंजन भागों) और फोन लाइनें। वे अंतरिक्ष शटल, उपकरण (तामचीनी कॉटिंग) और हवाई जहाज (नाकशुक) पर भी पाए जा सकते हैं। गठन की उनकी विधि के आधार पर मिट्टी के बर्तन घने या हल्के हो सकते हैं। आमतौर पर वे उत्कृष्ट ताकत और कठोरता गुण प्रदर्शित करेंगे। हालांकि वे प्राकृतिक में अक्सर भंगुर होते हैं।

सिरामिक की विद्युत प्रवाह कार्य सामग्रियों के रूप में कार्य करने के लिए गठित किए जा सकते हैं। बिजली को उनके द्रव्यमान, या इंसुलेटर, बिजली के प्रवाह को रोकने वाली सामग्री को पार करने की अनुमति देता है। कुछ सिरामिक जैसे सुपर कंडक्टर्स, चुंबकीय गुण भी प्रदर्शित करते हैं।

मिट्टी के बर्तन आमतौर पर मिट्टी, मिट्टी के तत्व, पाउडर को जाना जाता है। अक्सर सिरामिक सजावटी, विविध अंधकार पेट जैसी पदार्थों में शामिल होते हैं जिन्हें ग्लेज के नाम से जाना जाता है।

➤ मृत्तिका शिल्प :-

मृत्तिका शिल्प 'सिरामिक' का हिंदी पर्याय है। ग्रीक भाषा में 'केरामिक' का अर्थ है— 'कुंभकार का शिल्प'। अमेरिका में मृद भांड दुर्लभनीय पदार्थ, कांच, सीमेंट, एनैमल तथा चूना उद्योग मृत्तिकाशिल्प के अंतर्गत हैं। गढ़ने तथा सुखाने के बाद अग्नि द्वारा प्रबलित मिट्टी का अन्य सुघरम पदार्थ की निर्मित को यूरोप में 'मृत्तिका शिल्प' उत्पादन कहते हैं। मृत्पदार्थों के निर्माण उनकी तकनीकी लक्षण तथा निर्माण में प्रयुक्त कच्चे माल से संबंधित उद्योगों को हम मृत्तिकाशिल्प का सिरामिक्स कहते हैं।

मिट्टी के उत्पादन अनेक क्षेत्रों में जैसे भवन निर्माण तथा सजावट, प्रयोगशाला, अस्पताल, विद्युत उत्पादन और वितरण, जल विकास, मल निर्यास, पाठशाला, ऑटोमोबाइल तथा वायुमान आदि में काम आते हैं।

➤ सिरामिक परिभाषा और रसायन विज्ञान :-

‘सिरामिक’ शब्द ‘केरामिकोस’ से आया है। जिसका अर्थ है— मिट्टी के बर्तनों। जबकि शुरुआती मिट्टी के बर्तन, मिट्टी के बर्तन थे। इस शब्द में कुछ शुद्ध तत्वों सहित सामग्री का एक बड़ा समूह शामिल है। एक सिरामिक, एक अकार्बनिक, अधातु ठोस है, जो आमतौर पर एक ऑक्साइड, नाइट्राइड ऑक्साइड तथा कार्बन पर आधारित होता है।

जिसे उच्च तापमान पर निकाल दिया जाता है। मिट्टी के पात्र को कम करने के लिए फायरिंग से पहले मिट्टी के पात्र को चमकाया जा सकता है। जिसमें सरसता होती है और एक चिकनी अक्सर रंगीन सतह होती है। कई सिरामिक में परमाणुओं के बीच आयनिक और संहासंयोजक बांधों का मिश्रण होता है। परिणाम स्वरूप सामग्री क्रिस्टलीय, अर्ध-क्रिस्टलीय या विटेरस हो सकती है। समान संरचना वाली अनाकार सामग्री को आमतौर पर ‘ग्लास’ कहा जाता है।

चार मुख्य प्रकार के चीनी मिट्टी के बर्तन, संरचनात्मक सिरामिक, तकनीकी चीनी मिट्टी की चीजें और अपवर्तक हैं। व्हाइटवेयर में कुकवेयर, पॉटरी और वॉल शामिल हैं। संरचनात्मक सिरामिक में ईंट, टाइल और छत टाइल, फर्श टाइल शामिल हैं।

तकनीकी सिरामिक को विशेष ठीक, उन्नत या इंजीनियरिंग सिरामिक के रूप में भी जाना जाता है। इस वर्ग में बीयरिंग विशेष टाइल्स (जैसे अंतरिक्ष यान, टीट परीक्षण, बायोमेडिकल, प्रत्यारोपण, सिरामिक ब्रेक, परमाणु इंधन, सिरामिक इंजन और सिरामिक कॉस्टिंग शामिल हैं)। रेफ्रैक्ट्रीज कैकल्स, लाइन भक्तों और गैस फायरप्लेस में विकिरण गर्मी बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाली सिरामिक हैं।

➤ सिरामिक के प्रकार:-

सिरामिक : एक अकार्बनिक अधात्विक ठोस :-

सिरामिक एक अकार्बनिक व आध्यात्मिक ठोस है, जिसका निर्माण धात्विक और अधात्विक पदार्थों से होता है। इसकी सतह को उच्च तापमान पर गर्म करके कठोर, उच्च प्रतिरोधकता युक्त व भंगुर बनाया जाता है। सिरामिक के निम्नलिखित दो प्रकार होते हैं:-

1. परंपरागत सिरेमिक :-

परंपरागत सिरेमिक पदार्थों का निर्माण चीका, क्ले पदार्थ या क्वार्टज रेत से होता है। बॉल क्ले (Ballclay), चाइना क्ले (Chinaclay), फेल्डस्पार, सिलिका, डोलोमाइट, कैटसाइट व टैल्क सामान्य पदार्थ हैं, जिनका प्रयोग सिरेमिक निर्माण में होता है।

सिरेमिक निर्माण प्रतिक्रिया में पाउडर का निर्माण सबसे महत्वपूर्ण चरण है। सिरेमिक निर्माण के समय क्षेत्रफल (Surface Area), कणों के आकार का वितरण, कणों के आकार, कणों के घनत्व आदि सामान कारकों को ध्यान में रखा जाता है। परंपरागत सिरेमिक उत्पादों में सिरेमिक बर्तन, सेनेटरी वेयर, टाइल्स, संरचनात्मक चीका उत्पाद व अग्नि-रोधक पदार्थ आदि शामिल हैं।

2. उन्नत सिरेमिक:-

इलेक्ट्रॉनिक, इलेक्ट्रिकल और ऑप्टिकल उद्योगों में सिरेमिक के बढ़ते प्रयोग और चुंबकीय अनुप्रयोग ने इसे पाउडर के रूप में विभिन्न घनत्व वाली एक ठोस व संघन सामग्री (Thick Material) में बदल दिया है।

इसके निर्माण में अत्यधिक उन्नत (Advanced) उत्पादन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। ताकि प्राप्त सिरेमिक पाउडर प्रयास शुद्ध हो और उसे इच्छानुसार आकार में बदला जा सके। इनमें से कई विधियां महंगी भी हैं। अतः उन्नत सिरेमिक उद्योग में पाउडर का निर्माण एक मुख्य लागत कारक (Cost Factor) है।

चतुर्थ अध्याय

- सिरेमिक कला का इतिहास
- चीनी मिट्टी के बर्तनों का इतिहास

सिरेमिक कला का इतिहास

सिरेमिक को हिंदी भाषा में मृत्तिकाशिल्प भी कहा जाता है। ग्रीक भाषा में 'कैरेमिक' को कुंभकार कहा जाता है। अर्थात् ग्रीक भाषा में सिरेमिक का अर्थ है— कुंभकार का शिल्प।

मृत्पदार्थों के निर्माण, उनके तकनीकी लक्षण तथा निर्माण में प्रयुक्त कच्चे माल से संबंधित उद्योग को हम मृत्तिकाशिल्प या सिरेमिक कहते हैं। सिरेमिक का इतिहास भी काफी पुराना है। सिरेमिक से बहुत सारी चीजों का उत्पादन किया जा सकता है जो हम अपने रोजमर्रा की जिंदगी में प्रयोग में लाते हैं। सिरेमिक से सुंदर-सुंदर बर्तनों का निर्माण व उद्योगों में प्रयोग में लाए जाने वाली सामग्री के निर्माण में प्रयोग करते हैं। बिजली नियंत्रण में भी काफी हद तक यह लाभकारी है। बौरी ने मिट्टी के बर्तनों को दो भागों में रखा है :—

- 1 पारगम्य जो जल शोधक हैं।
- 2 अपारगम्य जो अत्यल्प जलशोषक या बिल्कुल अवशोक हैं।

पारगम्य तथा अपारगम्य में दोनों ही काचित या अकाचित हो सकते हैं।

इसका वैज्ञानिक वर्गीकरण इस प्रकार से है :—

- **टेराकोटा (Terracota):—**

1000 से या इससे कम ताप पकाए लाल या पांडु मिट्टी के संस्थ तथा अकाचित बर्तन टेराकोटा है। ईंट तथा छाजन के खपरैल टेराकोटा के उदाहरण हैं।

- **मिट्टी के समान (Earthenware):—**

इस वर्ग में वे समान आते हैं जो सफेद या रंगीन मिट्टी के बने, सुंदर सरंथ तथा लुक (flaze) के आवरण चढ़े होते हैं। इसके उदाहरण फ्रांस के फेयेंस (Faience) मेंजोलिका, लौह पाषाण, चकमक

तथा रॉकिघम पात्र हैं। भारत में खुर्जा के नीले बर्तन, चुनार के बुरे बर्तन, बंगाल पॉटरीज, कोलकाता जामनगर तथा ग्वालियर के सफेद बर्तन इसी श्रेणी में आते हैं।

- पाषाण भांड (Stoneware) :—

सफेद या रंगीन पक्की हुई मिट्टी के काचित वा अपारदर्शी बर्तनों को पाषाण भांड कहते हैं। सफेद बर्तनों पर प्रायः पोर्सिलेन जैसा और रंगीन बर्तनों पर भूरा या पीताभ भूरा कांच होता है। विकास नलों पर लवण कांच होता है।

- पोर्सिलेन :—

श्वेत, अपारगम्य, में काचित तथा काट (section) में परभासक बर्तन इस वर्ग में आते हैं। इस वर्ग के निम्नलिखित उपवर्ग हैं :—

1. कठोर पोर्सिलेन :—

साधारणतया तथा चीनी मिट्टी (Kaolin), सुघट्य (ball clay). स्फटिक तथा फेल्सपार से बनता है। यह पहले 900 से, तथा इससे कम तापमान पर हल्का बदामी तथा दूसरी बार 1300 से या इससे कम तापमान पर पकाया जाता है। इस पर अत्यंत कठोर कांच होता है। रसायनिक पोर्सिलेन और भी कठोर होता है तथा अधिक उच्च ताप पर पकाया जाता है।

2. मृदु पोर्सिलेन :—

इसमें 20 प्रतिशत फ्रंट या कांच, पिक्चर (पोर्सिलेन) के टुकड़े मिले रहते हैं। पहले 1200 से पर हल्का बदामी बाद में 1050 से 1150 से पकाते हैं।

3. अस्थि पोर्सिलेन (Bonechina):—

इसमें कांच फ्रंट आदि के स्थान पर अस्थि राख होती है। अस्थिराख की मात्रा 20 से 40 हो सकती है। इससे पहले 1200 से ऊपर हल्का बदामी तथा दूसरी बार 1000 से 1100 पर पकाते हैं।

4. पैरियन पोर्सिलेन (Perion Porcelain):—

यह साधारणतया चीनी मिट्टी, फेलस्पार तथा अल्प जिंक ऑक्साइड से सफेद आती है। यह एक ही बार 1250 से पर पकाया जाता है तथा बेकाचित होता है। यह अधिकतर खिलौनों में बनाई जाती है।

5. मैग्ना पोर्सिलेन (Magna China):—

मिट्टी फेलस्पार स्फटिक के अतिरिक्त सागर जल से प्राप्त अवक्षित मैग्निशियम हाइड्रोक्साइड से बनाया जाता है। यह बिल्कुल सफेद तथा आकर्षक होता है। इसे पहले उच्च ताप पर तथा दूसरी बार कम ताप पर पकाया जाता है।

6. ऊष्मसह (Refractory):—

इस शब्द से सरंथ तथा अकाच उत्पादों का बोध होता है। ये बहुत ऊंचे ताप पर भी चटखते नहीं। इनका निर्माण अग्निसह मिट्टी और अन्य अग्निसह पदार्थों से होता है। ये उत्पादन भट्टिया बनाने के काम में आते हैं।

7. विशेष उच्च ताप से बर्तन:—

विशेष उच्चतापसह बर्तनों में मिट्टी के स्थान पर कोई अन्य सुघट्य या पदार्थ होता है। ऐल्मुनियम का होता है। अम्ल की अभिक्रिया से ऐल्मुनियम सुघट्म बनाया जाता है। जेट वाहनों में प्रयुक्त होने वाला थर्मेट्स या सर्मेट्स भी ऐसा ही है।

मृत्तिका शिल्प अति प्राचीन उद्योग है। मिट्टी के बर्तन कब से आग में पकाया जाने लगे इसका ठीक पता नहीं लगता। नील की घाटी की खुदाई में उपलब्ध पक्की हुई मिट्टी के बर्तन अनुमानतः

13000 वर्ष पुराने हैं। इंग्लैंड के बेल्जियम तथा जर्मनी की खुदाई से ज्ञात हुआ है कि हिमनदी अवधि में मिट्टी के बर्तन हाथ से बनाए और बाद में पकाए जाते थे। इन सूत्रों से सिद्ध होता है कि 1500 ई० पूर्व से ही मिट्टी के बर्तन चले आ रहे हैं। चिकनी मिट्टी का प्रयोग 15000 ईसवी पूर्व से ही होता आ रहा है।

मिट्टी के बर्तन को 15000 से 13000 ईसवी पूर्व से ही विश्व में सभी जगह फूँका जाता था। मिस्त्र और चीन ऐसा देश है जहां सबसे पहले का चित्र बर्तन उद्योग स्थापित हुआ। ऐसा माना जाता है कि 5000 ईसवी पूर्व विकसित हुआ मिस्टर बेबिलोनिया, एखीरिया, मीडिया की राजधानी है एक्लिआताना, पर्सिया ऐसी जगह है जहां नीली तथा हरी चमक का प्रयोग किया जाता था।

कुम्हार द्वारा चाक की तकनीक का प्रयोग 3000 ई० पूर्व या और भी अधिक समय से विश्व में स्वतंत्र रूप से सभी जगहों पर होता आया है। ईंट, खपरैल, लाल मिट्टी के पाषाण बरतन तथा स्नान कुंड तकनीक का प्रयोग 800 ईसवी पूर्व से हुआ। यह रोम में सबसे पहले हुआ। प्लास्टर सांचे का प्रयोग सोलवीं सदी के सबसे पहले इंग्लैंड में हुआ। उच्चताप शंकु की विधि का प्रयोग सबसे पहले 19वीं सदी में जर्मनी में हुआ। मैग्मा पोर्सिलेना का प्रयोग 1950 ई० में जापान एगो चाइना में हुआ।

● भारतीय मृत्तिका शिल्पः—

मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई में सिंधु घाटी 3000 ईसा पूर्व काल के मिट्टी के बर्तन उपलब्ध हुए हैं। इसमें घरेलू तथा कर्मकांड के सभी प्रकार के बर्तन हैं। बर्तनों पर सुंदर नक्का काशी तथा रंगीन चित्र हैं। उन पर बनी आकृतियां जेमिति तथा बर्तन की आकृति के अनुरूप में हैं। इसके अतिरिक्त पक्की हुई मिट्टी के खिलौने हैं, जो तत्कालीन शिल्प का परिचय देते हैं। भारत के अन्य ऐतिहासिक स्थलों में खुदाई से प्राप्त भग्नाशेष कृतित्व और सौंदर्य में नवपाषाण युगीन विदेशी कक्षा के समक्ष हैं।

मोहनजोदड़ो के काचित बर्तन प्राचीनतम है। कुछ अवशेष तो इतने पुराने हैं कि मेमोसा—पोटामिया या अन्यत्र कहीं भी वैसे उपलब्ध नहीं है। यह उद्योग कुछ काल के लिए भारत से लुप्त हो गया और उस कुषाण काल में उन्हें पुनः पल्लवित हुआ। तब से कंचन कला भी नष्ट नहीं हुई, यद्यपि उसका और उत्कर्ष होता रहा।

हिंदू कुम्हारों की प्रतिभा घरेलू पात्रों के उत्पादन तक सीमित थी। मिट्टी के बर्तनों का खानपान में उपयोग नया होने से काचित पात्रों का विकास नहीं हो सका।

मुसलमानों ने काचित खपरैल तैयार कर कांचन कला का उत्कर्ष किया। 13वीं शताब्दी में चंगेज खां के साथ काचित पदार्थ भारत में आए। कुछ कुम्हार तैमूरलंग के साथ भारत में आकर दिल्ली, मुल्तान, कसूर, युर्जा जयपुर, रामपुर तथा सिंध में बस गए और मिट्टी के नीले बर्तनों का व्यवसाय अपनाया। खुर्जा में ताम-रहित गहरा नीला तथा फिरोजी चित्रों से सज्जित मिट्टी के बर्तन बनाने का उद्योग 1969 ईस्वी तक चला। स्थानीय लाल मिट्टी की निर्मिती ऊपर सफेद मिट्टी का आवरण तकनीकी नाम 'एंगोव' चढ़ाया जाता था। हैदराबाद, बड़ौदा तथा गवर्नमेंट पॉटरी डेवलपमेंट सेंटर, खुर्जा के संग्रहालय में ऐसे मिट्टी के बर्तन हैं। उभरी हुई नक्काशी वाला एक पात्र खुर्जा के पात्रों में आकर्षण का केंद्र है। सिंध भी मिट्टी के काचित बर्तनों के लिए प्रसिद्ध है।

पेशावर, चुनार, निजामाबाद तथा वेल्लोर के मिट्टी के बर्तन तकनीकी दृष्टि से विदेशी प्रभाव से मुक्त थे। पेशावर के कुंभकार एंगोव तकनीक का भी प्रयोग करते थे। लाल मिट्टी के कलेवर को खैबर की सफेद मिट्टी से लेपकर लेड ऑक्साइड के लुक में डुबोया जाता था। परंतु सजावटी बिन चक्के मिट्टी के बर्तनों पर मैग्नीज निर्मित रंग से खाका खींच कर, ताम्र निर्मित रसायन से भर दिया जाता था।

लाल रंग लोह ऑक्साइड से और काला एक काले खनिज से प्राप्त होता था। लोह ऑक्साइड और खनिज खैबर से मिल जाते थे। नीला रंग को कोबाल्ट से प्राप्त होता था। पेशावर का उत्पादन इंग्लैंड, रूस, इंग्लैण्ड, हॉलैंड तथा चीन के कलात्मक उत्पादकों के जोड़-तोड़ का होता था।

मर्तबान, चिलम, लोहे लोहे तथा प्याले लाहौर के प्रमुख उत्पादन थे। मर्तबान का आकार और रूपांकन वर्मा से प्रभावित था। जालंधर में भी कुछ अच्छे काचित बर्तन बनाते थे। गुजरात वाला पहले काट के बर्तनों के लिए जिन्हें कागजी बर्तन कहते थे, प्रसिद्ध था।

प्राचीन दक्षिण भारत के कलात्मक मृत्तिकाशिल्प उत्पादों में नक्काशीदार आभूषणों से सज्जित पक्वमृदांड उल्लेखनीय है। उन दिनों मानव आवासों के निकट पवित्र खाचों में मिट्टी के विशालकाय जीवों को प्रतिष्ठित करने की प्रथा थी। यह जीव आज भी कहीं कहीं देखे जाते हैं। 14वीं शताब्दी के बाद घरों और देवालों में मिट्टी की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा होने लगी। वेलोर में उजली मिट्टी के उत्पादों पर आकर्षक हरे तथा नीले रंग का कांच होता था। दक्षिण भारत में मृदांड के अन्य केंद्र मदुरै, उदयगिरी, सेलम तथा विशाखापट्टनम है।

भारत में उच्च तापीय श्वेत भांडों का निर्माण बीसवीं सदी से प्रारंभ हुआ। श्री डी० सी० मजूमदार ने ग्वालियर में पहली फैक्ट्री स्थापित की। इसके बाद कई फैक्ट्रियां स्थापित हुईं। बर्न एंड कंपनी ने सन् 1909 ई० में टाटा आयरन एंड स्टील वर्क्स की स्थापना के बाद देशभर में उत्तम शहर निर्माण फैक्ट्रियां फैल गईं।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय में भारत में सर्वप्रथम मृदांड उद्योग की शिक्षा की व्यवस्था की सेंट्रल ग्लास एंड सेरेमिक रिसर्च इंस्टीट्यूट खुर्जा सिरेमिक इंस्टीट्यूट कोलकाता गवर्नमेंट सेरेमिक फैक्ट्री गुंडूर तथा गवर्नमेंट डिमांस्ट्रेशन बेलगांव, भारत की प्रमुखता अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थाएं हैं।

चीनी मिट्टी के बर्तन तब से निरंतर विकास दिखाओ पूर्व-वर्ष काल और सबसे महत्वपूर्ण रूपों में से एक हैं। चीनी कला तथा मिट्टी के पात्र विश्वस्थल विश्व दर पर सबसे पहला मिट्टी के बर्तनों के दौरान बनाया गया था। उस पुरापाषाण युग चीनी मिट्टी के बर्तन निर्माण सामग्री जैसे ईंटों और टायलों से लेकर, हाथ से निर्मित मिट्टी के बर्तनों में बोनफाइबर में या फायर किए जाते हैं। भट्टों परिष्कृत चीनी के लिए चीनी मिट्टी शाही अदालत के लिए और निर्यात के लिए बनाया गया माल। चीनी मिट्टी के बर्तन तथा चीनी अविष्कार और चीन के साथ इतना पहचाना जाता है कि इसे अब भी रोजमर्रा के अंग्रेजी उपयोग में चीन कहा जाता है।

सबसे बाद में चीनी मिट्टी के बर्तन यहां तक की बेहतरीन गुणवत्ता के औद्योगिक पैमाने पर बनाए गए थे। इस प्रकार व्यक्तिगत कुमारों के कुछ नाम दर्ज किए गए थे। सबसे महत्वपूर्ण भट्टा कार्यशाला उनमें से कई के स्वामित्व या सम्राट के लिए आरक्षित थे, और बड़ी मात्रा में चीनी निर्यात चीनी मिट्टी के बर्तन के रूप में निर्यात किए गए थे।

राजनयिक उपहार या प्रारंभिक तिथि से व्यापार के लिए शुरू में पूर्वी एशिया और इस्लामी दुनिया के लिए और फिर लगभग 16वीं शताब्दी से यूरोप तक। चीनी मिट्टी के बर्तन का इन क्षेत्रों में अन्य सिरेमिक परंपराओं पर काफी प्रभाव पड़ा है।

उनके लंबे इतिहास से अधिक होने पर चीनी मिट्टी के बर्तन को शाही अदालत में उपयोग करने या वितरित करने के लिए उन लोगों के बीच वर्गीकृत किया जा सकता है, जो एक भेदभाव वाले चीनी बाजार के लिए बनाया गया है और उन लोकप्रिय चीनी बाजारों के लिए या निर्यात के लिए विशेष प्रकार के उपयोगों के लिए केवल कब्रों में भी दफनाने के लिए या वैदियों पर उपयोग के लिए कुछ प्रकार के युद्ध भी किए गए थे।

सबसे पहले चीनी मिट्टी के बर्तन थे, मिट्टी के बर्तन जो चीनी इतिहास भर में उपयोगिता वादी उपयोग के लिए उत्पादन में जारी रहा। लेकिन ठीक माल के लिए तेजी से कम इस्तेमाल किया गया था। पत्थर के पात्र उच्च तापमान पर निकाल दिया जाता है और पानी के लिए स्वाभाविक रूपों से अभैध है, और बहुत जल्दी विकसित किया गया था और अधिकांश अवधि में कई क्षेत्रों में बारीक मिट्टी के बर्तनों के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा। चाय में कटोर जियान बेयर तथा जियान बेयर के दौरान बनाया गया गीत राजवंश उदाहरण है।

चीनी मिट्टी परिभाषा में, 'एक सामूहिक शब्द है जिसमें सफेद और पारभासी सभी चीनी मिट्टी के बर्तन शामिल हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इसे बनाने के लिए क्या सामग्री का उपयोग किया जाता है। चीनी परंपरा चीनी मिट्टी की दो प्राथमिक श्रेणियों को मान्यता देती है। इसके लिए पत्थर के पात्र के बिना, जो चीनी परंपरा में ज्यादातर चीनी मिट्टी के बर्तन के साथ सामूहिकृत है। जैसे शब्द 'एक प्रकार का पौधा' या निकट चीनी मिट्टी के बर्तन ठीक हैं, कॅम्पैक्ट मिट्टी के रूप में हैं।

सिरेमिक प्रकार की सफेद और सुघट्टम मिट्टी है, जो प्राकृतिक अवस्था में पाई जाती है। इसका रासायनिक संघटन जलयुक्त एल्यूमिनोसिलिकेट है। चीनी मिट्टी को 'केओलिन' भी कहते हैं। चीनी भाषा में केओलिन का अर्थ 'पहाड़ी डांडा' होता है। डांडे बहुधा फेल्सपार खनिज के होते हैं और इस फेल्सपार का रासायनिक विघटन होने के कारण चीन मिट्टी या केओलिन इन्हीं डांडों में पाई जाती है, बल्कि उस सफेद और सुघट्टम में मिट्टी को भी कहते हैं जो विघटन के स्थान से बहकर किसी अन्य स्थान में जमा हो जाती है। इसलिए चीनी मिट्टी दो प्रकार की होती है।

एक वह जो विघटन स्थान पर पाई जाती है, तथा दूसरी वह जो विघटन स्थान से लेकर दूसरे स्थान पर जमी पाई जाती है। इस मिट्टी का प्रयोग बर्तन, प्याले, कटोरी, थाली, अस्पताल के काम में लाए जाने वाले सामान, बिजली के पृथक्कारी मोटर गाड़ियों के स्पार्क प्लग, तापसह ईंटे इत्यादि बनाने में होता है। रबर, कपड़ा तथा कागज बनाने में चीनी मिट्टी को पूरक की तरह उपयोग में लाते हैं।

कभी-कभी इसे दवा के रूप में भी खिलाते हैं। जो हैजा इत्यादि बीमारी में केओलिन दी जाती है। भारत में चीनी मिट्टी बिहार की राजमहल पहाड़ियों और पत्थरगड्डा नामक स्थान के पास दिल्ली के आसपास की पहाड़ियों में तथा केरल की त्रिवेंद्रम के पास कुंडारा नामक स्थान में अच्छी और प्रचुर मात्रा में मिलती है। राजस्थान में कई स्थानों पर विशेषकर पहाड़ियों पर मध्य प्रदेश, मुंबई, चेन्नई,

बंगाल और आंध्र प्रदेश में भी चीनी मिट्टी बहुतायत में पाई जाती है। असम और पंजाब में भी चीनी मिट्टी प्रचुर मात्रा में पाए जाने की संभावना है।

चीनी मिट्टी के बर्तनों का इतिहास

जैसा कि आपको मालूम है कि चीन दुनिया भर में चीनी मिट्टी के बर्तनों के बादशाह के नाम से मशहूर है। अंग्रेजी भाषा में चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए चीन शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। शायद, यह चीनी मिट्टी, मिट्टी के इतिहास में उसकी असाधारण कला की सबसे उचित व्याख्या है। चीनी मिट्टी के बर्तनों ने विश्व को एक अपने सुंदर कला से परिचित कराया। चीनी मिट्टी के बर्तनों की कला ने चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग के कुछ प्रसिद्ध शहरों को भी जन्म दिया। चिंग तेहचन शहर इन सब में सबसे विख्यात है और वह चीनी मिट्टी के बर्तनों से सुसज्जित शहर के नाम से जाना जाता है।

चिन तेह चिन, पूर्वी चीन के उत्तर-पूर्वी च्यांग भी प्रांत में स्थित है। इस शहर को इसलिए चीनी मिट्टी के बर्तनों से सुसज्जित शहर की संज्ञा दी गई है, क्योंकि इस शहर के किसी क्षेत्र में चीनी मिट्टी के बर्तन भट्टियों में तैयार ईंटों से निर्मित दीवारें और चीनी मिट्टी के टुकड़ों से बिछाई गई सड़कें देखने को मिलती हैं।

इतना ही नहीं सड़कों पर चीनी मिट्टी बर्तन, दीप चीनी मिट्टी बर्तन, भक्ति चित्र और चीनी मिट्टी बर्तन मूर्तियां भी नजर आते हैं और तो और चिन तेहचन शहर में चीनी स्वर्गीय नेता माओ त्से तुंग के लिए विशेष तौर पर तैयार बर्तन और राजकीय अतिथि होटल के लिए बनाए गए विशेष बर्तन भी प्रशंसनीय हैं। चिंग तेह चन शहर में उचित उत्पादित बर्तनों को जेट जितने सफेदी और कागज जितने पतलापन की ख्याति भी प्राप्त हो गई है।

चिंग तेह चन शहर की चीनी मिट्टी बर्तनों की विशेषता हर जगह पर दिखाई देती है। खासकर एक दूसरे शहर से जुड़ने वाली संकरी छोटी गलियों ने अपनी विशेष पहचान बना ली है, क्योंकि इतिहास में चिंग तेह चन शहर के अधिकतर वासी अपने परिवार की हैसियत से चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने और बेचने में लगे हुए हैं। इसलिए बहुत से घरों को दो भागों में बांटा जाता था।

यानी पहले भाग को दुकान का रूप दिया गया, जबकि पिछले भाग को चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने का वर्कशॉप। यह परंपरा पिछली कई शताब्दियों से चली आई। न जाने इन संकरी गलियों ने नीचे कितने अधिक टूटे-फूटे बर्तन दबे हुए थे। सिर्फ यह मालूम है कि आज यदि किसी ने फिर इन गलियों के पुराने मकानों के खंडहरों पर नए मकान बनाने के लिए जो जमीन खोदी तो जमीन की खुदाई में प्राप्त कुछ न कुछ प्राचीन मूल्यवान बर्तन देखकर लोग चिंतित हो जाते हैं।

चिंग तेहचन शहर की चीनी मिट्टी की सड़क पर शहर की चीनी मिट्टी बर्तनों का परिचायक है। यह सड़क चिंग तेहचन शहर के पुराने क्षेत्र के केंद्र अवस्थित है और स्थानीय वासी इस सड़क को चिंग तेहचन शहर की चीनी मिट्टी बर्तन संस्कृति का नमूना मानते हैं, पर इस सड़क का नाम चीनी मिट्टी बर्तन क्यों पड़ा वास्तव में इस नाम के पीछे एक कहानी छिपी हुई है। कहा जाता है कि बहुत पहले यहां पर अनगिनत चीनी मिट्टी के बर्तनों की दुकानें खड़ी हुई थी, जिनमें एक सबसे बड़ा दुकानदार बहुत दुष्ट था।

वह लोगों पर अत्याचार करता था। वह अपना एकाधिकार जमाने के लिए कई बड़े-बड़े कुत्ते पालता था। यह कुत्ते अक्सर गरीबों को देखकर भूखा होकर पीछा करते थे और अमीरों या कुली नो को देखकर मालिक के पीछे दुम हिला हिला कर शांत हो जाते थे। यह स्थिति को देखकर दूसरे दुकानदारों को बहुत गुस्सा आया। लेकिन वह कुछ नहीं कर सकते थे। बाद में एक बुजुर्ग ने चुपचाप से किसी दवा को पिलाकर इन कुत्तों को पागल बना दिया, फिर यह कुत्ते पागलपन से इधर-उधर दौड़ते हुए अपने मालिक की दुकान में रखे सभी चीनी मिट्टी के बर्तनों को तोड़ दिए। जिससे बर्तनों के टुकड़े-टुकड़े सारी सड़क पर बिखर गए। इसलिए यह सड़क चीनी मिट्टी बर्तन सड़क के नाम से जानी जाने लगी।

चीनी मिट्टी बर्तन सड़क के पास हुई चाओ नान छांग, सूहू और लिंग चयांग नामक सोसाइटी या मुख्य तौर पर उन्हीं शहरों से आए चीनी मिट्टी बर्तन के व्यापारियों को सुविधाएं उपलब्ध कराने में संलग्न थी। इसलिए इस चीनी मिट्टी बर्तन सड़क पर चीन के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोग देखने को मिलते हैं और साल भर में चहल-पहल नजर आती थी।

इस रौनकदार चीनी मिट्टी बर्तन सड़क के पास एक ड्रैगन बर्तन नामक सड़क भी है। इस सड़क का नाम भी यहां पर शाही परिवार के लिए विशेष तौर पर तैयार बर्तन की वजह से पड़ा गया है। यह बड़ा बर्तन खासकर रात में आप आने के लिए तैयार किया गया है क्योंकि इसी प्रकार के बर्तनों पर ड्रैगन की सजीव आकृतियां अंकित हुई हैं। इसलिए राज महल में रखे यह भी भीमकाय बर्तन ड्रैगन बर्तन के नाम से नामी हो गए हैं।

ड्रैगन बर्तन पीटने से निकलने वाली आवाज बहुत साफ—सुथरी है। क्योंकि उसका आकार प्रकार बहुत बड़ा है। इसलिए उसे तैयार करना बहुत कठिन है एक ड्रैगन बर्तन का नमूना बनाने के बाद भट्टी में कम से कम 19 दिन—रात उचित आंच में पकाने जाने की जरूरत पड़ती थी।

चिंग तेहचन शहर के चीनी मिट्टी बर्तन पुरातन अनुसंधानशाला के प्रदर्शनी भवन में एक दुर्लभ बड़ा ड्रैगन बर्तन रखा हुआ है। यह बड़े आकार वाला ड्रैगन बर्तन मिंग राजवंश काल यानी 1436 से 1449 तक के दौरान बनाया गया था। इस बर्तन पर दो बड़े ड्रैगनों का चित्रण हुआ ही नहीं, दोनों ड्रैगनों के मुद्दों के बीच एक भभकती अग्नि बोल भी नजर आता है। इसका मतलब है कि यह दोनों ड्रैगन आग भगा रखे हैं।

चिन तेह चन शहर में चीनी मिट्टी बर्तनों के टुकड़ों से तैयार दीवारें, सड़कें, भट्टियां और मकान हर जगह पर देखने को मिलते हैं। आज के जमाने में यहां के वासी चीनी मिट्टी बर्तनों के टुकड़ों से सड़कों पर बिछाने के आदी भी हैं।

चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग चिंग तेहचन का एकमात्र मुख्य उधम है। हजारों वर्ष पुराना यह उद्योग इस शहर का आर्थिक स्तंभ है तथा उसकी आत्मा और प्राण भी। कहा जा सकता है कि चीनी मिट्टी के बर्तन शायद यह शहर भी ना रहा होता।

चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग चिंग तेह चन को सुंदरता व खुशहाली दी। 14 लाख की आबादी वाले इस शहर में चीन के अन्य बहुत से शहरों की तरह सुधार व खुलेपन की नीति से भारी परिवर्तन आया और इन सड़कों के किनारों पर गगनचुंबी इमारतें खड़ी हैं।

शहर की हर जगह चहल पहल पर आधुनिकता से व्याप्त है, पर आज के इस आधुनिक माहौल के पीछे इसके चीनी मिट्टी के बर्तनों के इतिहास की छाप छपी नहीं रह सकती है। हजारों लाखों देशी—विदेशी पर्यटक यहां चीनी मिट्टी के बर्तनों को देखने आना नहीं भूलते।

चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग चिन तेह चन में कोई 2000 वर्ष पहले पैदा हुआ। शहर में व उसके उपनगरीय क्षेत्र में आज भी चीनी मिट्टी के बर्तनों की कई प्राचीन भट्टियां अच्छी तरह सुरक्षित हैं। मजे की बात है कि इस शहर का ढांचा पूरी तरह इन प्राचीन भट्टियों के आधार पर बना हुआ है। चिंग तेह चन शहर के पुराने क्षेत्र में एक भी सीधी गई या सड़क देखने को नहीं मिलती। अब भट्टी के खंडहर दिखाए जाते हैं। ये चिंग तेह चन के शानदार चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग के साक्षी हैं।

पर्यटक चिंग तेह चन में मामूली मिट्टी के सूक्ष्म सुंदर बर्तनों में बदलने की पूरी प्रतिक्रिया देख सकते हैं। आमतौर पर चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने की प्रक्रिया के दो प्रमुख भाग होते हैं। सबसे पहले उत्पाद मिट्टी के बर्तनों के सुंदर नमूने बनाते हैं और फिर इन तीनों को भट्टी के बर्तनों के सुंदर नमूने बनाते हैं फिर इन नमूनों को भट्टी में पकाने का अनुभव रखने वाले उस्ताद समुचित आज पर बेहद आसान से पकाते हैं। यह एक बेहद जटिल प्रक्रिया है। भट्टी का भिन्न तापमान अलग-अलग क्वालिटी के बर्तनों को जन्म देता है। कहा जाता है कि इसका सही अनुभव पाने में 10 साल से अधिक का समय लगता है।

पीढ़ी दर पीढ़ी चली आई इस अनोखी कला चिन तेह चन को चीनी मिट्टी के बर्तनों की राजधानी बनाया और इस शहर ने चीनी मिट्टी के बर्तनों को नई दुर्लभ किस्मों का सृजन किया। विश्व विख्यात चिंह हूं बर्तन उनमें से एक हैं।

रंगीन चीं हुंग बर्तन चिंग तेह चन के चीनी मिट्टी के चार प्रसिद्ध बर्तनों में से एक माना जाता है। यह बर्तन बनाने की कला कोई 500 वर्ष पहले मिंग राजवंश में शुरू हुई, उसके चमकदार लाल रंग में रंगने की झलक में ऐसी छोटी बड़ी दुकानों की लंबी कतारें नजर आती हैं, जहां से आसानी से अपनी पसंद की चीज खरीद सकते हैं।

● चीनी मिट्टी के बर्तन:—

चीनी मिट्टी के बर्तन शब्द में चीनी का अर्थ चीन का होता है जिससे जाहिर होता है कि चीनी मिट्टी के बर्तन का चीन से घनिष्ठ संबंध है अर्थात् चीनी मिट्टी का बर्तन चीन का आविष्कार है।

पुरातत्व सामग्रियों से सिद्ध हुआ है कि चीनी मिट्टी के बर्तन का पूर्व रूप प्राचीन काल में उत्पादित नीले रंग की मिट्टी का बर्तन था जो मिट्टी के बर्तन का पूर्व रूप प्राचीन काल में उत्पादित नीले रंग की मिट्टी का बर्तन था। जो मिट्टी के बर्तन से चीनी मिट्टी के बर्तन के रूप में बदलने की बीच की वस्तु थी। उसमें अधिक मिट्टी बर्तन और चीनी मिट्टी के बर्तन की दोनों गुणवत्ता मिलती थी। चीन में प्राचीनतम नीले रंग की मिट्टी के बर्तन उत्तरी चीन के शानसी प्रांत की शास्यान कांडटी में स्थित प्राचीन लंगुशान सभ्यता स्थल में प्राप्त हुए हैं, जो आज से 4200 साल पुराना है।

चीन में असली अर्थ का चीनी मिट्टी का बर्तन पूर्व हान राजवंश के काल ईस्वी 25—220 में आविष्कृत हुआ था। सर्वप्रथम वह दक्षिण चीन के चेच्यिंग प्रांत में उत्पादित हुआ। इसके बाद दक्षिण से

उत्तर चीन में आया। जिसकी तकनीक में भी भारी प्रगति आयी। इसके दौरान सफेद रंग के चीनी मिट्टी के बर्तन का उत्पादन एक अहम घटना थी। सफेद रंग का चीनी मिट्टी का बर्तन नीले रंग के मिट्टी के बर्तन के विकास से उत्पन्न हुआ।

दोनों में फर्क यह है कि मिट्टी में लौह तत्व की मात्रा ज्यादा या कम निहित है, कम लौह तत्व वाले बर्तन में सफेद का रंग आता है, ज्यादा मात्रा में लोहा मिलाई बर्तन पर बर्तन का रंग भरे या हल्के रंग का होता है। चीनी मिट्टी के बर्तन के विकास में पहले एकल रंग के ग्लेज वाला बर्तन बनाया जाता था। फिर बहू रंगीन ग्लेज बर्तन का विकास हो गया। रंगीन ग्लेज चीनी मिट्टी के बर्तन में पृष्ठ रंग की प्रायः सफेद है। जिसमें आधार पर दूसरे रंगों का काम अधिक सुंदर और चमकीला दिखता है। इस की दृष्टि से सफेद रंग चीनी मिट्टी के बर्तन का आविष्कार बाकी दूरगामी प्रभाव पड़ता था।

पंचम अध्याय

- सिरेमिक बनाने की प्रक्रिया

सिरेमिक बनाने के तकनीक (प्रक्रिया)

सिरेमिक बनाने के तकनीक प्रक्रिया: सिरेमिक बनाने की तकनीक व सिरेमिक बनाने के तौर-तरीके हैं, जिनका उपयोग रोजमर्रा के टेबल वेयर से लेकर कंप्यूटर पार्ट्स जैसे इंजीनियरिंग सिरेमिक तक बनाने के लिए किया जाता है। मिट्टी के बर्तनों की तकनीक में कुम्हार का पहिया स्पलकास्टिंग और कई अन्य शामिल हैं।

प्रौद्योगिकी के कई क्षेत्रों में जटिल आकार में सिरेमिक कच्चे माल के पाउडर बनाने के लिए तरीके वांछनीय हैं। उदाहरण के लिए उन्नत उच्च तापमान वाले सृजनात्मक भागों जैसे कि हीट इंजन घटकों, रिक्यूपरेटर और सिरेमिक पाउडर के पाउडर से उत्पादन के लिए ऐसे तरीकों की आवश्यकता होती है।

इस उत्पादन संचालन के साथ उत्पादित विशिष्ट भागों में स्टेनलेस स्टील, कास्य जटिल काटने के उपकरण, प्लास्टिक मॉल्ड टूलिंग और अन्य से बने इरमेलर्स शामिल हैं। लकड़ी, धातु, पानी, प्लास्टर, एपॉक्सी और एसटीएल, सिलिका और जिरकोनिया, विशिष्ट सामग्री का उपयोग किया जाता है।

इस उत्पादन ऑपरेशन को आयामी स्थिरता सतह की गुणवत्ता, घनत्व और एक रूपता के साथ उपकरण प्रदान करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए स्पल कास्टिंग प्रक्रिया पर कच्चा माल थोड़ा एडिटिव के साथ कच्चे माल की उच्च सांद्रता होती है। इससे एकरूपता में सुधार होता है। लेकिन इसके अलावा प्लास्टर मोल्ड, पिछी हुई परची से कंपैक्टर तक पानी खींचता है, और मॉडल की सतह पर कास्टिंग बनाता है। यह एक धनी डली बनाता है।

• कौन हो तुम :-

चीनी मिट्टी की चीजें बनाने की कई तकनीकें हैं, लेकिन एक उदाहरण स्लिप कास्टिंग है। यह वह जगह है जहां पर्ची या तरल मिट्टी, एक प्लास्टर मोल्ड में डाली जाती है। स्पल में पानी को प्लास्टर मिट्टी की दीवारों में जमा किया जाता है, जिससे ठोस मिट्टी की एक अंदर की परत निकल जाती है। जो जल्दी से कठोर हो जाती है।

जब सूख जाता है तो ठोस मिट्टी को भी हटाया जा सकता है। सिलिप कास्टिंग में इस्तेमाल की जाने वाली पर्ची अक्सर एक पदार्थ के साथ लिप्त होती है। जो पर्ची को नरम करने के लिए अतिरिक्त पानी की आवश्यकता अनुसार को कम करती है। यह अत्यधिक संकोचन को रोकता है जो तब होता है। एक टुकड़ा जिसमें बहुत अत्यधिक पानी होता है।

सिलिप कास्टिंग विधियां अन्य सिरामिक तकनीकों पर उच्च शुद्धता वाले सिरामिक कच्चे माल के ढलाई में बेहतर सतह की गुणवत्ता, घनत्व और एकरूपता प्रदान करते हैं। जैसे कि हाइड्रोनिंग कास्टिंग, क्योंकि कच्चा हिस्सा थोड़ा एडिटिव के साथ सिरामिक कच्चे माल की उच्च एकाग्रता है।

एक पर्ची पर तरल पदार्थ में ठीक कच्चे माल के पाउडर का एक निलंबन है। जैसे कि पानी या अल्कोहल एक निलंबन है, जैसे कि पानी या अल्कोहल के साथ थोड़ी मात्रा में द्वितीयक सामग्री, जैसे की डिश पेरेंट्स सुपफेस और बाइंडर। मिट्टी के बर्तनों के फिसलने की तकनीक एक प्लास्टर ब्लॉक या फलास्क मोल्ड को रोजगार देती है। प्लास्टर मोल्ड, पानी को खिसकने वाली पर्ची से कॉम्पैक्ट करने के लिए खींचता है। यह घनीभूत हवा के अंतराल दूर करने और अंतिम साइन्ट्रिंग प्रतिक्रिया में सिकुड़ना को कम करता है।

● योगात्मक वि-नर्माण :-

छोटी मात्रा में जटिल आकृतियों के उत्पादन के लिए **Additive** विनर्माण (AM) एक प्रभावी दृष्टिकोण पर प्रतिनिधित्व करता है और महत्वपूर्ण अनुसंधान और विकास का विषय है। पॉलिमरिक सामग्री एडिटिव विनिर्माण दायरा सामग्री प्रसंस्करण चुनौतियों के कारण काफी सीमित रहता है। सिरामिक के एकाग्र के लिए व्यवसायिक रूप से उपलब्ध ज्यादातर परत चूर्ण की परत पर निर्भर करते हैं। और शायद ही कभी लागत प्रभावी होते हैं। हालांकि मशीनिंग सिरामिक लेखों में कठिनाइयों का मतलब है कि एएम तकनीक उन स्थितियों में आकर्षण हो सकती है जहां उत्पादन की मात्रा बहुत कम होती है जो पर्ची कास्टिंग विधियों के लिए नए नए सांचे का उत्पादन करते हैं। विशेष रूप से स्टेरीलिथोग्राफी सहित तकनीकों का उपयोग करते हुए प्रीसेमिक पोलिमेर से सिरामिक के एडिटिव निर्माण, बाद में पायरोलिसिस सात बहुलक सिरामिक प्राप्त करने के लिए।

● सिरामिक खोल कास्टिंग:-

सिलिका, जीरकोनिया और अन्य दुर्लभ सामग्रियों का उपयोग करके सिरैमिक शेल कास्टिंग तकनीक का उपयोग वर्तमान में धातु भागो उद्योग द्वारा नेट कास्टिंग के लिए किया जाता है। पिंगले हुए धातु की ढलाई के लिए सटीक शेल मोल्ड बनाते हैं।

मॉल्ड शेल की परत को बनाने के लिए तकनीक में एक गिला-गिला सूई और सूखा पाउडर कोटिंग या प्लास्टर शामिल हैं। सामान्य रूप से शेल कास्टिंग विधि को आयामी स्थिरता के लिए जाना जाता है और इसका उपयोग एयर स्पेस और मोलेड मेटल कास्टिंग में अन्य उद्योगों के लिए नेट-कास्टिंग प्रतिक्रियाओं में किया जाता है। स्वचालित सुविधाएं पेड़ों पर कई मॉम पैटर्न, बड़े घोल मिक्सर और स्वचालित सूई के लिए द्रव पाउडर बेड का उपयोग करती रही है।

- तकनीकी चीनी मिट्टी की चीजें :-

प्रसंस्करण के लिए तैयार सूखे पाउडर से तकनीकी सिरैमिक सामग्री बनाते समय आवश्यक आकार में बनाने के विधि सामग्री तैयार करने की

ख:41 चउ, 5६4६2025, ।श्र ।ल च।त्श्र ।च।ज: विधि और आकार और भाग के आकार पर निर्भर करती है। शुष्क पाउडर बनाने के लिए तैयार की गई सामग्री, आमतौर पर आवश्यक बल और पाउडर भरने की गहराई के लिए चुने गए यांत्रिकी या हाइड्रोलिक पाउडर कंपैक्टिंग प्रेस में 'सूखी' दबाकर बनाई जाती है।

सूखे पाउडर को स्वचालित रूप से गैर लचीले स्टील या टंगस्टन कार्बनडाई मे डाई और डिस्चार्ज में डाला जाता है। और फिर पाउडर को डाई के आकार में कॉम्पैक्ट कर दिया जाता है। यदि भाग बड़ा होना चाहिए और समान रूप से दबाव घनत्व के लिए दबाव संचालित होने में असमर्थ है, तो आइसोस्टैटिक दबाव का उपयोग किया जा सकता है।

जब आइसो स्टैटिकली दबाव जाता है तो पाउडर एक लचीली झिल्ली का आकार लेता है, जो मोल्ड के रूप में कार्य करता है। दबाए गए पाउडर के आकार और आकार का गठन। आइसोस्टैटिक प्रेस उच्च गति, ऐसे पुर्जों के लिए सिरैमिक प्रेसर या सैंड ब्लास्ट नोजल के लिए ऑटोमेटिक प्रेस के उच्च आउटपुट के आकार और आकार का गठन।

आइसोस्टेटिक प्रेस उच्च गति, ऐसे पुर्जों के लिए सिरैमिक प्रेशर या स्टैंड ब्लास्ट नोजल के लिए ऑटोमेटिक प्रेस के उच्च आउटपुट प्रकार, या धीमी गति से चलने वाले 'वेट बैग' प्रेस हो सकते हैं। जो ऑपरेशन में बहुत अधिक मैन्युअल होते हैं। लेकिन विशेष रूप से मशीन के रिक्त स्थान के लिए उपयुक्त होते हैं। या रिक्त स्थान जो कट या अन्यथा माध्यमिक संचालन में आंतरिक आकार में बनेंगे।

यदि तकनीकी सिरैमिक भागों की आवश्यकता होती है जहां लंबाई के व्यास का अनुपात बहुत बड़ा है, तो बाहर निकालना का उपयोग किया जा सकता है। दो प्रकार के सिरैमिक एक्सट्रूडर होते हैं जिनमें से एक पिस्टन प्रकार का होता है जिसमें हाइड्रोलिक बल होते हैं। जो एक मेंढक को धक्का देता है, जो बदले में सिरैमिक को लोडेड सामग्री सिलेंडर के माध्यम से धकेलता है और डाई के माध्यम से होता है जो कि एक्सट्रैक्ट बनता है। दूसरे प्रकार का एक्सट्रूडर एक स्कू या बर्मा होता है।

जिस प्रकार एक स्कू उस समग्री को मजबूर करता है जो भरने के माध्यम से और फिर से उस हिस्से को आकार देता है। दोनों प्रकार के एक्सट्रूडर एक स्कू या वर्मा होता है। जिस प्रकार एक स्कू सामग्री को मजबूर करता है, जो भरने के माध्यम से और फिर से उस हिस्से को आकार देता है। दोनों प्रकार के एक्सट्रूजन में कच्चे माल को प्रक्रिया में सामग्री के प्रवाह की अनुमति देने और पेरित करने के लिए प्लास्टिकसाइज किया जाना चाहिए।

जटिल तकनीकी सिरैमिक भागों को आमतौर पर इंजेक्शन मोल्डिंग प्रक्रिया या 'गर्म मोम मोल्डिंग' का उपयोग करके बनाया जाता है। दोनों गर्मी में संवेदनशील प्लास्टिक साइजरो पर भरोसा करते हैं ताकि सामग्री को भरने में मदद मिल सके। भाग को जल्दी से भरने से हटाने के लिए ठंडा किया जाता है।

सिरैमिक इंजेक्शन मोल्डिंग प्लास्टिकइजिंग के लिए विभिन्न पॉलीमर का उपयोग उपयोग करते हुए प्लास्टिक इंजेक्शन मोल्डिंग की तरह है। गरम मोम मोल्डिंग मोटे तौर पर पैराफिन मोम का उपयोग करता है।

- अन्य तकनीकें :—

हाथ से बनाने की कई पारंपरिक तकनीकें भी हैं जैसे— पिचिंग, सॉफ्टस्लैब, डॉट स्लैब और कॉयल निर्माण ।

अन्य तकनीकों में सामग्री की परतों के निर्माण के लिए पेपर क्ले स्लिप के माध्यम से पशु या कृत्रिम उन फाइबर को फैलाना शामिल है। परिणाम रूपों या कटौती पर लपेटा जा सकता है, सूख जाता है। और बाद में तरल और नरम पेपरक्ले के साथ जुड़ जाता है।

- गुणधर्म एवं वर्गीकरण :—

- मृदाण्ड (च्वजजमतल) उद्योगों में उपयोगी होने के लिए चीनी मिट्टी के कुछ अन्य गुण भी होने चाहिए जैसे:—

- गीली रहने पर उसे मनचाही आकृति दे देना।
- सूखने पर कठोर हो जाना।
- ऊंचे आप पर न गलाना।
- सूखने पर या आग में पकने पर भी दी हुई आकृति का ज्यों का त्यों बना रहना।
- सूखने व आग में पकने पर नियमित रूप से सिकुड़ना।

इन दोनों को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त दो प्रकार की चीनी मिट्टी का आगे और भी वर्गीकरण किया जा सकता है जैसे :—

- वह चीनी, मिट्टी जो आग में पकने पर सफेद रहती है और वह चीनी मिट्टी जो आग में पकने पर सफेद नहीं रहती।
- सूखने और पकाने पर अधिक सिकुड़ने वाली चीनी मिट्टी कम सिकुड़ने वाली चीनी मिट्टी।
- ऊंचे ताप पर गल जाने वाली चीनी मिट्टी और ना करने वाली चीनी मिट्टी।
- विशेष सुघट्टम और कम सुघट्टम गठन मिट्टी।
- छोटे कणों वाली मिट्टी और बड़े कणों वाली मिट्टी।

विशेष प्रकार के गुणोंवाली मिट्टी ही विशेष प्रकार के उद्योग में अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। जैसे— उंचे ताप को सहसकने वाली मिट्टी का उपयोग ताप ईंटों के बनाने में होता है। मकान इत्यादि बनाने के लिए पकाने पर सुंदर और लाल हो जाने वाली मिट्टी अधिक उपयोगी है। प्याले, कटोरी इत्यादि बनाने में आग में पकाने पर सफेद रहने वाली मिट्टी को ही लोग अधिक पसंद करते हैं। कपड़ा, कागज या रबड़ बनाने के उद्योग में खूब छोटे कणों वाली सफेद मिट्टी की अधिक मांग है। उपयोग में लाने के पहले चीनी मिट्टी को अपद्रव्यों से मुक्त करना पड़ता है। यह क्रिया चीनी मिट्टी को पानी से 'धोकर' की जाती है। इसके लिए चीनी मिट्टी को पानी में मिलाकर नालियों द्वारा बहाया जाता है। अपद्रव भारी होने के कारण नीचे बैठ जाते हैं और चीनी मिट्टी पानी के साथ बह जाती है। कुछ दूर रहने के बाद इस चीनी मिट्टी युक्त पानी को एक टंकी में जमा कर लिया जाता है। कुछ समय बाद चीनी मिट्टी भी पानी में नीचे बैठ जाती है। और ऊपर का पानी निकाल लिया जाता है और मिट्टी सुखा ली जाती है।

➤ चिनहट के लखनवी चीनी मिट्टी के बर्तन :-

लखनऊ वैसे तो अपने कई अंदाजों के लिए जाना जाता है जैसे कि यहां का कबाब, यहां की नवाबियत यहां के वस्तु के नमूने, परंतु एक और ऐसी बात है लखनऊ में जो कि इसे सबसे भिन्न बनाती है और वह है यहां पर पास में ही बसे चिनहट के बर्तन। चिनहट के बर्तन आज दुनिया भर में जाने जाते हैं। यहां पर मिट्टी के बर्तनों पर बनाया जाता है।

जैसे कि हम सब जानते हैं कि भारत में बर्तन बनाने की परंपरा ताम्र पाशाणिक काल से ही आ चुकी थी। उस समय से लेकर हड़प्पा काल तक भारत ही नहीं बल्कि विश्व भर में बर्तन बनाने की परंपरा का सूत्र पात्र ही चुका था। हड़प्पा काल के बाद गंगा के मैदानी भाग में कई और प्रकार के बर्तनों ने जन्म लिया जैसे कि उत्तरी काली लेपित मृदद्वांड और धूसर मृदद्वांड परंपरा आदि। इस लेख में हम चिन्ह चिनहट के मिट्टी के बर्तनों के विषय में पढ़ेंगे और साथ में ही इसके व्यापक और चीनी मिट्टी के बर्तनों के विषय में भी जानकारी इकट्ठी करेंगे।

चिनहट के विषय में जाने से पहले हमें चीनी मिट्टी के बर्तन के विषय में जानना अत्यंत आवश्यक है। चीनी मिट्टी के विषय में यदि हम पढ़ते हैं तो हमें पता चलता है कि इसका जन्म चीन के संबंधित है। इस बर्तन का इतिहास सॉन्ग शंग वंश से जुड़ा हुआ है। जिससे कि पारंपरिक बर्तन बनाने

वाला माना जाता है। कालांतर में हान राजवंश ने इस कला को और निखारा तथा परिक्रिस्ट चीनी मिट्टी के बर्तनों को जन्म दिया।

यह कला चीन में विभिन्न राजवंशों के साथ बढ़ती गई और परिक्रिस्ट होती गई। कालांतर के राजवंशों में मुख्य सुई और तांग राजवंश थे। 10वीं शताब्दी में एक अन्य राजवंश का सूत्रपात हुआ जिसे की सांग राजवंश के रूप में जाना जाता है। इस राजवंश ने चीनी मिट्टी के बर्तनों को कला का ओहदा प्रदान किया और इसे सम्मानित करने का भी कार्य किया।

सितक रन्ट से इस बर्तन का प्रसार बड़ी संख्या में होना शुरू हुआ था। तथा भारत में भी यह इसी प्रकार से आया था। यह बर्तन सिल्क रूंट के माध्यम से ही निर्यातिक किया जाने लगा।

षष्ठम् अध्याय

- भारत में विभिन्न स्थानों पर सिरेमिक का प्रयोग
- चित्र परिचय

भारत में विभिन्न स्थानों पर सिरेमिक का प्रयोग

लखनऊ शहर, अपनी समृद्ध विरासत, तौर-तरीकों और नवाबी संस्कृति के लिए जाना जाता है। इसमें एक और आयाम चिनहट मिट्टी के बर्तनों का भी है। कभी चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए लखनऊ का चिनहट विख्यात था। इसे अपना नाम उत्थान के नाम पर मिला है जहां यह उत्पन्न हुआ।

चिनहट पोटली मुख्य रूप से चिनहट क्षेत्र में की जाती है, जो लखनऊ शहर के पूर्वी इलाके में फैजाबाद रोड पर स्थित है। चिनहट 1970 के दशक में उत्तर प्रदेश राज्य में मिट्टी के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध केंद्र के रूप में उभरा, जिसने कई पर्यटकों को भी आकर्षित किया है।

यह टेराकोटा उद्योग एक लंबे समय से पहले से ही पनप रहा था। चिनहट ने न केवल भारत से ही बल्कि पूरे विश्व से आंगतुको को आकर्षित किया। चिनहट पॉटरी दस्तकारी वाले मिट्टी के बर्तनों का एक रचनात्मक और सुंदर लाक रूप है जो स्थानीय कारीगरों के लिए रोटी कमाने का एक जरिया है। मुगल और नवाबों के शासन के समय से ही लखनऊ में मिट्टी के बर्तन, बर्तन या वस्तुएं बनाई जाती रही हैं।

यहां के कुम्हारों के लिए मिट्टी के बर्तन बनाना केवल एक आजीविका कमाने का एक व्यवसाय नहीं था। यह उनका काम था, जिसे पूजते थे। चिनहट के विषय में जाने से पहले हमें चीनी मिट्टी के बर्तन के विषय में भी जानना आवश्यक है, क्योंकि यही उसकी उत्पत्ति का स्रोत माना जाता है। चीनी मिट्टी के विषय में यदि हम पढ़ते हैं तो हमें पता चलता है कि इसका जन्म चीन से संबंधित है।

इस बर्तन का संबंध शंग राजवंश से जुड़ा हुआ है जिससे कि प्रारंभिक सिरेमिक बर्तन बनाने वाला समय माना जाता है। और इसकी शुरुआत 'प्रोटो पोर्सिलेन' से हुई थी। कालांतर में हान राजवंश ने इस कला को निखारा तथा परिष्कृत चीनी मिट्टी के बर्तनों को जन्म दिया।

इसके बाद यह कला सुई और तांग राजवंश द्वारा परिष्कृत की गई। धीरे-धीरे यह कला दक्षिण पूर्व एशिया में फैलने लगी, परंतु पहले से ही इन चीनी मिट्टी के बर्तनों को इस्लामी दुनिया को निर्यात किया जा रहा था, जहां वे अत्यधिक बेशकीमती थे। आखिरकार चीनी मिट्टी के बर्तन और इसे बनाने की कला पूर्वी एशिया के अन्य क्षेत्रों में फैलने लगी।

मिंग राजवंश द्वारा, बेहतरीन माल का उत्पादन एक ही शहर में केंद्रित किया गया। इस समय तक चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने की कला बहुत परिचित हो चुकी थी और सिल्क रोड़ के साथ चीनी

मिट्टी के समान का व्यापार भी किया गया। चीनी मिट्टी के बर्तन पूरे एशिया, यूरोप और अफ्रीका तक पहुंच गये।

एक बार जब उत्पादन की तकनीक फैल गई, तो दुनिया के अन्य हिस्सों में चीनी मिट्टी के बर्तनों का निर्यात किया जाने लगा। सिल्क रूट से इस बर्तन का प्रसार बड़ी संख्या में होना शुरू हुआ था तथा भारत में भी यह इसी प्रकार से आया था। 1517 में पुर्तगाल व्यापारियों ने मिंग राजवंश के साथ समुद्र के रास्ते सीधे व्यापार शुरू किया और 1598 में डच व्यापारियों ने इसका अनुसरण किया, तमाम देशों में बर्तन नहीं पहुंचा बल्कि इसको बनाने की विधि और इसके साथ यह विश्व भर में फैल गई।

दिल्ली से महज 90 किलोमीटर दूर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक छोटे से शहर खुर्जा को लोग इसलिए जानते हैं कि वहां चीनी मिट्टी के बर्तन और कुछ राज सजावटी वस्तुएं बनाई जाती हैं।

खुर्जा में बिजली के फ्यूज, सर्किट, इंसुलेटर, प्रयोगशाला के उपकरण, हवाई जहाज, टरबाइन, रॉकेट, न्यूक्लियर फ्यूजन, अंतरिक्ष तकनीकी सहित दुनिया की सबसे तेज दौड़ने वाली कारों में इस्तेमाल होने वाले कई कलपुर्जे भी बनाए जाते हैं।

जहां भारत के दूसरे उद्योग चीन के सस्ते उत्पादों को आगे पानी भरते नजर आ रहे हैं वहीं खुर्जा का सिरामिक उद्योग मजबूती से चीन की ही नहीं दुनिया के दूसरे मुल्कों के लिए भी चुनौती बनकर उभर रहा है। खुर्जा के मुकाबले चीन के उत्पाद बहुत महंगे हैं चीन अपने यहां प्रमुखता से बोनचाइना उत्पादन तैयार करता है। बोनचाइना के मुकाबले खुर्जा में स्टोनवायर, अर्थवेयर, क्वार्टर और क्ले के उत्पादन को तवज्जो दी जाती है, जो काफी सस्ते पड़ते हैं।

खुर्जा स्थित छाबड़ा इंडस्ट्रीज के मालिक रजी अहमद खान ने बताया, दो-तीन साल पहले मामूली अंतर था, लेकिन साल भर पहले केंद्र सरकार ने चीन से आयात को क्रोकरी पर संख्या के बजाय वजन के आधार पर कर लगाना शुरू कर दिया, जिसका फायदा हमें मिला है।

‘सिलकों केमिकों पोर्सलिन वर्कर्स की उपलब्धि गौर करने लायक है। इस कंपनी के तकनीकी निर्देशक गुरजीत सिंह मिनहास के मुताबिक, हम अभी तक जो जगुआर फाइटर प्लेन में इस्तेमाल आने वाले एयर फिल्टर का इंग्लैंड से आयात करते थे, जिसकी कीमत शायद साथ सात आठ हजार रूप्य में उपलब्ध करा रहे हैं।

खुर्जा में बनने वाले बिजली के खंभों पर लगने वाले इंसुलेटर की गुणवत्ता चीन के मुकाबले बेहतर होने से इंसुलेटर को यहां बिक्री के अनुमति नहीं मिल पाई।

आरके इंडस्ट्रीज के मालिक रविंद्र कुमार गुप्ता ने बताया, चीन के इंसुलेटर ज्यादा तापमान बर्दाश्त नहीं कर पाते, फट जाते हैं, इसलिए उन्हें अपना बोरिया बिस्तर समेटना पड़ा।

खुर्जा में सिरेमिक उद्योग की नींव 14वीं सदी में तैमूर लंग में रखी थी। सैकड़ों साल के इतिहास में सिरेमिक कारोबार अब यहां की रग-रग में बहने लगा है। यहां का सालाना कारोबार 100 करोड़ रुपए से ज्यादा का हो चुका है। लगभग 30 फीसदी कारोबार विदेशों में निर्यात का है।

खुर्जा से बांग्लादेश, फ्रांस, श्रीलंका, थाईलैंड, सिंगापुर, जर्मनी, अफ्रीका, इंग्लैंड आदि देशों में पॉटरी निर्यात की जाती है।

चित्र परिचय

चिनहट मिट्टी के बर्तन बनाने केंद्र के रूप में 1970 के दशक में उभर कर सामने आया था। यहां पर कई देशों से यह मिट्टी के बर्तन बनाने का कारोबार पनप रहा था, लेकिन यह 70 के बाद ही एक पहचान बनाने में सफल हो पाया।

चिनहट आज वर्तमान में भारत ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का कार्य कर रहा है। यहां की बनी हुई मिट्टी के बर्तन अपनी एक अलग ही कहानी प्रस्तुत करते हैं। यह कहानी है खूबसूरती की, यह कहानी है कलाकारी की, यह व्यापार के यहां के कुंभकारों के रोजी-रोटी का इंतजाम करता है।

सिरेमिक के बरतन की विशेषता यह है कि यह कुंभकारों के रोजी-रोटी का इंतजाम करता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह हस्त निर्मित है। इसे बनाने में किसी भी प्रकार के संयंत्र का निर्माण नहीं किया जाता।

यहां के बर्तन बड़े नामों से सजाए जाते हैं। इनकी सुंदरता को आगे चित्र द्वारा दर्शाया गया है। पूरे विश्व में यह सुप्रसिद्ध हैं। आगे स्टिक चित्र में सिरेमिक से बने बहुत सारे सामान को दर्शाया गया है।

आजकल लोग घर को सुंदर बनाने के लिए सिरेमिक की टाईलस, प्लेट, वाश वेशन, बांथ टब जैसे चित्रों का प्रयोग करते हैं।

घरों में लोग हाथ द्वारा बने सिरेमिक के गमले, सुराही, फूलदान का प्रयोग करते हैं। जिसका चित्र आगे दिखाया गया है। रसोई घर में खाना परोसने के लिए व खाना बनाने के लिए विशेष प्रकार की सिरेमिक वस्तुएं प्रयोग में लाई जाती हैं, जिनके चित्र आगे दर्शाए गए हैं।

यह चित्र बहुत ही सुंदर व रंग-बिरंगे हैं। इन पर सुंदर-सुंदर काश कश्तकारी भी की गई है। इन पर की गई काश्तकारी नागिनों की तरह चमकती है, जो मन को मोह लेती है।

उपसंहार

कला एक प्रकार का नशा है, जिसे जीवन की कठोरता से आराम मिलता है। कला शब्द की उत्पत्ति 'संस्कृत' भाषा से हुई है। संस्कृत में कला शब्द का अर्थ— प्रेरित करना, उत्साहित करना है। कला क्या है? कुछ विद्वानों में मतभेद पाया जाता है कि कला एक ऐसी वस्तु है, जो हवा और मिट्टी की तरह हमारे चारों ओर विद्यमान है। महात्मा गांधी जी कहते हैं, कला एक अनुभूति को दूसरे तक पहुंचाना है। नि—संदेह कला एवं लोक कला का घनिष्ठ संबंध है। कुछ लोगों ने तो सभी कलाओं को कौशल की आत्मा विसर्जन आदि के धरातल पर सम्मान मानते हुए कहा है कि विभिन्न कला व्यापार अनुभूत है, एक भाव से उत्पादन सामग्री के रूप अलग—अलग हैं, पर कौशल की एकाग्रता के धरातल पर, आत्म—विसर्जन के धरातल पर, कला को चित्र संज्ञा के रूप में देखने के धरातल और कलाकृतियों को जीवन के उत्पादन के रूप में प्रयोग मानने के धरातल पर सभी एक हैं।

सिरेमिक शब्द 'केरामिक कोस' से आया है। जिसका अर्थ है— मिट्टी के बर्तन । सिरेमिक एक अकार्बनिक ठोस है, और आमतौर पर एक ऑक्साइड नाइट्राइड ऑक्साइड तथा कार्बनडाईऑक्साइड पर आधारित होता है।

परंपरागत सिरेमिक, उन्नत सिरेमिक, दोनों प्रकार के सिरेमिक में अत्यधिक उन्नत उत्पादन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, ताकि प्राप्त सिरेमिक पाउडर शुद्ध हो और उसे इच्छा अनुसार आकार में बदला जा सके। इनमें से कई विधियां महंगी भी हैं।

सिरेमिक को हिंदी भाषा में मृतिका शिल्प भी कहा जाता है। ग्रीक भाषा में केरामिक से कुम्भकार कहा जाता है। बौरी में मिट्टी के बर्तनों को दो भागों में बांट रखा है।

पारगम्य और उपारगम्य। चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग चिंग तेह चन का एकमात्र मुख्य उधम है। हजारों वर्ष पुराना यह उद्योग इस शहर का आर्थिक स्तंभ है तथा उसको उसकी आत्मा और प्राण भी कहा जाता है। कहा जा सकता है कि चीनी मिट्टी के बर्तनों का यह शहर भी न रहा होता।

सम्पूर्ण संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 डॉ०. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, संस्करण : 2009, पृ०. सं०. 4, 5
- 2 डॉ०. सन्तराम देशवाल, हरियाणा संस्कृति एवं कला, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, पृ०. सं०. 39, 40, 29
- 3 डॉ०. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ०. सं०. 8, 21
- 4 डॉ०. रीता प्रताप, सुदूरपूर्व की कला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ०. सं० 24, 25

Youtube:-

- 5 <https://youtu.be/LD01BkHBP7A?Si=Jc9flujLcnxwtjasc>
- 6 <https://youtu.be/7LUVRmu4Hmi?Si=9Dpu1QfaTd4uk03>
- 7 <https://youtu.be/hthibxujlw8?Si=g465xASqymtXHt90>

चित्र संग्रह सूची

क्र०. न०.	नाम
1	सुराही द्वार गमला ।
2	सिरेमिक से बने छोटे कटोरे ।
3	सिरेमिक से बनी प्लेटें ।
4	सिरेमिक से बनी राधा-कृष्ण की मूर्ति ।
5	सिरेमिक से बनी छोटी हांडी ।
6	सिरेमिक से बने आयातकार व गोल कप ।
7	सिरेमिक से बने मोटी धारियों वाले कप ।
8	सिरेमिक से बने छोटे मर्तबान ।
9	सिरेमिक से बने पिगी बैंक ।
10	सिरेमिक की वस्तुओं पर कश्टकारी कर बनाई गई हंडिया ।
11	सिरेमिक से बना फ्यूज ।
12	सिरेमिक से बनी छोटी बरनियां ।
13	सिरेमिक से बनी सुराहीद्वार वह बिना गर्दन वाले गमले ।
14	सुराही द्वार मर्तबान ।
15	रसोई घर में दीवारों पर लगने वाली प्लेट्स ।
16	सिरेमिक से बनी कुछ टाइलों के नमूने ।
17	सिरेमिक से बने बात टब ।
18	सिरेमिक से बनी साबुनदानी ।
19	सिरेमिक से बना लैम्प ।
20	सिरेमिक से बना औषधी पीसने के लिए यंत्र ।
21	सिरेमिक से बने बिजली के कंडक्टर ।
22	सिरेमिक से बने फ्यूज कटआउट ।
23	सिरेमिक से बनी नोजल ।
24	सिरेमिक से बनी नोजलस ।

- 25 सिरेमिक से बनी वाशबेसिन ।
- 26 प्लेट का कश्तकारी करते हुए ।



सुराही दार गमला



सिरेमिक से बने छोटे कटौरे



सिरेमिक से बनी प्लेटें



सिरेमिक से बनी राधा-कृष्ण की मूर्ती



सिरेमिक से बनी छोटी हाण्डी



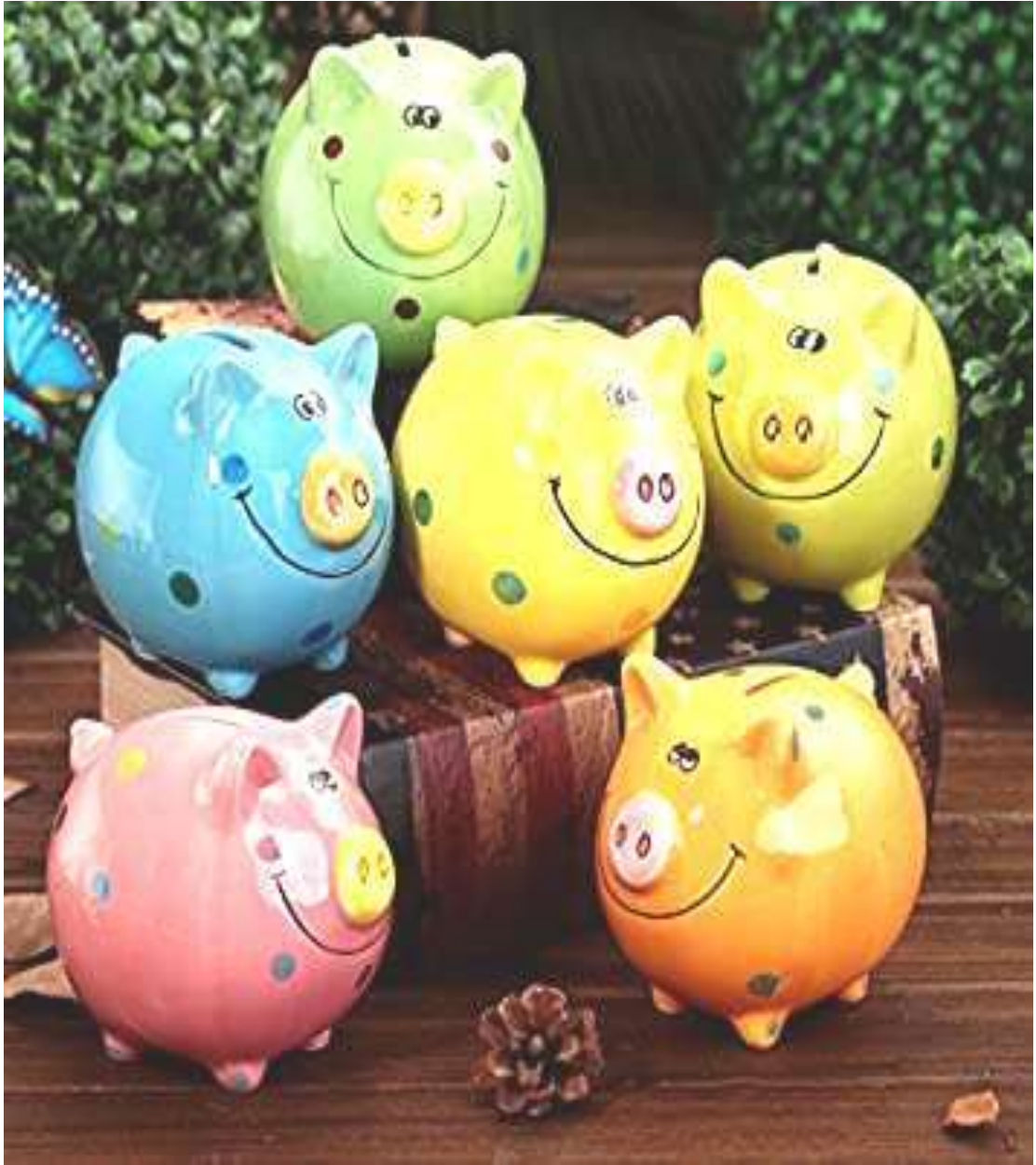
सिरेमिक से बने गोल कप



सिरेमिक से बने मोटी धारीयों वाले कप



सिरेमिक से बने छोटे मर्तबान



सिरेमिक से बने पिगी बैंक



सिरेमिक पर काश्तकारी कर बनाई गई हाण्डीयां



सिरेमिक से बना फ्यूज



सिरेमिक से बनी छोटी बरनियां



सिरेमिक से बनी सुराहीदार



सिरेमिक से बने सिराही दार मर्तबान



रसोई घर में लगने वाले प्लेट्स



सिरेमिक से बनी कुछ टाइलों के नमुने



सिरेमिक से बने बाथ टब



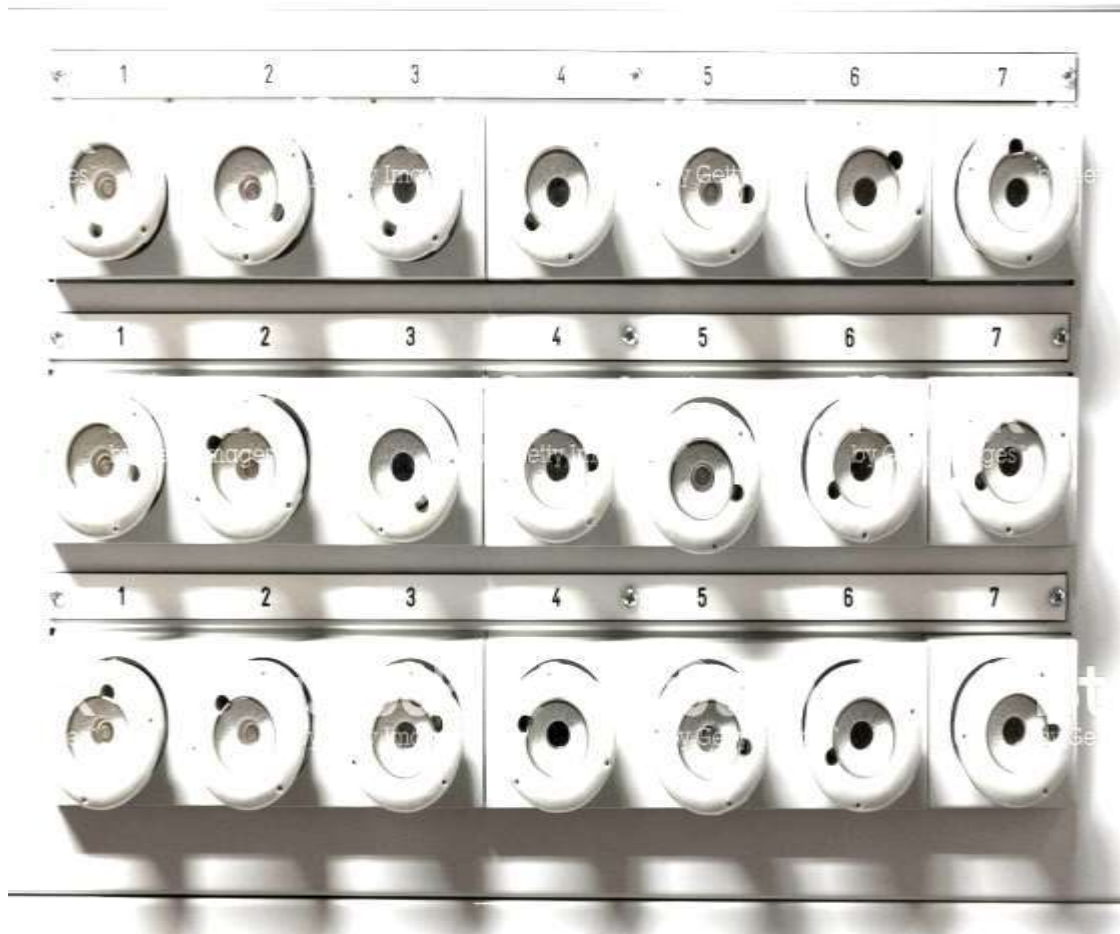
सिरेमिक से बनी साबुनदानी



सिरेमिक से बना लैम्प



सिरेमिक से बना औषधी पिसने का यंत्र



सिरमिक से बने फ्यूज कट आउट



सिरेमिक बने बर्तन



प्लेट पर काश्तकारी करते हुए